प्रस्तावना

समकालीन भारतीय साहित्य पर साहित्य अकादेमी यह छोटी-सी पुस्तक प्रकाशित कर रही है, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई। इसमे लेखको ने प्रत्येक भारतीय भाषा की पार्श्वभूमि, साहित्य के विकास की सक्षिप्त रूपरेखा और वर्तमान धाराओ का सर्वेक्षण दिया है। इनके दृष्टिकोणो मे एक प्रकार की अन्विति है, चूंकि विभिन्न भाषाओं के लेखक एक ही समान उत्स से प्रेरणा पाते है और सबका भावनात्मक और बौद्धिक अनुभव भी कम या अधिक मात्रा मे प्रायः एक-सा है। हमारा देश बाहर से आने वाले विचारो के प्रति कभी भी असवेदनशील नही रहा है; परन्तु उन सब विचारो को हमारे देश ने सदा अपना विशेष रग और छटा प्रदान की है।

साहित्य एक पावन माध्यम है, और उसके सत्प्रयोग से हम अज्ञान और पक्षान्धता की तामसिक शक्तियो से सघर्ष कर सकते हैं; और राष्ट्रीय एकता तथा विश्वबधुत्व स्थापित कर सकते है। साहित्य मे भूतकाल की गूंज, वर्तमान का प्रतिबिम्ब और भविष्यत् के निर्माण की शक्ति होती है। 'तेजोमय वाक्' के द्वारा ही पाठक जीवन के प्रति अधिक मानवी और उदार दृष्टिकोण विकसित कर सकते है, जिस दुनिया में वे जीते है उसे अधिक समझ सकते है, अपने-आपको पहचान सकते है, और भविष्य के लिए विवेकमय योजना बना सकते है।

मै आशा करता हू कि यह छोटी-सी पुस्तक पाठको को हमारे मन और हृदय, आशा और आकाक्षाओ के निर्माण-क्षणो की वेदना का लेखा दे सकेगी।

—स० राधाकृष्णन्

क्रम

आज का भारतीय साहित्य

असमिया

बिरिंचिकुमार बरुआ

सामान्य परिचय

भाषाओ के भारोपीय परिवार मे से एक है 'असमिया'। यह उस परिवार की पूर्व की ओर की बिलकुल छोर की भाषा है। यह सब प्रकार से सपूर्णतया आर्य भाषा है, व्याकरण, शब्द-रूप, वाक्य-रचना आदि सभी दृष्टियो से। उडिया और बगला ही की तरह असमिया भी प्राच्य अपभ्रश से निकली है।

असमिया साहित्य का सबसे प्राचीनतम लिखित उदाहरण तेरहवी शती ईस्वी मे मिलता है। यह नमूना धार्मिक साहित्य का है और प्राय: सस्कृत से निकला हुआ है। इस उदाहरण से कई शताब्दियो तक के साहित्य की धारा का पूर्वाभास मिलता है। चौदहवी शती ईस्वी से असमिया साहित्य स्थानीय सामन्तो और छोटे-छोटे राजाओ के आश्रय मे पनपता रहा। इसी काल मे माधवकदली ने 'महामाणिक्य' नामक कचारी राजा की प्रार्थना पर रामायण का अनुवाद किया। महाभारत मे से कई कथानक असमिया मे अनूदित हुए। 'नाग-देवी' मनसा के स्तुति-गीत और उसके विषय मे लोकवार्ताओ का प्रणयन भी इसी काल मे हुआ।

असमिया साहित्य, ईसा की पद्रहवी शती मे, शकरदेव द्वारा प्रवर्तित नव्य-वैष्णव-आन्दोलन के उदय के साथ-साथ अधिक उभरकर सामने

आया। मध्य-युग मे आसाम के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवन मे, असम-निवासियो की दृष्टि मे शकरदेव का व्यक्तित्व सबसे बड़ी घटना है। शकरदेव और उनके अनुयायियो के धार्मिक आन्दोलन का लक्ष्य केवल धर्मोपदेश देना और अपनी शिष्य-मडली बढाना ही नहीं था। उन्होने असमिया जीवन और साहित्य को, बुद्धि और शिक्षा को बडी प्रेरणा दी। शकरदेव और उनके अनुयायियो ने असमिया मे युग-प्रवर्तक साहित्य निर्मित किया। पद्रहवी और सोलहवी शती ईस्वी मे सन्त कवियो ने जो साहित्य निर्मित किया वह कई प्रकार का था महाभारत, रामायण और भागवत पुराण के अनुवाद, उनके आधार पर आख्यान, वैष्णव सिद्धान्तो के भाष्य और टीकाएँ, धार्मिक गीत तथा नाटक, जिन्हे क्रमश 'बरगीत' और 'अकिया नाट' कहा जाता था।

असमिया साहित्य ईसा की सत्रहवी शती मे, आहोम राजाओ के आश्रय मे विकसित हुआ। इसी काल मे उसमे बुरजियो का सबसे अधिक विकास हुआ है। आहोम राज-दरबारो के मुख्यत गद्य मे लिखे ऐतिहासिक वृत्त या अभिलेखो को 'बुरजियाँ' नाम से अभिहित किया जाता है। इस काल के इस विलक्षण ऐतिहासिक साहित्य के विषय मे सर जी० ए० ग्रियर्सन ने आलोचना करते हुए लिखा है "असमिया लोग अपने राष्ट्रीय साहित्य के प्रति गर्व अनुभव करते है। यह गर्व उचित ही है। ज्ञान की और अध्ययन की एक ऐसी शाखा मे वे सर्वाधिक सफल हुए है जिसमे भारत सामान्यत बहुत पिछड़ा हुआ है। बुरजियो की ऐतिहासिक रचनाएँ अगणित है, और बहुत बडी-बडी है। असमिया नागरिक के लिए बुरजियो का ज्ञान एक आवश्यक और अनिवार्य गुण माना जाता है।" (लिग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया) धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त असमिया के और भी जो बहुत-से गद्य और पद्य के ग्रन्थ राज-दरबारो के आश्रय मे लिखे गये, वे वैद्यक, ज्योतिष, गणित-शास्त्र, नृत्य और स्थापत्य के विषय मे है। कई शृगारिक प्रसगो पर भी गीत और पद्य रचे गये, और 'गीत-गोविन्द' के कई अनुवाद भी हुए।

जब राजाश्रय मे ऐतिहासिक और उपयोगी साहित्य का विकास हो रहा था, तब वैष्णव सत्रो और मठो की छाया मे एक भिन्न प्रकार का साहित्य जन्म ले रहा था। इनका नाम 'चरितपुथी' (वैष्णव सन्तो की जीवनियाँ) था। यह हमारे साहित्य मे एक नया ही प्रकार था। अब तक तो साहित्य देवी-देवताओ के एकछत्र अधिकार मे था, परन्तु अब वुरजियो और चरितपुथियो, दोनो मे, पहली बार मानव-चरित्र को भी उसका विषय बनाया गया।

आधुनिक काल

अट्ठारहवी शती का अन्तिम भाग और उन्नीसवी शती का प्रथम भाग असम के इतिहास के अधेरे काल-खण्ड है। खानाजगी और बलवे के अतिरिक्त मोआमरियो के बीच धार्मिक सघर्ष भी हुए। मोआमरिया वैष्णवो का एक लडाकू सम्प्रदाय था। अन्त मे बर्मियो के आक्रमण (ईस्वी १८१६-१८१९, १८२४) भी हुए और असम को स्वतन्त्रता खोनी पडी। अग्रेजो ने आसाम को १८२७ मे हथिया लिया। ब्रिटिश राज्य के आरम्भ मे (१८३६-१८७२) असमिया भापा को स्कूलो तथा कचहरियो मे कही भी स्थान नही मिला। अत असमिया भाषा के विकास और प्रगति का यह युग नही था। ईस्वी १८३६ मे, जिस वर्ष असमिया की सरकारी स्थिति समाप्त हुई, उसी वर्ष असम मे अमरीकन बैप्टिस्ट मिशन के कुछ सदस्य आये। अपनी और चीजो के साथ, धर्म-प्रचार के साधनो मे वे एक छापाखाना भी वहा ले आये। १८४६ ईस्वी मे अमरीकन मिशनरियो ने शिवसागर से असमिया भाषा मे 'अरुणोदय' नामक एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। धार्मिक पुस्तिकाओ के साथ-साथ, मिशनरियो ने विविध विषयो पर स्कूल के पाठ्य-ग्रथ भी प्रकाशित किये। मिशनरियो के प्रयत्नो से और उस समय के स्थानीय नेताओ के मत से सहायता पाकर, असमिया को सन् १८८२ मे अपनी उचित स्थिति पुन प्राप्त हुई। इस काल के

साहित्यिक कृतित्व के विषय मे मिस्टर पी० एच० मूर नामक मिशनरी विद्वान और भाषाशास्त्रज्ञ ने १९०७ मे कहा था

"असमिया का आधुनिक साहित्य, चाहे वह ईसाई धर्म-विषयक हो या अन्य, उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम आठ वर्षों की ही उपज मानना चाहिए। असमिया ईसाई साहित्य के संस्थापको मे ब्राउन, ब्रान्सन और निधि लेवी की त्रयी विशेष रूप से प्रख्यात है।"

फिर भी साहित्य संज्ञा को सार्थक करने वाला लेखन बीसवी शती के आरम्भ मे शुरू हुआ। उन दिनो कलकत्ता के कालेजो मे जिन असमी तरुणो ने शिक्षा प्राप्त की थी उन्हीके प्रयत्न से यह कार्य बढा। कलकत्ता मे पढने वाले सर्वश्री चन्द्रकुमार अगरवाल (१८५८-१९३८), लक्ष्मी-नाथ बेजबरुआ (१८६८-१९३८), हेमचन्द्र गोस्वामी (१८७२-१९२८), और पद्मनाथ गोहाँई बरुआ (१८७१-१९४६) ये चारो मित्र थे। इन चारो तरुणो ने १८८९ मे 'जोनाकी' (जुगनू) नामक एक मासिक पत्रिका शुरू की। इस पत्रिका मे प्राय उन्ही स्वरो का आरोह मिलता है जो कि अंग्रेजी रोमांटिक आन्दोलन मे विशिष्टता से पाया जाता है। आधुनिक असमिया साहित्य के पुनर्जागरण की मूल उत्स वह राष्ट्रीय चेतना, इन लेखको तथा उनकी मित्रमडली के लेखको के द्वारा विविध रूपिणी अभिव्यंजना पाती रही।

इन लेखको ने न केवल कोमल गीत, स्फूर्तिदायक, देशभक्तिपूर्ण कविताएँ और ओजस्वी, वर्णनात्मक कविताएँ, कई विषयो को छूते हुए निबंध, कहानियाँ, नाटक और साहित्यिक, सामाजिक तथा धार्मिक उपन्यास ही लिखे, बल्कि ऐतिहासिक गवेषणा तथा लोक-गीत और लोक-वार्ताओ के संग्रह-जैसे कार्यो मे भी बहुत दिलचस्पी ली।

आरंभिक रोमांटिक

अंग्रेजी साहित्य से इन कवियो ने अपनी मुख्य स्फूर्ति ग्रहण की। वे सब प्रेम और सौंदर्य के भावगीतो के लेखक थे। इन कवियो मे लक्ष्मी-

नाथ बेजबरुआ सबसे अधिक सव्यसाची थे। वे उत्तम कवि तथा महान निबधकार होने के साथ-साथ विख्यात पत्रकार भी थे। उनकी कविता ने सब रूढ शृखलाओ को तोड दिया। उन्होंने न केवल भाव-जगत मे एक नवीन स्वर दिया था, अपितु वे ताजे साहित्य-रूप और शैलियो को भी शुरू करनेवाले थे। प्रेम-गीत, प्रकृति-विषयक कविताएँ, आख्यान-काव्य, तथा वीर-काव्य उनकी विशेष देन है। उनके देशभक्तिपूर्ण गीतो और कविताओ मे (उदाहरणार्थ 'अमोर जन्मभूमि', 'मोर देश', 'असम सगीत' और 'बीन बैरागी' मे) लक्ष्मीनाथ ने असमिया सस्कृति और इतिहास की महत्ता को बड़ी उमग और उच्छ्वसित आशसा से वर्णित किया है। बेजबरुआ की राष्ट्रीय भावनाओ को अतीत के रोमाटिक आदर्शीकरण ने उत्प्रेरणा दी, और उन्होने अपनी रचनाओ मे असम की उस भावी प्रगति मे अटूट आस्था प्रकट की, जो केवल राजनीतिक और भौतिक ही नही, सौंदर्य समन्वित एव नैतिक भी होगी।

देश-भक्तिपूर्ण कविता के दूसरे लेखक कमलाकान्त भट्टाचार्य है। कमलाकान्त की देश-भक्ति केवल एक विस्मृति और नीद मे डूबे हुए देश को अपने अतीत सास्कृतिक गौरव की दिशा मे जगाने के लिए नही थी, बल्कि उनका उद्देश्य देश मे लोकतन्त्रात्मक शासन की आवश्यकता सिद्ध करना भी था। कमलाकान्त के 'चिता' और 'चिता-तरग' नामक दो प्रसिद्ध काव्य है। स्वतन्त्रता के अभाव और उसके कारण हुई देश की दुर्दशा को उन्होने बहुत गहराई के साथ अनुभव किया हैं।

चन्द्रकुमार अगरवाल ने कई सुकोमल पद्य लिखे, जो अब 'प्रतिमा' और 'बीन बैरागी' नामक काव्य-सग्रहो मे सकलित है। इन पर फ्रासीसी दार्शनिक आगस्ट कौत और वैष्णवो के मानवता की पूजा के सिद्धात का प्रभाव है। दुर्गेश्वर शर्मा और नीलमणि फूकन आध्यात्मिक विचारो वाले दो और कवि है। दार्शनिक कवि दुर्गेश्वर शर्मा का प्रधान विषय आत्मा और परमात्मा, तथा व्याकुल आत्मा की आत्म-ज्ञान के लिए शाश्वत आकाक्षा है। नीलमणि फूकन की कविताओ मे भावो की

अपेक्षा विचार अधिक हैं। उनकी 'मानसी' नामक कृति मे कवि की सौंदर्य-पिपासा लक्षित होती है और उनकी 'सन्धानी' मे भी इसी प्रकार की सत्य और सौन्दर्य की अमर टोह दिखाई देती है। फूकन १९४२ मे अगस्त क्रान्ति मे भाग लेने के कारण कारावासी हुए थे। कारागार की अपनी अनुभूतियों को उन्होंने 'जिजिरी' नामक कृति मे अभिव्यक्त किया है।

हितेश्वर बडबरुआ अंग्रेजी साहित्य के गम्भीर अध्येता थे। उनकी रचनाओं मे शेक्सपियर, वर्ड्स्वर्थ और मिल्टन के प्रभाव का प्राचुर्य मिलता है। असमिया भाषा मे अतुकांत मुक्तछंद, सानेट और विलापिका आदि उन्हींके द्वारा शुरू हुए। अतुकांत पद्य-रचना के लिए उन्होंने माइकेल मधुसूदन दत्त के उदाहरण से परे जाकर शेक्सपियर तक के भण्डार को भी टटोला। उनके काव्यों मे ऐतिहासिक 'कमतापुर ध्वंस' (१९१२) और 'युद्ध क्षेत्रत आहोम रमणी' विख्यात हैं। दोनों काव्य आहोम इतिहास मे से है, और ये ऐतिहासिक भावों से भरे हैं। बडबरुआ की अपने पितृदेश के प्रेम मे परिपूर्ण ये वीर-रसयुक्त पंक्तियाँ असमिया मे लोकोक्ति का रूप धारण कर चुकी हैं

"जो रणांगन मे अपना जीवन अर्पित करता है
अपने पितृदेश की मुक्ति के लिए समर-रत,
उसे मृत्यु के बाद आनन्द मिलता है।
उसके लिए मृत्यु शाश्वत विश्राम है।
सुख से भरा, विश्व माता के अंक मे,
उसके लिए अग्नि मधुर चाँदनी के समान है,
मिट्टी का बिछावन फूलों की सेज है,
और उसके बदन को छेदनेवाले भाले
उस पर फूलों की वर्षा की तरह हैं।"

इसी काल के दूसरे मनोरंजक कवि हैं अंबिकागिरि रायचौधुरी। अंबिकागिरि असम में कवि, गायक, संगीत-रचनाकार, पत्रकार, राज-

नीतिक क्रातिकारी और देश-भक्त के नाते विख्यात है। अपने युवा-काल मे उन्होने कोमल प्रेम-गीत लिखें। उनका प्रतीकवादी काव्य 'तुमि' १९१५ मे प्रथम प्रकाशित हुआ। छोटी-छोटी दशमात्रिक पक्तियो मे, यह कविता अपनी कोमलता, मधुर लय और मनोहारी सगीत के कारण अद्वितीय वन पडी है। 'तुमि' की विषय-वस्तु कवि के सुन्दर और अतीन्द्रिय कल्पना-चित्रो से भरी हुई है। बाद के जीवन मे, स्वतन्त्रता के आन्दोलन और उसमे बन्दी-जीवन के अनुभव के कारण जीवन और काव्य के प्रति कवि का दृष्टिकोण बहुत अधिक वदल गया। अब अम्बिकागिरि केवल उद्बोधपूर्ण राजनीतिक कविताएँ ही लिखते है।

इस काल के सबसे महत्त्वपूर्ण कवि है रघुनाथ चौधुरी, जिन्हे सामान्यत 'विहगी-कवि' (पक्षियो के कवि) कहा जाता है। उनके प्रथम कविता-सग्रह 'सादरी' (प्रिया) मे पक्षियो और फूलो के प्रति कवि की विशेष ममता दिखाई दी थी। उसके वाद उनकी दो और लबी कविताएँ अलग से प्रकाशित हुई, जिनके नाम है 'केतेकी' (बुलबुल) और 'दहीकटरा' (पक्षी विशेप)। इन दो कविताओ मे विहग-विषय ही कवि के मन मे अधिक प्रतिष्ठित हुआ। 'केतेकी' की केन्द्रीय कल्पना यह है कि इस पक्षी के आगमन के साथ-साथ सारी पृथ्वी को एक नवजन्म प्राप्त होता है। 'केतेकी' का गीत एक प्रकार का 'तनुरहित आनन्द' और मनुष्य के लिए अज्ञेय पूर्णता का सुखद स्वर-मिलाप है। कवि ने यहाँ इस विपय के द्वारा प्रकृति के उन सौदर्य-स्थलो का चित्रण किया है जो उन्हे प्रिय है। कालिदास की कृतियो ने उन्हे बहुत प्रभावित किया है।

यतीन्द्रनाथ दुआरा* मे विनैतिक निराशावाद की रोमाटिक विकृति अपनी पूरी अभिव्यक्ति पाती है। उनकी रचनाएँ उनकी व्यक्तिगत भावनाओ, परस्पर विरोधी मनोदशाओ, लज्जालु प्रेम और भावनात्मक आशाभग आदि का लेखा है। दुआरा ने असमिया कविता को शाब्दिक और

*आपकी रचना 'वनफूल' को स्वतन्त्रता के वाद प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ असमिया ग्रन्थ के नाते साहित्य अकादेमी का पुरस्कार दिया गया।

छादिक विविधता की समृद्धि दी, मानो वे ही प्राकृतिक कल्पना-चित्रों की समृद्धि और ताज़गी से भरी नई फसल असमिया साहित्य में लाए। उन्होने अपनी बहुत-सी कल्पना-प्रतिमाएँ नदी, नाव और नाविको से प्रेरित होकर बनाई हैं। यतीन्द्रनाथ की एक पुरानी कृति 'अमर तीर्थ' (१९२६) थी, जो कि खय्याम की रुबाइयो का एक भाव-कोमल और उत्तम अनुवाद है। वे अपने गद्यकाव्यो (कथा-कविता) के लिए विख्यात ही नहीं, बल्कि इस धारा मे वे एकमात्र सफल असमिया लेखक हैं।

रत्नकात बरकाकती की कविताओ मे भौतिक प्रेम के कोमल भाव बडे ही आकर्षक और सुन्दर ढग से व्यजित हुए हैं। रत्नकात को रवीद्र-नाथ ठाकुर के अध्ययन से, विशेषत. छन्दो के मामले मे, बहुत लाभ हुआ है। छद के क्षेत्र मे देवकात बरुआ ने असमिया कविता मे एक नया चमत्कार उत्पन्न किया। देवकात ने अपनी प्रेम-कविताओ को उस नाट्यात्मक स्व-सवाद (मोनोलॉग) के रूप मे ढाला, जैसा कि राबर्ट ब्राउनिंग में पाया जाता है।

डिम्बेश्वर निओग और विनन्दचन्द्र बरुआ ने कई सशक्त भक्तिपूर्ण क्रमबद्ध कविताओ की रचना की। उन्होने मुख्यत. असम के गौरवमय अतीत को उसके दुखद वर्तमान के विरोध मे अकित किया। जहा-जहा उन्होने प्राचीन को फिर से उठाया है, धैर्य, स्फूर्ति और वर्तमान और भविष्यत् के लिए प्रकाश पाने के लिए ही उठाया है। वे अपने पुरातन काल के श्रेष्ठ पुत्रो और पुत्रियो का स्मरण करके उगती हुई पीढी को उनके आदर्शों पर चलने का आदेश देते हैं। विदेशी सत्ता और शोषण की शृखलाओ को तोडकर पुन एक समृद्ध और जीवन की सब दिशाओ मे प्रगतिशी ſ असम के निर्माण का सन्देश देते हैं। साहित्य, भाषा, सस्कृति, स -कुछ पुन. सजीवित करना होगा। अधिक ज्वलन्त देश-भक्तिपूर्ण विता प्रसन्नलाल चौधुरी के पद्यो मे पाई जाती है।

इस अर्द्धशताब्दी मे जिन अनेक महिलाओ ने साहित्य को योगदान दिया, उनमे नलिनीबाला देवी सबसे अधिक प्रतिभाशालिनी हैं। रहस्य-

वादी कवयित्री के नाते नलिनीबाला देवी मे अपरिभाषेय व्याकुलता है, एक ऐसी चीज के लिए प्यास है, जो [किसी व्याख्या मे नही बँधती। वही केन्द्रीय विषय उनके 'सधियार सुर', 'सपोनर सुर' तथा 'परशमणि' नामक तीनो काव्य-सग्रहो मे मिलता है। उनकी सभी कविताओ मे एक ऐसे हृदय के दर्शन होते है जो कि जीवन के व्यापक दुख और दर्द से घायल है। धर्मेश्वरी देवी बरुआनी दूसरी प्रसिद्ध भक्ति-प्रधान कवयित्री है। धर्मेश्वरी देवी के 'फुलर शराई' (फूलो का टोकना) और 'प्राणर परश' (प्राण-स्पर्श) नामक दो काव्य-सग्रह प्रकाशित हुए है। दोनो ही मे प्रकृति मे परमात्मा के दर्शन और व्यक्ति-गत आत्मा के विश्वात्मा मे मिलन की इच्छा मे गहरी आस्था व्यक्त हुई है। गद्य और पद्य दोनो क्षेत्रो मे आज की अनेक उदीयमान लेखिकाओ मे सुप्रभा गोस्वामी, प्रीति बरुआ, लक्ष्यहिरा दास, सुचिब्रता रायचौधुरी आदि उल्लेखनीय है।

युद्धोत्तर कविता

गत महायुद्ध तक असमिया कविता के प्रधान विषय दैवी तथा मानवी दोनो प्रकार के प्रेम के अतिरिक्त प्रकृति और देश-भक्ति थे। तब से हमारे कवि, विशेषत नये कवि, समाजवादी और मार्क्सवादी सिद्धान्तो से अधिकाधिक परिचित होने लगे है। वे जीवन को अब सरल और सुगम नही, बल्कि अत्यन्त जटिल और परस्पर विरोधी समस्याओ से ग्रस्त मानते है। उनकी कविताए, अनिवार्यत, असबद्धताओ को लेकर लिखी जाती है और हास्य-व्यग्य दोनो ही की विविध जीवन-छवियो का सामजस्य उनकी गभीर कविताओ तक मे पाया जाता है। ये तरुण कवि अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए यूरोपीय प्रतीकवादियो के सिद्धान्तो और टेकनीक की ओर अधिकाधिक आकृष्ट होने लगे है। इनमे से कुछ टी० एस० इलियट तथा कुछ बुद्धदेव बसु, जीवनानन्द दास, अमिय चक्रवर्ती आदि आधुनिक बगाली कवियो से बहुत प्रभावित है, क्योकि इनमे से

बहुत-से असमिया लेखको की कालेज की शिक्षा कलकत्ता मे हुई या उन्होंने बगला-कविता गहरी सहानुभूति के साथ पढी। ये कवि अपनी रचनाओं मे पूजीवादी शोषण का उल्लेख करके, वर्ग-सघर्ष और समाज-व्यवस्था मे शीघ्र ही आमूल-चूल परिवर्तन करने की ओर सकेत करते है। नई समाज-व्यवस्था के कारण उत्पन्न सेक्स के उलझे हुए प्रश्न, और अवचेतन मन की बारीकियाँ भी इस नई कविता मे विचित्र शैली और अपरिचित भाषा मे व्यक्त होती है। यही नही, इस नवीन शब्दावली के वास्ते, इन कवियो ने अनेक अभिव्यक्तियो के लिए विज्ञान और मनोविज्ञान से शब्द लिए है। अत न केवल विषय-वस्तु वरन् इस नई कविता का बाह्य रूप भी एकदम नया है। ये कवि ऐसे है कि जिन्होने परपरागत काव्य-रूप और टेकनीक भी छोड दिए है और उन्होने मुक्त-छद को तथा छद के मुक्त रूपो को भी अपनाया है। उनके कल्पना-चित्र नये है, और जहाँ परपरागत प्रतिमानो का प्रयोग भी उन्होने किया है वहाँ एक विलक्षण ढग मे नया अर्थ ही उनकी रचनाओ मे परिलक्षित होता है।

इन लेखको मे इस प्रकार की प्रतीकवादी कविता के सबसे प्रथम प्रयोग करने का श्रेय हेम बरुआ को है। बरुआ की कल्पना-चित्रावली नवीन और व्यग्यात्मक विपर्ययो से समन्वित है तथा टेकनीक क्षिप्त और असाधारण है। नवकात बरुआ ने भी इसी शैली मे प्रयोग किये है। उनका 'हे अरण्य, हे महानगर' एक ऐसी भाषा मे लिखा गया है जिसमे बोल-चाल की साधारण भाषा और कठिन सस्कृत शब्दो का विचित्र मिश्रण है। उनकी नई काव्य-शैली जटिल भाव-प्रतिमाओ से ग्रस्त है। नवकान्त बोरा और महेन्द्र बोरा दोनो ही एक-सी आलकारिक शैली अपनाकर अपनी रचनाओ मे अँग्रेजी, सस्कृत और असमिया के प्राय सर्वविदित अथवा अज्ञात और अल्पविदित उद्धरणो का उपयोग करते है, और बाद की पक्तियो मे आमतौर से उन उद्धरणो की विवेचना ही रहती है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि पत्रकारिता ने इस नई कविता के विकास मे सहायता दी। विशेषत. 'रामधेनु' (इद्र-धनुष) नामक मासिक

पत्रिका के आस-पास सब नये अच्छे लेखक जमा हो गए है, जैसे वे एक परिवार के सदस्य हो। क्योकि इन तरुण कवियो मे कई लोग साहित्य को राजनीतिक और सामाजिक वाद-विवाद तथा अराजकतापूर्ण और अव्यवस्थित रूप मे प्रचार का माध्यम मानते है, अत उनके पद्य पत्र-कारिता के स्तर से ऊपर नही उठ पाए। आधुनिक असमिया कविता मे सबसे खेदजनक स्थिति यह है कि पुराने कवियो ने प्राय लिखना बन्द कर दिया है, और तरुण कवि अभी प्रयोगावस्था मे ही है। अभी असमिया मे सच्चे अर्थो मे, नई कविता का जन्म होना बाकी है।

नाटक

नाटक और रगमच दोनो क्षेत्रो मे असमिया की परम्परा बडी ही समृद्ध रही है। अकिया नाट (जो कि मध्ययुगीन नाट्य-रचना थी) अभी भी गाँवो मे लोकप्रिय मनोरजन के नाते अपना प्रभाव कायम रखे हुए है। परन्तु आधुनिक अर्थो मे नाटक पश्चिम से ही आया है। असमिया मे पश्चिमी ढग के सबसे पुराने नाटककार गुणाभिराम बरुआ, हेमचन्द्र बरुआ और रुद्रराम बरदलै है। इस कला-रूप का पहला सुविकसित उदाहरण हमे लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ और पद्मनाथ गोहाँई बरुआ मे मिलता है। बेजबरुआ के नाटको मे देश-भक्ति की भावना सबसे प्रधान थी। 'चक्रध्वज सिह' मे उन्होने असम के इतिहास के एक गौरव-पूर्ण अध्याय का चित्रण किया है। यह नाटक आहोम राजा चक्रध्वजसिह (१६६३-१६६९) के राज्य पर आधारित है। उनके राज्य-काल मे असम पर बार-बार मुस्लिम आक्रमण हुए और लचित बरफूकन के सुयोग्य नेतृत्व मे आक्रामको को मार भगाया और पूरी तरह हराया। 'बेलि-मार' (सूर्यास्त), जिसमे कि असम पर बर्मा के आक्रमण (१८१६) की कहानी है, न केवल तत्कालीन घटनाओ को चित्रित करता है, अपितु उसमे उस समय के आहोम-राज-दरबारो की उस विलास-जर्जर ह्रासोन्मुखता की भी गध है, जिसके कारण असम को अपनी स्वतन्त्रता

खोनी पडी। एक दूसरे ऐतिहासिक नाटक 'जयमती' मे इतिहास का चित्रण होने के साथ-साथ एक भोली-भाली नागा लडकी डालिमी के चरित्र के आस-पास रोमाटिक विस्मय का भाव-वलय बुना गया है। लक्ष्मीनाथ के प्रहसन खूब व्यग और हास्य से भरपूर है।

पद्मनाथ गोहाँई बरुआ हमारे गद्य और पद्य के महान लेखको मे से एक है। उन्होने ऐतिहासिक और पौराणिक दोनो प्रकार के विषयो पर नाटक लिखे और तीन प्रहसनो की रचना की। उनके चार नाटक 'जयमती' (१९००), 'गदाधर' (१९०७), 'साधनी' (१९११) और 'लचित फूकन' (१९१५) आहोम-इतिहास पर आधारित है। कथानक के विकास की दृष्टि मे उनके नाटको मे सयम का सर्वथा अभाव तो दृष्टिगत होता ही है, साथ ही उसने इनसे कोई नई दिशा या प्रकाश भी नही दिखाया। अति भावुकतापूर्णता, भूत-प्रेत, परलोक-विषयक वस्तुओ के अनावश्यक वर्णन, प्रकृति-प्रेम, प्रयोजनहीन सवाद और हास्यभरे अनुचित दृश्यो के कारण इन ऐतिहासिक नाटको मे कथानक के सहज सगठित विकास मे बाधा पडी है। गोहाँई बरुआ ने सामान्य जनता और ग्रामीण दृश्यो के चित्रण मे बहुत कुशलता दिखाई है। अपनी 'गाँवबूढा' नामक कृति मे तो वे बहुत ही सफल हुए है। इस प्रहसन मे उन्नीसवी शती की अतिम दशाब्दी के ब्रिटिश शासन का बहुत यथार्थवादी चित्र दिया गया है। दीनबधु मित्र के बगाली नाटक 'नीलदर्पण' की भाँति 'गाँवबूढा' एक प्रयोजन-प्रधान नाटक होने के साथ-साथ इस शताब्दी के आरम्भिक काल के नाट्य-साहित्य को एक सार्थक देन है। इस नाटक मे गाँव की सरपची का नि शुल्क रूप से काम करनेवाले एक बूढे की जिम्मेदारियो और कष्टो से भरी जिन्दगी का चित्र है। बेचारे का घर-द्वार और व्यक्तिगत जीवन, अत्यधिक कार्यव्यस्तता के कारण, प्राय. शून्य हो गया। इस कार्य के लिए उसे कोई पुरस्कार आदि दिये जाने के स्थान मे छोटे-बडे सभी सरकारी इन्स्पेक्टरो के हाथो झिडकियाँ और अपमान तक सहना पडा।

चद्रधर बरुआ दूसरे प्रसिद्ध नाटककार है। उनके 'मेघनाद वध' (१९०४) और 'तिलोत्तमा सभव' नामक दो पौराणिक नाटक मुक्त-छद मे है और दोनो मे इन्द्रजीत के वध और तिलोत्तमा के लिए सुदोपसुद के परस्पर विनाश की कथा है। कथानक के विकास और चरित्र-चित्रण दोनो मे माइकेल मधुसूदन दत्त का प्रभाव स्पष्ट है। 'भाग्य परीक्षा' नामक प्रहसन मे भाग्य और लक्ष्मी के बीच मे परिहासपूर्ण निर्णय दिया गया है। इस प्रहसन मे, लेखक ने ग्राम-जीवन के बहुत-से चित्र समुचित परिपार्श्व और जनसाधारण की भाषा मे उपस्थित किये है। यहाँ यह भी विचारणीय है कि इस काल के बहुत-से नाटककारो को गम्भीर नाटको की अपेक्षा प्रहसन-लेखन मे अत्यधिक सफलता प्राप्य हुई। इन प्रहसनो मे मित्रदेव महन्त के 'विया विपर्यय', 'कुकुरीकनार' तथा 'अठमगला' आदि बहुत लोकप्रिय हुए। उनकी विषय-वस्तु, सवाद और दृश्य हास-परिहास से युक्त और मोनरजक है।

भारत-भर मे स्वतन्त्रता के लिए राष्ट्रीय आदोलन चल रहा था। ऐसे समय मे ऐतिहासिक नाटक बडी सख्या मे लिखे गए। आसाम के प्राचीन इतिहास से उन्हे कथानक के रूप मे बहुत-सी तैयार सामग्री प्राप्त हुई। नकुलचन्द्र भुइयाँ का 'बदन वरफुकन', प्रसन्नलाल चौधरी का 'नीलाम्बर', शैलधर राजखोवा का 'स्वर्ग देव प्रताप सिह' और देवचद्र तालुकदार का 'भास्कर वर्मन' आदि कुछ ऐसे ऐतिहासिक नाटक है जो कि इस शताब्दी के आरम्भिक काल मे लिखे गए थे। 'भास्कर वर्मन' मे तालुकदार ने सचमुच ही एक धीरोदात्त वीर और विद्वान चरित्र निर्मित करने के साथ-साथ ऐतिहातिक पार्श्वभूमि को अत्यन्त स्पष्ट और सप्राण रूप से व्यक्त किया है। अतुलचद्र हजरिका ने लगभग एक दर्जन पौराणिक नाटक लिखे है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक विषयो पर भी उन्होने अपनी लेखनी चलाई है, जैसे 'कन्नौज कुँअरी' और 'छत्रपति शिवाजी' मे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अतुलचद्र हजरिका ने असमिया-रगमच की माँग पर अनेक नाटक लिखे, चूँकि उनके नाटको से

पहले वगाली लेखको की रचनाएँ ही असमिया-रंगमच पर खेली जाती थी। असमिया साहित्य से परमुखापेक्षिता की इस प्रवृत्ति का परि-मार्जन श्री हजरिका ने किया।

स्वतन्त्रता के वाद, देश-भक्ति की विशेष भावना से परिपूर्ण क्रान्ति-कारी ढग के ऐतिहासिक नाटक और भी लिखे गये। चंद्रकात फूकन के 'पियली फूकन' और प्रवीन फूकन के 'मणिराम दीवान' मे उन्नीसवी शताब्दी के उन दो देशभक्तो का जीवन व्यक्त है, जिन्होने अँग्रेजो को भगाकर देश को मुक्त करने के गुप्त षडयन्त्र किये थे। दुर्भाग्य से दोनो की मत्रणाओ का पहले ही पता चल गया और बिना मुकदमा चलाए ही उनको फाँसी पर चढा दिया गया। १९४२ के अगस्त-आदोलन के शहीद 'कुशल कोवर' पर लिखा गया सुरेन्द्रनाथ सैकिया का नाटक वहुत सफलता प्राप्त कर चुका है।

कमलानद भट्टाचार्य का 'नगा कोवर' और ज्योतिप्रसाद अगरवाल के 'शोनित कूंवरी' और 'कारेड्र लिगिरा' रोमाटिक ढग के नाटक है। ज्योतिप्रसाद अगरवाल आधुनिक असमिया नाटक और रगमच के इति-हास के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। वे उत्कट देश-भक्त, प्रथम श्रेणी के कवि और गीतात्मक नाटको के प्रणेता है। यूरोप मे शिक्षा ग्रहण करने के कारण श्री ज्योतिप्रसाद के गीतो, धुनो और नाटकीय रचना-कौशल पर वहुत-सा प्रभाव विदेशी है।

उपन्यास

वीसवी शती से पहले असमिया साहित्य मे उल्लेखनीय उपन्यास वहुत ही कम थे। रजनीकात बरदलै ने उपन्यास को सृजनशील कल्पना-मुक्त गद्य-रचना का सही रूप दिया। रजनीकात ने अपने कथानक मुख्यत बुरजियो मे से लिये। परन्तु उनका पहला उपन्यास 'मिरी जीयरी' (मिरी बिटिया)[1] जो १८१५ मे लिखा गया था, ऐतिहासिक उपन्यास

[1] इस उपन्यास का हिन्दी अनुवाद साहित्य अकादेमी की ओर से प्रकाशित हो रहा है।

नही था। इस उपन्यास मे एक मिरी युवक और युवती की प्रेम-कहानी दुहराई गई है। उपन्यास की घटनाएँ सुबनसिरी नदी के किनार पर घटित होती है, जो कि उस करुणापूर्ण मानव-कथा की केवल मूक पार्श्वभूमि ही नही, अपितु उसमे सक्रिय भाग भी लेती है। आरभिक असमिया साहित्य मे आदिवासियो के प्रति ऐसा प्रेम और आचलिक प्रकृति का ऐसा सजीव अध्ययन वास्तव मे अद्भुत ही है। बरदलै के दो और उपन्यास 'मनोमती'[1] (१९००) और 'रहदई लिगिरी' (१९३०) भी प्रेम विषय को लेकर ही है। दोनो का निर्माण असम पर वर्मा के आक्रमण की पार्श्वभूमि पर हुआ है। तीसरी रचना 'ददुवा द्रोह' अट्ठारहवी शती के एक राजनीतिक आन्दोलन पर आधारित है। बरदलै अपने इन उपन्यास (१९०९) की भूमिका मे यह स्वीकार करते है कि सर वाल्टर स्काट और बकिमचद्र चटर्जी की रचनाओ के प्रभाव ने उन्हे अपने देश के पर्वत और घाटियो के सौदर्य की ओर आकृष्ट किया। फलत उन्होने अपने उपन्यासो के कथानक आसाम के इतिहास में से ही चुने। भूतकाल के नायको के शौर्य और देश मे प्रचलित वैष्णव धर्म के गुणो के लिए उनके मन में जो विशेष प्रेम था, उसके कारण बरदलै की रचनाएँ कहीं-कही प्रचारात्मक भी हो गई है। परन्तु कहानी कहना ही प्रधान उद्देश्य रहने के कारण उनके उपन्यास जनता पर अपना प्रभाव कायम रख सके है। पद्मनाथ गोहाँई बरुआ के 'लाहरी' और 'भानुमती' नामक दोनो ही उपन्यास प्रेम-विषय के आस-पास केद्रित है। उनमे आहोम-काल की पार्श्वभूमि है। ऐतिहासिक पार्श्व-भूमि होने पर भी दोनो उपन्यासो मे कोई ऐतिहासिक घटनाएँ या पात्र नही है। देवनद्र तालुकदार और दडिनाथ कलिता ने अपने उपन्यासो मे स्त्री-पुरुष-सबधो की खोज करने का प्रयत्न किया है। फलतः इस दिशा मे वे असमिया उपन्यास को रजनीकात बरदलै से आगे बढा ले गए। तालुकदार ने 'आदर्शपीठ' मे गाँधीवादी विचारो का

१ इस उपन्यास का अनुवाद भी अकादेमी प्रकाशित कर रही है।

प्रतिपादन किया है, और कलिता के 'भावना' में भी इसी आदर्श स्वर की प्रधानता है।

असमिया साहित्य में उपन्यास बहुत थोड़े हैं। गत शताब्दी तक वे अपनी परिपक्व अवस्था तक नहीं पहुँच सके। इधर कुछ वर्षों में, उनका स्तर काफी ऊँचा उठा और हमारे उपन्यासों में कई नई प्रवृत्तियाँ आ गई। हमारे उपन्यासकार पुरानी रोमांटिक शैली से हटकर अब यथार्थवादी और मनोविश्लेषणात्मक शैली पर आ गए हैं। आज के उपन्यास-लेखकों ने उस ओर दृष्टि डाली है जहाँ समाज का उपेक्षित वर्ग बसता है, और वे उनका सामाजिक मूल्य भलीभाँति आँक रहे हैं। ऐसे उपन्यासों में से एक आसाम के देहाती जीवन के विषय में है, जिसका नाम 'जीवनर बाटत' (जीवन की राह) है। इसमें ग्राम-जीवन का सच्चा चित्र खींचा गया है, जिसके कारण उसे व्यापक लोकप्रियता मिली है। हितेश डेका के 'आजिर मानुह' (आज का मनुष्य) आद्यनाथ शर्मा का 'जीवनर तीन अध्याय' (जीवन के तीन अध्याय), चन्द्रकांत गर्गे का 'सोनार नागल' (सोने का हल), गोविन्द महन्त का 'कृपकर नाति' (कृपक के वंशज), आदि कुछ ऐसे उपन्यास हैं जिनमें सामाजिक जीवन का विशिष्ट अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। नवकांत बरुआ का 'कपिलीपरिया साधु' एक प्रेम-कथा के आस-पास गुम्फित, कपिली नदी के किनारे बसने वाले लोगों की दुर्भाग्यपूर्ण कहानी है। यह नदी हर साल मनमाने ढंग से अपना प्रवाह बदलती है। 'डावर आरु नाई' (अब और बादल नहीं हैं) में जोगेश दास ने समाज के आचार-विचार और रीति-नीति पर प्रथम विश्व-युद्ध का जो प्रभाव पड़ा था उसका चित्रण किया है। एक कहानी-लेखक के नाते उनमें विशेष प्रतिभा है। बीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य ने अपने 'राजपथे रिंगियाथी' नामक उपन्यास में एक ऐसे क्रान्तिकारी युवक की जीवनी चित्रित की है, जो कि समाज की बुराइयाँ दूर करना चाहता है। लेखक का दृष्टिकोण बौद्धिक और शैली मनोवैज्ञानिक है।

इधर पिछले कई वर्षों में प्रकाशित कुछ और मनोवैज्ञानिक उपन्यास अपनी रचना-शैली, मानव-हृदय के अवचेतन हेतुओ और प्रेरणाओ के चित्रण के लिए प्रसिद्ध हुए है। प्रफुल्लदत्त गोस्वामी के 'केचा पातर कँपनी' (हरी पत्तियो का कपन) मे एक युवक के मानसिक आदर्शो के बीच द्वद्व व्यक्त हुआ है, और राधिकामोहन गोस्वामी के 'चाकनैया' (परमोच्च बिदु) मे, एक ऐसे निराश युवक के जीवन का चित्र है जो आज के समाज के साथ अपना तादात्म्य स्थापित नही कर सका।

कहानी

असमिया कहानी पश्चिम के प्रभाव से विकसित हुई। लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ कहानी को एक ऊँचे कलात्मक लोक मे उठा ले गए। वह अपने जीवन-भर सपादक थे और सम्पादक के दृष्टिकोण से कहानी को जाँच सकते थे। जिसके पास बहुत थोडा स्थान हो, उसे कहानी के आकार और भाषा को सक्षिप्त करना ही पडता है। बेजबरुआ की सब कहानियाँ (जो कि अब 'साधुकथार कुकी', 'जोनबिरी' तथा 'सुरभि' नामक तीन सग्रहों मे मिलती है)जीवन के अशो को चित्रित करके उसके अनुभव और क्षणिक बिबो के टुकडे व्यक्त करती है। शरच्चद्र गोस्वामी और उन्होने मिलकर अपनी कहानियो मे स्थानीय रग को प्रमुखता प्रदान की। यथार्थवाद उनकी कहानियो का विशेष गुण है। यद्यपि गहरी मानवीय सहानुभूति, करुणा और परिहास उनके क्षेत्र से परे नही है, फिर भी अपनी मध्यवर्गीय ग्रथियो के कारण उनकी अभिव्यजना कुठित है। नगेन्द्रनारायण चौधरी और त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी की कृतियो मे गहरी सामाजिक चेतना देखने को मिलती है। गोस्वामी के 'अरुणा' और 'मरीचिका' नामक सग्रहो मे ऐसी कहानियाँ है जिनमे हमारे आस-पास की जिंदगी के यथार्थ चित्र अकित किये गए है। 'अरुणा' सग्रह की 'जारज' शीर्षक कहानी बहुत ही सबल है। उसमें यह दिखाया गया है

कि उसके रतन नामक एक पात्र को विवाह के कारण कितने दुख और सामाजिक अन्याय सहने पडे है। अपनी दूसरी कहानी 'विधवा' मे लेखक ने यह दरसाया है कि एक माँ और लडकी (जो दोनो दुर्भाग्यवश विधवाएँ है) सामाजिक उत्पीडन की शिकार कैसे बनती है, और दोनो को क्या-क्या सहना पडता है। दूसरे महायुद्ध के साथ-साथ जो बुराइयाँ हमारे समाज मे आई, 'मरीचिका' की कहानियाँ अधिकतर उन्हीके विषय मे है। गोस्वामी का 'जिया मानुह' (जीवित मनुष्य) इसी विषय पर लिखा गया एक छोटा उपन्यास है। युद्ध के कारण सामाजिक नैतिकता कैसे लडखडा रही है, और उसमे कौन-से सुधार जरूरी है, इसका सही समाधान प्रस्तुत करना ही इस पुस्तक का मुख्य विषय है। मही बरा और लक्ष्मीनाथ फुकन की कहानियो मे असमिया-परिहास उत्कृष्ट रूप मे अभिव्यक्त हुआ है, और हलीराम डेका की कहानियो मे व्यग्य का पुट अपनी विशेषता लिये हुए है।

असमिया मे आधुनिक ढग की कहानियाँ लक्ष्मीनाथ शर्मा ने सबसे अधिक लिखी है। नारी और उसकी भावनाओ को पहली बार ही उनकी कहानियो मे स्थान मिला है। उनके बाद बहुत-से ऐसे लेखक इस क्षेत्र मे आये, जिन्होने आधुनिक नारी और उसके प्रेमाख्यानो के विषय मे अपनी लेखनी चलाई। वीना बरुआ, रमा दास इत्यादि ऐसे ही लेखक है। वीना बरुआ के 'पट-परिवर्तन' मे अधिकतर कालेज की लडकियो और उनकी चचल भावुकतापूर्ण प्रेम-चर्चाओ की ही कहानियाँ है। उन्होने ग्राम-जीवन के विषय मे भी लिखा है। 'आघोनीबाई' नाम के उनकी ग्राम-कहानियो के सग्रह मे प्रकाशित इसी शीर्षक की कहानी बहुत ही सशक्त बन पडी है। उसमे आघोनीबाई नाम की ऐसी ग्रामीण स्त्री का चित्रण किया गया है, जो अन्य ग्रामवासियो की सेवा-सहायता करती रहती है और फिर भी उसकी ऐसी दयनीय दशा है। उसमे ग्राम-जीवन के जो विशद चित्र गुम्फित किये गए है उनका अकन लेखक ने बडी सूक्ष्मता से किया है। रमा दास के प्रति पाठक उनकी सुन्दर वर्णन-शैली और शिल्प-

विधान के कारण आकर्षित होते है। वर्णन की स्पष्टता, सवाद की आकर्षकता, कथाकार के नाते विचारो का ठोसपन और भाषा द्वारा भावो की सूक्ष्म छटाओ को व्यजित करने की क्षमता, असमिया की कुछ अत्यन्त श्रेष्ठ कथाओ मे मिलती है । बहुत-सी कहानियो का आधार समाज-मान्य प्रेम-व्यापार से भिन्न प्रकार का प्रेम-व्यवहार है। इस चीज को व्यक्त करने के लिए लेखक मनोविश्लेषण और सहानुभूति का प्रयोग करते है। उनकी 'सेतु-बधन', 'बारिषा जेतिया नामे' (जब ग्रीष्म आता है) इत्यादि कहानियो मे यह गुण स्पष्ट दिखाई देता है। दीनानाथ शर्मा के 'ऊषा' और 'सग्राम' नामक दो उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुए है। परन्तु लेखक अपनी उन कहानियो के लिए विशेष विख्यात है, जो 'दुलाल' (१९५२), 'अकलसरिया' (१९५३), 'कोआ भातुरिया ओथर तलत' (१९५२) और 'कल्पना अरु वास्तव' नामक सग्रहो मे प्रकाशित हुई है। शर्मा की अधिकतर कहानियाँ प्रेम-विषयक है और उनमे विशेषतः नारी के कुत्सित और अविश्वसनीय जीवन का चित्रण पाया जाता है। उनकी 'सोवरन' शीर्षक कहानी मे एक नव विवाहिता पत्नी के असन्तुष्ट प्रेम का बडा ही वास्तविक चित्रण हुआ है और उन्होने नारी-मन की जटिलताओ मे बडी कुशलता से प्रवेश किया है। उनके विषय सीमित, पुनरावृत्तिपूर्ण और अपेक्षया अधिक सकीर्ण है।

लक्ष्मीधर शर्मा के बाद विगत दूसरे महायुद्ध तक लिखने वाले अन्य कहानी-लेखक फ्रायड से बहुत प्रभावित हुए। फलत वे अपनी रचनाओ में सेक्स की भावना भरते रहे। कदाचित् इसका कारण यूरोपीय लेखको का अध्ययन भी रहा हो। इनमे से बहुत-से लेखको ने अनैतिक प्रेम-रोमास और अनियत्रित सेक्स-आकर्षण को बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार कर लिया, मानो जीवन की अन्य बातो के समान यह भी एक सामाजिक मान्यता हो। परिणामस्वरूप नग्न प्रेम के चित्रण मे उन्हे कोई पशोपेश, शका या सकोच नही जान पडा। ऐसा प्रतीत होता है मानो वे स्त्री-पुरुष के मौलिक सम्बन्धो का चित्रण करने मे नये सामाजिक और

वैयक्तिक वातावरण मे पनपे विचारो का सर्वथा नये ढग से मूल्याकन करना चाहते है ।

दूसरे महायुद्ध के वाद कहानी, कविता, नाटक तथा उपन्यास आदि साहित्य के सव अगो मे आमूल-चूल परिवर्तन हो गया। आज की कहानी विशेषत मध्यवर्ग, किसान और मजदूरो की समस्या से अधिक सन्निविष्ट है। नये सामाजिक, और आर्थिक परिवेश, उसकी असगतियाँ, सधि तथा अवसर की विषमता आज की कहानी के विषय हो गए है । दूसरे महायुद्ध के कारण जो सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक उथल-पुथल हुई है, नई कहानी नये सामाजिक मूल्यो को उससे नापना चाहती है। वह पुरानी समाज-व्यवस्था मे रहते आये किसानो के जीवन के सुख और सन्तोष की तुलना नई समाज-व्यवस्था मे मजदूरो की असतुष्टि, व्यथा, शोषण-उत्पीडन, चुनौती और घृणा के साथ करना चाहती है। ऐसे लेखको मे अब्दुल मलिक ने अपनी असाधारण कथानक-रचना और मनोरजक भाषा के कारण विशेष ख्याति अर्जित की है। जोगेश दास, बीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य, हेमेन बरगोहाँई, भबेन्द्रनाथ सैकिया तथा अन्य कई लेखको ने आधुनिक कहानी को अनेक प्रकार का रूप और वैविध्य प्रदान किया है।

निबन्ध

उन्नीसवी शती मे जो गद्य बहुत परिपक्व था, वह आगे जाकर निवन्ध के रूप मे विकसित हुआ। लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ ने असमिया साहित्य मे व्यक्तिगत निबन्ध की प्रतिष्ठा की । असमिया के स्फुट गद्य-लेखको मे उनका नाम सबसे अग्रणी स्थान रखना है । निबन्धकार के नाते उनमे अत्यन्त दुर्लभ मनोहारिता और परिहासयुक्त उदार आलोचना मिलती है। चेस्टरटन की भाँति बेजबरुआ भी कहानी और निबन्ध के बीच का एक साहित्य-प्रकार निर्मित करने मे सफल हुए । इन्ही विशेषताओ के कारण उनके निबन्ध इतने मनोरजक बन पडे है। दैनदिन जीवन की छोटी-छोटी घटनाओ और अनेक घरेलू विषयो को उन्होने

हास्य की सामग्री मे परिवर्तित कर दिया है। अपने निबन्धो मे उन्होने असमिया साहित्य मे सर रोजर दी कावरली के ढग का एक चरित्र कृपाबर बडबरुआ के रूप मे निर्मित किया। कृपाबर की सनक मे असमिया जीवन और शिष्टाचार की पद्धतियाँ सन्निहित है। उन्होने 'बडबरुआर भाबर बुरबुरनी' (बडबरुआ के विचार-बुद्बुद्) शीर्षक से जो मनोरजक निबन्धमाला लिखी है, वह असमिया साहित्य मे सुपरिचित है। अधिकतर प्रासगिक विषयो को लेकर ही वे निबन्ध लिखे गए है, उनमे देश के खोखले मनुष्यो और संस्थाओ का मजाक उडाया गया है। उनके निबन्धो मे उच्चकोटि के परिहास और निरीक्षण की सूक्ष्म शक्ति के अद्भुत समन्वय के साथ समकालीन जीवन और समस्याओ पर गम्भीर विचार किया गया है, क्योकि प्राय सभी निबन्ध व्यग्य-विनोद-मयी शैली मे लिखे गए है, इसलिए वे मनोरजक और आकर्षक है। बाद मे हलीराम डेका और हेमचन्द्र बरुआ ने आत्म-निबन्धो की यह शैली सफलतापूर्वक अपनाई।

यद्यपि सत्यनाथ बरा ने अपने समकालीन सामाजिक रेखाचित्रो के 'केन्द्र सभा' नामक सग्रह मे बेजबरुआ का ही अनुकरण किया है, फिर भी वे एक गभीर महत्त्वपूर्ण गद्य-लेखक के नाते ही अधिक सफल हुए। उनके विचारपूर्ण तथा सुनिबद्ध निबन्ध 'सारथी' और 'चिताकली' नाम से प्रकाशित हुए है। अपने इन निबन्धो के द्वारा सत्यनाथ ने जहाँ असमिया भाषा का एक स्तर निर्मित किया वहाँ व्याकरण तथा मुहावरो को फिर से नया रूप देकर उसकी गद्य-शैली को भी निखारा। दूसरे प्रसिद्ध गद्य-शैलीकार है बाणीकात काकती। अपने विशाल अध्ययन, विषयो के व्यापक ज्ञान और विद्वत्ता के कारण बाणीकात इस प्रदेश के एक अत्यन्त मेधावी पुरुष बने। उनकी बुद्धि की भाँति ही उनकी लेखनी भी तीखी और प्रखर थी। काकती ने बडी ही स्पष्ट और सुलझी हुई शैली मे असमिया भाषा और साहित्य के विषय मे जो विद्वत्तापूर्ण और उत्कृष्ट निबन्ध प्रस्तुत किये, वे असमिया साहित्य की अमर निधि है।

इस बात मे कोई सन्देह नही कि अग्रेजी शिक्षा ने राष्ट्रीयता के विकास मे अपूर्व सहायता ही नही दी, वल्कि उसने भाषा, सस्कृति तथा इतिहास मे हमारी रुचि भी जाग्रत की। फलत कई विद्वान आसाम के प्राचीन साहित्य के अध्ययन मे जुट गए और ऐतिहासिक निबन्धो के लेखन की दिशा मं वडा कार्य हुआ। हेमचद्रगोस्वामी के प्राच्यविद्याविषयक शोध-निवन्ध सुन्दर गद्य मे गुम्फित है। सूर्यकुमार भुइयाँ के ऐसिहासिक ग्रन्थो मे आहोम इतिहास की झलक स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। भुइयाँ हमारे साहित्य के विख्यात शिल्पी है और उनके ऐतिहासिक प्रबन्धो मे पुरानी असमिया वुरजियो मे मिलनेवाले अनेक पुराने और अब लुप्तप्राय शब्द तथा मुहावरे प्रयुक्त हुए है। बेणुधर शर्मा के ऐतिहासिक निबन्ध भी वडे ही मनोरजक होते है। शर्मा की शैली सर्वथा अपनी शैली है एव विशुद्ध असमिया शब्द-रूपो के लिए उनके मन मे गहरा प्रेम है। सूर्यकुमार भुइयाँ ने वहुत-से पुराने ग्रन्थो के सम्पादन और प्रकाशन मे अपना जीवन लगा दिया है। सर्वश्री हरिनारायण दत्त बरुआ, कालिराम मेधी, बिरिंचि-कुमार वरुआ, उपेन्द्र लेखारू, महेश्वर निओग, सत्येन्द्रनाथ शर्मा आदि अनेक लेखक सफलतापूर्वक उनका अनुगमन कर रहे है। इन विद्वानो ने अनेक विषयो पर ऐसे वहुत-से पुराने ग्रन्थो को सपादित किया है, जिनके द्वारा उन्होने असमिया भाषा के विकास और प्रगति को निश्चित करके असमिया जनता की परपरा की अविच्छिन्नता को सिद्ध किया है। असमिया जनता के सास्कृतिक और लोक-जीवन मे पहली रुचि लक्ष्मीनाथ वेजवरुआ, और नकुलचद भुइयाँ ने अपनी लोक-कथाओ और गीतो के सग्रह के द्वारा दिखाई। आधुनिक काल मे सास्कृतिक और ऐतिहासिक विषयो पर कई महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावशाली रचनाएँ लिखी गई है। विगत आधी शताब्दी की साहित्यिक कृतियो की सख्या और विविधता इस बात का पूर्ण विश्वास दिलाती है कि असमिया साहित्य की परम्परा मे एक महान और पूर्णतर सास्कृतिक भविष्य के बीज निहित है।

असमिया पर चुने हुए संदर्भ-ग्रंथ

असमीज लिट्रेचर—डा० बिरिंचिकुमार बरुआ, प्रकाशक पी० ई० एन०, इंडिया।

स्टडीज इन अर्ली असमीज लिट्रेचर—डा० बिरिंचिकुमार बरुआ।

स्टडीज इन लिट्रेचर ऑफ असम—सूर्यकुमार भुइयाँ।

ऐस्पेक्ट्स ऑफ अर्ली असमीज लिट्रेचर—प्रकाशक गोहाटी विश्वविद्यालय।

लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया—जी०ए० ग्रियर्सन, खंड ५, भाग १, पृ० ३९३–४४६।

असमी : इट्स फार्मेशन ऐंड डेवेलपमेंट—वाणी काकती।

शंकरदेव ऐंड हिज़ प्रेडीसेसर्स—डा० महेश्वर नियोग।

उड़िया

मायाधर मानसिंह

भाषा और लोग

भारतीय गणराज्य के दक्षिण-पूर्वी अंचल में उड़ीसा राज्य की भाषा उड़िया है। उड़िया बोलनेवाले एक करोड़ पचास लाख लोग हैं। उड़ीसा राज्य की राजनीतिक सीमाओं के बाहर कई लाख उड़िया-भाषी लोग बसते हैं। प्राचीन भारत में जिन्होंने कलिंग, उत्कल तथा ओड्र नाम से सैनिक और नौसैनिक गौरव प्राप्त किया उन लोगों की भाषा उड़िया है। प्राचीन उत्कलों का साम्राज्य कई शताब्दियों तक गंगा के किनारे से गोदावरी के तट तक फैला हुआ था। उनके साम्राज्य समुद्र-पार कई उपनिवेशों के रूप में भी विख्यात हुए हैं। वस्तुतः प्रसिद्ध शैलोद्भवों का राज्य दक्षिण-पूर्वी एशिया के कई देशों में फैला हुआ था। परन्तु जैसा कि साधारणतया होता है, उपनिवेश और साम्राज्य तो अब मिट गए हैं, और प्राचीन कलिंग अब एक छोटे-से उड़ीसा राज्य के रूप में सिमट आया है। अब वह भारतीय गणतंत्र का एक भाग है, और उड़िया जनता के पास फिर भी श्रेष्ठ कला और स्थापत्य की भव्यता के रूप में एक महान साम्राज्य विद्यमान है। उन प्राचीन, सशक्त साम्राज्य और वास्तु के निर्माताओं ने अपनी रहस्यात्मक तथा पतित भावी पीढ़ियों के लिए एक अमूल्य धरोहर के रूप में यह कला-

प्रेम सुरक्षित रखा है। उडिया लोगो की भवन-निर्माण की शक्ति प्राय एक सहस्राब्दि तक जीवित रही। इसका आरम्भ खण्डगिरि, उदयगिरि की दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व वाली जैन गुफाओ से हुआ, और वह परम्परा तेरहवी शताब्दी ईस्वी मे कोणार्क के अत्यन्त सुन्दर और भव्य पाषाण-स्वप्न मे आकर जैसे रुक गई। वस्तुत यह विचारणीय बात है कि साहित्यिक कला का विकास तभी हुआ जब ऐसी किन्ही परिस्थितियो के कारण, जिनका कि पूरा परीक्षण अभी तक हो नही पाया है, इस देश की शिल्प-स्थापत्य-रचना-सम्बन्धी कलात्मक अभि-व्यजना प्राय. समाप्त हो गई।

असमिया, बगाली और उडिया पडित सभी 'बौद्ध गान ओ दोहा' (जो कि आठवी और नवी शताब्दी ईस्वी की रचना है) को ही अपनी भाषाओ का सर्वप्रथम साहित्यिक ग्रन्थ मानते है। उडिया आज जैसी बोली और लिखी जाती है वह प्राय चौदहवी शताब्दी मे बगला और असमिया जैसी अपनी भाषा-भगिनियो के समान मुखरित हुई।

चौदहवी शताब्दी से उन्नीसवी शताब्दी के अन्त तक, जबकि अत्या-धुनिक काल का आरम्भ होता है, पाच सौ वर्षो मे, उडिया साहित्य का विकास और निर्माण प्राय उन्ही रेखाओ पर हुआ, जिनपर अन्य आधु-निक भारतीय साहित्यो का। कही-कही रूप और सजावट मे स्थानीय वास्तविकता आ गई है। समूचे साहित्य का रूप ऐसा है कि उसमे धार्मिक और साहित्यिक दोनो तत्त्वो का सम्मिश्रण है। धार्मिक साहित्य मे अकल्पनीय स्वप्न, भावना और कुण्ठाएँ उन लेखको के मन मे मिलती है जो कि रामायण-महाभारत और भागवत पुराण के तीन सयुक्त वर्तुलो के बाहर से कोई विषय लाने का साहस नही कर सके है। परन्तु इन सकु-चित क्षितिजो मे महान तथा अमर कृतियाँ रची गई है। इससे सम्बन्धित क्षेत्र मे भी जितनी रचनाएँ हुई है वे सख्या मे विशाल है। यदि असख्य भाव-गीतो तथा गीत-काव्यो को छोड भी दे तो उडिया मे कम-से-कम रामायण के बारह अनुवाद और महाभारत के चार अनुवाद प्रसिद्ध है।

आधुनिक युग

मध्य युग अपने पौराणिक वातावरण सहित आधुनिक युग से एकदम भिन्न है। पश्चिम के सम्पर्क से जनता के स्वप्न और दृष्टिकोण का पुर्नर्निर्माण हुआ, और उन्हे एक नया मूल्याकन करने की शक्ति प्राप्त हुई। इसीमे से एक आधुनिक सप्राण साहित्य निर्मित हुआ, जिसमे भाव-सवेदन और दृष्टिकोण के व्यापक क्षेत्र ऐसे है, जो कि प्राचीन महान लेखको के लिए एकदम अज्ञात थे।

दु खद ऐतिहासिक परिस्थितियो के कारण पश्चिम से यह सम्पर्क उडीसा मे शायद बहुत देर से आया और इस प्रकार से आया कि जनता के लिए हानिकारक था। पडोसी भाषा-भगिनि बँगला की तुलना मे उडिया अपेक्षाकृत ज्यादा पिछडी हुई है। उसका यह कारण नही है कि यह भापा और भाषा-भापी जनता कुछ मूलत हीनतर है। परन्तु वे अव-सर, जो कि बगाल को मिले और जिनके कारण बगाल अग्रेजी राज्य मे कई दिशाओ मे समृद्ध बना उडिया-भाषियो को कम से कम एक शताब्दी के लिए प्राप्त नही हो सके।

उडिया-भाषा-भाषियो को अपना राज्य केवल विगत बीस वर्षो से मिला है। सोलहवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे जब से उडीसा का स्वातन्त्र्य छिना तब से चार सौ वर्षो तक, यानी जब अग्रेजो ने भारत छोडा उसके १० वर्ष पहले तक, उडीसा और उडिया-भाषी चार अलग-अलग प्रदेशो मे बँटे हुए दलितो और निर्दयता से शोषित अल्पसख्यको के रूप मे मिलते है; उडीसा स्वायत्त खण्ड-राज्य के रूप मे अभी-अभी आगे बढा है। प्लासी के युद्ध के सौ वर्ष बाद जबकि बगाल का अपना एक विश्वविद्यालय था, अग्रेजी स्कूल और कालेज तो अगणित थे और उसके साथ बँगला उच्च स्तर पर विकसित हो चुकी थी। उनकी तुलना में उडिया और असमिया मे दिखाने योग्य कुछ भी नही था। यहाँ तक हालत थी कि उड़ीसा मे एक पूरा पक्का हाईस्कूल भी नही था, और इन सबके बावजूद यदि किसी प्रदेश की भाषा और साहित्य न केवल

जीवित रहे बल्कि पनपे तो उसका श्रेय मुख्यत उस विद्रोह की शक्ति को देना चाहिए जो कि उडिया भाषा मे शोषण के विरुद्ध व्यक्त हुई। आधुनिक उडिया साहित्य के जनक और उस विद्रोही शक्ति के प्रतीक अत्यन्त विद्वान और योग्य व्यक्ति थे फकीर मोहन सेनापति।

फकीर मोहन सेनापति (१८४३-१९१८) अपने गोत्र-नाम जैसे ही सचमुच मे आधुनिक उडिया साहित्य और राष्ट्रीयता के सेनापति बने। वे कई बातो मे एक विलक्षण और अभूतपूर्व व्यक्ति थे। उनकी विधिवत शिक्षा-दीक्षा केवल तीन या चार साल तक हुई। उन्होने अपने चाचा के सहकारी के नाते जिन्दगी की शुरुआत की। उनके चाचा उन दिनो मे, उनके जन्म-स्थान जहाजी व्यापार के लिए प्रसिद्ध बालासोर नामक बन्दरगाह मे, टूटे हुए जहाजो को सुधारने के काम पर निरीक्षक थे। यहाँ से शुरू करके, अपनी प्रतिभा और परिश्रम की सहायता से, फकीर मोहन उडीसा की कई रियासतो के दीवान बनते गए। उन्हे पाँच भाषाओ का बहुत अच्छा ज्ञान था, थोडी-बहुत अग्रेजी भी वे जानते थे। उडीसा मे उन्होने सबसे पहले सहकारी ढग पर मुद्रण, प्रकाशन और पत्रकारिता का काम किया। उन्होने अकेले ही सम्पूर्ण रामायण और सम्पूर्ण महाभारत का मूल से आधुनिक उडिया भाषा मे अनुवाद किया, यद्यपि उडिया भाषा मे दोनो ही महाकाव्यो के बहुत-से अनुवाद पहले से थे। फिर उन्होने कुछ ऐसी कहानियाँ लिखी, जो कि उडिया भाषा की सबसे पहली कहानियाँ थी। गीतिकाव्य, भजन, खण्डकाव्य, परिहास-व्यग्य और बुद्ध पर एक महाकाव्य इत्यादि कई प्रकार की रचनाएँ लिखकर उन्होने अपने अवकाशप्राप्त जीवन मे करीब आधे दर्जन उत्तम उपन्यास लिखे। ये अभी भी अपनी टकसाली भाषा, धरती के प्रेम, गहरे स्पन्दनमय यथार्थवाद, परिहास और उच्च नैतिक स्तर के कारण अद्वितीय है।

फकीर मोहन को अभी भी उडीसा के बाहर के लोग नही जानते। मैने कई ऐसे आई०ए०एस० अफसरो से, जो कि उडिया-भाषी नही है परन्तु उडीसा मे रहने के कारण जिन्हे अध्ययन के लिए फकीर मोहन

के एक-दो उपन्यास पढने 'आवश्यक' होते है, सुना है कि उपन्यासकार के नाते 'सेनापति' आधुनिक भारतीय साहित्य मे सचमुच अद्वितीय है। जनता के लेखक होने के नाते वे इसी क्षेत्र के अन्य कई लेखकों के स्फूर्तिदाता और अग्रदूत थे। जब कि बगाल के प्रसिद्ध बकिमचन्द्र अत्यधिक सस्कृतमयी शैली में नवाबो, बेगमो, राजाओ, राजकुमारियो, उच्च-मध्यवर्गीय और भद्रवर्गीय बगालियो के बारे में लिख रहे थे, तब यह उडीसा का महान उपन्यासकार, सीधे-सादे अशिक्षित जुलाहो, नाइयो और किसानो के बारे मे, उन गाँवो के चौकीदारो के बारे में जो कि खुद डाकुओ से मिलकर बदमाशी कराते है, शहरो और गाँवो मे पाई जाने-वाली निर्लज्ज और दुष्ट नौकरानियो के बारे में, अग्रेज मजिस्ट्रेटो के यहाँ काम करने वाले लोभी क्लर्को, घमण्डी वकीलो, पुराने खानदानो के उन युवक बेटो के बारे मे जोकि अग्रेजी शिक्षा के पहले घूंट से ही मदमत्त हो गए थे और अपने-आपको तथा अपने माँ-बापो को बडी कठिनाइयो मे डाल रहे थे, उन सबके बारे में फकीर मोहन ने लिखा है। फकीर मोहन को अग्रेजी मे कोई विधिवत शिक्षा नही मिली थी। वह एक तरह से बडा लाभ ही हुआ। वह मुख्यत. जनता के आदमी थे। जन-साधारण की घरेलू सशक्त भाषा, जिसमे गाँवो की गलियो की सही गन्ध आती हो · धान के खेत और तालाब जहाँ गाँव की स्त्रियाँ अपने कपडे लेकर धोने के लिए और दैनिक गप-शप के लिए आन जुटती हो, यह सब फकीर मोहन के स्वाभाविक विषय थे। इन सबका उपयोग उन्होने अपनी कहानियो तथा उपन्यासो मे बहुत ही आकर्षक और प्रभावशाली ढग से किया है। इन सारी चीजो को उन्होने ऐसे असाधारण साहित्यिक महत्त्व और सहृदयता के साथ चित्रित किया है कि यदि वे ऐसा न करते, तो आज वे सब असम्भव जान पडती।

फकीर मोहन के उपन्यासो और कहानियो में हमें स्त्री और पुरुषो की ऐसी सजीव चरित्र-मालिका मिलती है कि उनकी यथार्थवादिता और सरागता के साथ-साथ उनमें एक ऐसा दिव्य स्फुलिंग है जो कि महान

साहित्यकार ही अपनी रचनाओ मे निर्दिष्ट कर सकते है और जिनके कारण वे पात्र अमर हो जाते हैं, और सारे जीवित स्त्री-पुरुषो की अपेक्षा अधिक प्राणवान ज्ञात पडते हैं। उडिया-समाज के सभी स्तरो की एक राष्ट्रीय चित्रशाला का जैसा निर्माण फकीर मोहन ने किया है, उससे मुझे बार-बार महान सर्वातीस के 'दोन किखोते' नामक इस्पहानी क्लासिक ग्रन्थ की याद हो आती है, जिसमे कि स्पेन की आत्मा का स्पष्ट और कलात्मक प्रतिबिम्ब है, ऐसा कहा जाता है।

उनका उपन्यास 'छमाण आठगुण्ठ'* (छ एकड और आठ गुण्ठा) एक ऐसे सरल, शिशु-विहीन जुलाहे दम्पत्ति की कथा है, जिसे कि एक गाँव के साहूकार ने अपनी क्रूरता से बहुत अधिक शोषित किया था। इस पुस्तक मे सेनापति का ग्रामीण यथार्थवाद अपनी अन्तिम सीमा पर है। यह उपन्यास सबसे पहले 'उत्कल साहित्य' नामक पत्र मे क्रमश. प्रकाशित हुआ। ऐसा कहते है कि उस उपन्यास मे हत्या का जो मुकदमा आता है उसकी खोज-बीन और पूर्व के वर्णन इतने सजीव थे कि दूर-दूर से गाँव के लोग यह देखने के लिए कटक मे आते थे कि यह मुकदमा सचमुच कैसे हो रहा है, और वे इस उपन्यास के पात्रो को सजीव मानकर चलते थे।

इस उपन्यासकार ने कई मौलिक बातो मे प्रेमचन्द के 'गोदान' को पचास वर्ष पहले ही जैसें पूर्व-कल्पित कर लिया था, यद्यपि दोनो उपन्यासो की घटनाओ मे कोई समानता नही है। सेनापति का 'लछमा' एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमे कि बगाल मे और उडीसा मे 'बर्गी' या मराठा आक्रमणकारियो के अत्याचारो का वर्णन है। उनके 'मामूँ' और 'प्रायश्चित्त' नामक उपन्यासो मे यूरोपीय सस्कृति के प्रभाव से पुरानी समाज-व्यवस्था के विघटन का चित्र है, जो एक आदर्शवादी युवक के मन के

---

*इस उपन्यास को साहित्य अकादेमी ने अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद के लिए चुना है। हिन्दी अनुवाद हो चुका है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। विदेशी भाषाओ में भी इस उपन्यास के अनुवाद की सिफारिश की गई है।

द्वद्व के रूप मे चित्रित किया गया है । इन्हे एक प्रकार से प्रायश्चित्त और पुनर्जीवन के नीति-प्रधान ग्रथ मानना चाहिए, क्योकि इनमे जो पात्र दिखाए गए है, वे कई प्रकार के ऊँचे-नीचे अनुभवो मे से गुजरते हुए, गलतियाँ करते हुए, फिर सदाचार और सच्चे जीवन-पथ पर लाए गए है ।

फकीर मोहन न केवल एक साहित्यिक रचयिता थे, बल्कि बगाल के सास्कृतिक और भाषा-सम्बन्धी आक्रमण के विरोध मे जो आन्दोलन उडीसा मे शुरू हो रहा था, उसके प्रमुख कार्यकर्ता भी थे । उन्होने अपनी मातृभापा के पुनर्जीवन के कार्य मे बहुत बडी सहायता की, और उसके कारण उडिया साहित्य मे उनका स्थान अद्वितीय हो गया है ।

राधानाथ और मधुसूदन

फकीर मोहन अपने कार्य मे अकेले नही थे । उस समय प्रतिभाशाली लेखको का जो एक दल प्राचीन उडिया साहित्य और सास्कृतिक परम्परा के पुनर्जीवन के लिए प्रशसनीय सेवा-कार्य कर रहा था, उसके कुशल नेता फकीर मोहन थे । फकीर मोहन के साथ जो दो और बड़े नाम गिनाए जाते है और जिनसे उडिया भाषा की बृहत्-त्रयी बन गई है, वे है—राधानाथ राय और मधुसूदन राव । दोनो महाकवि थे । इस त्रयी ने मनुष्य, प्रगति और ईश्वर को अपने काव्यो का विषय बनाया, और इस प्राचीन भापा मे एक नया स्वायत्त और स्वयपूर्ण साहित्य निर्मित किया । इन तीनो मित्रो की पूरी साहित्यिक कृतियाँ यदि हम पढे तो यह पता चलेगा कि किसी भी समृद्ध साहित्य के सब तत्त्व इन कृतियो मे भरे हुए है ।

शहरो और गाँवो की दशा और शात सामाजिक जीवन के नीचे जो मानवीय वासनाओ का अशकित नाटक चल रहा है उसे फकीर मोहन ने सारे देश के सामने खोलकर रख दिया । 'मधुसूदन' (१८५३-१९१२) ने अपने भव्य काव्य मे विश्व के साथ पवित्र जीवन और मानवीय आत्मा

के आध्यात्मिक मिलन की गाथा गाई है। उनके विषय हिमालय के सुन्दर हिमजडित ऊँचे शिखरो से लेकर द्वद्वमय जीवन की साधारण छोटी-छोटी घटनाओ तक बिखरे हुए हैं । उन्होने कभी भी साहित्यिक कीर्ति के लिए कोई सचेष्ट प्रयत्न नही किया और इसलिए कभी भी कोई विशाल ग्रथ लिखने का प्रयत्न नही किया। उनकी रचनाओ मे छोटे-छोटे गीत, भाव-कविता, गीति-काव्य, सूत्र और सानेट असख्य मात्रा मे बिखरे हुए है । उन सब मे एक उच्च जीवन का वातावरण मिलता है। इनमे से कुछ, जैसे कि दस-बारह सानेट, 'नदी प्रति', 'आकाश प्रति' और 'ध्वनि', उनके सूक्त और उनकी दो गीतात्मक कविताएँ 'हिमाचले उदयोत्सव' और 'ऋषिप्राणे देवावतरण' ऐसी है जोकि किसी भी साहित्य के लिए अमूल्य कृति की तरह मानी जायेगी। उडीसा की शालाओ और होस्टलो मे हजारो बालक प्रतिदिन सायकाल को उनके रचे हुए भजन गाते है। उडीसा के राष्ट्रीय जीवन मे नही, तो कम-से-कम साहित्य में तो उनकी कविता एक सशक्त तथा चैतन्ययुक्त, नैतिक और आध्यात्मिक बल के रूप मे अभी भी चल रही है।

राधानाथ (१८४८-१९०८) एक सच्चे कवि और सौन्दर्य-द्रष्टा थे। उन्होने—सेनापति ने जो कुछ गद्य मे किया, उसकी पूर्ति कविता के रूप मे की । उन्होने उडिया-भाषियो के लिए एक सच्चा साहित्य निर्मित किया। यह धरती का साहित्य था, और धरती के बेटो के लिए था, और फिर भी उसमे ऐसा सौन्दर्य और चमत्कार था जो कि अभूतपूर्व था। उडिया-कविता मे जो नवीनता राधानाथ के द्वारा आई, उसकी दोनो दिशाएँ स्पष्ट है । उन्होने ही उडिया-पद्य को शाब्दिक कसरत से मुक्त किया। यह अलकार-प्रियता उपेन्द्र भज और उनके अनुयायियो के प्रभाव से मध्ययुगीन कविता के एक अनिवार्य अग के नाते चल रही थी। अनुप्रासो का अनुपात कम करके तथा शैली पर विशेष ध्यान देकर राधानाथ ने अपने पद्य को सरल वेश-भूषा मे इतना आकर्षक बना दिया कि वह किसी भी प्राचीन कवि की रचना के समकक्ष जान पडती

है। शब्द और अर्थ के बीच मे जो घनिष्ठ सम्बन्ध है उसके प्रति एक गहरा सम्मान उन्होने सबसे पहले अपने पद्य मे आरम्भ किया। इस विषय मे यानी वागर्थ के सश्लेषण अर्थात सही शब्दो और सही विशेषणो को चुनने मे वे अपने गुरु 'कालिदास' का अनुकरण करते जान पडते है।

'राधानाथ' उडिया कविता के माध्यम मे जो क्रान्ति लाए, उससे भी अधिक आधुनिक उडिया साहित्य और उडीया के राष्ट्रीय जीवन मे उनका महत्त्वपूर्ण योगदान था उनके द्वारा प्रयुक्त अलकार। एक प्रकार से उन्होने उडीसा के समस्त प्राकृतिक दृश्य को सौन्दर्यान्वित कर दिया। अपनी कविता की विषय-वस्तु के लिए उन्होने उडीसा के प्राचीन इतिहास या लेटिन या यूनानी पुराण-कथाओ से जनश्रुतियाँ और ऐतिहासिक गाथाएँ ली तथा जहाँ विदेशी कथा-वस्तु थी, उसे भी उडिया वातावरण मे ऐसा ढाल दिया कि उडीसा का सारा भू-भाग मानो इन्ही नायक-नायिकाओ के लिए एक रगमच की तरह से प्रस्तुत हो। उनके पहले चार शताब्दी तक, उडिया कवि (जिनमे कि सारलादास और बलरामदास अपवाद है) केवल गगा, यमुना और गोवर्धन पर्वत इत्यादि उत्तर भारत के प्राकृतिक स्थानो का ही वर्णन करते थे, जब कि उनमे से किसी ने भी उन्हे शायद देखा नही था। अपने ही घर के सुन्दर प्राकृतिक दृश्य की ओर उनकी दृष्टि नही गई थी। उडीसा की चौडी और बडी नदियाँ महानदी, ब्राह्मणी, वैतरणी और मलयगिरि, मेघासन और महेन्द्र-जैसे चित्रोपम पर्वत अनगाए ही रह गए थे। उडीसा के सुन्दर भू-भाग का पहला सच्चा प्रशसक और गायक, जिसने कि उस अचल के प्राकृतिक सौन्दर्य को सब प्रकार से और भाव-कविता के उत्साह से वर्णित किया, हमे राधानाथ के रूप में मिलता है। उन्होने 'चिलिका' सरोवर पर एक लम्बा भावपूर्ण खण्डकाव्य लिखा है। चिलिका उडीसा की सुन्दर समृद्ध झील है। इस काव्य में चमत्कारपूर्ण, प्रसिद्ध और माधुर्य से भरे दो-दो पक्ति वाले छन्दो मे इस झील के विविध मनोरम रूपो का ऐसा सुन्दर गुण-गान हुआ है कि मानो प्रकृति देवी के प्रति यह एक स्रोत ही हो; और वह भी इतनी आत्मीयता के

साथ रचा गया है कि ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वह झील मानो एक जीवित व्यक्ति हो। इस काव्य मे स्थान-स्थान पर उडीसा के उन सम-कालीन सस्मरणीय दिवसो और सर्वसाधारण के जीवन पर कई विचार व्यक्त किये गए हैं। इसी कारण से राधानाथ की 'चिलिका'* उडिया साहित्य मे एक महत्त्वपूर्ण पथचिह्न बन गई है।

राधानाथ के सुरक्षित पद्यो मे न केवल चिलिका झील अपितु कोई भी प्रसिद्ध पर्वत, नदी, दृश्य, ऐतिहासिक स्मारक, लोकप्रिय देवी-देवता ऐसे नही है, जिन्हे अमरता प्रदान न की गई हो। वस्तुत. अनेक स्थानों (जैसेकि स्वय चिलिका झील) को आज जो इतना यश मिला है, वह उनकी कविता के द्वारा ही सम्भव हो सका। प्रकृति के कवि के नाते राधानाथ ने उडीसा के लिए वही किया जो कि 'कालिदास' ने सारे भारत-वर्ष के लिए किया। यूनान ने अपने साहित्य मे हैलैनिक विश्व की जैसी अवतारणा की है, राधानाथ ने भी सारे उडीसा को ऐसे ही सजीव देवी-देवताओ से भर दिया, जो कि मानवी व्यवहार मे अधिक प्रगाढ रस लेते थे, और मौलिक रूप से प्रकृति सुन्दरी का मानवीकरण करते थे। सक्षेप मे उडीसा को उन्होने एक विलक्षण काव्यमय सुन्दरता का देश बना दिया। अलौकिक पात्रो की रगभूमि, गाथा और जन-श्रुतियो का प्रदेश, सुन्दर वीर योद्धाओ और रमणीय नायिकाओ का भूखण्ड बना दिया। आजकल कटक का नागरिक शाम को जिस ऐतिहासिक पत्थर के बने नदी के किनारे पर घूमने जाता है और काठजोडी नदी के उस पार जो पर्वत-मालाएँ देखता है, उन्हे राधानाथ की जादुई लेखनी ने छुआ और उनमे एक नवीन रमणीयता पैदा की। जहाँ कही सवेदनशील सुशिक्षित उडिया विचरण करता है, राधानाथ की कुछ पक्तियाँ उसके होठो पर स्वभावतः थिरकती है, जो कि उस विशेष स्थान की आत्मा को उचित रीति से व्यक्त करती है।

---

*यह काव्य साहित्य अकादेमी द्वारा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद के लिए चुना गया है। इसका हिन्दी अनुवाद हो चुका है और शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

रावानाथ मूलत- महाकवि थे। उन्होने गीत वहुत थोडे लिखे हैं। उनकी रचनाग्रो में मुक्तक काव्य है, जिनके विषय, जैसा कि ऊपर कहा गया है, ऐसे लगते है जिन्हे पहले किसी ने नही छुग्रा मालूम होता। ग्रर्व ऐतिहासिक गीत, सरल विपय, प्रवाहपूर्ण सुखद वर्णन-शैली, देश-भक्ति-पूर्ण स्थानीय वातावरण और भावनाएँ, जीवन और जगत के प्रति दार्शनिक विचार—इन गुणो के कारण राधानाथ की रचनाएँ उडिया कविता में अद्वितीय हो गई हैं, और उन्हे यह समुचित सम्मान दिया जाता है कि उडिया साहित्य मे नवयुग का निर्माण उनके काव्यो से हुग्रा।

उनकी कृतियो मे उनका सवसे वडा महाकाव्य 'महायात्रा' नाम से प्रकाशित हुग्रा है। यह उदात्त मधुर और चित्रोपम मुक्त-छन्द में है।कवि की इच्छा थी कि वे उसे इक्कीस सर्गों में पूरा करते, परन्तु सात सर्गों के वाद ही उनकी मृत्यु हो गई। इस ग्रसमाप्त रूप मे भी उनका वह काव्य एक विलक्षण कृति है। कुरुक्षेत्र के युद्ध के वाद पाण्डवो के स्वर्ग-प्रयाण की ग्रन्तिम यात्रा उन्होने महाभारत से ली, और इस कथानक की नीव पर वे पूरे भारतवर्ष के इतिहास और विदेशी ग्राक्रमणो के उत्थान-पतन तथा भविष्य के लिए एक दिशा-निर्देश का चित्र उपस्थित करना चाहते थे। उन्होने इस काव्य मे पाण्डवो को जगन्नाथपुरी मे ग्राता हुग्रा दिखाया है, जहाँ उन्हे ग्रग्निदेव मिलते है, जो कि उडीसा और मध्यप्रदेश के ग्रादिम जगलो में से उन्हे सह्याद्रि के शिखर पर ले जाते है। वहाँ ग्रग्निदेव उन्हे भारतीय इतिहास की पूरी कहानी विस्तार मे वत-लाते हैं; और आर्यों के ग्रपने देश मे आने वाले कलियुग से क्या-क्या पतन हो गया, इसका भी वर्णन करते है। पृथ्वीराज को मुहम्मद गोरी ने पराजित किया, इन घटनाग्रो तक कवि यह कहानी लाते है। इसमे युद्धो और प्रकृति का वर्णन महाकाव्योचित भव्यता से किया गया है। ग्रन्तिम युद्ध के ग्रारम्भ मे हिन्दू सेनापति का देशभक्तिपूर्ण भाषण वडा ही उत्साहवर्द्धक और ग्रविस्मरणीय है।

परवर्ती लेखक

राधानाथ, फकीर मोहन और मधुसूदन के पीछे-पीछे उनके कई अनुयायी आए। स्थानाभाव के कारण उन सबका या उनमे से कुछ का भी पूरा विवेचन करना यहाँ असम्भव है, फिर भी कम-से-कम उनमे से दो लेखको का सक्षिप्त उल्लेख आवश्यक है, क्योकि एक मे तो उसके अत्यल्प लेखन मे भी मौलिकता के दर्शन होते है और दूसरो की काव्य-शक्ति मे विलक्षण कुशलता दिखाई देती है।

नन्दकिशोर बल राधानाथ और मधूसूदन के अनुकरण मे ही बहुत-कुछ लिखते थे। उन्होने अपनी कविताओ मे उडीसा के गाँवो का चित्रण किया है। लोक-गीतो और लोक-धुनो को वह आधुनिक भाव-गीतो के क्षेत्र मे लाए। उनके 'पल्ली-चित्र' नामक काव्य मे ऐसी गहरी भावनाएँ व्यक्त है, जो कि प्रत्येक उडिया व्यक्ति के हृदय मे, अपने शान्त, सुन्दर, स्वयपूर्ण तथा पवित्र ग्रामीण वातावरण की ओर लौट जाने के लिए होती है और अब वहाँ का ग्रामीण वातावरण इतना बदल गया है कि वे वापस लौटकर नही आ सकते। उसपर भी आधुनिक सभ्यता का क्रूर आघात हुआ है। उनका 'नाना बाया-गीत' (कुछ शिशु छद) उडिया मे अभी भी बच्चो की कविता का एक महत्त्वपूर्ण सग्रह माना जाता है।

गगाधर मेहेर सम्बलपुर के एक गरीब जुलाहे कवि थे, जो कि अपनी काव्य-कुशलता के लिए प्रसिद्ध है। कम पढे-लिखे होने के कारण उनका क्षेत्र भी बहुत छोटा है, परन्तु प्राचीन पुराण-गाथाओ के विषयो मे वे एक नवीन जादू और रस लाए। उनकी पक्तियो मे नवीन सगीत और उनके छन्दो मे नया मँजाव है। उनके चित्रो मे एक विशेष दृष्टि और वास्तविकता है, जो कि उडीसा मे पहले न तो कभी देखी गई, और न सुनी गई। सम्बलपुर के उस विश्व-विख्यात हाथ से बुने कपडे की तरह, जो कि वह वश-परम्परा से अपने जीवन-यापन के लिए पैदा करते थे, मेहेर ने कविता को भी एक सजीव, रगीन और सचित्र कला का रूप दिया। उनका एक-एक काव्य चीनी-चित्र-कला के नमूने की तरह है। उनमे

भावनाएँ, रग और घटनाएँ बोलती हैं। उनका क्षेत्र सीमित था, परन्तु उस छोटी-सी दुनिया मे, उन्होने अनेक छोटे-छोटे स्वर्ग निर्मित किए। उनके कई छन्द और श्लोक अब जन-साधारण की बोल-चाल के भाग हो गए हैं, और उनकी छन्द-रचना उडीसा मे अब तक सर्वोत्तम काव्य-कला का मापदण्ड मानी जाती है। प्राचीन और आधुनिक सभी भारतीय काव्यो मे उनके प्रास सबसे पुराने और सगीतमय माने जाते हैं। उनके प्रसिद्ध काव्य 'तपस्विनी' की सीता नारी-आदर्श का एक बहुत ऊँचा नमूना है।

सत्यवादी शाखा

इस शताब्दी के तीसरे दशक तक राधानाथ और मधुसूदन के अनुयायी अपनी परम्पराएँ बार-बार चलाते आए हैं, फिर भी यह कहना होगा कि साहित्यिक शक्ति के नाते उनका प्रभाव पहले दशक मे ही प्राय समाप्त हो गया था, क्योकि बुद्धिवादियो की एक नई पीढी धीरे-धीरे आगे आ रही थी।

१९०३ मे, अर्थात उडीसा मे ब्रिटिश आधिपत्य के ठीक सौ वर्ष बाद, 'उत्कल सम्मिलनी' की स्थापना हुई। इसके मच पर राजा और रक, सामन्त और साधारण जनता, कन्धे-से-कन्धा मिलाकर उडिया-भाषी भू-प्रदेश के सयुक्तीकरण की मिली-जुली माँग कर रहे थे। तब उडिया-भाषी लोग चार अलग-अलग प्रदेशो मे बिखरे हुए थे। वस्तुत भारत मे एकभाषा-भाषी प्रान्त की यह सबसे पहली माँग थी। १९०३ से प्रथम महायुद्ध के अन्त तक, और गाँधीजी के आगमन और उनके असहयोग आन्दोलन तक, उडिया लोगो का यह सबसे बडा स्वप्न और सबसे महत्त्वपूर्ण आकाक्षा थी। यह प्रादेशिक राष्ट्र-प्रेम आधुनिक भारत के जिस एक बहुत बडे सपूत के रूप मे अभिव्यक्त हुआ वे थे पडित गोपबन्धु दास (१८७७-१९२८)। उनके गद्य, पद्य और भाषणो ने उडीसा की जनता को इस तरह से अनुप्राणित कर दिया, जैसा न

तो कभी पहले हुआ और न बाद मे ही। ऐसा लगता था कि मानो उनके शब्द समूची जनता के हृदयो से—अन्तरात्मा से—आ रहे हो। उन्होने पुरी के पास साखीगोपाल नामक स्थान पर एक 'विहार' स्थापित किया, जहाँ अनेक बडे-बडे विद्वान (जैसे पडित नीलकण्ठ दास, पडित गोदावरीश मिश्र और पडित कृपासिन्धु मिश्र) बहुत छोटी-छोटी आय पर काम करते रहे। उन्होने विदेशी स्वामियो के नीचे बडे-बडे वेतन वाली नौकरियाँ ठुकरा दी। वे चाहते तो ऐसी नौकरियाँ उन्हे सहज ही मिल सकती थी। यह 'विहार' नाम की शाला प्राय बारह वर्ष तक चलती रही और यही था उडीसा का सास्कृतिक केन्द्र। इस शाला के सब अध्यापक पडित गोपबन्धु के प्राणदायक नेतृत्व के नीचे शिक्षा और साहित्य की सेवा तथा उसके पुनर्निर्माण मे जुट गए। यद्यपि वस्तुत यह एक पुनर्जीवनवादी आन्दोलन था, जो कि जनता को फिर से वैदिक सस्कृति की ओर ले जाने की माँग करता था, फिर भी उनके आदर्श थे सादा जीवन और उच्च विचार। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को देश की सेवा मे निरन्तर बलि देने का और गीतो मे बतलाई हुई मानवता का वे प्रचार करते थे। परन्तु उनके महान नेता गोपबन्धु दास के जीवन को छोडकर यह आदर्श व्यवहार मे बहुत कम दिखाई देता, इसलिए देश के जीवन मे नैतिक शक्ति के नाते इस सस्था ने कोई बहुत बडा प्रभाव नही छोडा। उसका कुछ स्थायी रूप, इस सस्था के छोटे-से जीवन मे निर्मित उत्तम साहित्य मे मिलता है। वे 'सत्यवादी' नाम का एक मासिक-पत्र निकालते थे और साप्ताहिक 'समाज' की स्थापना भी उन्होने ही की थी। इन पत्रो के पृष्ठो मे गोपबन्धु ने अपनी पूरी भावनाएँ, आकाक्षाएँ और उमगे ऐसी गद्य-शैली मे व्यक्त की, जो कि अपनी भव्यता, शुद्धता, व्यजना-चातुर्य, विचारो की शिष्टता और सच्चे काव्य-रस से भरी हुई है। यह गद्य-शैली अब उडिया मे देखने को नही मिलती। उनकी 'वन्दी का आत्म-चिन्तन' नामक कृति उडीसा मे लोक-गीतो की भाति अत्यन्त लोकप्रिय है।

पडित नीलकठ दास ने, जो गोपवन्धु के निकटतम अनुयायी है, अपनी 'आर्य जीवन' नामक पुस्तक मे पाडित्यमयी शैली मे ब्राह्मण आदर्शो का फिर मे प्रचार किया। उन्होने 'कोणार्क' पर एक सप्राण और वन्य मुन्दरता से युक्त काव्य रचा। इस काव्य की भूमिका मे उडीसा के इतिहास का स्पष्ट और विचारप्रक्षोभक सिहावलोकन किया गया है, जो कि सत्यवादी 'विहार' के विद्यार्थियो के स्वप्नो के रूप मे चित्रित है। उन विद्यार्थियो को वे कोणार्क मे शैक्षणिक यात्रा पर ले गए थे। पडित दास राजनीति के वीरान वीहड मे वहुत दिन भटकने के वाद अव साहित्य के रचनात्मक जगत की ओर लौटे है और इधर उन्होने एक नई दिशा दिखलाने वाला सामाजिक-साहित्यिक इतिहास लिखा है। अनेक खण्ड वाले 'उडिया साहित्यर क्रम-परिणाम' नामक गद्य-ग्रथ को सर्व-साधारण पाठको ने उनका सर्वश्रेष्ठ ग्रथ माना है। उसी धारा के पडित कृपासिन्धु मिश्र ने अपनी 'कोणार्क' और 'वारवाटी' नामक दो पुस्तको मे प्रथम श्रेणी का ऐतिहासिक साहित्य निर्मित किया और पडित गोदा-वरीश मिश्र ने मन को हिला देने वाले राष्ट्रीय नाटक, कविताएँ और उत्तम वीर-गाथाएँ लिखी है। कुल मिलाकर अव तक उडीसा मे सामूहिक रूप से निर्मित साहित्यिक उपलब्धियो मे यह सवसे अच्छा युग और सव-से मुन्दर रचयिताओ का दल है। 'सत्यवादी' धारा क्यो लुप्त हो गई, इसका चाहे कुछ भी कारण हो, किन्तु यह तो सच है कि उडीसा के राष्ट्रीय जीवन मे उस धारा के नष्ट होने से एक ऐसा स्थान रिक्त हो गया, जो फिर कभी नही भर सका। अपने छोटे-से जीवन मे यह धारा उडीसा के लिए वैसी ही थी, जैसी वगाल के लिए 'शान्ति-निकेतन'।

नाटक और रगमच

इन वर्षो मे नाटक धीरे-धीरे ऊपर आ रहे थे। न केवल साहित्य की एक प्रतिष्ठित शाखा के रूप मे, वल्कि उडीसा के राष्ट्रीय जीवन के अग के नाते भी राष्ट्रीय वृत्ति मे से यह नाटक निर्मित हुए। क्योकि

उडीसा मे बगाली नाटक-मण्डलियाँ मच पर बगाली नाटक खेलती थी और यह एक चुनौती थी, जिसका उत्तर उडिया नाटक के रूप मे आगे आया। रामशकर राय, कामपाल मिश्र, भिखारीचरण पटनायक और गोविन्द सुरदेव धीरे-धीरे रगभूमि को एक सशक्त और सम्मानित प्रभाव के रूप मे इस प्रदेश मे प्रतिष्ठित कर रहे थे। उनके द्वारा रगभूमि केवल मनोरजन का स्थान न रहकर, समाज-सुधार और राष्ट्रीय पुनरुत्थान का भी मच बन गई । जिस प्रकार बगाली नाटककारो को राजस्थान और महाराष्ट्र के इतिहास से बहुत-सी सामग्री मिली थी, उसी प्रकार उडिया नाटककारो को उडीसा-इतिहास के वीरो से आवश्यक सामग्री प्राप्त हुई, उदाहरणार्थ वीर राजा खारवेल, कपिलेन्द्र, पुरुषोत्तम और अनग-भीम आदि के नाम लिये जा सकते हैं, जिनकी पताका के नीचे उडीसा ने अपना विजय-अभियान और साम्राज्यो का विस्तार किया। उडीसा देश की बहुत समय तक खण्डित जाति के लिए यह वीर-पूजा एक स्वाभाविक प्रिय भावना थी।

इसी युग मे वैष्णव पाणी ने ग्राम-नाटको को क्रान्तिकारी ढग से सुधार दिया और समूचे ग्रामीण उडीसा मे 'यात्रा' का आधुनिक परिष्कृत रूप प्रचलित किया। अब इन यात्राओ में समकालीन घटनाओ का प्रति-बिम्बन होने लगा और यह ग्राम-नाटक रगभूमि के नाटको के निकट आने लगे, यद्यपि उनकी आकर्षक सगीतमयता कम नही हुई। उडीसा के कवियो मे इस एक अकेले प्रतिभाशाली व्यक्ति ने जो कमाल कर दिखाया, वह समूचे आधुनिक भारत के नाटकीय इतिहास मे अद्वितीय है।

गाँधी ठाकुर और 'सबूज'-दल

इस समय तक गाँधी की आँधी देश मे फैल चुकी थी। पडित गोप-बन्धु और उनके कार्यकर्त्ताओ के दल ने अपने-आपको राष्ट्रीय आन्दोलन मे तन्मयतापूर्वक लगा दिया था और तब उडीसा का जो एकमात्र सास्कृतिक केन्द्र था, वह भी इस प्रकार खो दिया गया। इस प्रकार से

जब 'सत्यवादी' दल समाप्त हो चुका था, तब कटक के कुछ थोड़े-से अण्डर-ग्रेजुएट नवयुवक एक नया साहित्यिक शगूफा लेकर बढ रहे थे, जिस पर बगाल का ट्रेड मार्क लगा हुआ था। उस समय रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपनी कीर्ति और लोकप्रियता के शिखर पर थे। यह सच है कि उनका प्रभाव अदम्य है, परन्तु उस प्रभाव मे उस समय के युवको के पैर लडखडाने लगे, और सिर चक्कर खाने लगा। 'ठाकुर' की कविता और विवेक के महान भण्डार मे से यह तरुण कोई बहुत महत्त्वपूर्ण चीज अपने साथ नही लाए। उन्होने केवल कुछ बाह्य गौण बातो का ही अनुकरण किया, जैसे कि तुको या तर्क और सगति के अभाव का और कुछ रहस्यप्रियता के नाम पर अर्थहीन रचना का, जो कि हमें कभी-कभी ठाकुर की कविता मे भी मिलती है। यह लोग अपने-आपको 'सबूज' कहते थे। यह नाम भी उधार लिया गया था, क्योकि शुरू मे 'ठाकुर' और प्रमथ चौधरी ने यह नाम, बगाल मे उस समय जो रूढिबद्ध और सनातन विचारो के विरोध मे एक आन्दोलन चला था उसके लिए प्रयुक्त किया था। और बगाल के 'सबूज' पत्र की तरह से इन लोगो ने भी एक अपनी पत्रिका निकाली, जिसका नाम था 'युग-वीणा'।

उडीसा के साहित्यिक जगत मे इस दल ने एक नया आन्दोलन शुरू कर दिया। पाँच-छ वर्ष तक वे बहुत-सी नई-नई चीजे उडिया साहित्य मे लाये। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति यह जानता था कि वे चीजे उन्होने बाहर से आयात की है, और उनकी जडे उडीसा की मिट्टी मे नही हैं। इन लोगो ने अपना प्रकाशन-गृह भी शुरू किया। आश्चर्य की बात है कि बहुत जल्दी यह 'सबूज' (हरे) पीले पड गए।

गत दो दशाब्दियो मे तरुण पीढी पर 'सबूज' दल का बहुत गहरा प्रभाव पडा। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रास-रचना को उन्होने उडिया साहित्य मे प्रतिष्ठित किया और उसके साथ-साथ वे देशज छन्द-रचना भी लाए। अन्नदाशकर राय और बैकुण्ठनाथ पटनायक की कई कविताएँ, जो कि उन दिनो के आरभ मे लिखी गई थी, सभी समीक्षको के द्वारा

उडिया साहित्य के भण्डार के लिए स्वागत-योग्य मानी गई है । उन कविताओ को पढकर ऐसा आभास होने लगता है कि जैसे सचमुच हम एक नई दुनिया मे पहुच गए है । उनमे अपने ही ढग के शब्द-सगीत का जादू है । उनमे प्रेम, सौन्दर्य और जीवन के नये स्वप्न है । ऐसी नई कल्पना-प्रतिमाएँ है, जो सुसस्कृत उडिया कानो को बहुत अटपटी और विचित्र लगने वाली नही थी । प्रास तो है ही, क्योकि उडिया व्यक्ति के कान, 'सारळादास' से लगाकर गगाधर मेहेर और नीलकठ दास के काव्यो तक मे कवि-मालिका के देशज-अनुप्रास से इतने परिचित थे कि उन्हे जनता की आत्मा और भापा के सच्चे मुहावरे इस पारम्परिक कविता मे मिले थे । परन्तु सबूज-दल ने जैसे उस रूढि-रीति को तोड दिया । एक समय इस दल के लेखको द्वारा मिलकर लिखा हुआ उपन्यास 'बासन्ती' बहुत लोकप्रिय हुआ और तरुण पीढियो पर उसने कुछ अच्छा प्रभाव छोडा । कालिन्दीचरण पाणिग्राही का उपन्यास 'माटीर माणिप'* (मिट्टी का पुतला) इस दल के चरमोत्कर्ष के दिनो मे लिखा गया । उनकी कई कहानियाँ बहुत लोकप्रिय हुई, जो कि सम्मान उनके योग्य ही था । आज समूचे उडीसा मे कालिन्दीचरण पाणिग्राही समकालीन समस्याओ के अच्छे प्रचारक और विशिष्ट गद्य-शैलीकार के नाते बहुत प्रसिद्ध है ।

जनता के कवि

'सबूजो' के बाद सोशलिस्ट, या कहिए कम्युनिस्ट, तीसरे दशक के मध्य मे आये । वे अपने साथ फ्रायड, वाल्ट विटमैन और कार्लमार्क्स को लाये । यद्यपि उडीसा मुख्यत कृषि-प्रधान प्रदेश था और है, तथा कल-तक उसका एकमात्र उद्योग कुछ धान की मिले ही था, ये नवयुग के लाने वाले जोशीली हिंसात्मक कविताएँ वर्ग-युद्ध पर लिखते थे । बेचारा गरीब

---

*साहित्य अकादेमी ने इसे अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद के लिए चुना है और इसका हिन्दी-अनुवाद 'मिट्टी का पुतला' नाम से प्रकाशित भी हो चुका है ।

रिक्शे वाला, जो कि कटक की गदी धूलभरी सडको पर रिक्शा चलाता था, यह नही जानता था कि वह अगणित छोटी कहानियो का नायक वन गया है। जो लोग इनके गोल मे नही आते थे उनका मध्ययुगीन या अफयूनसेवी कहकर मजाक उडाया गया। परन्तु सच्ची बात कहे तो वह वर्ग-युद्ध की घोषणा एक अस्थायी अन्तर्राष्ट्रीय फैशन-मात्र थी। और 'जनता' की वात तो छोडिए, इन स्वयभू 'जनता के कवियो' मे से अधिकाश की मार्क्सवादी सध्या-भाषा पढे-लिखे बुद्धिजीवियो के लिए भी अगम्य होती है।

बहुत-से वामपक्षी लेखको मे कुछ नाम निस्सन्देह प्रतिभा के कारण चमक उठते है। उनका स्थान उडिया कविता मे इसलिए नही है कि वे वामपक्षी प्रचार-काव्य लिखते थे, परन्तु इसलिए कि उनमे मानवीय भावना और सामाजिक व्यक्तिवाद का सच्चा पुट मिलता है। सची राउत राय की 'पल्लि-श्री' उडीसा मे लोकप्रिय है और उनकी कुछ कहानियो तथा कविताओ मे आधुनिक युग की निराशा का प्रतिबिंब है, जो कि साहित्य मे स्थायी महत्व की वस्तु रहेगी। अनन्त पटनायक की कविताओ और मनमोहन मिश्र के कुछ गीतो मे भावनामयता है, जिसने कि कई रसिक हृदयो को स्पर्श किया है, उनमे राजनीतिक झुकाव चाहे किसी ओर हो।

परन्तु अब तो वामपक्षी विचार-धारा साहित्यको का सामान्य विषय हो गया है। आक्रामक युद्ध-घोषणाएँ अब नही सुनाई देती। अब इलियट और एजरा पाउण्ड की छायाएँ मच पर चलती है। प्रति मास या प्रति सप्ताह हमे कुछ ऐसा साधारण गद्य पढने को मिलता है, जिसे जान-बूझकर असबद्ध या तर्कहीन बनाकर छन्द-रूप मे काटकर प्रगतिशील कविता के नाम से प्रदर्शित किया जाता है। यह समझ मे नही आता कि छन्द-परम्परा का बडी सतर्कता से रखा जाने वाला यह बहाना भी आखिर क्यो ?

लेकिन ऐसे भी लेखक है जो विगत तीस वर्षो तक कई ऐतिहासिक

आन्दोलनो के उत्थान-पतन के बीच मे भी क्रमश बराबर राजनीतिक दासता (चाहे वह वामपक्षी हो या दक्षिणपक्षी) से बचे रहे। उन्होने जो कुछ बुरा था उसकी बुराई की, और जो कुछ अच्छा था उसकी प्रशसा की। व्यक्ति की परवाह न करके वे अपनी साहित्य-रचना का कार्य निरन्तर धैर्यपूर्वक करते रहे। इस प्रकार के सश्रद्ध प्रामाणिक दल मे से एक श्री राधामोहन गडनायक है, जिनकी कविता उडीसा मे अपने सौन्दर्य, प्रेम और वीरतापूर्ण घटनाओ के निर्दोष छन्दोबद्ध अकन के लिए प्रसिद्ध है। इनका प्राचीन साहित्य और छन्द-शास्त्र का कला-सम्बन्धी अध्ययन भी बहुत गहरा है। शान्तिनिकेतन के डॉ० कुजबिहारीदास की हमे प्रशसा करनी चाहिए जिन्होने साहित्य की शुद्ध भक्ति की है। आजकल वे उडीसा के ग्राम-गीतो को इकट्ठा करने के बडे कार्य मे लगे है।

कुल मिलाकर कविता का बाजार अब उठता जा रहा है। एक-आध कवि अपवाद है। उडीसा मे विगत दशक मुख्यत नाटको और उपन्यासो का रहा है, जिसके बारे मे कुछ और कहना आवश्यक है।

उपन्यास, नाटक और गद्य

फकीर मोहन के बाद उडिया उपन्यासो मे कोई उल्लेखनीय कृति नही आई। हर साल एक-दो जो नये नाम आते रहे, वे विशेप प्रसिद्ध नही थे। उपन्यासो के क्षेत्र मे अगला युग 'सबूज दल' का था। उसमे भी दो ही उपन्यास प्रसिद्ध हुए। गत दस वर्षो से उडिया साहित्य मे फिर उपन्यासो की बाढ आई है। दो भाई—गोपीनाथ* और कान्हुचरण महान्ती और चन्द्रमणी दास तथा नित्यानन्द महापात्र इत्यादि। यदि सस्ते सनसनीखेज उपन्यासो को छोड दे तो हमे कान्हुचरण, गोपीनाथ और नित्यानन्द महापात्र के उपन्यासो मे एक गम्भीर प्रयोजन मिलता

*आदिवासियों के जोवन पर लिखे गए इनके 'अमृतर सन्तान' नामक उपन्यास पर साहित्य अकादेमी ने १९५५ में पुरस्कार दिया और इसका हिन्दी-अनुवाद साहित्य अकादेमी की ओर से 'अमृत सन्तान' नाम से प्रकाशित हुआ।

है। गोपीनाथ महान्ती आदिवासियो के क्षेत्र मे नई वस्तु की खोज मे गये, जबकि उनके बडे भाई कान्हु ने सामाजिक समस्याओ पर उपन्यास लिखे हैं। दोनो ने इस क्षेत्र मे बहुत अधिक लिखा है।

रंगमच

उडीसा मे स्वतन्त्र प्रदेश के निर्माण के बाद रगमच को एक नई प्रेरणा मिली। वह कटक के नागरिक जीवन मे एक स्थायी वस्तु बन गया। उडीसा मे चार सजीव, समृद्ध थियेटर है और नाटक लिखने वालो को अपने पेशे से अच्छी आमदनी हो रही है। उपन्यासो की तरह नाटको की भी बडी माँग है। उडिया नाटक की परम्परा को पडित गोदावरीश मिश्र तथा गोविन्द मुरदेव ने जहाँ छोडा था, श्री अश्विनीकुमार घोष और कालीचरण पटनायक ने, अखण्ड रूप मे आगे बढाया है। अब पौराणिक और ऐतिहासिक नाटको के दिन समाप्त हुए। केवल सामाजिक नाटक ही मच पर खेले जाते है।

गद्य

उडिया मे सामान्यत गद्य ही अधिक विकसित हुआ है। इसका श्रेय रामशकर, फकीर मोहन, श्री रत्नाकर पति, विपिन विहारी राय, पडित नीलकठ दास और श्री शशिभूषण राय (राधानाथ राय के पुत्र) आदि, उसके बाद के उपन्यासकारो के निबधो और गोपाल चन्द्र प्रहराज के पैने व्यग्यो तथा पडित गोपबन्धु दास के काव्यमय निबन्धो एव भाषणो को है। प्राचीन और मध्ययुगीन साहित्य मे वैज्ञानिकता का जो अभाव था, उसे भी शीघ्रतापूर्वक पूरा किया जा रहा है। अन्य आलोचनात्मक अध्ययन भी चल रहे है। तारिणी चरण राठ ने इस शताब्दी के प्रारम्भ में एक छोटे-से प्रबन्ध द्वारा उडिया साहित्य का प्रामाणिक इतिहास लिखने की जो शुरुआत की थी, वह समय के साथ विकसित होती गई है और विनायक मिश्र तथा सूर्यनारायण दास जैसे पडितो ने इस विषय

पर वृहदकाय ग्रथो की रचना की है। पडित नीलकठ दास ने सामाजिक-साहित्यिक अध्ययन पर दो खडो मे एक विशाल ग्रथ 'उडिया साहित्यार क्रम परिणाम' लिखकर इसमे योगदान किया। हाल मे ही फकीर मोहन और गगाधर मेहेर जैसे कवियो पर स्वतन्त्र रूप से लिखी गई पुस्तको की भी बाढ आ गई है। बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे पडित गोपीनाथ शर्मा ने 'उडिया भाषा तत्त्व' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रचकर जिस कार्य का समारम्भ किया था, उसे भी पडित विनायक मिश्र ने उडिया भाषा का इतिहास लिखकर तथा गिरजाशकर रॉय और गोलक बिहारी घाल ने अन्य विद्वत्तापूर्ण कार्य करके आगे बढाया है। छोटे-बडे लगभग एक दर्जन कोशो मे से प्रमुख है · पडित गोपीनाथ नन्द शर्मा का 'उडिया शब्द-तत्त्व-बोध अभिधान' और लगभग डेढ लाख रुपए की लागत से सात खडो मे प्रकाशित श्री गोपालचन्द्र प्रहराज का चतुर्भाषीय कोश 'पूर्णचन्द्र उडिया भाषा कोश'। पाठको को सभी प्रकार का आवश्यक और रोचक ज्ञान प्रदान करने वाले चार-पॉच लोकप्रिय और वृहदाकार विश्व-कोश प्रकाशित हो चुके है और अभी हाल मे ही इस दिशा मे जो वास्तविक कार्य आरम्भ किया गया है, वह है—श्रेष्ठ विद्वज्जनोचित पद्धति पर उत्कल विश्वकोश का सग्रह। इस आयोजन को पूरा करने का भार अब उत्कल विश्वविद्यालय ग्रहण कर रहा है।

उडीसा के पाठक-वर्ग मे ज्ञान-विज्ञान का साहित्य पढने की लालसा अव इतनी अधिक और तीव्र हो गई है कि विभिन्न प्रकाशक विश्व-इतिहास पर बडे-बडे ग्रथ, खेती-बारी के सभी पहलुओ पर मोटी-मोटी किताबे और अणु-परीक्षण तथा शिक्षा-दीक्षा जैसे विषयो पर विज्ञान-प्रचार समिति की समीक्षात्मक पुस्तके प्रकाशित करने लगे है, इस अत्यन्त सुन्दर समिति का निर्माण उडीसा के उन तरुण वैज्ञानिको ने किया है, जो उडिया भाषा मे विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रयत्नशील है। यह क्षेत्र अभी तक अछूता ही पडा था और इस सम्बन्ध मे गोकुलनन्द महापात्र तथा डा० वी० के० बेहुरा के नाम विशेष रूप से

उल्लेखनीय है। मनमोहन प्रेस के नवयुवक और साहसी प्रकाशक प्रफुल्ल-कुमार दास की भी प्रशसा करनी ही चाहिए कि उन्होंने नोवल पुरस्कार प्राप्त सभी लेखको की पुरस्कृत कृतियो का अनुवाद उडिया मे करने का श्लाघनीय दायित्व अपने ऊपर लिया है। उनके कुछ अनुवादो के विषय मे यह कहना उचित ही होगा कि समूचे एशिया अथवा भारत की किसी भी भाषा में उस समय तक उक्त अनुवाद नही हुए थे, उदाहरणार्थ आइसलेंड के लेखक हैलडोर लैक्सनेस के 'इडिपेडेंट पीपुल' का अनुवाद। युवक प्राध्यापक वैद्यनाथ मिश्र का कार्य भी प्रशसनीय है। हमारे राष्ट्रीय जीवन के प्रभूत पक्षो के विषय मे उडीसा के बुद्धिजीवी वर्ग को सम्यक् रूप से शिक्षित करने के उद्देश्य से उन्होने जनतन्त्र, ससदीय सरकार-व्यवस्था और सामाजिक-राजनीतिक विषयो पर पुस्तके और लेख लिखने का एक तरह से बीडा ही उठा लिया है। ओषधि शास्त्र, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, पशु एव कुक्कुट-पालन आदि पर भी क्रमश पुस्तके बाजार मे आती जा रही है। भारत की किसी भी भाषा मे शायद ही हाथियो के सम्बन्ध मे कोई ऐसी प्रामाणिक पुस्तक हो, जैसी कि 'उत्कल साहित्य' के पृष्ठो मे बिखरी पडी है। समस्त तकनीकी और वैज्ञानिक विषयो का समावेश करने वाला एक शब्दकोश अनेक खडो मे प्रकाशित हो चुका है। इस कोश के सग्रह का कार्य, उडीसा सरकार के तत्त्वावधान मे एक समिति ने किया, जिसके प्रधान डा० आर्त्तवल्लभ महान्ती थे। बाल-साहित्य का भी पर्याप्त विकास हो रहा है। गोकि इस क्षेत्र मे अधिक पूजी लगाने मे प्रकाशक निश्चय ही हिचकिचाते हैं। 'शिशु-सखलि' अर्थात् बच्चो का खजाना सारस्वत प्रेस द्वारा प्रकाशित एक उत्कृष्ट बाल-विश्वकोश है, यद्यपि यह अभी भी पूर्ण होने को है।

उडीसा मे प्राचीन और मध्य युग मे भी कुछ प्रसिद्ध लेखिकाएँ हुई और आधुनिक काल मे भी कई है। उनमे से दो लेखिकाओ का वर्णन उनकी असाधारण प्रतिभा के लिए करना आवश्यक है।

स्वर्गीया डा० कुन्तला कुमारी सावत, जो कि दिल्ली मे रहती थी

और वही उनका देहान्त हुआ, अपने समय मे कवयित्री, उपन्यास-लेखिका और देश-सेविका के नाते विख्यात थी। इस समय एक अन्य प्रधान प्रतिभाशाली लेखिका है, श्रीमती विद्युत्प्रभा देवी जिनकी भाव-कविता अपने सहज प्रवाह, निर्दोष प्रास और कल्पना-चित्रो के लिए प्रसिद्ध है।

उडीसा राज्य के निर्माण के बाद जैसी पहले स्थिति थी उससे अब कही अधिक आशादायक चित्र साहित्य के क्षेत्र मे मिलता है। हमारी कालेजो के पढाई के दिनो मे तीस साल तक सिर्फ एक या दो साप्ताहिक पत्रिकाएँ प्राप्त थी, अब उडीसा मे पाँच दैनिक पत्र है, जिनमे से एक अग्रेज़ी का भी है। पुस्तको का व्यवसाय भी तेजी से प्रगति कर रहा है। उडीसा को आगे आशा और विश्वास के साथ एक उज्ज्वल भविष्य की ओर देखने के पर्याप्त कारण है। केवल इसलिए नही कि उडीसा के पास प्राकृतिक सम्पत्ति की सम्भावनाएँ और कोष बहुत बडे-बडे है, परन्तु इसलिए भी कि कला और सस्कृति के क्षेत्र मे उसकी बडी ऊँची परम्परा रही है; जो कि अभी भी उन्नति कर रही है, और विविध अन्य रूपो में प्रकट हो रही है।

उडिया पर चुने हुए सदर्भ-ग्रथ

उडीसा—डब्ल्यू० डब्ल्यू० हन्टर

ए कम्पैरेटिव ग्रामर आफ द फोर ईस्टर्न इडियन लैंग्वेजेज—जान वीम्स टिपिकल सेलेक्शस आफ उडिया लिट्रेचर (३ खड)—बी० सी० मजूमदार, कलकत्ता विश्वविद्यालय

माडर्न उड़िया लिट्रेचर—प्रिय रजन सेन, कलकत्ता विश्वविद्यालय

लिग्विस्टिक सर्वे आफ इडिया—जी० ए० ग्रियर्सन, खड ५, भाग २, पृष्ठ ३६७-४४९

उर्दू

ख्वाजा अहमद फ़ारूकी

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

१८५७ के राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाएँ बहुत महत्त्व रखती हैं। उन दिनों मुगल साम्राज्य दम तोड रहा था, और विगत तीन सदियो में उसने जिन सांस्कृतिक मूल्यो को बढाने का प्रयत्न किया था, वे मिट्टी मे मिल चुके थे। अंग्रेज लोग अपने साथ औद्योगिक क्रान्ति और नये विज्ञान के सब साधनो को लेकर आए थे, उन्होंने भारत में अपने पैर जमाए और अपने स्वार्थ के लिए नये रूप से इस देश का शोषण आरम्भ किया। प्राचीन देशी शासन-व्यवस्था बदलकर एक नया विदेशी राज्य यहाँ आ गया, जिसमे कई त्रुटियाँ होने के साथ-साथ नई प्रगतिशीलता के गुण भी विद्यमान थ। इस नई व्यवस्था मे हम पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के अधिक निकट आए और उनका प्रभाव हमारे सामाजिक जीवन तथा मानसिक वृत्तियो पर भी पडा।

विदेशी साम्राज्य की स्थापना के कारण आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रो में ब्रिटिश और भारतीय हितो के बीच एक तीखा संघर्ष शुरू हुआ। १८५७ का विद्रोह अलग से कटी हुई घटना या इतिहास का एक योग-मात्र नहीं था। भारतीय जनता के मन में जमा हुआ असन्तोष १८५७ के विद्रोह के रूप मे फूट पडा, क्योकि अंग्रेजो की विजय के कारण जनता

राजनैतिक और सास्कृतिक दृष्टि से बहुत पीडित थी। यह विद्रोह केवल फौजी बगावत न था, मगर डॉ० डफ के शब्दो मे यह बलवा और क्रान्ति दोनो एक साथ था। एक प्रकार से यह आगे आने वाले स्वातन्त्र्य-सग्राम का विधिवत रिहर्सल था और उसमे से सयुक्त आन्दोलन की परम्परा ने जन्म लिया। पुराने समाज की सामाजिक परम्पराएँ १८५७ मे अपनी शक्ति के पुनस्सस्थापन के अन्तिम प्रयत्न मे पूरी तरह से विनष्ट हो गई। १८७० के बाद अन्य सामाजिक परम्पराएँ जाग उठी।

सन १८८५ मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का जन्म हुआ। १८७० से १८८५ के बीच का युग किसानो के असन्तोष, दस्तकारो और कारीगरो के धन्धो को कुचलने, १८६७-१८८५ के बीच मे भयानक अकाल, १८७५ मे दक्षिण के किसानो के विद्रोह और धीमे-धीमे बढने वाले राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओ के प्रकाशन के लिए प्रसिद्ध है। पढे-लिखे मध्यमवर्गीय बुद्धि-जीवियो का वर्ग धीरे-धीरे जाग रहा था और राजनीतिक दृष्टि से उनकी जबान खुल गई थी। इसके पीछे जो प्रेरणाएँ काम कर रही थी उनमे अमरीका की जनता का स्वातन्त्र्य-युद्ध, आस्ट्रेलिया के कब्जे से आज़ाद होने के लिए इटली की राष्ट्रीय स्वातत्र्य-सघर्ष की कहानी, टामस पेन, स्पेन्सर, मिल और वाल्तेयर के ग्रथ और गैरीबाल्डी तथा मैजिनी की जीवनियाँ आदि प्रमुख है। उस समय के उदारदलीय नेताओ ने बडा प्रगतिशील कार्य किया, परन्तु धीरे-धीरे जनता मे बेकारी और निराशा फैलने लगी। भारत मे युयुत्सु राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। १९०५ से १९१८ के बीच मे राष्ट्रीय आन्दोलन अधिकाधिक सघर्षपूर्ण, चुनौती देने वाले और व्यापक आधारयुक्त बनने लगे। पहले महायुद्ध, होमरूल के आन्दोलन और महायुद्ध के बाद के आर्थिक सकटो ने भारत मे ब्रिटिश राज्य की जड़ो को खोखला कर दिया।

रौलट एक्ट पास हुआ, पजाब मे मार्शल ला लग गया और खिलाफत आन्दोलन भी हुए। इन सब घटनाओ ने राष्ट्रीय असन्तोष की धारा के वेग और गहराइयो को और भी बढाया। ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय

नेताओं के विरुद्ध सख्त कदम उठाए। मौलाना आज़ाद का 'अल-हिलाल', मौलाना मोहम्मद अली का 'कामरेड' और 'हमदर्द' नामक पत्र ज़ब्त किए गए तथा १९१५ में हमारे कई प्रसिद्ध नेताओं को जेल में डाल दिया गया। महात्मा गांधी ने खिलाफत आन्दोलन का समर्थन किया और १९२१ में अपना प्रसिद्ध असहयोग आन्दोलन शुरू किया। भारतीय राजनीति के क्षेत्र में गांधी जी अपनी अन्तिम सांस तक सर्वोपरि रहे। १९३० से १९३४ और सन १९४२ के राष्ट्रीय जन-आन्दोलनों तथा द्वितीय महायुद्ध के समानान्तर चलने वाले साम्प्रदायिक तत्त्वों ने भी ज़ोर पकड़ा, जिसका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि देश का विभाजन होकर पाकिस्तान बन गया। गांधी जी ने 'साम्प्रदायिकता के सर्वनाश के लिए अपने रक्त का तर्पण देकर अपने-आपको एक सजीव बलि के रूप में अर्पित किया।'

साहित्यिक पृष्ठभूमि

राष्ट्रीय विकास की इन सब ऐतिहासिक मंज़िल में उर्दू साहित्य बराबर हमकदम और हर मांग पर जवाब देता हुआ चला। उसमें जनता के मनोवैज्ञानिक निरीक्षण, भावनात्मक अनुभव और कानाफूसियां भी मिलती हैं। ईमानदारी से जीवन का यथातथ्य चित्रण करने के लिए उसे अपनी गुलो-बुलबुल की दरबारी कुण्ठित परम्पराएँ, लफ़्ज़ों की नक्काशी और मीनाकारी, भड़कीली कहन की खूबी तथा बासी कल्पना-चित्र छोड़ देने पड़े। अवध (१८५६ में) और दिल्ली के राज्य के (१८५७ में) पूरी तरह नष्ट होने के साथ यह परिवर्तन हुआ और तभी भारत में ब्रिटिश राज्य भी मज़बूत बनता जा रहा था। उर्दू साहित्य पर भी तूफ़ानी महत्त्व की इन घटनाओं का प्रभाव पड़े बिना न रहा। सक्रान्ति की सभी अवस्थाएँ—भयानक संघर्ष, विकृत प्रतिक्रियावादिता और स्वस्थ समन्वय—स्पष्टतया उर्दू साहित्य में दिखाई देते हैं। अंग्रेज़ी शिक्षा के कारण पुरानी विचार-धारा के साथ-साथ नया सशक्त चिन्तन सामने

आया । छापेखानो और आधुनिक यातायात के साधनो ने इसकी ओर भी सहायता की ।

ब्रिटिश सस्कृति की पहली प्रतिभाशाली छाप दिल्ली मे उर्दू के पुनरुत्थान के रूप मे मिलती है । यह उन्नीसवी शती के दूसरे चरण की घटना है । दिल्ली मे एक उत्साही दल ने पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान को उर्दू मे लाने की कोशिश की । १८२५ मे स्थापित पुराने दिल्ली कालेज ने वहाँ एक वैज्ञानिक पुनर्जागरण पैदा किया । उस वक्त के विज्ञान के प्रयोगो से दिल्ली कालेज के विद्यार्थी 'मन्त्रमुग्ध' हो गए । "वे अपने-आपको एक नए ज़माने का मसीहा मानने लगे, और उन्होने सपने देखे और खयाली नक्शे बनाए ।" १८४४ मे दिल्ली कालेज मे 'वर्नाकुलर ट्रासलेशन सोसाइटी' की स्थापना हुई, जिसने वैज्ञानिक विषयो मे किताबे छापनी शुरू की । प्रोफेसर रामचन्द्र ने 'मुफीदन नाजरीन' और 'मोहिब्बे हिन्द' नामक दो पत्र प्रकाशित किये , इनका उद्देश्य मुख्यत पश्चिमी विचारो और वैज्ञानिक मूल्यो का प्रचार करना था । १८६४ मे एक दिल्ली सोसाइटी की स्थापना हुई, जिसके मन्त्री प्यारेलाल 'आशोब' थे, जिन्होने बाद मे उर्दू अदब मे एक स्वस्थ परिवर्तन लाने मे 'आजाद' (मृत्यु १९१०) और 'हाली' (मृत्यु १९१४) की सहायता की ।

यह परिवर्तन एकदम तेजी से नही आया । यह धीरे-धीरे भारत की समस्याओ और स्वभाव के अनुसार होता रहा । शुरू के लोग सुधार करना चाहते थे, क्रान्ति नही । वे अपने अतीत से पूरी तरह कटे हुए नही थे, बल्कि उन्होने अपने उच्चकोटि के साहित्यकारो को नए ढग से प्रस्तुत किया, उनमे नए अर्थ खोजे । उनका वास्तविक उद्देश्य उर्दू साहित्य मे हार्दिकता और उत्साह का भाव पैदा करना था, जिससे कि वह जीवन के सत्य के अधिकाधिक निकट आ सके । वे पश्चिम के अति-रजित अनुकरण से बचते रहे तथा नकली अप्रामाणिकता, लम्बे-चौडे कल्पना-चित्र और शब्द-बाहुल्य की निन्दा करते रहे ।

इस नए आन्दोलन के अग्रदूत 'आजाद' और 'हाली' थे । 'कर्नल हाल

रॉयड' के सुझाव पर उन्होंने १८७४ में मुशायरे शुरू किए; जिनमें नए ढंग की नज़्में पढ़ी जाती थीं। हाली ने 'बरखा रुत', 'उम्मीद', 'इन्साफ़' और 'हुब्बे-वतन' नामक नज़्में लिखी, जिनमें उर्दू कविता के नए सचेतन दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व है। सर सैयद अहमद खाँ अलीगढ़-आन्दोलन के जन्मदाता थे। उनके कहने पर, हाली ने 'मुसद्दस' लिखी। वह उर्दू कविता में एक श्रेष्ठ रचना है; और उसने इस युग पर अपनी छाप छोड़ी। 'हाली' ने सामाजिक चेतना और सार्थक प्रयोजन की दृष्टि से प्राचीन साहित्य का मूल्यांकन किया। उनका विश्वास था कि यदि साहित्य का कोई अर्थ है तो वह यही है कि साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब बने और उसकी सेवा करे। सर सैयद अहमद खाँ (मृत्यु १८९८) को इस बात का बड़ा श्रेय देना चाहिए कि उन्होंने उर्दू साहित्य की धारा को अपने पुराने प्रभाव और सुधारवादी उद्देश्य से पूरी तरह मोड़ दिया। सामन्ती वातावरण में वर्षों से उर्दू में जो बर्फ़ जमा हो गई थी, उसे उन्होंने अंग्रेज़ी साहित्य के सम्पर्क से पिघला दिया। पुराने मूल्य परे ठेल दिए गए, और सुधार को उन सब भारी जंजीरों से मुक्त कर दिया गया। इस तरह से उर्दू में नवजागरण का प्रभात हुआ।

इस नई धारा और आन्दोलन के बीज सुल्तान कुली कुतब शाह (मृत्यु १६११) की कविताओं में, 'मीर' (मृत्यु १८१०) के 'शहर आशोब में', 'सौदा' (मृत्यु १७८०) की कविताओं में, 'मीर हसन' (मृत्यु १७८६) की 'मसनवियों' में, 'अनीस' (मृत्यु १८७४) के मर्सियों में, नज़ीर 'अकबराबादी' (मृत्यु १८३०) की शायरी में और 'मिर्ज़ा ग़ालिब' (मृत्यु १८६९) की ग़ज़लों में पाए जाते हैं। अन्त में जिनका नाम लिया गया है उन 'ग़ालिब' के बारे में यह बहुत ही सही बात कही गई है कि यदि वे न होते तो न 'हाली' (मृत्यु १९१४) होते, और न इक़बाल (मृत्यु १९३८)। यह दोनों ही आधुनिक उर्दू कविता के स्तम्भ थे। मगर यह काव्य-साहित्य ही सब कुछ नहीं है; यह तो एक भूमिका के रूप में था। इसे पश्चिमी शिक्षा की सप्राण प्रेरणा की आवश्यकता

थी, जिसके कारण उसमे एक नवीन स्फूर्ति पैदा हुई।

साहित्य के हर क्षेत्र मे परिवर्तन के यह लक्षण दिखाई देते है। पुरानी कृत्रिम कविता ढलती जा रही थी। परम्परित गजल बहुत सीमित जान पडने लगी थी। अब उसका क्षेत्र विस्तृत बनाया गया और उसमे सामाजिक तथा राजनैतिक विषयो का भी समावेश हुआ। अब कविता नये विषयो मे लिखी जाने लगी, जो प्रकृति और देश-प्रेम के बारे मे थी। धीरे-धीरे उर्दू के कवि अपना उत्तरदायित्व, जीवन के प्रति अधिक सवेदनशीलता और मानवीय रुझान की आवश्यकता अनुभव करने लगे। रूढ शैली की लीक को छोडकर नये साहित्यिक रूप प्रयोग मे लाए गए, जिससे कि कविता को बहुत अधिक स्वतन्त्रता मिल गई। सक्षेप मे 'हाली' की सुधारवादी भावनाएँ और समालोचनात्मक दृष्टि, 'इस्माइल' (मृत्यु १८९७) की पारदर्शिता, दुर्गासहाय 'सरूर' (मृत्यु १९१०) का देशभक्तिपूर्ण उत्साह, अकबर (मृत्यु १९२१) के सुनहले शेर, जिसमे कि सूक्ष्म व्यग्य और उत्तम परिहास पिरोए गए थे, इन सब तत्त्वो से मिलकर ही नए आन्दोलन की प्रगति सरलतापूर्वक हुई। असख्य विषयो पर सृजनात्मक साहित्य के साथ-साथ अखबारो, पत्र-पत्रिकाओ और पश्चिमी भाषाओ से तर्जुमो की मानो बाढ आ गई।

प्रथम महायुद्ध के पूर्व उर्दू कविता किसी धीमी बहने वाली नदी के समान थी, जिसकी तह मे उपजाऊ मिट्टी जमा हो रही थी। उन्नीसवी शती के लिबरल-आन्दोलन के कारण जीवन-प्रवाह की गति भी जरा धीमी थी। भारत की दुर्दशा के बारे मे सबसे पहले दु ख व्यक्त करते हुए, राष्ट्र-भक्ति की भावनाएँ कविता मे लाने वाले 'हाली' थे। उनकी कविता अब जीवन से विच्छिन्न नही थी, बल्कि जीवन के सब प्रकार के रग उसमे प्रतिबिम्बित थे। हाली की कविता ने बाद मे आने वाले लेखको के लिए एक नया मानदण्ड कायम किया। नए विषयो पर कविताएँ लिखी जाने लगी, यद्यपि वह शुरू-शुरू मे प्राय अनुवादित या आधारित होती थी। पर ऐसी अनेक मौलिक कविताएं भी लिखी गई,

जिनमें उदार देशभक्तिपूर्ण विचार थे ; और कही-कही तो देश के प्रति प्राय स्त्री-सुलभ एकनिष्ठ प्रेम भी व्यक्त किया गया था । ये कवि तारो-भरी रातो, खिलते हुए फूलो और चहचहाते हुए पक्षियो के बारे में इस तरह गाते थे, मानो उन्होंने अपनी मातृभूमि को नये सिरे से खोजा हो। 'चकवस्त' (मृत्यु १९२६), 'बेनज़ीर शाह' (मृत्यु १९३०), सरूर जहाँनाबादी (मृत्यु १९१०), वहीउद्दीन सलीम (मृत्यु १९२८), शौक किदवाई (मृत्यु १९२८) और नादिर (मृत्यु १९१२) की कविताओ मे १९१४ के पहले की धारा का सही-सही चित्र मिलता है।

गजल मे भी धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा था। हाली ने उसके क्षेत्र को वढाया और उसे एक सामाजिक आधार दिया। उन्होंने पुरानी रूढिगत अलकार-बहुल शैली की निन्दा करके नई गजल के नवयुग की घोषणा की। इन नई गजलो मे विचार और भाव सरल-से-सरल भाषा के साथ गुंथे हुए थे। यद्यपि अमीर (मृत्यु १९००) और दाग (मृत्यु १९०४) जनता मे अभी भी लोकप्रिय है, फिर भी उर्दू-गजल मीर और गालिब की परम्परा और रचना-शिल्प की ओर वेग से मुड गई है। मीर और गालिब उर्दू-काव्य-क्षेत्र मे उच्चकोटि के महाकवि है। जहाँ हाली के सुधार की निन्दा की गई, वहाँ मीर और गालिब ने गजल को एक नया रग दिया। साकिब (मृत्यु १८६९), अजीज (मृत्यु १९३५) और 'असर' ने इन पुराने महाकवियो के चरण-चिन्हो का अनुकरण किया तथा हसरत मोहानी (मृत्यु १९५१) ने मुसहफी (मृत्यु १८२४) और नसीम देहलवी (मृत्यु १८४३) के चरण-चिन्हो का। दिल्ली और लखनऊ के पुराने भेद मिट गए और दोनो की शैलियाँ बडी खूबी से एक-दूसरे मे मिल गई।

इकबाल अपनी महान प्रतिभा-शक्ति से आगे आए और उन्होने गजल को नया मोड दिया। उन्होंने समकालीन समस्याओ, सास्कृतिक सघर्षो और सामाजिक उत्थान-पतन को गजल के रूप मे विवेचित किया, जबकि मूलत गजल का विषय मुख्यत. प्रेम ही था। वे रूढ शैलियो को (जैसे

गालिब की) अपने उद्देश्य के लिए नए ढग से अपनाने वाले थे। उनके दर्शन की सब मौलिक बाते, जो कि उनके भाव-लोक का अश बन गई थी, उनकी गजलो की बनावट मे बहुत कुशलता से गुँथी हुई मिलती है। उनके काव्य मे बहुत विविधता, भाँति-भाँति के स्वर और प्रगतिशील सामाजिक चिन्तन सब गड्ड-मड्ड है, फिर भी उन्होने गजल को जीवन की समस्याओ को और अधिक अभिव्यक्त करने वाला एक नया अर्थपूर्ण रूप दिया।

शाद अजीमाबादी (मृत्यु १९२७) 'नासिख' (मृत्यु १८३८) के अलकारप्रिय तत्त्वो को मीर मे पाई जाने वाली तीखी ताजगी, पैनेपन और सगीत से मिलाते है। रियाज (मृत्यु १९३४) ने अपनी तबीयत के अनुकूल इस कठोर और कष्टप्रद जीवन मे पलायनवाद ग्रहण करके शराब की कविता लिखने की शरण ली। 'आरजू' मे स्पष्टता और साहसिकता थी तथा उन्होने जन-साधारण की आम-फहम भाषा का प्रयोग किया। उनकी शैली की विशेषता यह है कि उनकी भाषा अत्यन्त सरल है, और इस दृष्टि से उन्होने उर्दू-कविता मे एक सच्चा और पक्का सुधार किया। 'यास-ओ-यगाना' मे गालिब की निराश सवेदन-शीलता मिलती है, यद्यपि और बातो मे वे गालिब की निन्दा करते है। उनमे न तो कल्पना-शक्ति थी, जो कि शब्दो को पखमय बना देती, न उनमे सूर्य-किरणो-जैसा आनन्द और वह गहरी दृष्टि थी, जिससे कि पाप भी दैवी जान पडे। फिर भी 'यास' की कुछ कविताएँ कविता के प्रगाढ सार से भरी है, क्योकि उनमे कविता का भावात्मक अह एक नये स्वर मे अभिव्यक्त हुआ है। उनका नाम उन 'आरजू', 'अजीज' (मृत्यु १९३५), 'साकिब' और 'असर' के साथ-साथ लिया जाएगा, जिन सबने लखनऊ-शैली की गजल को एक गहरी और सार्थक आत्मा प्रदान की।

समकालीन काव्य-प्रवाह

आधुनिक भारत के सबसे बडे गजल-लेखक 'हसरत मोहानी' कहे जाएगे। उन्होने अपनी कविता तब लिखनी शुरू की जब 'हाली' द्वारा

लखनवी शैली की गजल की रूढिवादिता पर की हुई समीक्षा से सारा वातावरण भरा हुआ था। इस समीक्षा ने दो प्रकार की परस्पर-विरोधी प्रतिक्रियाएँ शुरू की। 'अजमतुल्लाह खाँ' (मृत्यु १९२७) तो चाहते थे कि 'गजल को पूरी तरह से खत्म कर दिया जाय, क्योकि उसमे न तो कोई विचारो का क्रम ही बँधता है और न उसमे कोई सहजता और स्वाभाविकता है।' हसरत मोहानी ने उर्दू-गजल को नयापन दिया और बहुत चतुराई से दिल्ली और लखनऊ की दोनो शैलियाँ मिला दी। 'हसरत' जीवन के प्रत्येक विभाग मे अतिवादी और क्रातिकारी थे। केवल कला के क्षेत्र को छोडकर उन्होने उन सब पुराने प्रतीको और विषयो का उपयोग किया है, जो पारम्परिक गजल मे पाए जाते हैं। और इसके बावजूद उन्होने एक नया स्वर एव वातावरण प्रदान किया। वे प्राचीन और नवीन को अपनी गजल मे मिलाते हैं। प्राचीन की सप्राणता, नवीन और वर्तमान को नई चेतना तथा भविष्यत् की सम्भावनाएँ उनकी गजल मे एकाकार हो गई हैं। उनके प्रेम-सम्बन्धी विषय बासी और घिसे-पीटे न होकर सच्चे, यथार्थ और प्रामाणिक हैं। उनके गीति-काव्य मे एक घरेलू स्पर्श, प्राच्य रस और गम्भीर शक्तिमयता है। 'हसरत' ने कोई नई गजल खोजकर नही निकाली, उन्होने पुरानी गज़ल को ही नई जान दी। वे 'मुसहफी' (मृत्यु १८२४) और 'मोमिन' (मृत्यु १८५१) की पक्ति मे आते हैं। उन्होने उन दिनो कवियो के अच्छे गुणो को मिलाकर अपने प्रत्यक्ष जीवनानुभवो से प्राप्त उत्साहपूर्ण सामाजिक-राजनैतिक चेतना को भी उसमे मिलाया और इस तरह से 'हसरत' ने अपना मार्ग स्वय निर्माण करके अपनी कलात्मक प्रेरणा के लिए सही माध्यम खोज निकाला।

फानी की गजल इसलिए मधुर है कि उसमें उनके करुण भावों की व्यजना है। वे सर्वोत्तम भावनाओ को सौन्दर्य, प्रामाणिकता और करुणा के साथ व्यक्त करते हैं। उनकी गजले इतनी अधिक लोकप्रिय क्यो हुई, इसका कारण यह है कि वे अपने दर्द का उत्कट वर्णन करते है और

उनका शब्दो पर असाधारण अधिकार है। वे बहुत अधिक ईमानदार कवि है और जो-कुछ देखते और अनुभव करते है, उसे ही लिखते है। शुद्ध कविता मे वे अपने सब समकालीनो से श्रेष्ठतर है। उनका जीवन एक लम्बी तकलीफ और भयानक असन्तुलन की कहानी है। उनकी कविता मे सब जगह करुण रस का एक ही स्वर मिलता है और कदाचित वही उनके सुन्दर सगीत का स्रोत है। किसी दैवी निराशा की गहराई मे से उनके आँसू उमडते है, मानो वे उस चीज को खोज रहे है, जो कही नही है। प्राय कहा जाता है कि उनके विचारो का ससार बहुत छोटा और अयथार्थ है।

असगर (मृत्यु १९३६) पर 'गालिब' और 'मोमिन' का गहरा प्रभाव है। उनकी कल्पनाशील वृत्ति ने गजल को व्यापक अर्थ प्रदान किया। उनके पद्यो मे उत्कृष्ट कोटि की सूक्ष्मता और कल्पना-चित्रो मे इन्द्रिय-गोचरता मिलती है, जो कि उनको गजल-लेखको मे बहुत ऊचा स्थान दिलाती है।

'असर' की गीति-काव्य-रचना की शक्तियाँ असाधारण विविधता लिए हुए है, और बहुत सहज प्रवाहयुक्त शैली मे वे मानवीय भावनाओ के समूचे विश्व को व्यक्त करते है।

'जिगर' भी गजल-लेखक के नाते प्रसिद्ध है। सगीत और लय, सुकोमल सवेदनशीलता, सौम्य तथा दार्शनिक विवेक, भावनाओ की सब तरह की छटाओ और वृत्तियो के प्रति जागरूकता आदि गुणो मे वे अनन्य है। उनकी कल्पना अद्भुत विविधता लिए हुए है और सगीत तथा छन्द मे भी उनकी विलक्षण अनेकरूपता दिखाई देती है। उनकी कल्पना के दो मुख्य विषय— प्रेम और सौन्दर्य है। उनके सुस्पष्ट गीति-काव्य मे मानव-आत्मा का अकन बडी सूक्ष्मता से हुआ है, उसमे एक सरस उन्मुक्ति और मादक भाव है। 'जिगर' का बहुत बडा असर तरुण कवियो पर हुआ है। उन्होने 'जिगर' की बाह्य विशेषताओ का अनुकरण-मात्र करने का प्रयत्न किया, लेकिन उससे कुछ लाभ नही हुआ। 'फिराक' ने पश्चिमी

कवियो के स्रोत मे गहरा रस पान किया और उस संस्कृति के कई गुण उन्होंने इस तरह अपनाए कि उससे पूर्वी संस्कृति को भयकर हानि पहुची। आज की समस्याओ के प्रति उनकी रागात्मक प्रक्रिया मे प्रेम, साहस और क्रान्ति की भावनाएँ विशेष रूप से दिखाई देती है। वे हर मन स्थिति और परिस्थिति के प्रति बहुत भावनायुक्त चेतना से पेश आते है। उनके भाव-लोक पर विचार हावी है और उनके ज्ञान-भण्डार की व्यापक सीमा ने उनकी कल्पनाओ को समृद्ध किया है। परन्तु अनेक वार उनमे सयम का भी अभाव खटकता है।

'फैज़' की गज़ल स्पष्ट और दिल को हिलाने वाली होती है। वे अपने रूपक बहुत दूर-दूर के क्षेत्रो से लेते है। उनका कल्पना-लोक सहज स्वाभाविक और प्रभावशाली है। वे कई वर्षों तक राजनीतिक बन्दी रहे है। बन्दी-जीवन के कारण उनके प्रतीको मे एक विशेष आकर्षण पैदा हुआ है और उनके पद्यो मे एक स्वप्निल मधुरता आई है। 'फिराक' की भाति ही इनकी कविता मे भी ऊबड-खाबडपन है और वे दोनो आध्यात्मिक अरक्षितता की भवना से पीडित है। 'जज्बी' की गज़ल मुक्त और स्वाभाविक अभिव्यजना की ओर बढना चाहती है, जिसमें कि इन्द्रिय-सवेदना वाली कविता भाव-दशा से रस-दशा की ओर जाना चाहती है। उनकी विचारभरी करुणा उनके स्वर को और भी प्रभावशाली तथा गहरा बना देती है। 'रविश' के लिए सौन्दर्य-जगत एक छिपने का स्थान है, परन्तु उनका विचार-लोक कमज़ोर और उनकी शैली हठाकृष्ट है। 'मजरूह', नदीम कासिमी और अख्तरुल ईमान ऐसे उदीयमान गजल-गो है, जो अपनी ज़मीन टटोल रहे है।

१९३८-४६ के बीच उर्दू-गज़ल को भारी आलोचना का सामना करना पड़ा, परन्तु वह इस सारे आक्रमण से बच निकली। यह युग विद्रोह और प्रयोग का युग था। वर्णनात्मक कविताएँ, सानेट, गीत, अनुकान्त छन्द और मुक्त छन्द आदि सब लिखे गए तथा उनकी लोकप्रियता भी बढती गई। थोड़ी देर के लिए तो ऐसा लगा कि गज़ल अब

पिछड गई, मगर फिर भी वह उसमे से विजयी होकर बाहर निकली। 'फैज' के 'दस्ते सबा' का प्रकाशन गजल के इतिहास मे ऐसी ही एक अभूतपूर्व घटना थी। देश के विभाजन और उसके साथ-साथ जो भयानक समस्याएँ सामने आई, उन सबने गजल की लोकप्रियता को पुनर्जीवित किया, क्योकि गजल आत्मनिष्ठ मन स्थितियो का चित्रण करने के लिए अत्यन्त उपयुक्त माध्यम है। शरणार्थियो के दु ख-दर्द और पुरानी परम्पराओ के लिए दौहार्द्र साहिर, जगन्नाथ आजाद, अर्श मलसियानी, महरूम, हरीचन्द अख्तर, हफीज होशियारपुरी, सालिक, तबस्सुम, जहीर, कतील, नासिर काजमी इत्यादि की गजलो मे साफ झलकता है। यह कविता कभी-कभी बहुत भडकीली, चीखती हुई और वृथा भावुकता मे भरी होती है, मगर यह दिखावटी या बनावटी नही है। इसमे मनोवृत्ति, स्वर और कल्पना की अन्विति मिलती है और यह उर्दू-गजल के एक विशेष रूप को प्रकट करती है।

आज की उर्दू-गजल पुरानी उर्दू-गजल से सिर्फ स्वर और स्वराघात मे भिन्न है। अब शायर लटकती हुई जुल्फो, रुखसारो और माशूक के चेहरे के तिल के बारे मे नही लिखते, बल्कि वे नगमाए-रूह की आवाज प्रकट करते है और आवश्यकता से अधिक नक्काशी या अलकारो से बचते है। अब पुराने रहस्यवादी स्वर कम होते जा रहे है। इन्सान और दुनिया के बारे मे अधिक लिखा जा रहा है। दुर्भाग्य से, नवीनता का शौक, बौद्धिक अनुशासन का अभाव और छन्द-शास्त्र के सिद्धान्तो का ज्ञान कम होना आदि ऐसे अनेक दोष है, जिससे आधुनिक गजल का आकर्षण और प्रभाव दूपित हो गया है। यद्यपि कुशल कवि के हाथो गजल मे भी उच्चतम कविता का निर्माण सम्भव है।

दूसरी तरह की कविताओ मे इकबाल का १९१४ के तूफानी दिनो मे लिखा गया 'खिज्रे राह' आधुनिक उर्दू-कविता में एक पथ-चिन्ह और बाद के कवियो के लिए एक उज्ज्वल निर्देश है। वे द्रष्टा और मानवतावादी थे। उन्होने सभी सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओ

को, जो कि उस समय पूर्व के देशो के सामने थी, जाँचा, परखा और अपने कुरान वाले अकीदे से उन्हे देखा। अपनी प्रतिभा के पारस-स्पर्श से उन्होने जो कुछ लिखा, उसे कुन्दन बना दिया और कविता का अभिव्यजना-क्षेत्र सकेतमयता से बहुत व्यापक बनाया। 'बागे दरॉ', 'वाले जिब्रील' और जर्बे कलीम' ने उर्दू मे एक नवयुग निर्मित किया तथा उर्दू-कविता इतनी समृद्ध हो गई कि वह किसी भी समुन्नत साहित्य के साथ तुलना मे खडी हो सकती है।

जोश मलीहाबादी 'शायरे-इन्कलाब' कहलाते है। दो महायुद्ध, १९२१ का असहयोग आन्दोलन, १९२९-३० के आर्थिक सकट, १९३१ का अवज्ञा आन्दोलन, श्रम और पूंजी के बीच सघर्ष और समाजवादी विचारो का बढता हुआ प्रभाव उर्दू साहित्य को भी झकझोरता रहा और उसमे से यह क्रान्ति की भावना पैदा हुई। 'जोश' इस क्रान्ति के प्रतीक है, मगर वे आवश्यकता से अधिक शोर मचाने वाले, उथले और ऊबड-खावड लिखने वाले है। उनमे एक तरह का अनथक उत्साह है, मगर वे बहुत बार कुत्सित रूप ले लेते है। वे सिर्फ सतही चीजो को छूते है और चमकीले शब्द-शिल्प के आकर्षक पहनावे के नीचे अपना हल्कापन छिपाते है। इकबाल के बाद तरुण कवियो पर उनका सबसे अधिक प्रभाव पडा। तरुणो की दृष्टि मे वे 'शायरी के जादूगर मुल्ला' है। उपमा और उत्प्रेक्षा पर उनका बहुत अधिकार है तथा सुपरिचित देहाती दृश्यो के वर्णन मे इन अलकारो का वे बडा सुन्दर और आकर्पक उपयोग करते है।

जाफर अली खाँ प्रसाद-गुण-युक्त ऐसे कुशल कवि है, जिन्होने बहुत-कुछ लिखने के बावजूद अपनी शक्ति का दुरुपयोग क्षणिक महत्त्व के क्षुद्र विपयो पर लिखने मे अधिक किया है। 'सीमाब' (मृत्यु १९५१) भी अच्छे कवि थे, जिनका छन्द पर अधिकार था। उन्होने कुछ जल्दी मे लिखा, मगर बडे आत्म-विश्वास के साथ। उनकी कविता का प्रभाव, जिन विषय-वस्तुओ को उन्होने छुआ, उनके महत्त्व की तुलना में विशेष नही है।

हाली से लेकर इकबाल, जाफर अली खाँ, एहसान और माहिर तक उर्दू-नज्म अपनी उस ऊँचाई पर पहुँची है जहाँ कि वह पहले नही पहुँची थी। 'हफीज' जालन्धरी ने 'शाहनामा-ए-इस्लाम' लिखा, जो कि फिरदौसी की नकल मे एक लम्बी ऐतिहासिक कविता है। दक्खन मे 'नुसरती' (मृत्यु १६७३) ने 'अलीनामा' लिखा और 'रुस्तमी' ने 'ख्वारनामा' रचा, जो कि उर्दू मे विवरणात्मक कविता के सबसे पहले नमूने है। परन्तु हफीज जालन्धरी के 'शाहनामा-ए-इस्लाम' मे जितनी बुलन्दी और विराटता है उससे पाठक की कल्पना-शक्ति आश्चर्य-चकित हो जाती है। इस काव्य के पहले दो हिस्से तीसरे की अपेक्षा अधिक सफल है। तीसरे हिस्से मे तो ऐसा लगता है कि मानो उनकी काव्य-शक्ति उन्हे छोड गई। हफीज की याद उनके गीतो के लिए भी की जायगी, जो कि सगीत और लयकारी मे अपनी विशेषता रखते है।

आधुनिक साहित्यिक धारा मे एक सबसे मनोरजक विधा है उर्दू मे हिन्दी ढग के गीतो का निर्माण। यह विधा ऐसी कविता की है जिसमे पुराने इतिहास और मिली-जुली तथा सश्लिष्ट सस्कृति के सबसे अधिक दर्शन होते है। अजमत-उल्लाह खाँ, हफीज जालन्धरी, अख्तर शीरानी, तासीर, खालिद, मकबूल अहमदपुरी, हफीज होशियारपुरी, सागर निजामी, आबिद और इन्द्रजीत शर्मा ने सुन्दर मँजी हुई उर्दू मे गीत लिखे है, जिनमे हमारे घरेलू जीवन की निकटता का सौरभ है। शौक किदवाई, 'आरजू' और 'रजा' ने गजल मे भी उसी तरह की गीतिकाव्यात्मकता व्यक्त की है, परन्तु अजमतुल्लाह खाँ मे उसकी सबसे अधिक उत्कटता दिखाई देती है। उनके गीतो मे एक तरह की गहरी शाति और मन को बराबर स्पन्दित करने वाला वातावरण मिलता है। अख्तर शीरानी रोमाटिक धारा के सबसे बडे अगुआ हुए, इनकी कविता मे जादू जैसा गुण है। यही कारण है कि उर्दू मे अब तक अज्ञात ऐसे वर्णनो की बारीकी और विविधता तथा इन्द्रिय-गोचरता उनमें मिलती है। कल्पना-चित्रो की रगीनी, छन्दो के नए आविष्कार और ऐसे प्रेम-विषयो के,

जिन्हे समाज मे स्वीकृत नही किया जाता था, वर्णन का साहस भी अद्वितीय है । इन तीनो गुणो से उनकी कविता बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त करती है ।

१९३५ मे 'तरक्की पसन्द अदब' (प्रगतिशील साहित्य) शुरू हुआ, जिसमे एक नए 'जिहाद' का-सा कट्टरपन और प्रचारको वाला उत्साह था । इस आन्दोलन ने पुराने सिद्धान्तो को तोडने की शुरुआत की । परन्तु जो नए सिद्धान्त उसने अपनाए, वे इस देश के सास्कृतिक धरातल मे अधिक गहरी जडे न जमा सके । प्रगतिशील लोग हर पुरानी चीज के तीखे आलोचक थे, और उन्होने अपने प्रयोगो को अतिरजना की सीमा तथा स्पष्टवादिता को अश्लीलता के किनारे तक ले जाने का प्रयत्न किया । छद्मप्रगतिशील 'मीराजी' और 'राशिद' इसके ज्वलन्त-उदाहरण है । उन्होने अपनी राजनैतिक विचार-धारा की तुरही बजाई, वह सनसनीखेज तो जरूर थी, लेकिन उसमे श्रेष्ठ काव्य की एकाग्रता और गहराई का अभाव था । बहरहाल एक विशेष राजनैतिक विचारधारा पर जोर देने के बावजूद यह आन्दोलन, पहले उत्साह का ज्वार उतर जाने के बाद, उर्दू-साहित्य को एक नई प्रेरणा, सजीवन और स्वतन्त्र चेतना दे गया । जोश, फैज, फिराक, जज्बी, मजाज, मखदूम, जॉनिसार अख्तर और सरदार जाफरी इस धारा के प्रमुख उद्गाता है । इनमे एक चिरतन सप्राणता और सशक्त यथार्थवाद है । समाज व्यवस्था को बदलने और उसका नए सिरे से निर्माण करने की चुनौती को उन्होने अनुभव किया, तथा अपने तरीके से भारत की व्याधियो का रामबाण उपाय खोजने की भी कोशिश की । कही-कही चुनकर पढने पर, उनकी कविता एक गुलदस्ते की तरह सुन्दर लगती है । वह इसलिए और भी दिलचस्प है कि उसमे गरीबी, गुलामी और शोषण के जमाने की एक उत्कट भावपूर्ण अभिव्यजना मिलती है । १९३१ के बाद जनता का जबरदस्त आन्दोलन शुरू हुआ । श्रमिक-वर्ग समाजवादी शासन कायम करने के लिए सघर्ष करने लगा । इन प्रगतिशील कवियो

की कविता में इस जागरण का चित्र है। यद्यपि यह सही है कि उनमें सम्पूर्णता और स्थायित्व नहीं है। फिर भी वे तीखे, असन्तुष्ट और बेदार हैं। उन्होंने खिड़कियों को खोला और हमें भी बुलाया तथा कहा कि झुककर बाहर झाँको।

पूरे उर्दू-काव्य-साहित्य पर विचार करते हुए ऐसा लगता है कि वह बहुत प्रेरणदायक और असंख्य सम्भावनाओं से भरा हुआ है। उसमें हमारी देश-भक्ति का जज्बा, असाम्प्रदायिकता और उदार दृष्टिकोण, स्वातन्त्र्य-संग्राम और आर्थिक विषमता के विरुद्ध संघर्ष, दंगों में लहू-लुहान देश का दर्द और पुनर्वास-संबंधी भयानक समस्याएं, इन सब बातों का तटस्थ प्रतिबिंब मिलता है। विभाजन के बाद जो दुःख-दर्द आया, धीरे-धीरे वह कम हो गया है। जख्म भर रहे हैं, कड़ुवाहट कम हो रही है। हमने अब एक कल्याणकारी राज्य और समाजवादी ढंग से समाज की भी नींव रखी है। साथ-ही-साथ हम एक ऐसे नए सौन्दर्यदर्शी दृष्टिकोण की नींव रख रहे हैं, जिसमें संस्कृति के हमारे गहरे ज्ञान के साथ-साथ अन्य संस्कृतियों के अतीत और वर्तमान का भी ज्ञान सन्निहित होगा। आज के उर्दू-कवि में प्रयोजन की गम्भीरता और आगे बढ़ने का साहस है। वह नए हिन्दुस्तान के स्वप्न को पकड़ना चाहता है। उसकी पहुंच और पैठ एक साथ व्यापक और स्फूर्तिदायक है। अधिक प्रभावशाली होने के लिए उसमें भावना और विचार का सन्तुलन तथा सहकार आवश्यक होगा। सच्ची काव्य-कला के सृजन की यही एक आवश्यक शर्त है। समकालीन अभिरुचि के लिए उसे बहुत अधिक स्पष्टता, और सर्व-साधारण तथ्यों को दोहराना आदि बातें कम करनी होंगी।

कहानी

उर्दू में आधुनिक कहानी का जन्म प्रेमचन्द (१८८०-१९३६) के साथ हुआ। वे संवेदनशील और विचारशील थे। उन्होंने सीधी-सादी साफ जबान में हमारे मेहनतकश किसान भाइयों के जीवन की चुनी हुई सार्थक

घटनाओं और उत्कट क्षणों को चित्रित किया। लेकिन नियाज, यलदरम और लाम० अहमद यथार्थ को एक ओर ठेलकर दूसरी ओर बड़ी मौलिकता दिखला रहे थे। उनका कृत्रिम कल्पनाशील और सुपरिचित यथार्थ को रोमांटिक ढंग से चुनना, ऐसा था कि उनका प्रभाव उस युग के प्रत्येक लेखक पर हुआ। प्रेमचन्द ने कहानी को रोमांटिकवाद की दलदल से उबारा, नियाज़ और यलदरम की एकतरफ़ा कोशिश से कहानी उस स्थान पर पहुँची थी। उर्दू कहानी को प्रेमचन्द ने इस तरह से एक मजबूत नींव पर रखा। उनके सामने चेखव और मोपासाँ-जैसे विदेशी आदर्श लेखक थे। प्रगतिशील साहित्य के आन्दोलन ने कहानी लिखने की रुचि को बढ़ाया, और १९३६ के बाद तो वह समसामयिक साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा ही बन गई। प्रेमचन्द ने उर्दू कहानी को एक प्रयोजनशील दिशा देकर जैसे अपने तूफ़ानी ज़माने की आत्मा का इतिहास व्यक्त कर दिया।

प्रेमचन्द (१८८०-१९३६) कभी-कभी सुधारवादी हो उठते हैं, लेकिन उन्होंने अपने देश के लोगों की जिन्दगी में से महत्त्वपूर्ण घटनाएं और भावनाएँ चुनकर उनका यथातथ्य अंकन मानवतावादी ढंग से किया। उनकी कहानियों में कला और जीवन का बड़ा सुखद संगम मिलता है, उदाहरणार्थ 'कफ़न' उनकी एक उत्कृष्ट कहानी है। उर्दू कहानी के इतिहास में यह एक नया मोड़ है। १९३५ में विभिन्न लेखकों की कहानियों का एक संग्रह 'अंगारे' नाम से प्रकाशित हुआ और वह ज़ब्त हो गया, फिर भी उसका समकालीन कहानी-लेखकों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। लेकिन १९३६ में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना वह महत्त्वपूर्ण घटना थी, जिसके साथ कहानी के विकास का एक और दौर सामने आया।

१९३६ से १९४६ तक उर्दू-कहानी में प्रगति-धारा के घोषणा-पत्र की ही गूंज और प्रतिगूंज सुनाई देती है। हुसैनी, कृशनचन्दर, बेदी, अख़्तर अंसारी, अहमद अली, इस्मत चग़ताई, हयातुल्लाह, बलवंतसिंह, अहमद

नदीम क़ासमी, हसन अस्करी, गुलाम अब्बास, मुमताज शीरी, मुमताज मुफ्ती, इब्राहीम जलीज और मन्टो मे से हरेक ने अपने-अपने ढग से कहानी के विकास मे सहायता दी। उनकी कल्पनाशील प्रतिभा सब प्रकार की रूढियो और परम्पराओ को तोडकर आगे बढी, और उन्हे नया रास्ता तथा नई शैली बनाने मे उसने सहायता दी। यह लेखक जितनी ही प्रवृत्तियो के आन्तरिक द्वद्व मे उलझते दिखाए है उतना ही सामाजिक और समाज-वैज्ञानिक समस्याओ से भी। अहमद अली की 'हमारी गली', और 'मेरा कमरा', कृशनचन्दर की 'दो फर्लांग लम्बी सडक', मन्टो की 'नया कानून', हयातुल्लाह की 'आखिरी कोशिश' और बेदी की 'गर्म कोट' शीर्षक कहानियाँ मेरे कथन की उत्तम उदाहरण है। इसमे हमे कला और जीवन का उत्तम सगम मिलता है। कुछ कहानियाँ दुर्भाग्य से सेक्स के मामले मे कषाय-भरी, अति प्रगल्भ और चीत्कारमयी है।

मन्टो, बेदी, कृशनचन्दर, इस्मत, हयातुल्लाह, अख़्तर औरानवी और अहमद अली इत्यादि की कहानियाँ इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि उनमे एक व्यापक क्षेत्र, विविधता और भाँति-भाँति के स्वर पाये जाते है। कल्पना और निरीक्षण का उनमे सुखद मिश्रण हुआ है, और यह भविष्य के लिए बहुत अच्छा चिह्न सिद्ध हुआ है। अहमद नदीम कासमी, बलवतसिह, गुलाम अब्बास, हिजाब इम्तियाज, मुमताज मुफ्ती, आगा बाबर, इब्राहीम जलीस, हाजरा मसरूर, सालिहा आबिद हुसैन, खादीजा मस्तूर, मुमताज शीरी, तसनीम, महेन्द्रनाथ, सुहैल, कुर्रतुल-ऐन और शफीकुर्रहमान प्रमुख कहानी-लेखको के नाते आगे आए, जिन्होने मनुष्य-स्वभाव के अपने निरीक्षण बडी ईमानदारी और नाटकीय प्रभाव से कहानियो मे आँके। मगर कुछ कमजोर कलाकारो के द्वारा कहानी सेक्स की कुण्ठा, सनसनीखेज चमत्कारवाद और वृथा-भावुकता की भद्दी व्यजनाओ के रूप मे भी लिखी गई। प्रगतिशीलो का साहित्य उत्तम गुण और कूडा-कचरा दोनो का ऐसा मिश्रण है कि विवेकी समीक्षक ही भूसे मे से अनाज चुनकर निकाल सकता है।

१९४७ मे देश का विभाजन एक भयानक ट्रेजेडी थी, और उसके साथ-साथ अकथनीय दु ख और दर्द लाखो लोगो को उठाना पडा। बहुतो के घर-बार नष्ट हो गए और बहुत-से या तो हिन्दुस्तान मे आए या उन्हे पाकिस्तान मे जाना पडा। कुछ उर्दू-कहानी-लेखको ने इस ट्रेजेडी का बडी तटस्थता और तीखेपन से वर्णन किया। कृशनचन्दर की 'हम वहशी है' समझदारी और उदारता के लिए की गई उनकी हार्दिक अपील है। उनकी काव्यमयता और मानववाद यहाँ स्पष्ट दिखाई देते है और यह सचमुच एक उत्तम कला-कृति है। इस्मत ने भी दगो और उनके साथ उठने वाली समस्याओ पर लिखा है। उनकी कहानी 'सोने का अडा' और 'चौथी का जोडा' शान से कम नही है। मगर उनकी कुछ कहानियाँ कृशनचन्दर की कुछ कहानियो की ही तरह बहुत खुली और चीख-भरी है। ऐसा लगता है कि कलाकार का व्यक्तित्व सोद्देश्यता की भीड मे बौना हो गया है। अहमद नदीम कासमी एक प्रामाणिक यथार्थवादी कुशल कहानी-लेखक है, उन्होने प्रवृतियो की आन्तरिक हलचलो का चित्रण करके मानवीय समस्याओ पर जोर दिया है। उनका दृष्टिकोण राजनैतिक न होकर कलात्मक अधिक है, और उनकी कहानियो मे कल्पना और भावना के द्वारा जीवन का नया अर्थ पाने की कोशिश दिखाई देती है। 'नया फरहाद', 'आतिशे गुल' और 'अलहमदुलिल्लाह' मे वे बहुत प्रामाणिक और प्रेरणादायक है तथा उनकी अपनी विशेष शैली है। ख्वाजा अहमद अब्बास भी दिलचस्प लेखक है, मगर उनके दोष वही है जो कृशनचन्दर के, और उनकी कहानियो मे जहाँ राजनैतिक सदेश है, वहाँ स्पष्टत: सृजनात्मक शक्तियो का ह्रास दिखाई देता है।

उदीयमान कहानी-लेखको मे से निम्न लेखको का उल्लेख किया जा सकता है—देवेन्द्र इस्सर, अनवर अजीम, अशफाक अहमद, जमीरुद्दीन, इब्नुल हसन, खलील अहमद, शौकत सिद्दीकी, अनवर और इन्तजार हुसैन। इनमे कहानी के शिल्प के कई ढग दिखाई देते है, जो कि पाठक मे सजीव अनुभव का स्पर्श जागृत करते है। इनमें रचना की साह-

सिकता और यथार्थवादी व्यंजना दिखाई देती है। जहा तक विषय-वस्तु और उसकी शिल्पगत विविधता का प्रश्न है, वे सबसे अधिक पठनीय है। प्रकृति-वर्णन की पृष्ठभूमि पर इन्होंने सकेत और विषय-वस्तु को बुनने की कोशिश की है। थोडे-से कुशल आघातो मे वे उन सूक्ष्म मन स्थितियो का अनुभव हमे करा देते है, जो घटना और परिस्थितियो के बन्धन को नही मानती। जब कुरूपता का आग्रह कम होता जा रहा है, तब ये लेखक जीवन मे छोटे-छोटे स्थल चुन रहे है। चरित्र और घटनाओ के नए अर्थ की भी इन्हे टोह है। सृजनशील कलाकारो के नाते उनमे कोई उल्लेखनीय विशेषता नही है। लेकिन वे समकालीन युग का भवनात्मक इतिहास दे रहे है और अश्रद्धा की छाया से मुक्त होते जा रहे है।

उपन्यास

उर्दू उपन्यास 'दास्तान' या 'कहानियो की परम्परा' मे विशेष समृद्ध रहे है। ये ज्यादातर फारसी से अनूदित होते थे और नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित होते थे। ये मानवोपरि कहानियाँ, साधारणतया साहस, स्त्री-दाक्षिण्य और प्रेमभरी घटनाओ का बहुत लम्बा-चौडा वर्णन देती थी। इनमे अलौकिक शौर्य और सद्गुणो से भरे हुए नायक होते थे और ये क्रमश कई तरह के जादूगरो और राक्षसो के साथ लोमहर्षक सामना करते हुए चले जाते थे। इन खल-नायको मे भी जो ईर्ष्या और दुष्टता होती थी वह अकल्पनीय थी। नजीर अहमद (मृत्यु १९१२) के बाद उर्दू उपन्यास का पण्डित रतननाथ सरशार (मृत्यु १९०२) मे वास्तविक आरम्भ हुआ, जिन्होने १८७८ मे 'फसाना-ए-आजाद' की पहली किश्त 'अवध अखबार' के स्तम्भो मे लिखनी शुरू की। यह एक अमर पुस्तक है, जो कि लखनऊ की जिन्दगी को उसकी सारी विशेषताओ के साथ व्यक्त करती है, और कही भी उसका आदर्शीकरण नही करती। अब्दुल हलीम शरर (मृत्यु १९२६) की 'दिले-गुदाज' भी ऐतिहासिक उपन्यासो मे एक उपयोगी देन थी।

उपन्यासकार, इतिहासकार, आलोचक, निबन्धकार तथा पत्रकार सभी दृष्टि से 'शरर' एक ऊँचे लेखक थे। बहुत अधिक लिखकर भी वे बराबर एक हास्य-लेखक ही बने रहे। लखनऊ की एक पढी-लिखी नर्तकी की आत्मकथा के रूप मे 'उमराव जान अदा' नामक पुस्तक लिखने के कारण मिर्जा हादी रुसवा प्रसिद्ध है। नजीर अहमद के 'जाहिरदर बेग', सरशार के 'खोजी', रुसवा के 'बिसमिल्ला' और राशिदुल खैरी के 'नानी आसोब' बहुत ही मनोरजक और सजीव चित्र है, जो उर्दू साहित्य मे सदा याद किये जायँगे।

उपन्यासकारो मे सबसे ऊँचे प्रेमचन्द थे। वे यथार्थवादी और गरीब दलितो के दु ख-दर्द का सही चित्रण करने वाले थे। वस्तुत उन्होने हाँके जाने वाले गूंगे पशुओ को भी वाणी दी और उनमे सरल मानवीयता की भव्यता भर दी। भारत की जनता के आर्थिक सघर्ष और आत्मिक जागरण की झाँकी हमे प्रेमचन्द मे देखने को मिलती है। वे कहानी-लेखक और उपन्यासकार के लिए पथ-निर्देशक प्रकाश की तरह थे। उनका उपन्यास 'मैदाने-अमल' शरर, रुसवा और राशिदुल खैरी के उपन्यासो से इतना भिन्न है कि वह आधुनिक उर्दू उपन्यासो का आरम्भ है। उनका 'गोदान' एक शाहकार है। ग्रामीण जनता की जिन्दगी यहाँ उपन्यास के रूप मे बडी स्पष्टता से नाट्यमय ढग से अकित की गई है। इसमे इतनी विविधता की रगीनी है कि जो पहले उर्दू उपन्यास मे कभी नही दिखाई दी थी।

'प्रगतिशील आन्दोलन' मुख्यत कहानियो पर जोर देता रहा, उपन्यास पर उतना नही। १९३६ से १९४६ के काल-खण्ड मे उर्दू में कहानी ही प्रमुख विधा रही। इस दशक मे सिर्फ कृशनचन्दर का 'शिकस्त' एकमात्र पठनीय उपन्यास लिखा गया, गोकि उसमे कोई विशेषता नही है।

आज के प्रसिद्ध उपन्यासकारो मे इस्मत चुगताई, अजीज अहमद, कुर्रतुल-ऐन हैदर और सालिहा आबिद हुसैन का उल्लेख किया जा

सकता है। इस्मत की 'टेढ़ी लकीर' की कल्पना मौलिक नहीं है, लेकिन उसका शिल्प और ढंग नया है। उसने इस उपन्यास में एक मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार का गहन चित्रण करके उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि में सेक्स की भावना का अध्ययन प्रस्तुत किया है। अजीज अहमद का 'गुरेज' बड़े चमकीले ढंग से लिखा गया है। मगर सेक्स की समस्या को उन्होंने जिस तरह से प्रस्तुत किया है उसके नंगेपन और स्थूलता से कई पाठक चौंकते हैं। अजीज अहमद की 'ऐसी बुलन्दी ऐसी पस्ती' और 'शबनम' बस पढ़ने ही योग्य हैं, और कुछ नहीं।

कुर्रतुल-ऐन हैदर ने दो महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखे हैं, 'मेरे भी सनम खाने' और 'फसानए-गमे-दिल'। उन्होंने जेम्स जॉयस की नकल करने का प्रयत्न किया है, और कभी-कभी सफलतापूर्वक अचेतन मन के प्रवाह को अंकित करने का शिल्प अपनाया है।

सालिहा आबिद हुसैन के अतिरिक्त आज के प्रायः सभी उपन्यासकार श्रद्धा-शून्य हैं। वह भी बहुत चैतन्यमय या गहरी लेखिका नहीं हैं, मगर उन्हें कुछ कहना है। एहसन फारूकी में आधुनिक जीवन के ढकोसलों पर पैना व्यंग्य है। उनकी 'शामनाई' और 'शामे-अवध' आकर्षक हैं, लेकिन उनमें गहराई नहीं है। फय्याज़ अली के उपन्यास 'अनवर' और 'शमीम' मनोरंजक हैं। शायद उन-जैसे लेखक बहुत थोड़े हैं, जो कि जन-रुचि को सही-सही समझते हैं। रामानन्द सागर का उपन्यास 'और इन्सान मर गया' पहले पृष्ठ से अन्तिम पृष्ठ तक पाठक का ध्यान खींचकर रखता है। १९४९ के साम्प्रदायिक दंगों में एक संवेदनशील आत्मा की क्या दशा होती है और उसमें कैसे उद्वेलन मचते हैं, इसका यह एक सुन्दर अध्ययन है। इस उपन्यास में सुदृढ़ सशक्त मानवतावादी दृष्टिकोण सव्याप्त है।

उर्दू उपन्यास में कई कमियां हैं। उर्दू में ऐसे बहुत थोड़े कलाकार हैं जिन्होंने दुनिया के बड़े साहित्य का अध्ययन किया हो और जो कि मानवीय चेतना की जटिलता में गहरे घुस सके हों या सजीव अनुभव का

प्रामाणिक स्पर्श पाठक को दे सके हो। अहमद अली, कृशनचन्दर, इस्मत, अजीज अहमद, ख्वाजा अहमद अब्बास, सालिहा आबिद हुसैन, कुर्रतुल-ऐन हैदर, ए० हमीद, इतजार हुसैन, आदिल रशीद, रशीद अख्तर, जमनादास अख्तर और शौकत थानवी प्रभावशाली तथा उदीयमान उपन्यासकार है। कुल मिलाकर वे उर्दू की मानवतावादी परम्पराओ के प्रति पूर्ण आस्था रखते है।

रेखाचित्र और रिपोर्ताज

रेखाचित्र-लेखको मे फरहतुल्ला बेग, रशीद अहमद सिद्दीकी, काजी अब्दुल गफ्फार, मौलाना अब्दुल मजीद दरियाबादी, नियाज फतेहपुरी, डा० आबिद हुसैन और ख्वाजा हसन निजामी के नाम बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। हिन्दुस्तानी जीवन और रिवाजो की बहुत रगीन झाकी उनके स्केचो मे मिलती है और उन्हे पढकर पाठको को आनन्द होता है।

उर्दू साहित्य मे रिपोर्ताज अभिव्यजना का नया माध्यम है। कृशनचन्दर के 'पौधे', 'सुबह होती है', आदिल रशीद के 'खिजा के फूल', फिक्र तौसवी का 'छठा दरिया', ताजवर सामरी का 'जब बधन टूटे' और इब्राहीम जलीज का 'दो मुल्क एक कहानी' पत्रकारिता की विजय दिखलाकर यही सिद्ध करते है कि विभाजन के बाद भी उर्दू के लेखको ने अपना मानवतावादी दृष्टिकोण कैसे दृढ रखा।

नाटक

उर्दू मे सबसे पहला नाटक अमानत की 'इन्दर-सभा' था। यह सगीतमय सुखान्त नाटक अवध के अन्तिम शाह वाजिद अली के जमाने मे खेला गया। १८५६ मे उन्हे गद्दी से उतार देने के बाद, पारसी थियेट्रिकल कम्पनी ने जनता के मनोरजन के लिए नाटक खेले। मोहम्मद मियाँ रौनक बनारसी, तालिब और एहसान लखनवी इस कम्पनी के प्रसिद्ध नाटककार थे। आगा हश्र काश्मीरी को 'उर्दू का मार्लो' कहा जाता

है। इस युग के अधिकतर नाटक बडे ही कठिन और लययुक्त गद्य मे लिखे गए है।

उर्दू मे बडे नाटको का बहुत अभाव है। इश्तियाक हुसैन कुरेशी, सैयद इम्तियाज अली 'ताज', प्रोफेसर मोहम्मद मुजीब, डा० आबिद हुसैन, अहमद शुजा, शाहिद अहमद देहलवी, आबिद अली आबिद, फज़ल हक कुरेशी, मिर्ज़ा अदीब, उपेन्द्र नाथ अश्क, मोहम्मद हुसैन, के० एल० कपूर और शौकत थानवी ने उर्दू नाटक के क्षेत्रो को काफी प्रसिद्धि दी। देश की स्वतन्त्रता और विश्व-सस्कृति को अपनाने के साथ-साथ उर्दू नाटक भी आगे बढकर पहले की कमियो को पूरा करने का प्रयत्न कर रहा है। एकाकी नाटक और रेडियो-नाटक भी बहुत लोकप्रिय है। फिल्म-सवादो की भी बाढ-सी आई है, मगर वे साहित्य के लिए देन न होकर जनता की अभिरुचि पर टिप्पणी है।

भारत मे उर्दू थियेटर विकसित करने की गहरी कोशिश हो रही थी। आधुनिक थियेटर देशज नही है। पश्चिमी रगमच के प्रभाव से करीब एक सदी से उनका विकास हो रहा है। जन-नाट्य के पुराने रूप जो अभी बचे है वे गाँवो और मेले-ठेलो के घुमन्तू अभिनेताओ तथा मण्डलियो के रूप में है और वे भी कम होते जा रहे है। यह ज़ोरो से कोशिश की जा रही है कि इस पुरानी परम्परा को भी जीवित रखा जाय। हबीब तनवीर का 'आगरा बाजार' पुराने और नए ढग के नाटको का एक सुखद मिश्रण है, जो उर्दू नाटक के उज्ज्वल भविष्य का सकेत है।

आलोचना

आलोचनात्मक लेखन और सपादन मे डॉ० अबुल हक, प्रोफेसर हामिद हसन कादरी, नियाज़ फतेहपुरी, सज्जाद ज़हीर, डॉ० अब्दुल्ला, प्रोफेसर कलीमुद्दीन, प्रोफेसर मसूद हुसैन रिज़वी, मजनूं गोरखपुरी, इबादत बरेलवी, फिराक, असकरी और ममताज हुसैन के नाम महत्त्व-पूर्ण है। प्रोफेसर आले अहमद सरूर और एहतशाम हसैन प्रसिद्ध समी-

क्षक है, जो कि साहित्य को उसके सही सामाजिक रूप मे देखते है और आलोचना में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते है। आलोचना के नाम पर इम्प्रेशनिज्म (प्रभाववाद) की धारा जोरो से बह रही है, और उसे 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त का समर्थन भी प्राप्त है, लेकिन अब वह धारा बहुत धीमी हो गई है। साहित्य के इतिहासकारो मे मोहम्मद शेरानी, गुलाम रसूल मेहर, हामिद हसन कादरी, नसीरुद्दीन हाशमी, अब्दुस्सलाम नदवी, डॉ० रामबाबू सक्सेना, मालिकराम, वकार अज़ीम, तन्हा, प्रोफेसर सरवरी, डॉ० जोर आदि कई लेखक और प्रसिद्ध है, जिनकी शोधो ने नए तथ्यो पर प्रकाश डाला है और कई गलतियो को सुधारा है। इनमे से कुछ विद्वानो ने विख्यात कृतियो को चिकित्सक-जैसी तटस्थता से परखा है। उर्दू साहित्य के क्षेत्र मे काजी अब्दुल वदूद, इम्तियाज अली खॉ अर्शी और डॉ० अब्दुल सत्तार सिद्दिकी का नाम भूस्तर-वैज्ञानिको-जैसा है, जिन्होने अतीत काल के चित्रो वाले जो पत्थर बचे है उन्हे खोज निकाला और जॉचा है। इधर की दशाब्दी मे आलोचनात्मक साहित्य मे बडी बाढ आई है, जिसमे से यदि चुनी हुई सामग्री को पढा जाए तो उसमे गभीरता का अभाव न मिलेगा और यह प्रकट होगा कि साहित्य-समीक्षा और समकालीन इतिहास मे बडा जटिल सबध रहा है।

परिहास और व्यग

उर्दू की विशेषता यह है कि उसमे व्यग साहित्य की फसल आ गई है। इम्तियाज अली ताज, पतरस, रशीद अहमद सिद्दीकी, काजी अब्दुल गफ्फार, डॉ० आबिद हुसैन, कन्हैयालाल कपूर और शौकत थानवी ने बडी मधुरता और विच्छित्ति (विट) के अतिरेक के साथ लिखा है, और उनकी शैली मे बडी हाजिर-जवाबी है।

गभीर और ऐतिहासिक साहित्य

वैज्ञानिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, शैक्षणिक और अन्य गम्भीर विषयो मे लिखने वाले कई लेखको मे बहुत ही थोडे लेखको का उल्लेख किया जा सकता है। मौलाना अब्बुल कलाम आजाद, डॉ० आबिद हुसैन, ख्वाजा गुलामुस्सैयदेन, डॉ० जाकिर हुसैन, सैयद सुलेमान नदवी, मौलाना अब्दुल मजीद दरियाबादी, नियाज, अबुलहसन अली, शाह मोईनुद्दीन, ज़फर हुसैन, सईद अहमद, हिफजुररहमान, मौलाना हुसैन अहमद, मनाजिर एहसन गेलानी, खलीक अहमद निजामी, मौलाना अशरफ अली, शहाबुद्दीन अब्दुर रहमान और मौलाना मौदूदी ने बहुत-सा गम्भीर साहित्य लिखा है, जिनमे स्पष्टता, विद्वत्ता, शोध या रूपान्तर सभी गुणो के आदर्श मिलते है।

पत्र-साहित्य

उर्दू इस क्षेत्र मे बहुत ही समृद्ध है। उर्दू खतूत मे बडी विविधता और व्यापकता मिलती है। साहित्यिक इतिहास मे रज्जब अली बेग सुरूर, वाजिद अली शाह, मिर्जा गालिब, हाली, शिबली, मेहदी अफादी और मौलाना अबुल कलाम आजाद-जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो ने ये पत्र लिखे है। विचार और भावनाओ का यह अतर्द्वन्द, जो कि इन सवेदनशील आत्माओ मे पाया जाता है और जो उत्कट हार्दिक भाषा-शैली मे व्यक्तिगत बातचीत के ढग पर व्यक्त किया गया है, उसकी स्पष्ट झाँकी इन पत्रो में मिलती है। नियाज के पत्र साबुन के बुलबुलो की तरह है, इतने नाजुक और हसीन कि उन्हे छूते हुए डर लगता है। मौलवी अब्दुल हक और हामिद हसन कादरी के पत्र ऐसे अनौपचारिक और प्रत्युत्पन्न है कि जैसे उनकी दैनिक बातचीत होती थी, और उन लेखको की तरह से ही वे स्पष्टवादिता और सहजता से भरे है। डॉ० इकबाल और सैयद सुलेमान नदवी विविध प्रकार की साहित्यिक हलचलो के बीच मे अपने पत्र भी लिखते रहे है, लेकिन उनमे उनके मन का पूरा सकेत

मिलता है। मौलाना आज़ाद के पत्र 'गुबारे खातिर' * जल्दी मे नही लिखे गए थे, उन्हे पकने के लिए अवकाश मिला और वे तब तक नही भेजे गए जब तक कि हर जुमला खिलकर एक फूल नही बन गया। रेशम के कीडे की तरह उन्होने इन खतो को अपने जेल के दिनो में काता है. शब्दो की नक्कासी और सुकोमलता तथा निर्दोप कलात्मकता की दृष्टि से ये पत्र लासानी है। सज्जाद ज़हीर ने भी जेल में से चिट्ठियाँ लिखी, मगर वे पढने मे बहुत ही रसहीन और भयानक लगती है। सफिया अख्तर की चिट्ठियो में बड़ी ताजगी और भावनाओ की गहराई दिखाई देती है। उनके पत्रो की शक्ति और सयम का सामूहिक प्रभाव पढने वाले पर ऐसा ही होता है जैसा किसी दवा या समुद्री हवा का। उनकी अपनी एक विशेष शैली है।

हिन्दुस्तान के इतिहास की तूफानी नदी में आज का युग आशा और सम्भावनाओं के जादुई द्वीप की तरह अलग खडा है; और इस देश की उन्नति के बडे आन्दोलन में एक महत्त्वपूर्ण मज़िल की तरह से है। तूफान और अँधेरे की रात गुज़र चुकी है। आज के उर्दू साहित्य मे यह सब धाराएँ झलकती है, वह जीवन और प्रेम का एक सश्लेषण है। कई कमियो के बावजूद वह उदार, प्रेरणादायक और मानवतापूर्ण है। और नए भारत के निर्माण मे उसका जो सामाजिक उत्तरदायित्व है उसे वह भूला नही है।

उर्दू पर चुने हुए सदर्भ-ग्रथ

इन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, खड ४, भाग २, १९३४, पृष्ठ १०२३–२९ उर्दू साहित्य पर डा० अब्दुल हक का निबध।

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, ग्यारहवा सस्करण, खड १३, पृष्ठ ४७९–४९१। हिंदुस्तानी और हिंदुस्तानी साहित्य पर लेख . उसी का

* इस पुस्तक का कठिन शब्दों के अर्थ-सहित नागरी लिपि में रूपान्तर साहित्य अकादेमी से प्रकाशित हो चुका है।

नवीनतम सस्करण, पृष्ठ ५७२–५७४ उर्दू साहित्य पर श्री आर० रसेल का निबंध।

हिस्ट्री आफ उर्दू लिट्रेचर—डॉ० राम बाबू सक्सेना, राम नारायण लाल, इलाहाबाद, १९२७।

द इन्फ्लूएन्स आफ इगलिश लिट्रेचर आन उर्दू लिट्रेचर—एस० अब्दुल लतीफ, लदन, १९२४।

उर्दू प्रोज अडर द इन्फ्लूएन्स आफ सर सैयद अहमद—शेख मोहम्मद अशरफ, लाहौर, मार्च १९४०।

द आरडेट पिलग्रिम, ए स्टडी आफ डा० इकबाल—इकबाल सिंह, लदन १९५१।

उर्दू गजल—ए स्टडी आफ उर्दू लिरिकल पोएट्री विद सेलेक्शस—डा० यूसुफ हुसैन, दिल्ली, १९५२।

पोएम्स फ्राम इकबाल, अनुवादक—विक्टर जी० कीरनान, लदन, १९५५।

इटरप्रिटेशन्स आफ गालिब—जे० एल० कौल, आत्माराम एण्ड सज, दिल्ली १९५७।

लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इडिया—जी० ए० ग्रियर्सन, खड ९, भाग १, पृष्ठ ४२–२७०।

कन्नड

वि० कृ० गोकाक

भूमिका

नव-निर्मित कर्नाटक प्रदेश मे कई भाग ऐसे है जो पहले बम्बई, मद्रास और हैदराबाद राज्य मे थे। उसीमे मैसूर और कुर्ग के राज्य भी शामिल है। इस नये राज्य का आयतन करीब ८५,००० घनमील और जनसख्या लगभग ढाई करोड है। यहा के लोगो का एक समृद्ध, प्राचीन इतिहास है, और उन्होने भारतीय सस्कृति, कला तथा स्थापत्य को कदम्ब, राष्ट्रकूट, चालुक्य, होयसळ और विजयनगर साम्राज्य के नीचे बहुत महत्त्वपूर्ण देन दी है।

भारत मे पुरातनता की दृष्टि से कन्नड साहित्य का नाम तमिळ-नाड के साहित्य के बाद लिया जाता है। कर्नाटक मे जैनो के आगमन से कन्नड साहित्य आरभ हुआ और छठी-सातवी शताब्दियो के शिला-लेखो में उसका सार्थक रूप पाया जाता है। इस काल के कई कवियो की रचनाए अब नही मिलती। इस भाषा का पहला प्राप्य ग्रथ 'कविराज मार्ग' (८२५ ईस्वी) है, जो कि काव्य-शास्त्र-विषयक है। प्रथम गद्य-ग्रथ 'वड्डाराधने' (९२५ ईस्वी) है। ९२५ से ११५० के बीच का काल-खण्ड चपू महाकाव्यो का स्वर्णयुग था। उस समय के रचयिताओ मे पप, पोन्न और रन्न सबसे प्रसिद्ध है। ११५० से १३३६ के बीच का काल-खण्ड

साहित्य और जीवम मे वीरशैव क्राति का युग है। इनमे से नई साहित्य-विधाए—जैसे 'वचन' या छोटे गद्य-गीत और नये छद जैसे रगळे, त्रिपदी और पट्पदी निकली। गद्य-शैली बोलचाल की भाषा के निकट आ गई। १३३६ से १५७५ तक का युग स्वर्ण विजयनगर-युग था, जिसमे 'दासो' या वैष्णव सत कवियो की, कुमारव्यास, लक्ष्मीश और रत्नाकरवर्णी-जैसे महाकवियो की, निजगुण शिवयोगी-जैसे वीरशैव रहस्य-वादियो की रचनाए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। १५७५ से १७०० तक मुख्यत पुरानी साहित्यिक विषय-वस्तु ही आगे चलती रही। विजयनगर के विध्वस के बाद बदली हुई समाज-व्यवस्था की ओर सर्वज्ञ-जैसे व्यगकार निर्देश करते है। अट्ठारहवी शती मे मैसूर के चिक्कदेव राय के नीचे चपू काव्य का पुनर्निर्माण होता है, और गद्य का विशेप रूप से, जैसे इतिहास आदि के लिए प्रयोग पाया जाता है। उन्नीसवी शती के द्वितीय शतक तक ये विषय बराबर चलते रहते है। आधुनिक काल प्राय इसी समय शुरू हुआ।

आधुनिक काल

आज के भारत की नाना रूपो मे उपलब्धियो का निर्माण जीवन के जिस नये विचार और आचार-आन्दोलन से शुरू हुआ, उसका आरम्भ एक शताब्दी से पहले हुआ। उसका पूरा प्रभाव, और जिस सश्लिप्ट परिवर्तन की ओर वह अखड और अदम्य रूप से हमे ले जा रहा है उसका पूरा अनुभव अभी नही हो पाया है। कन्नड साहित्य पर इन नई शक्तियो का प्रभाव पिछली शती के मध्य मे शुरू हुआ। उस समय के कुछ विद्वानो और ईसाई मिशनरियो के लेखन मे यह प्रभाव दिखाई देता है। उस समय कन्नड भाषा भी मध्य युग से आधुनिक रूप और शैली की ओर बदल रही थी। केम्पु नारायण का 'मुद्रामजूषा' (१८२३) मध्य युग से आधुनिक कन्नड की ओर स्थित्यन्तर का पथ-चिह्न है। यह गद्य मे एक रोमास है, जिसमे कि सस्कृत के नाटक 'मुद्राराक्षस' की

कहानी को एक ऐसी भाषा में मौलिक ढग से प्रस्तुत किया गया है, जिसमे कि मध्ययुगीन और आधुनिक व्याकरण-रूपो का विचित्र मिश्रण है। मुम्मडि कृष्णराय, जो कि १७६४ से १८६८ तक मैसूर राज्य के राजा थे, कला और साहित्य के बडे आश्रयदाता और स्वय एक उत्तम साहित्यकार थे। उनके नाम पर जो कन्नड रचना मिलती है वह मुख्यतः गद्य मे है। वह स्वय इस बात का चिह्न है कि आने वाला युग क्या था, यानी कन्नड मे इस काल के बाद गद्य अधिक महत्त्व प्राप्त करने लगा। यह कहा जाता है कि जहा गद्य समाप्त होता है वहा गद्य शुरू होना चाहिए, मगर इससे पूर्व के १४०० वर्षो के कन्नड साहित्य मे गद्य तो कही भी शुरू नही हुआ था और पद्य अनन्त था। कन्नड साहित्य के इस आधुनिक गणराज्य के स्वामी के नाते एक मैसूर का राजा प्रख्यात है।

पश्चिमी प्रभाव

आधुनिक भारतीय साहित्य का निर्माण देशज या विदेशी प्रभाव से हुआ, जो कुछ दिनो के बाद केवल विद्वानो की चर्चा का गौण विषय बन जायगा। लेकिन यह बात बहुत सही है, और इसे शुरू मे ही कह देना चाहिए कि पश्चिम ने भारतीय क्षितिज पर ऐसे दीपक जलाए जो कि पहले कभी नही देखे गए थे। भारतीय लेखको के विचार-विश्व में १०० वर्ष पहले जो भाव तैरकर आया वह एक नया नक्षत्र ही नही था, बल्कि एक समूचा आकाश था। अग्रेजी साहित्य ने भारतीय लेखको को नई आँखे और नये कान दिए। उपन्यास, छोटी कहानी, शोकान्तिका, जीवन-चरित, आत्म-कथा, निबन्ध, डायरी, पत्र, गीति-काव्य या ऐसी ही और नई साहित्यिक विधाएँ तथा उनकी आकर्षक उपशाखाएं उनके सामने अनन्त वैविध्य और समृद्धि का कोष खोलने लगी। उन्होने बडी दिलचस्पी से शेक्सपीअर और मिल्टन, एडीसन और स्विफ्ट, जॉन्सन, गोल्डस्मिथ और बर्क, वर्डस्वर्थ, शेले, कीट्स, स्कॉट, जेन आस्टीन और मेकाले, डिकन्स और थैकरे की रचनाएं पढी। स्कॉट ने जो स्फूर्ति बगला मे

बकिम और मराठी मे आप्टे को दी थी, वह इन सब उपन्यासकारो ने कन्नड मे वेंकटाचार्य और गळगनाथ को प्रदान की।

शेक्सपीअर ने कन्नड अतुकान्त नाटक, शोकान्तिका और ऐतिहासिक नाटको के निर्माण को प्रभावित किया। यहा तक कि कन्नड पौराणिक नाटको पर भी शेक्सपीअर की रचना का प्रभाव है। गोल्डस्मिथ और शेरीडन ने कन्नड मे 'कामेडी आफ मैनर्स' की उद्भावना की। इब्सन कन्नड सामाजिक नाटको के स्फूर्तिदाता थे, और शॉ विवेचन-प्रधान नाटको के। कन्नड-गीति-नाट्य और सगीतिका भी अग्रेजी साहित्य-परम्परा से विकसित हुई। यद्यपि यह मानना होगा कि कर्नाटक की जन-परम्पराओ मे उनके समान कुछ पहले से ही एक जीवित शक्ति के रूप मे उपस्थित था। पो, हौदर्न और कानन डाइल ने कन्नड कहानी की नामकरण-विधि की। कइयो के नाम न भी दे तो बॉस्वेल और मेकाले कन्नड-जीवनी-लेखको के आदर्श बने। वर्डस्वर्थ के 'दि प्रिल्यूड' और मिल, टाल्सटाय तथा आस्कर वाइल्ड की आत्मकथाओ ने त्रिविक्रम, दिवाकर और मधुर चेन्न-जैसे लेखको को अपनी आत्म-कथाए लिखने के लिए प्रेरित किया। लेम्ब, हैजलिट और दूसरे निबन्धकारो के आत्म-निबन्धो ने गप्पो और 'चमक' नामक सग्रहो के लिए भूमिका बनाई। कोलरिज, आर्नल्ड और ब्रैडले की समालोचनाओ ने कन्नड के आलोचना-साहित्य को दिशा प्रदान की। पैलग्रैव की 'गोल्डन ट्रेजरी' ने कन्नड-काव्य मे नई क्रान्ति पैदा कर दी। बी०एम० श्रीकठय्या-जैसे अग्रेजी के प्रसिद्ध अध्यापक इन भाव-गीतो से आकर्षित हुए और उन्होने उनमे से कई गीतो का कन्नड मे अनुवाद किया। इन अनुवादो के सकलन, काव्य मे नई धारा के प्रवर्त्तक हो गए। उन्होने यह भी सिद्ध किया कि इस रूप मे मानो कन्नड-काव्यो के लिए नए छन्दो का भडार मिलेगा, क्योकि नए कन्नड छन्द अग्रेजी छन्द-शास्त्र से बहुत अधिक प्रभावित है यद्यपि वे मध्ययुगीन छन्द रचना के सहज विस्तार के बीच मे भी माने जा सकते है।

नये साहित्यिक रूपो और हेतुओ का यह प्रभाव आधुनिक कन्नड के लिए असीम अर्थपूर्ण घटना थी, जैसे कि वह अन्य भारतीय साहित्यो के लिए भी रही हो। इसने भारतीय साहित्य को एकदम बदल दिया, मानो समूचे वैज्ञानिक चितन और कर्म मे आणविक शोध ने क्रान्ति कर दी। कन्नड साहित्य की इमारत मे इस घटना ने कई नए कमरे बनवा दिए। जो तरुण साहित्यिक ऊची शिक्षा के लिए इगलैंड या अमरीका गए थे, उन्होने मूल स्रोत से इन प्रभावो को ग्रहण किया और नया रूप-शिल्प आरम्भ किया। उदाहरणार्थ कैलासम् और आद्य के नाटको मे और गोकाक तथा पी० सदाशिवराव की कविता मे।

इगलैंड के साथ सास्कृतिक सम्पर्क या अस्थायी और अ-ललित (अप्लाइड) साहित्य पर भी उतना ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडा। मध्य-युग के प्रारम्भ से पहले मानो भारतीय वैज्ञानिक चिन्तन का विकास रुक गया था। परन्तु हमारे विश्वविद्यालयो मे अँग्रेजी शिक्षा-पद्धति जो शुरू हुई उसके चाहे और कुछ भी दोष रहे हो, किंतु एक बात उसने जरूर की, और वह थी—नये वैज्ञानिक लेखन को बडी प्रेरणा देना। अब कन्नड मे सभी प्रमुख भौतिक और सामाजिक विज्ञानो पर पुस्तके मिलती है। जब कर्नाटक के विश्वविद्यालयो की शिक्षा का माध्यम कन्नड बन जायगा तब इस क्षेत्र मे और भी प्रगति हो सकती है। जब कन्नड वैज्ञानिक और अर्थ-शास्त्र-वेत्ता आगे बढेगे और कन्नड मे वे अपने आविष्कार तथा सृजनात्मक निरीक्षणो को व्यक्त करेगे, तभी एक सच्चा अ-ललित साहित्य भाषा को समृद्ध बनायगा। परन्तु कन्नड-पत्रकारिता एक ऊँचे स्तर पर पहुँच गई है। पत्रकारो की सहिष्णुता और स्वार्थ-त्याग के इतिहास को धन्यवाद है, यद्यपि वह भी अँग्रेजी परम्परा की उपशाखा के नाते शुरू हुई और उसने अँग्रेजी रगत वाली कन्नड भाषा के माध्यम से समाचारो और विचारो को देना शुरू किया। वह पहले हमारी भाषा मे अटपटी शैली जान पडती थी। अब वह अपनी बहार पर आ गई है, जैसा कि भारतीय प्रजातन्त्र भी अब अपने पैरो पर खडा

है। और ये दोनो सब तरह के लोगो तथा कार्य-कलापो पर, इस धरती की भाषा मे, खण्डन-मण्डन कर सकते हैं। बच्चो और निरक्षर प्रौढो के लिए भी नया साहित्य आगे बढ रहा है, जिसमे अनुवाद, अनुकरण और मौलिक सृजन ये तीनो ही प्रक्रियाए (यद्यपि सीधी इसी क्रम से नही) चल रही है।

क्लासिकल पुनर्जागरण

जब हम भारतीय साहित्य पर पश्चिम के प्रभाव की छान-बीन करते है तब हमारे सामने एक विचित्र 'वदतो व्याघात' उपस्थित हो जाता है। एक ओर तो हमे विदेशी आदर्शों मे पूजा की भावना बढती दिखाई देती है और साथ-ही-साथ दूसरी ओर प्राचीन गौरव का पुनर्जागरण भी उसमे मिला हुआ दिखाई देता है। एक ऐसा प्रेरणादायक राष्ट्रीयवाद, जो कि जागरूक मध्यवर्ग पर छा गया था, स्वेज नहर के माध्यम से भारत मे आया। हमने वेदो और उपनिषदो तथा कालिदास, शूद्रक और पाणिनि की सच्ची महत्ता को शोपेनहावर, मैक्समूलर, राइडर और कीथ द्वारा पुन खोजा। गाडविन, मिल और बर्ट्रेण्ड रसेल के माध्यम से हम कई बार ऐसे खतरे के निकट पहुच जाते है कि कही हम वेदो और उपनिषदो को जला न डाले। इस नव जागरण की आत्मा इतनी सर्वव्यापी थी कि कई बार हमे ऐसा अनुभव होने लगा कि कही इस नए आन्दोलन का सार-मात्र पुनर्जागरण ही न हो। बसवप्प शास्त्री ने, जो कि इस नए प्रभाव के सबसे पहले ग्रहणकर्त्ताओ मे से थे और जिन्होने कन्नड मे 'ओथेलो' का अनुवाद किया था, कलिदास के 'शाकुतल' का श्रेष्ठ अनुवाद किया। मुळबागल ने 'उत्तर रामचरित' और तुरमरी ने 'कादम्बरी' का रूपान्तर आधुनिक कन्नड मे प्रस्तुत किया। धीरे-धीरे कन्नड साहित्य मे सस्कृत के श्रेष्ठ ग्रथो के नए अनुवाद एक लम्बी परम्परा के रूप मे चलते रहे और अब वह एकदम भिन्न प्रकार के वातावरण मे पुनर्जीवित किये गए है। कन्नड मे पुराणो के अनुवाद भी हुए।

ऐसा लगता है कि जब हम महान यूरोपीय लेखको की वेदी पर धूप जलाते थे तब उस नई उमग के साथ-साथ यह भी निश्चय करते थे कि हम अपने स्वाभिमान और अपनी उस महान परम्परा को भी न भूलें, जिसे कि हम कुछ समय के लिए भूल गए थे।

विदेशी मिशनरियो ने हमारे प्राचीन की पुनर्प्रतिष्ठा मे बडा योग दिया, यद्यपि उनकी दृष्टि अधिकतर ईसाई-धर्म के प्रचार की ही थी। राइस द्वारा 'दि एपिग्राफिका कर्नाटिका' के प्रकाशन से आधुनिक दृष्टिकोण से ऐतिहासिक अध्ययन शुरू होता है। किटेल की 'कन्नड-इग्लिश डिक्शनरी' ने साहित्यिक जिज्ञासुओ के लिए कन्नड भाषा के उस व्यापक भण्डार को खोल दिया, जो लगभग १५०० वर्षों से वचित था। 'कविचरिते' के खण्डो से आलोचनात्मक और जीवनी-चरित्र-विषयक अध्ययन का आरम्भ हुआ; इसमे कन्नड के साहित्यकारो की जीवनियो और लेखन का ऐतिहासिक अध्ययन है। 'काव्य कळानिधि' के प्रकाशको ने प्राचीन कन्नड-कविता के कोष को पाठको के सन्निकट उपस्थित किया। श्री हलकट्टी ने कन्नड साहित्य के एक मूल्यवान विभाग 'वचन साहित्य' को खोज निकाला। रत्नाकर वर्णी, जो कि प्राय विस्मृति मे खो गए थे, फिर आगे लाए गए और उन्हे अपने उचित स्थान पर कन्नड-काव्य की प्रमुख पक्ति मे प्रतिष्ठित किया गया। सर्वज्ञ और सब हरिदास भी अपने उचित स्थान पर आए। कैक्सटन के छापेखाने ने उसके देश-वासियो की जेबे अत्यधिक सोने से भर दी, यह सही है, परन्तु उसने कन्नड जनता को एक सूत्र मे गुम्फित किया। इसका प्रभाव यह हुआ कि कन्नड जनता भारत के अन्य भाषा-भाषियो की भाति सयुक्त हो गई और वह फिर अपनी पुरानी धरोहर तथा परम्परा से उत्कटतापूर्वक प्रेम करने लगी।

महान साहित्य-परम्परा की यह नव्य जागरित चेतना कन्नड-साहित्य की एक सप्राण घटना थी। बेन्द्रे ने कन्नड सरस्वती को सम्बोधित करके कहा है •

"तुममें योग और भोग दोनो विकम्पित है,
ओ जैन मधुकोष के मधु !
वीरशैव रहस्यवादी आहे भरते रहे
तुम्हारे लिए, ओ उनके आत्मा की प्रेयसी !
ओ गायक सन्तो की नर्तकी,
तुमने उनके आनन्द और अभियोगो को वाणी दी।
मुद्दण्णा के प्रेम और कोमलता को
तुम्हारे इन्द्रधनुपी शब्द पहुँच सके और आशीर्वाद दे सके।
ओ देवी ! अद्भुत सुन्दरी कुमारी !
मेरी अन्तरात्मा से मिल जा !
मै कितनी देर से राह देख रहा हूँ,
गीत, ओह, गीत !"

लोक-कविता का पुनर्जागरण, जिसमे बेन्द्रे और मधुर चेन्न ने बडा महत्त्वपूर्ण भाग लिया, अपने आप मे वीर-गाथाओ और अन्य गीतो के लिए एक प्रेरणा थी। पुराने शिला-लेख और उन वीरो के मृत्यु-लेख खोजे गए जिन्होंने हमारे इतिहास मे बडी देन दी थी। लोक-गाथाओ और कहावतो की भी खोज हुई, और जब वह एकत्रित करके प्रकाशित किये गए तो यह पता लगा कि वह हमारी सस्कृति के कोष है। कन्नड की बोलियो का वैज्ञानिक अध्ययन करके उन स्थल-नामो की खोज हुई, जिन्होने हमारी कविता और नाटको को रगीनी दी। कन्नड साहित्य मे भाषा-विज्ञान-सम्बन्धी खोज इन्ही कार्यो से प्रारम्भ हुई।

आधुनिक भारतीय भाषाओ के परस्पर सहयोग को भारतीय पुनर्जागरण की जिन दो धाराओ के प्रस्फुटन से बल मिला वे पश्चिमीकरण और पुनर्जागरण की धाराएँ थी। कर्नाटक के 'यक्षगान' ने मराठी नाटक के विकास को प्रभावित किया। मराठी उपन्यास ने आप्टे के ऐतिहासिक उपन्यासो के द्वारा कन्नड उपन्यास के विकास को दूसरी ओर मोडा।

महान भारतीय विचारक—जैसे राजा राममोहन राय, महर्षि

दयानन्द, रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानन्द, योगिराज अरविन्द, श्रीमती एनी बेसेण्ट, महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और श्री रमण महर्षि किसी एक प्रान्त या प्रदेश के नही, समूचे भारत के थे। ये विचारक इस नवीन जागरण के, जो कि बहुविध होकर भी एकाकार है, महत्वपूर्ण प्रतीक थे; और देश ने उन्हे इसी प्रकार से ग्रहण किया। उनकी जीवनियो और उनके उद्गारो ने अगणित सुसंस्कृत पुरुषो तथा स्त्रियो के दृष्टिकोण को आकार दिया और देश मे उनमे से प्रत्येक का प्रभाव अपने-अपने ढग से आज भी उतना ही शक्तिशाली है जैसा कि उसके आरम्भ के दिनो मे था। इनके सन्देशो के सम्प्रेषण का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम अँग्रेजी भाषा थी, यथा श्री अरविन्द और पडित नेहरू के लेखन के लिए परोक्ष रूप से और रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा गाँधी जी के लिए अपरोक्ष रूप से, अँग्रेजी का उपयोग बहुत मूल्यवान सिद्ध हुआ।

एक विश्लेषण

पुनर्जागरण का प्रमुख विषय कलाकार की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता और उसकी रचनात्मक प्रेरणा था। कलाकार पुरातत्त्वज्ञो की भाँति भूतकाल को केवल भूतकाल के लिए खोदकर नही निकालना चाहता। जैसे कोई अहकारी यूरोपीय प्रवासी अपने सामान पर सब तरह के लेबल लगाने और उन्हे प्रदर्शित करने मे बड़ा सन्तोष अनुभव करता है, वैसे कलाकार नही चाहता। यथार्थ की उसकी अपनी अन्तरानुभूति और वर्तमान तथा भविष्यत् के उसके अपने अनुमान होते है। यदि वह प्राचीन काल की ओर मुडता है और उसकी समृद्ध परम्परा से स्फूर्ति ग्रहण करता है तो वह भी एक प्रकार से अपने निरीक्षणो को सिद्ध करने के लिए और बल देने के लिए ही। यदि वह आस-पास देखकर और दूसरे देशो की साहित्यिक हलचलो मे रस लेता है तो वह इसीलिए कि उनमे उसे एक समान धर्म, लय तथा उसी प्रकार का स्पन्दन मिलता है। यदि उसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो तो वह इसलिए होता है कि वह

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के कस्तूरीमृग की तरह अपने भीतर की सुगन्धि से मस्त और दिग्भ्रमित होता है। वह अपने जीवन-दृष्टिकोण के विस्तार को ऊर्ध्व तथा समतल दोनो आयामो मे देखता है। आधुनिक भारतीय भाषाओ ने अँग्रेजी साहित्य से इस अद्भुत ढग से ऋण लिया और वे अपने अभूतपूर्व अभियान पर चल पडी। उन्होने अपने प्राचीन स्फूर्ति-स्रोतो का यथेच्छ आस्वादन करके अपनी शक्ति को पुनर्नूतन बनाया, क्योकि जो स्त्री-पुरुष इस काल मे इन भाषाओ को बोलते थे, उन्हे अपना नया जीवन-निर्माण करना था। उनकी अपनी कुछ आकाक्षाए थी, जिनके लिए वे काम करना चाहते थे।

यह नया जीवन क्या था ? यह अब कन्नड जनता के सदर्भ मे परिभाषित किया जा सकता है। उन्नीसवी शताब्दी का प्रथमार्ध उनके लिए विचार और जीवन की नवीन धारा का सामान्य परन्तु महत्त्वपूर्ण आरम्भ था। भाषा का गठन अदृश्य रूप से बदल रहा था और गद्य ने अपने न्याय्य क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाया था।

कन्नड पुस्तको का मुद्रण आरम्भ हो गया था और मैसूर के 'कर्नाटक प्रकाशिका'-जैसे कन्नड पत्र १८६५ मे शुरू हो गए थे। इजील का कन्नड अनुवाद १८२३ मे प्रकाशित हुआ था। दक्षिण कर्नाटक मे मैसूर के राजाश्रय ने कन्नड की साहित्यिक परम्परा को स्थापित करने और चलाने मे बडी सहायता दी। शेष कर्नाटक प्रदेश अगणित शासकीय सुविधाओ वाले टुकडो मे बँटा हुआ था। कन्नड को यहाँ भी केवल अपने अस्तित्व के लिए सघर्ष करना पडा। परन्तु उसने इस कारण से बहुत अधिक प्रभाव ग्रहण किया और वह जल्दी ही जनतत्रात्मक विचार-पद्धति तथा व्यजना सीख सकी। इस काल की रचनाओ मे अनिश्चितता का स्वर और सक्रान्ति का स्पर्श है। परन्तु मध्ययुगीन साहित्यिक परम्परा अक्षुण्ण रही और वह धीरे-धीरे साहित्य-जगत मे अपने अधिकार जमाती रही।

प्रथम अवस्था

उन्नीसवीं शती का उत्तरार्ध नवजीवन की हलचल से स्पंदित है। पश्चिमीकरण की प्रतिक्रिया और पुनर्जागरण इस युग के मुख्य विषय हैं। अनुवादों के द्वारा संस्कृत और अंग्रेज़ी के श्रेष्ठ ग्रंथों का प्रभाव कन्नड में बराबर आता रहा। नाटक, उपन्यास, जीवनियाँ और आलोचना धीरे-धीरे अपने सच्चे रूप में विकसित होने लगे। इन सब विधाओं में उपन्यास सबसे अधिक सुस्थापित था। एम० एस० पुट्टण्ण कन्नड-कथा-साहित्य में वास्तववाद के सबसे पहले महत्त्वपूर्ण प्रवर्त्तक थे। मुद्दण्ण के 'रामाश्वमेध' नामक महाकाव्य के रूप में इस नई चेतना की सौन्दर्यमयी एकल्पना अभिव्यंजित हुई। यह महाकाव्य औपन्यासिक रूप का तथा नया है। इसमें परम्परित जनश्रुति को ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि वह नई लगती है, क्योंकि उनमें एक नया जीवन-दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है। इसके रचयिता मुद्दण्ण और उनकी पत्नी मनोरमा का प्रेम ऐसा ही है जैसा बैनेडिक और बिएट्रिस का। इस युग में कई साहित्यिक पत्रिकाएँ शुरू हुईं और नए साहित्यिक रूप चुपचाप प्रचलित होते गए। शैली, छन्द और कल्पना-चित्रों में भाव-गीत परम्परित अवस्था में थे। नए प्रभाव के कारण ये गीत भी बदलते गए। शरीफ साहब-जैसे प्रतिभाशाली ग्रामीण गायक सूत की मिल की नई विचित्र इमारत को देखकर आश्चर्य करते रहे और उसके प्रति उन्होंने अपनी श्रद्धा व्यक्त की। यद्यपि यह केवल उन्होंने अपने आध्यात्मिक विषय के प्रतीक के रूप में ही किया। इसी युग में ईसाई मिशनरी संस्थाएँ बाइबल के भजनों और धार्मिक गीतों के अनुवाद करती रहीं।

१९०० से १९२० का काल अधिक निश्चित और विविध उपलब्धियों का काल है। बी० रामाराव, आलूर, मुद्दवीडु, मुळिय तिम्मप्पय्य, पंजे मंगेशराव और एस० जी० नरसिंहाचार-जैसे लेखक इस काल में आगे आए। एम० कट्टी, बी० एम० तट्टी, शांतकवि, काव्यानन्द इत्यादि की काव्य-रचनाओं और उपरिलिखित लेखकों की रचनाओं में

आधुनिक कन्नड कविता निश्चित रूप से विकास प्राप्त कर रही थी। एच० नारायणराव और बी० एम० श्रीकठय्य के भावगीत-अनुवाद पहले ही प्रकाशित हो चुके थे। केरूर बडे प्रतिभाशाली अग्रदूत थे और उन्होने बडे अच्छे नाटक, उपन्यास और कहानियाँ लिखी है। पत्रकार तो वह अच्छे थे ही। १९१४ मे कन्नड देश मे साहित्य परिषद की स्थापना के बाद पुरर्जागरण प्रतिष्ठित हुआ।

स्वर्ण युग

१९२० के बाद आधुनिक कन्नड साहित्य अपने स्वर्ण युग मे प्रवेश कर रहा है। सारे कर्नाटक मे गायक पक्षियो के नीड मानो चहचहाने लगे। 'तळिरु' मण्डली बी० एम० श्रीकठय्य, मास्ति और डी० वी० गुण्डप्प के नेतृत्व मे, मगळीर की 'मित्र-मण्डली' पजे और गोविन्द पै के नेतृत्व मे तथा बेन्द्रे के नेतृत्व मे धारवाड का 'गेळेयर गुम्पु'—ये और अन्य दल सारे प्रदेश मे सक्रिय थे एव उन्होने अत्यन्त सुन्दर कविताएँ रची। प्रतिभाशाली छोटे कवि, जैसे के० वी० पुट्टप्प, वी० सीतारमय्य, पु० ति० नरसिंहाचार, राजरत्नम्, कडेगोडलु, मधुर चेन्न और मुगळि इन्ही दलो मे से आगे आए। बेटिगेरी और सेलि ने भी बडी आकर्षक कविताएँ लिखी है। उन्होने ऐसी कविताएँ लिखी, जिनमे कि धरती का प्रेम और जिस युग मे वे थे—उसकी बढती हुई राष्ट्रीयता का पूरा भावलोक व्यक्त हुआ है। प्रगाथा (ओड), विलापिका, गीतिकाव्य, सानेट, गाने और भजन, वर्णनात्मक कविता, खण्ड-काव्य, वीर काव्य, रोमास, दार्शनिक कविता, नाट्य-गीत और स्वगत-भाषण ये और अन्य काव्य-विभाग उत्कट आनन्द और सच्ची प्रेरणा से विकसित किये गए। उन दिनो कई तरह के विशिष्ट उपन्यास लिखे गए, जिनके कई उदाहरण आज भी प्रकाशमान है—बेटिगेरि के 'सुदर्शन' मे सामाजिक शिष्टाचार के उपन्यास, ए० एन० कृष्णराव के 'सध्याराग' में चरित्र-प्रधान उपन्यास, कस्तूरी के 'चक्रदृष्टि' में व्यग्य-प्रधान उपन्यास, देवुडु के 'अतरग' मे

मनोवैज्ञानिक उपन्यास, कारन्त के 'मरळि मण्णिगे' में काल-प्रधान उपन्यास, मुगळि के 'कारण पुरुष' मे समस्या-प्रधान उपन्यास, और आद्य के 'विश्वामित्र सृप्टि' में अचेतन सज्ञा-प्रवाह वाला उपन्यास। कारन्त का 'वेट्टद जीव' आचलिक उपन्यास का एक उत्तम उदाहरण है। वेंटिगेरि, केरूर, मास्ति और के० वि० अय्यर के ऐतिहासिक उपन्यास वडे मनोरजक है। जासूसी उपन्यास अभी अपटु हाथो मे ही है। ए० एन० कृष्णराव के 'नट-सार्वभौम', के० वि० पुट्टप्प के 'कानूर सुव्वम्म' और गोकाक के 'समरसवे जीवन' आदि उपन्यास सम्मिश्र ढग के है।

इस युग मे टी० पी० कैलासम्, हुइलगोळ, गरूड, सस और आद्य आदि नाटको के भी वहुत प्रसिद्ध लेखक हुए। विभिन्न प्रकार के नाटक वडी सफलतापूर्वक लिखे जाने लगे—पौराणिक नाटक (गरूड का 'पादुका पट्टाभिषेक' और सि० के० वेंकटरामय्य का 'मण्डोदरी'), ऐतिहासिक नाटक (संस का 'सुगुण-गम्भीर' और मास्ति का 'ताळीकोटे'), सामाजिक नाटक (हुइलगोळ के 'शिक्षण-सभ्रम', कैलासम् के 'होमरूल' और आद्य के 'हरिजन्वार')। और व्यग्य-नाटक (कारन्त के 'गर्भगुडी' और मुगळि के 'नामवारी')। तीखी ट्रेजेडी के लिए सस के नाटक और कैलासम् के 'कौन दोषी है?'—जैसे नाटको की ओर हमे जाना चाहिए। रोमाटिक सुखान्त नाटको के लिए गोकाक के 'युगान्तर'-जैसे नाटक पठनीय है। कैलासम्, आद्य और वेन्द्रे एकाकी नाटको के अधिकारी लेखक है। गीति-काव्य का अपना विशेष इतिहास है, जिसमें 'श्री' के 'अश्वत्थामन' और के० वि० राघवाचार के 'एण्टीगोनी' (प्राचीन यूनानी से सीधे अनूदित), अतुकान्त पद्य-नाटक जैसे शेक्सपीअर के पुट्टप्प और डी०वी०जी० द्वारा रूपान्तरित और मास्ति के 'यशोधरा,' 'तिरुपाणि' और पु० ति० नरसिंहाचार का 'अहल्या'-जैसा सगीत-रूपक और कारन्त के 'सौमिय सौभाग्य' और 'यारो अन्दरु' (किसी ने कहा था) जैसे शोकान्त तथा सुखान्त ऑपेरा आदि। अतुकान्त पद्य कन्नड के

'रगळे' छन्द मे से एक-से मिलते-जुलते है और इसी कारण नाट्य-लेखन के लिए अत्यत आवश्यक अतुकान्त पद्य बडी सरलता से कन्नड मे प्रचलित हो गए ।

कहानी आधुनिक साहित्य-विधाओ मे सबसे लोकप्रिय है । मास्ति कन्नड कहानी के पिता थे और उन्होने दार्शनिक कहानियो (जैसे 'सारि-पुत्र के अन्तिम दिन'), देशभक्तिपूर्ण कहानियो (जैसे 'वसुमती'), ऐतिहासिक कहानियो (जैसे 'निजगल की रानी'), ग्रामीण जीवन की कहानियो (मोसरिन मगम्म) और गीतिकाव्यात्मक कहानियो (जैसे 'यह इन्दिरा है या नही') मे कई उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत किये । बेटिगेरि, आनद, गरूड, गोपालकृष्णराव, कृष्णकुमार, श्रीमती गौरम्मा आदि कई अन्य लेखको ने कहानी को समृद्ध करके उसके क्षेत्र को घटना और चरित्र, भावना और विचार, वातावरण और मनोविज्ञान आदि दिशाओ मे व्यापक बनाया ।

निबन्ध आधुनिक कन्नड-साहित्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण विभाग है । इसका आरम्भ बहुत पहले टीका-व्याख्या और पत्र-पत्रिकाओ द्वारा हुआ । परन्तु व्यक्तिगत निबन्ध 'गप्पे' और 'चमक'—जैसे निबन्धो के सग्रह से ही आगे बढा और अब उसमे विविधता और व्यापकता भी कुछ सग्रहो मे मिलती है, जैसे—ए०एन० मूर्तिराव का 'हगलुगनसुगळु' (दिवा-स्वप्न), नारायण भट्ट का 'उपन्यासगळु, एन०के० कुलकर्णी का 'मुगैल पुटिगे' और आद्य का 'स्वारस्य' । एस० कृष्णशर्मा और बेन्द्रे के 'रेखा-चित्र', टी० एन० श्रीकठय्य और ए० एन० कृष्णराव के 'आलोचनात्मक निबध,' पुट्टप्प के 'वर्णनात्मक निबन्ध', 'भावना चित्रगळु' मे पु० ति० न० के 'कथात्मक निबध', और गोकाक के 'पत्रात्मक और भौगोलिक-सास्कृतिक निबध' मोटे तौर पर यह दर्शाते है कि इस क्षेत्र मे कितनी और कैसे उपलब्धियाँ हुई । हमारे साहित्य मे डी०वी० गुण्डप्प के 'गोखले'-जैसे क्लासिकल जीवन-चित्र है और पुटटप्प के 'विवेकानन्द'-जैसे रोमाटिक जीवन-चित्र भी है । कन्नड मे आत्म-कथा के विविध रूप मधुर चेन्न के

'प्रेल्यूड'-जैसे आध्यात्मिक, राजरत्नम् के 'दस वर्ष'-जैसे साहित्यिक, गोकाक के 'सौंदर्य स्वरूप'-जैसे सौंदर्यात्मक, और दिवाकर के 'सेरेमने'-जैसे मुख्यत. राजनयिक मिलते है। साहित्यिक रूप की नई डायरी का उत्तम उदाहरण गोकाक के 'समुद्र पार से' और अश्वत्थानरायणराव के 'मुक्ति का मूल्य' में मिलते है। वी० सीतारामय्य, गोसावि, मान्वि आदि ने बडे मनोरजक प्रवास-वर्णन लिखे है। इस काल में साहित्यिक आलोचना अधिकतर प्राचीन आन्दोलन के घोषणा-पत्र को परिभाषित करने के रूप मे है। उसमें नवीन कन्नड साहित्य की विशाल समृद्धि का नया अर्थ और यूरोपीय साहित्य को सजीवन देने वाले आदर्श की विवेचना है। उसमें प्राचीन और नवीन का सम्मिलन है। इस सदर्भ मे टी०एन० श्रीकठय्य के 'भारतीय काव्य मीमासे', मुगळि का 'कन्नड साहित्य चरित्रे', कृष्णमूर्ति के 'ध्वन्यालोक' अनुवाद और टीका और कर्की के 'छन्दोविकास' का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। पिछले पृष्ठो मे उल्लिखित कई लेखको ने साहित्यिक समालोचना में भी योगदान दिया है। कई समालोचको जैसे माळवाड और रगण्ण ने भी इस क्षेत्र को समृद्ध बनाया। बसवनाळ और कुदणगार-जैसे विद्वानो ने प्राचीन कन्नड के श्रेष्ठ ग्रथो के शास्त्रीय पाठ शुद्ध सस्करण प्रकाशित किये। कुछ प्रसिद्ध साहित्यिको के सम्मान मे प्रकाशित अभिनदन-ग्रथो मे भी कन्नड-साहित्य-समीक्षा की मूल्यवान सामग्री देखने को मिलती है। वस्तुत. यह कहा जा सकता है कि उनमें से कइयो ने एक से अधिक साहित्यिक विधाओ में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

१९३९ और बाद

अगली धारा १९३९ के लगभग शुरू हुई। उसी वर्ष दूसरा महायुद्ध भी छिड गया और सन्' ३० में जिस 'प्रगतिशील' आन्दोलन का सूत्रपात हुआ था वह इस समय तक और भी जोर पकड गया, और इस युग के साहित्य पर उसने बडा गहरा प्रभाव डाला। वह मानो नवीन

तरुण साहित्यिक पीढी के उदय का एक धुरी-बिन्दु बन गया । 'रसऋषि' इस नवीन चेतना को सिद्ध करने वाले गीतो का सकलन था । पहले समय के लेखक भी बराबर लिख रहे थे और कुछ नवीन दिशाओ में उन्होंने नेतृत्व भी किया । तभी भारत मे सन'४२ का 'भारत छोडो आन्दोलन', १९४७ मे 'स्वतन्त्रता का आगमन', साम्प्रदायिक दगे, भारतीय रियासतो का विलीनीकरण, गाधी जी का खून, गोआ का मुक्ति-आन्दोलन और भारत मे भाषावार प्रदेशो का पुनर्गठन आदि अनेक नाटकीय घटनाएँ घटित हुई । नवीन साहित्यिक पीढी इस वातावरण की छाया और प्रकाश मे बढी । पुरानी पीढी के लेखको ने इन स्थितियो पर एक विकसित कला और परिपक्व दृष्टि से ध्यान दिया । परन्तु तरुण लेखक उनकी ओर नई ताजगी और उत्कटता से देखकर मानसिक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते थे ।

कविता के क्षेत्र मे और नई शक्ति आई । के० नरसिंहस्वामि अडिग, श्रीधर, कणवि, एक्कुण्डि, किन्निगोळि, शर्मा और अन्यो ने गीति-काव्य मे नई सवेदना फूंकी । लम्बी कविता मे कई तरह की विशेषताओ और विविधता की उपलब्धि हुई । पुट्टप्प ने अपनी 'रामायण'* पूरी की । डी० वी० गुडप्प ने 'कग्ग' नाम से पद्य मे अपने विश्वासो की दार्शनिक प्रस्तावना प्रकाशित की । मास्ति ने 'नवरात्रि' के नाम से अपना कथाचक्र प्रस्तुत किया, जो कि अँग्रेजी कवि चॉसर की कैंटरबरी कहानियो की तरह से था । बेन्द्रे की 'सखी गीता' मे रोमाटिक महाकाव्य की पूरी मस्ती और मुक्ति है । गोविन्द पै की ईसा और बुद्ध पर लिखी कविता ऐसी ही 'घटना' है जैसी कि आर्नल्ड का 'सोहराव रुस्तम' । 'विनायक' की गीत-सरणि 'बाळदेगुलदल्लि' भारतीय पुनर्जागरण का शिल्पमय प्रकटीकरण है । अडिग की 'कन्दर' और 'गोदलपुर' ऐसी नई रचनाएँ थी, जैसी टी० एस० इलियट की 'दि वेस्ट लैंड' । 'विनायक' के 'समुद्र-गीतो' ने कविता मे मुक्त-छन्द और नई विषय-वस्तु आरम्भ की । रचना का रोमाटिक ढग, चाहे वह लोक-गीतो के रूप मे हुआ या अन्य रूपो

---

* यह एक तुकान्त महाकाव्य है, जिसे साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला है ।

मे, कविता मे सुप्रतिष्ठित हो गया था। अत. नए काव्य-प्रयत्नों के लिए, नई शैली और कल्पना-चित्र, नए छन्द और रचना-विधान अत्यन्त आवश्यक थे। आधुनिक टेकनीक मे बहुत-कुछ आशा दिखाई दी। विनायक, अडिग, शर्मा, शिवरुद्रप्प, कणवि और अन्य इन रास्तो पर साहस के साथ चल पड़े। आधुनिकतावादी रास्ता काव्य लिखने के अनेक रास्तो मे से एक है और उन आधनिकतावादियो मे भी कई रास्ते और है। अब इन सबका अन्वेषण हो रहा है।

१९३९ मे विविध साहित्य-प्रकारो मे क्या और कितनी उपलब्धियाँ हुईं, उनका लेखा-जोखा देने के लिए यहाँ स्थान नही है। परन्तु साहित्य के क्षेत्र मे मिर्जी, कट्टीमनि, इनामदार, कुळकुन्द शिवराव, त० रा० सुब्बराव, के० टी० पुराणिक और हेगडे आदि कुछ नए नामो का उल्लेख किया जा सकता है। इन मे से कुछ लेखको ने छोटी कहानियाँ भी लिखी है, जिनके साथ हुइलगोळ और अनन्तमूर्ति और वरगिरि-जैसे लेखक प्रसिद्ध है। नाटक के क्षेत्र मे पर्वतवाणि, एल० जे० बेन्द्रे, एन० के० कुलकर्णी आदि कुछ नए नाम है। नाडिग, गदगकर और वाडप्पि ने आत्म-निबन्धो को आगे बढाया। के० कृष्णमूर्ति, के० नरसिहमूर्ति और कइयो ने साहित्य-समालोचन मे योग दिया।

द्वितीय महायुद्ध की पार्श्वभूमि मे कई उपन्यास और कहानियाँ लिखी गई है। वे कविता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण विषय थे। गोविंद पै कहते है, जब तक मानव मानवतापूर्ण रहेगा तब तक युद्ध-भूमि शाति की माता रहेगी। इचल कहते हे, यह महायुद्ध इसी धरती पर हुआ, जहाँ ईसा, बुद्ध और बसव ने अपना शाति-मन्त्र प्रचारित किया। 'विनायक' ने 'असुर' मे हिटलर के साथ कवि के एक काल्पनिक इटरव्यू का वर्णन करके आसुरी प्रवृत्तियो का अर्थ दिया है। चित्ताल ने हिरोशिमा मे हुए कत्ले-आम के बारे मे बहुत ही तीखी करुणा से लिखा है और कस्तूरी ने अणु-अस्त्रो का मजाक उड़ाया है। हास्य-वीर-रस-मिश्रित छन्दो मे श्री राव ने युद्ध का महत्त्वपूर्ण वर्णन पद्य मे दिया है।

'भारत छोडो आन्दोलन' इनामदार और कट्टीमनि के उपन्यासो मे प्रभावशाली ढग से व्यक्त हुआ है। वी० सीतारामय्य एक शक्तिशाली प्रगाथ मे इस बडे आन्दोलन का वर्णन इस प्रकार करते है

"यह जनता !
इसके आगे बढने वाले अभियान को कौन रोक सकता है ?
इसकी असीम आशाओ को कौन सीमा मे बाँध सकता है ?
ऊँचे-ऊँचे मदिर ऊपर उठेगे ।
अपने शिखर वे आकाश की नीलिमा तक उठायँगे ।
ये लोग नक्षत्रो के चमकीले प्रकार पर खिलखिलायँगे ।
अनाप हवाओ को ये नाप लेगे ।"

राव ने एक लम्बी कविता मे नेताजी सुभाषचद्र बोस की आजाद हिन्द फौज की विजय का वर्णन किया है। १९४३ के बगाल के अकाल ने कन्नड मे कई कहानियो और उपन्यासो (जैसे मुगळि के 'अन्न' इत्यादि) को प्रेरणा दी। उसी समय गोविन्द पै ने एक कविता मे लिखा

"समृद्ध होने पर भी हम भूख से मर रहे हैं ।
जीवन होने पर भी हम लोग मुर्दो की तरह जी रहे हैं ।"

आजादी आने के साथ-साथ सभी हृदय स्पन्दित हो उठे। हर कवि ने मानो साहसी गाने लिखे। उपन्यासो और नाटको ने भी कविता के साथ स्पर्धा शुरू की। इस घटना मे सभी विधाओ मे विजयोल्लास और भाव-व्यजना की गई—जैसे आद्य का नाटक 'शोकचक्र'। दक्षिण कन्नड के कवियो ने 'उद्घोष' नाम से एक कविता-सग्रह प्रकाशित किया, जिसमें स्वतत्रता-प्राप्ति का आनन्द मनाया गया। परन्तु इस आनन्द की भावना के साथ-ही-साथ स्वप्न-भग की छाया भी गहरी हुई। विनायक ने भारत माता को दु ख के साथ दो चेहरे वाली देवी जेनस के रूप में देखा है .

"ओ दो रूपो की पीडा,
ओ दो जीवन और दो प्रेम की !"

यह एक उभला हुआ रास्ता है, यह रास्ता एक के दो बनने का है !

गाँधीजी के जन्म-दिन के अवसर पर बेंद्रे ने लिखा "कम-से-कम आज के दिन हम सच बोलें। बाकी साल-भर तो हम झूठ को पूरी तरह देते ही हैं।" चित्ताल ने लिखा : "सडक की बत्तियो पर दीपक लटकाकर आजादी के आने की घोषणा कर रहे हैं, पर साथ-ही-साथ मैं कैसे भूलूं यह राक्षस-जैसी चिमनी, जिसमें से काला धुआँ निकल रहा है और जो आदमी को इस तरह खा रहा है, जैसे ईंधन हो।"

गाँधीजी की हत्या के कारण लोगो की चेतना जागी और उनमे एक नया मूल्य-भाव उत्प्रेरित हुआ। कन्नड कवियो ने राष्ट्र-पिता को अपनी श्रद्धाजलि एक मार्मिक गीत-सग्रह के रूप मे अर्पित की। 'हेमत' ने देश की एकता के स्थपति वल्लभभाई पटेल पर एक हृदयस्पर्शी विलापिका लिखी। कवि धीरे-धीरे रचनात्मक और विधायक काम के मत्र की ओर मुडे, क्योकि इस सारी निराशा में से वही एक रास्ता था। अडिग ने लिखा है "ओ मित्र, अभी भी यहाँ वह बगीचा है, जिसमे आशाएँ अकुरित होती हैं। इन काँटो और पत्थरो के नीचे बडी समृद्ध जमीन है, उसमें कई फव्वारो और झरनो का खेल छिपा है।"

विनायक ने कल्पना की है कि भारत माता कह रही है :

"इसके लिए सतो ने मानव अवतार लिया।
विश्वास करो इस पर, मेरे बच्चो।
देश से दरिद्रता के दुख को बाहर करो!
समानता और समदृष्टि को सिंहासन पर आसीन करो!
तब कहीं जाकर स्वतन्त्रता की यह शाख जिसे तुमने आज यहाँ बोया है—
फिर स्वतन्त्रा का सही अर्थ देगी और प्रकाश-पुष्पो मे खिल उठेगी।"

नए आन्दोलन का मूल तत्त्व

नए युग की मनोवृत्ति के उदाहरण के रूप मे मैंने अधिकतर कविता को ही चुना। साहित्य के अन्य विभागो मे भी काफी काम किया गया

है। अब इस अध्याय का शेष अश, मै जीवन और विचारो के इस नए आन्दोलन के मूल तत्त्व के विवेचन के लिए देना चाहता हूँ, जो अपनी सपूर्णता मे पुनर्जागरण कहलाता है।

जिन व्यक्तियो ने यह साहित्य निर्मित किया या कर रहे है उनके विविध सिद्धान्त और मान्यताएँ है। उनमे हिंदू है, उत्तगी-जैसे ईसाई है, अकवर अली-जैसे मुस्लिम है। उनमे जैन, लिंगायत, ब्राह्मण ओक्कलिग रेड्डी आदि है। उनकी शिक्षा भी अलग ढग से हुई है। यदि शरीफ साहव को कन्नड अक्षरो का ज़रा-सा ज्ञान था तो 'कैलासम्'-जैसो को सर्वोत्तम अग्रेज़ी विश्वविद्यालयो की वहुत अच्छी शिक्षा भी उपलब्ध हुई थी। बि० के० लक्ष्मेश्वर-जैसे प्राथमिक शालाओ के अध्यापक भी उनमे है, वसवनाळ-जैसे माध्यमिक शालाओ के अध्यापक, होन्नापूरमठ-जैसे वकील, देसाई दत्तमूर्ति-जैसे क्लर्क, मुद्दण्ण-जैसे ड्रिल मास्टर और गोविंद पै-जैसे जमीदार। उनमे मिशनरी, पुरोहित, स्वामी और मठाधीश भी है, उनमे पत्रकार है, वेकट शेट्टी और वालि-जैसे दुकानदार है, पजे मगेशराव-जैसे शिक्षा-विभाग के इस्पेक्टर है, विश्वविद्यालय के अध्यापक है।(जो कि आज लेखको का एक वहुत वडा वर्ग है) मास्ति-जैसे सिविलियन है, और शिवराम-जैसे चिकित्सक है, सिद्दवनहळ्ळि कृष्णशर्मा-जैसे राजनीतिक कार्यकर्ता और आन्दोलनकर्ता भी है, जिनमे से कुछ वडी ऊची महत्त्वपूर्ण जगहो पर है—जैसे विहार के भूतपूर्व राज्यपाल आर० आर० दिवाकर। कन्नड साहित्य का गणतत्र चॉसर की कॅटरवरी कहानियो के तीर्थयात्रियो की तरह, कई तरह के और कई विश्वासो के लेखको का एक पँचमेल है। हवा ज़ोरो से और हल्की दोनो तरह से वहती है, और अपने स्पर्श से सैलानी गायको के होठो मे और साथ-ही-साथ गभीर विद्वानो की वाणी मे अमर उत्साह पैदा करती है। कुछ लोगो ने साहित्य को अपना व्यवसाय वना लिया है, जैसे कारत और ए० एन० कृष्णराव ने।

नवीन लेखन के कई महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तो में एक आत्माभिव्यजना है। मनुष्य की व्यक्तित्व की पवित्रता पर उसका आग्रह है। लेखको के लिए

यह नया साक्षात्कार था कि साहित्य व्यक्तित्व की अभिव्यंजना होकर स्वयं पूर्ण होता है। इस खोज ने नए लेखकों को उन्मत्त कर दिया। गीत और निबंध, उपन्यास और नाटक इत्यादि भी इसी व्यक्तिवाद के सम्प्रदाय का गुणगान करने लगे। बहुत हाल में, कवि अब सचेष्ट होकर इस विषय के दूसरे पहलू की ओर मुड़े हैं, साहित्य व्यक्तिवाद से पलायन भी है, वह विश्व-मानव की अभिव्यंजना है। कलाकार के हृदय में भावों की जो शोभा-यात्रा चल रही है, उसकी ही व्यंजना काफ़ी नहीं है, बल्कि कलाकार में जो विश्व-मानव छिपा हुआ है, उसकी व्यञ्जना भी आवश्यक है।

इन लेखकों ने प्रकृति को नई आंखों से देखा। आधुनिक काल के आरम्भ तक के कन्नड साहित्य में 'जोग' नामक विश्व-विख्यात जल-प्रपात पर कोई काव्य-रचना नहीं हुई थी, यह एक आश्चर्य की बात है। परन्तु आधुनिक कन्नड में उस प्रपात की ध्वनि और लय भरपूर गुंजित हुई। आधुनिक कन्नड कविता में प्रकृति के प्रति रोमांटिक दृष्टिकोण पूरी तरह से व्यक्त हुआ है। प्रत्येक सुन्दर दृश्य कन्नड कल्पना-जगत का एक भाव बन रहा है। कर्नाटक की कला और स्थापत्य कई गीत और निबन्धों के विषय बने। पुट्टप्प के उल्लासमय गीत 'सह्याद्रि' के विषय में हैं, बेन्द्रे ने उष:काल और शांति के प्रतीक प्रयुक्त किये हैं, सीतारामय्य ने खुले रास्ते और फ़व्वारों से भरे सरोवर पर गीत लिखे हैं, 'विनायक' ने समुद्र की भव्यता और भयानकता व्यक्त की है, और पु० ति० नरसिंहाचार ने कृत्तिका का वर्णन एक अमर प्रश्न की तरह किया है, जो कि आकाश के अवकाश में भटकता रहता है। कन्नड कविता में कारखाने की आवाज़ और टर्बाइन के विद्युत्-इञ्जन की ध्वनि भी सुनाई देने लगती है। यह कहना आवश्यक नहीं कि इन विषयों पर नई साहित्यिक विधाओं में भी बहुत-कुछ लिखा गया है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण स्वर राष्ट्रीयता का है। बेन्द्रे का 'तेंतीस करोड़ों का गीत' एक उदात्त सामूहिक संगीतयुक्त रचना है। उनकी 'स्वप्न में दृश्य'

नामक कविता मे एक व्यक्ति है, जो स्वप्न मे अपनी उस माता को पहचानता है जो कि इस देश की आत्मा है, और जब वह यह माँग रखती है कि : "तुम सिद्ध करो, यदि तुम मनुष्य हो तो मेरी वेदी पर अपना बलिदान करो !" तब वह भय से घबराकर जाग पडता है। उनकी कविता 'तरुण सन्यासी' मे यह विषय है कि आन्तरिक मुक्ति वाह्य मुक्ति की पहली आवश्यकता है। परम्परित प्रेम-विषयक वृत्ति वासनामय, सौन्दर्यमय अथवा नैतिक अधिक थी, आध्यात्मिक कम। परन्तु अब कई उपन्यासो, नाटको और कविताओ मे प्रेम का अर्थ है, एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति की आत्मा की पहचान और खोज। स्त्री और पुरुष-सबधी कविता लिखी जा रही है, जिसमे विविध प्रकार के अगणित मानवीय चरित्रो का चित्रण है। सामाजिक न्याय की कविता और भी मार्मिक है। बेन्द्रे के 'भोजन के एक कौर की झोली' नामक भावपूर्ण गीत मे भारत के मूक लाखो जनो की व्यथा है। उनकी 'अघा सोना नाच रहा था' नाटक-कविता पूंजीवाद पर एक प्रखर अभियोग है

> "उस (सोने) ने मन्दिरो मे घण्टियो को टन-टन बजाना शुरू किया।
> उसने महलो मे वायलिन और वीणा मे कोमल राग भर दिये।
> उसने बाजारो मे सिक्के के झोले खनखनाते हुए छोड दिए।
> पागलो की तरह, भ्रमित की तरह नाचते हुए,
> धरती पर चित्त होकर वह गिर पडा,
> जब कि यह खेल चरम सीमा पर था।"

राजरत्नम् के 'रत्न के पद' कन्नड के बोलचाल के मुहावरो का प्रभावशाली उपयोग करते है और समाज मे जो विषमता तथा अन्याय फैला है उनका दम्भ-स्फोट करते है। 'तिरुपाणि' नामक गीति-नाट्य मे मास्ति ने एक हरिजन सन्त की शुद्धि का विषय लिया है, और अस्पृश्यता के विषय पर 'जलगार' और 'उद्धार' नामक सशक्त नाटक एव 'चोमनदुडी' नामक उपन्यास लिखे गए है। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति से भी

कन्नड कविता बहुत उद्वेलित हुई और उसने पुट्टप्प की 'कोकिल और सोवियत रूस'-जैसी कविता मे भविष्यवाणी की और बेन्द्रे ने 'रुद्रवीणा' मे लिखा .

"पृथ्वी मे ज्वालामुखी फूट पडा है ।
पर्वत टूट रहे है ।
चट्टानो के बाँध झरनो को व्यर्थ ही बाँध रहे है
लाल मिट्टी बेकार ही उछाल रहे है ।
न्यायासन उलट गया है
राजाओ के सिंहासन शव-पात्र बन गए है
मन की उथल-पुथल के पीछे
जाति और वर्ण लौटकर आ रहे है ।"

गीतो, कहानियो, उपन्यासो और नाटको मे से भी आध्यात्मिक कल्पनाएँ प्रमुखता से आगे आ रही है । 'श्री' की 'शुक्र-गीता', मधुर चेन्न की 'मेरी प्रेयसी' और बेन्द्रे की 'जीवन की तलवार'-जैसी कविताएँ, मास्ति के 'उषा'-जैसे एकाकी, गोकाक के 'समरसता ही जीवन है'-जैसे उपन्यास मे, कारन्त के 'मुक्तद्वार'-जैसे सगीत-रूपको मे इस प्रवृत्ति का प्रमाण है । पुनर्जागरण का एक प्रमुख लक्षण इस तरह के रुझान है ।

पौराणिक विषयो और पात्रो का मानवीकरण दूसरा महत्त्वपूर्ण विषय है । कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि पुराणो के खलनायक, जैसे 'रावण' का पक्ष भी समर्थनीय बना है, जैसे पुट्टप्प की 'रामायण' में, सी०के० वेंकटरामय्य के 'मन्डोदरी' मे, या आद्य के 'निरुत्तर कुमार' मे उत्तर कुमार का । आधुनिक कन्नड कविता, उपन्यास, नाटक और अन्य रूपो मे कला तथा प्रेरणा के विषय में विचार एक महत्त्वपूर्ण विषय रहा है । मास्ति के 'सुब्बण्ण', ए० एन० कृष्णराव के 'सध्याराग', गोकाक के 'कलोपासक' और 'विमर्शक वैद्य', कैलासम् के 'शूर्पणखा', आद्य के 'पूर्वरग' और 'सम्पुष्ट रामायण' तथा पु० ति० नरसिंहाचार के 'रस सरस्वती' आदि इस दिशा में कुछ उदाहरण है ।

आठ सहायक उप-नदियाँ

आधुनिक कन्नड साहित्य के सगम मे कई नदियाँ आकर मिलती है। ये धाराएँ सभी आधुनिक साहित्यो मे पाई जाती है और वे इस वात का उदाहरण है कि भारतीय पुनर्जागरण कितना विविध और समृद्ध रहा है। नये युग के साथ-साथ इनमे से कुछ धाराएँ अधिक सक्रिय बनी है। कुछ धाराओ का वल वढता गया। ऐसा भी लगता है कि कुछ धाराएँ एक-दूसरे के विरोध मे है। परन्तु जीवन का यह लक्षण है कि वह परस्पर-विरोधी चीजो को अपना लेता है और उनसे ऊपर उठता है तथा विरोध मे अविरोध पैदा करता है। सगम-स्थान पर उन्हे देखने से यह पता लगता है कि इस नई धारा की जटिलता एव सर्वव्यापी एकता कहाँ है।

सबसे पहले व्यग्य लेखको का या यथार्थवादियो का दल है। इनके मन मे कई आदर्श छिपे हुए है और उसीके प्रकाश मे वे मानवीय अपूर्णताओं को परखते और उनकी निन्दा करते है। ये एक तरह से उलटे हुए कवि है। कैलासम्, कारन्त, कस्तूरि, बीचि, आद्य, अडिग, कट्टीमनि और वि० जी० भट्ट-जैसे लेखक हमारी महान मूर्खताओ और अधश्रद्धाओ पर हँसते है। हमारे दैनिक जीवन के ढोग और ढकोसलो का वे पर्दाफाश करते है। हमारी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक सस्थाओ के झूठे विश्वासो और खोखलेपन को वे खोलकर रखते है। वे युटोपिया के ढग की कागज की नौकाएँ नही चलाना चाहते, किन्तु वे साथ-ही-साथ, अपने-अपने ढग से, रूढिवादी या रूढि-विरोधी व्यक्तित्व के भीतर छिपी हुई कोमलता, अच्छाई और मधुर समझदारी भी व्यक्त करते है। इस दृष्टि से वे सब मानवतावादी है। अन्य धाराओ के लेखक भी यथार्थवादी लेखको के इन विश्वासो के समान ही है। परन्तु इनके व्यक्तित्व का मुख्य झुकाव या प्रेय इतना ही नही है, इनमे से कुछ यथार्थवादी डी० एच० लारेंस या आरम्भिक टी० एस० इलियट के ढग पर घोर शोक, विध्वस तथा अभिशाप की भविष्यवाणी व्यक्त करते है। उनकी कराहे या निराशाभरी चीखे कभी-कभी अग्रेजी आधुनिकतावादियो की लय, स्वरा-

घात और विराम-चिह्नो को भी पकडती हुई चलती है। भारत मे जब कि इतने दु ख-दैन्य पहले से है तब बाहरी लेखको से भारतीय लेखको को दु खी, सशयात्मा या क्रोधी होना सीखना आवश्यक नही है। कन्नड उपन्यास और नाटक हमारे सामाजिक जीवन की विषमता पर तीखा प्रकाश डालते है। बेन्द्रे के 'हास्य की झड़ी' नाटक मे नायिका ने विवाह के बारे मे यह कहा है "अगर यह सच हो कि विवाहिता को ही मुक्ति मिलती है, तो उसकी आत्मा स्वर्ग मे पहुँचे, इसका कोई मूल्य नही। यदि उसकी आत्मा नरक मे सदा के लिए बन्द रहे तो उसमे उसे सुख मिलेगा। क्योकि यदि स्त्री का पुनर्जन्म हुआ तो न तो उसे या उसके माता-पिताओ को कभी शान्ति मिलेगी।" आद्य को तो विवाह मे 'अश्वमेध'-जैसी कठिनाइयाँ जान पडती है "यहाँ इस पृथ्वी पर वेकप्पा की पुत्री यह कमला है। इस समय इस यज्ञ का अवसर उसके विवाह का प्रसंग है। जो व्यक्ति उसका चिरन्तन यजमान बनना चाहे, वह उसे राह मे रोके और उससे शादी कर ले।" सास, विधवा, पढी-लिखी लडकी, सयुक्त परिवार, वेश्या-व्यवसाय, प्रौढ कुमारिका ये सब कई उपन्यास और नाटको के विषय बने है। कैलासम् के 'खोखले और ठोस', आद्य के 'सरस्वती की सरकस' और एन० के० कुलकर्णी के 'बार रूम' मे आज की शिक्षा की समस्या है। बेन्द्रे ने 'मृत्यु के नाटक' मे सामन्तवाद पर अभियोग लगाया है और कैलासम् ने 'होमरूल' नाटक मे मूर्खो के प्रजातत्र का मजाक उडया है, जैसे कि म्यूनिसिपल काउसलर लोगो के लिए यह नियम उस नाटक मे है . "अगर और जब चुने जायँ तो दो काउसलर कभी भी उसी एक गली मे न रहे। इससे करदाता को यह आश्वासन मिल जायगा कि कम-से-कम शहर की एक से अधिक गलियाँ साफ रहेगी, जितने काउसलर कारपोरेशन मे होगे उतनी ही गलियाँ साफ रहेगी।"

फिर एक प्रगतिशील लेखको का दल है जो कि मुख्यत समाज की पुनर्व्यवस्था की समस्या से ही सम्बद्ध है। दिनकर देसाई, एस० दोड्डमनि, आचिक, वेकण्णा और कुळ्ळु कुन्द शिवराव मे एक सशक्त सामाजिक चेतना

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय रूप मे है। उसमे से कुछ तो जबरदस्त प्रचारक है और वे मार्क्सवादी विचारो मे डूबे हुए है। परन्तु मार्क्सवाद स्वय जिन बहुत-से परिवर्तनो मे से गुजरा है, उनमे 'स्तालिनवाद' और 'स्तालिनवाद-विरोध' दो प्रमुख है। कई लेखक अब कल्याण राज्य के आदर्श के प्रति सचेष्ट और समुत्सुक है। गरीब जीवन के असख्य चित्र है, जिनमे समाजवाद के लिए जोरो से अपील की जाती है—बेन्द्रे के 'भिखारियो की बुराई', राजरत्नम् के 'नरक या न्याय' और रमाकात के 'कल्कि' इसके प्रमुख उदाहरण है। हमारे कई यथार्थवादियो और व्यग्यकारो ने समाजवाद मे एक निश्चित सम्प्रदाय पा लिया है।

तीसरे कुछ रूढिवादी है, जो कि अपने सुप्रतिष्ठित विश्वास के मूल्य मानते है और अपनी शक्ति तथा समय उन्ही विश्वासो के लिए अर्पित करते है। वे उस सिद्धान्त के साहित्य की खोज और पुनस्र्थापना मे सलग्न है। मठो के स्वामी इस क्षेत्र मे विशेष रूप से सक्रिय है। इस दिशा मे पुराने ग्रथो की टीकाएँ, पाण्डुलिपियो की समालोचना और सम्पादन का महत्त्वपूर्ण कार्य एफ० जी० हळकट्टि और आर० एस० पचमुखि ने किया है। कुछ और लोगो ने भी ऐसे विश्वासो के लिए कार्य किया है, जिनमे उनका जन्म नही हुआ था, जैसे—राजरत्नम् ने बौद्ध धर्म के लिए। परन्तु इस दिशा मे लेखक उतने सृजनात्मक नही है, जितने कि आलोचनात्मक। हमारे-जैसे क्रातिकारी युग मे रूढियो मे विश्वास शायद ही प्रेरणादायक शक्ति हो सके। यदि उनका सम्पर्क अन्य प्रकार के विचारो के साथ उचित रूप से न हो पाय तो दूसरी ओर यह भी डर है कि उनके धार्मिक विश्वास कट्टरपन और बौद्धिक सकीर्णता तक पहुँच सकते है, परन्तु सदियो से कर्नाटक मे विविध प्रकार के विश्वास बराबर साथ-साथ चलते रहे है। इस बारे मे यह प्रदेश सौभाग्यशाली है। जैन, वीरशैव, वैष्णव, श्री वैष्णव और अद्वैतवाद की जडे प्राचीन कन्नड साहित्य मे मिलती है। इस्लाम और ईसाई धर्म की कलमे भी इस वृक्ष पर लगाई गई और वे जमी। इन सब धर्मों के वर्णन के विषय मे जो कार्य हो रहा

है, वह अमूल्य है। वह एक नए संश्लेषण की रचना में उपयोगी सिद्ध होगा, यदि उसमें पारस्परिक स्पर्धा और वाद-विवाद न उत्पन्न हो।

प्रतिष्ठित धर्म और रूढ़िवाद की बुराइयों के कारण लेखकों का एक नया दल आगे आया—यह अद्वैतवादी मानवतावादी हैं। आद्य के 'निरुत्तर कुमार', वी० जी० भट्ट की कविताएँ, शर्मा के 'हृदय गीत' इस धारा के उदाहरण हैं। डी० वी० गुंडप्प भी एक संशयवादी हैं, जिनका झुकाव रहस्यवाद की ओर है। वे 'कग्ग' में अपने संशयवाद का भव्य काव्यात्मक प्रमाण ग्रंथ-रूप में प्रस्तुत करते हैं। वि० सीतारामय्य उस मानवतावादी स्वभाव का विशेष दिग्दर्शन करते हैं जो कि पश्चिम का एक प्रमुख भाग रहा है। इनका स्वभाव कुछ रहस्यवाद की ओर झुका हुआ है। परन्तु पूरी तरह से नहीं। चूँकि इसमें व्यक्तित्व के समर्पण के लिए स्थान नहीं है और यह अधिक बुद्धिवादी है, फ्रायड और युंग के ढंग पर यह अवचेतन और उत्तोलन आदि मानसिक क्रियाओं की खोज में अधिक दिलचस्पी लेते हैं; इन्हें आइनस्टाईन-जैसे वैज्ञानिक के सिद्धान्त से भी अधिक लगाव है। जो भी कारण हो, सीतारामय्य, एस० वि० रंगण्ण, ए० एन० मूर्तिराव और कश्यप-जैसे मानवतावादी लेखकों की रचनाएँ दुर्मिल सुकोमलता और करुणा तथा दृढ़ प्रामाणिकता और सूक्ष्म संवेदनाशीलता से भरी हुई हैं। सीतारामय्य ने कन्नड देश का वर्णन बहुत ही मधुर ढंग से किया है, उन्होंने बड़े सुन्दर परिहास के साथ प्रतिभा के क्षणिक और चंचल आगमन का वर्णन किया है। अंध साम्प्रदायिक उन्माद के समय जब एक विद्यार्थी हिन्दू और मुसलमान दोनों को बचाने में मर गया, उसके प्रति उन्होंने हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की। वह यह भी जानते हैं कि भौतिकी प्रयोग-शाला में प्रकाश के साथ जो प्रयोग किये जाते हैं, जिनसे अशिक्षित का अन्धकार आलोकित होता है, वह शिक्षितों के लिए भी अँधेरे की तरह हो सकते हैं।

लेखकों का एक पाँचवाँ वर्ग ऐसा भी है, जिसका स्वभाव काव्यात्मक-धार्मिक ढंग का है। उनमें मास्ति, पु० ति० नरसिंहाचार, गोविंद पै, देवुडु

सालि, कर्कि, इन्चल और एक्कुडि आदि उल्लेखनीय है। रूढियाँ, मन्दिर, पुराण-गाथाएँ आदि सब उन्हे आकर्षित करती है। लेकिन वह ऐसे अधिकार और अनुभव की सूक्ष्मता के साथ बोलते है कि हमारे हृदय मे घर कर जाते है। उनमे से कुछ अपने विश्वासो के प्रति बहुत मुखर नही है। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी है जिनके हिसाब मे मानवात्मा चेतना का एक प्रकाशमय कण-मात्र नही है, वह मिट्टी मे बसे हुए परमेश्वर का अमर स्फुल्लिग है। इसी दृष्टि मे वे जीवन, प्रकृति और मनुष्य को देखते है।

अब ऐसे भी कुछ लेखक है, जिनका चरम उद्देश्य सौदर्य-जगत मे साहसपूर्ण अभियान ही है। पुट्टप्प और 'आनन्द'-जैसे लेखको के लिए आत्मा का सौदर्य-जगत मे अभियान ही जीवन का अर्थ है, पुट्टप्प का परमात्मा भी सौदर्य है। कला और जीवन का यह सुखद समीकरण ऐसा है कि पुट्टप्प अपने समृद्ध इन्द्रिय-सवेदन मे मजे से रहते है। कलासुन्दरी नामक काल्पनिक देवी की धनुषाकार पलको का अदम्य जादू उनके ऊपर है। उनका सौदर्यवाद साधारण नही है, क्योकि उनमे श्री रामकृष्ण, विवेकानन्द और श्री अरविंद के प्रभाव के लिए भी स्थान है, जैसे कि उनके रूपकात्मक महाकाव्य 'रामायण' मे व्यक्त है।

यह भी आवश्यक है कि नीतिशास्त्रीय, विचारपूर्ण या दार्शनिक लेखन का उल्लेख यहा किया जाय, जिसमें एक विशेष उदात्त सोद्देश्यता है। होन्नापूरमठ, तारानाथ, दिवाकर और बूदिहाळ मठ आदि इस धारा के लेखक है। उनके लेखन का उद्देश्य समाज का नैतिक और बौद्धिक पुनर्जागरण है।

फिर लेखको की एक आस्तिक धारा भी है। श्री अरविंद का प्रभाव भी, जिससे कि पुट्टप्प की रचनाएँ रजित है, इस धारा के लेखको की प्रमुख प्रेरणा है। श्री अरविंद का दर्शन ऐसा है कि उसमे आत्मा और भौतिक जगत, समाज और व्यक्ति, विवेक और अन्तरानुभाव का बहुत सुलझा हुआ समन्वय मिलता है। व्यापक रूप से यह कई मूल्यो को सन्तुलित करता है। बुद्धिवाद और रहस्यवाद, सौदर्यवाद और समाजवाद, कर्म

और ज्ञान-जैसे परस्पर-विरोधी तत्त्वो का वह समाहार करता है। इसके कारण वेन्द्रे, मधुर चेन्न, गोकाक, मुगळि आदि लेखक भी श्री अरविंद की ओर आकर्षित हुए। उनकी चेतना का वैयक्तिक और सामाजिक विकास वाला दूसरा छोर किसी और ढग से परिपूर्ण नही हो सकता था। प्रत्येक की वैयक्तिक प्रतिक्रियाएँ भिन्न-भिन्न रही है। यह सच है कि मधुर चेन्न ने व्यक्तिगत पक्ष को अधिक विकसित किया। उन्होने सोचा कि उनके व्यक्तित्व के भीतर की गहराई मे गीत का मूल्य खोजा जाय :

"बिजली की तरह दूर तक कौंधती हुई,
मै आश्चर्य करता हूँ, ओ चचल, तुम कौन हो ?
यहाँ-वहाँ चमकती, थिरकती हुई
इतनी सुन्दर और चमकीली तुम कौन हो ?"

वेन्द्रे इस द्विविध विकास के विषय मे पहले से ही बहुत सचेत थे। जिस कवि ने यह रोमाटिक कल्पना-चित्र दिया था :

"मेरी हमेशा से इच्छा है
कि मै उस सुकोमल ढेर पर सोऊँ
जहाँ बादलो का तकिया हो और बिलकुल घृणा करूँ
दुःख की स्मृति-मात्र से !"

और जिन्होने ऐसी कविता लिखी, जो कि आन्तरिक चेतना के प्रकाश और रगो से प्रतिभासित थी, उन्होने यह भी लिखा :

"और उन गरीबो की अन्तर्-ध्वनि
जो कि अधभूखे, अधखाए है,
बाढ की तरह से गरजती हुई चुनौती देती हुई आ रही है,
जब कि वे रोटी के लिए चीख रहे है :
ईश्वर को हम ज़मीन में दफना देंगे
और रात के वक्त जब गश्त देगे तब उसकी कब्र पर
जायेंगे !
चीखते हुए मनुष्यों के धर्म और सम्प्रदायो को हम आग

लगा देंगे,
और उस ईश्वर की कब्र पर धूप की तरह जलायँगे।
मृत्यु के घण्टो मे जो आत्मा है उसे हम हिलायंगे
और उनके पीछे-पीछे चीखते हुए पहुँचेगे।
मृत्यु के भय से पागल और उन्मत्त
हम इस धरती का ही एक ग्रास बना लेगे।"

मै यह समझता हूँ कि प्रत्येक भारतीय प्रदेश मे इन आठ दलो के लेखको के समान और भी लेखक मिलेगे, क्योकि भारतीय पुनर्जागरण कही कम, कही ज्यादा, इन सब साँचो मे ढल रहा है। यह एक समृद्ध और बहुमुखी जागरण है, जो कि भारतीयो को विश्व मे अपने सास्कृतिक मिशन को पूरा करने के लिए सक्षम बनायगा, यह निश्चित है, प्रत्येक लेखक के विश्वास उसकी परिस्थितियो से आबद्ध रहते है, उसके वातावरण और रुझान पर भी ध्यान रखना चाहिए। सब प्रकार के विश्वास साहित्य के लिए वहाँ तक सच है जहाँ तक कि वे लेखक के लिए सच है और उसके लेखन को किसी तरह मिथ्या नही कर देते। इस कारण से, वह कौन-सा दर्शन मानता है या किसका प्रचार करता है, इस बात से लेखक को नही जाँचना चाहिए, बल्कि उसे उसकी चेतना मे जो ज्योति जल रही है, उसकी उत्कटता से जाँचना चाहिए। दर्शन तो उस खूंटी की तरह है जिस पर कोई भी टोपी या बहुरगी कोट टाँगा जाता है। महत्त्वपूर्ण वस्तु वह टोपी या कोट है, न कि वह कोई खूंटी या हैंगर।

कुछ अधिक सूक्ष्म विश्लेषण करने पर हमे यह तथ्य मिलेगा कि इन सब धाराओ का परिणाम यह है कि वह मिल-जुलकर एक तथा नया जीवन बना देते है, एक जटिल, व्यक्तिगत और सामाजिक चेतना का निर्माण करते है। यथार्थवाद समाज की नीव को साफ करता है, अज्ञान, भ्रष्टाचार और अन्धविश्वास का बहुत-सा कूडा-करकट जड से बाहर निकालता है; उससे व्यक्ति मे एक प्रकार की सुदृढ प्रामाणिकता और

सचाई जगती है। प्रगतिवाद उसके सही रूप मे एक नवीन समाज का आदर्श सामने रखता है, एक ऐसा समाज, जिसमे यह विश्वास हो कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने सर्वोत्तम सम्पूर्ण विकास का स्वतन्त्र और बेरोक मौका मिले। परम्परावाद परिश्रमपूर्वक हमारे विश्वासो की मूलभूत बातो को खोलकर बतलाता है और कहता है कि हमारी जनता मे कही-न-कही एकता के महत्त्वपूर्ण बीज मौजूद है तथा स्वस्थ सन्देहवाद किसी भी कट्टरपन को नही पनपने देता, और वह हममे यह इच्छा जगाता है कि मुक्त एव खुली आँखो से हम अनुभव ग्रहण करे तथा मानवीय चेतना को उसपर ढाले। नीतिवाद का तर्क है कि एक सुव्यवस्थित सामाजिक आदर्श और व्यक्तिगत अनुशासन हो। मानवतावाद मे हमारी जनता के मस्तिष्क और हृदय की दुर्मिल सवेदनशीलता भरी है। सौदर्यवाद उनमे उसके सब आणविक और विश्वासात्मक रूपो में सौदर्य का प्रेम अकुरित करता है। आस्तिकवाद अस्तित्व की दूसरी ओर ऊँची ऊर्ध्व चेतना की समृद्ध सवेदनशीलता पैदा करता है। यह सिद्ध करता है कि व्यक्ति के विकास की ऊँचाई की कोई सीमा नही है। इच्छामय आत्मा के बदले चेतन आत्मा और इस चेतन आत्मा की ओर भी ऊँची किसी परम स्थिति मे यह विश्वास ले जाता है, और इस प्रकार मनुष्य मे उस शक्ति का रहस्य निर्मित करता है, जिससे कि इस पृथ्वी पर नया स्वर्ग बन गया है। भारतीय पुनर्जागरण का यह एकमात्र उद्देश्य है। साहित्य उसी जागरण की पारदर्शी अभिव्यजना है, इसलिए साहित्य मे भी इन सब मोर्चो पर हलचल दिखाई दे रही है और इन विविध केन्द्रो पर साहित्य सक्रिय हो रहा है। इस सारी विविधता मे एकता है और वह एकता उस नये सर्व-कष सगीत की एकता है, जिससे साहित्य जीवन पाना चाहता है।

यह नही कहा जा सकता कि आधुनिक कन्नड साहित्य सर्वंकषता की गहराई तक पहुँच सका है, या समस्त ज्ञान के हृदय मे वह अपनी सवेदना ले जा सका है। आज तो हमारा साहित्य एक नये सश्लेषण की ओर विकसित हो रहा है। भारत मे सभी स्थानो पर यह दिखाई दे रहा

है, चाहे उसका आरम्भ कितना ही अक्षम दिखाई देता हो और वैयक्तिक सौदर्य-शोध के अभियानो मे कई बार एक अतिरेक से दूसरे अतिरेक पर परिवर्तन दिखाई देता हो, फिर भी साहित्य की दिशा उसी समन्वय की ओर है।

कन्नड पर चुने हुए सदर्भ-ग्रथ

ए स्टडी आफ कन्नडीज लिट्रेचर—ई० पी० राइस

द हेरिटेज आफ कर्नाटक—डा० आर० एस० मुगली

पॉपुलर कल्चर इन कर्नाटक—मास्ति वेंकटेश आयगर

लिट्रेचर इन द माडर्न इडियन लैंग्वेजेज—सपादक वी० के० गोकाक, पब्लिकेसस डिविजन, सूचना मत्रालय, भारत सरकार

लिग्विस्टिक सर्वे आफ इडिया—जी० ए० ग्रियर्सन, खड ४, पृष्ठ ३६२-३८४

कश्मीरी

पृथ्वीनाथ 'पुष्प'

भूमिका

आज का कश्मीरी साहित्य कश्मीर के पिछले लगभग पचास वर्षों के सामाजिक-सास्कृतिक विकास की एक अकालपक्व उपज है। वह अकालपक्व इस दृष्टि से है कि गुणात्मक रूप मे उसने तीन दशको से भी कम समय मे वह उपलब्धि करने की चेष्टा की है, जिसे भारत के अन्य प्रमुख साहित्यो ने लगभग एक शताबदी मे प्राप्त किया है। इसमे सदेह नही कि छः सौ वर्षों से भी अधिक समय के दौरान मे सस्कृत और फारसी में जो श्रेष्ठ साहित्य रचा गया उसकी विरासत कश्मीरी को मिली, लेकिन वह कभी भी राजभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित नही हुई। प्रबुद्ध जैनुल-अबी-दीन (पद्रहवी शताब्दी) ने अवश्य कश्मीरी भाषा को धर्मनिरपेक्ष साहित्यिक माध्यम के रूप मे उदारतापूर्वक प्रश्रय दिया, लेकिन यह कभी इतनी सशक्त न हो सकी कि सुलतानो या उनके उत्तराधिकारियो के दरबार से फारसी को हटाकर राजभाषा का स्थान ग्रहण कर ले। बँगला, गुजराती, मराठी आदि अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओ ने अपने-अपने प्रदेश मे प्रचलित अपभ्रशो से विकसित होकर जैसा स्वरूप धारण किया, वैसा कश्मीरी न कर सकी। परिस्थिति-वश वह शिष्टजनों के बीच निन्दित ही रही, उसका उपयोग अधिक-से-

अधिक कुछ ललित सगीत-रचना के लिए ही हुआ जो कि प्राय. फ़ारसी नमूनो पर आधारित होती थी।

बाद के शासको की बेरुखी के फलस्वरूप निश्चय ही जागरूक कलाकार कुछ उपयोगी कार्य कर सकते थे लेकिन राजनीतिक चाले चलने वाले लोगो की करंवाइयो की वजह से इस प्रदेश में पर्याप्त समय तक शाति और व्यवस्था न बनी रह सकी। बहरहाल, अपनी प्रारभिक स्थिति की आध्यात्मिक और रहस्यवादी प्रवृत्तियो के बावजूद कश्मीरी को अनिवार्यत किसी-न-किसी दिन जन-साधारण की अभिव्यक्ति का माध्यम बनना ही था। शायद यही वह वजह थी कि शितिकठ (तेरहवी शताब्दी) लोकाभिरुचि की तान्त्रिक छन्द-रचना के सर्वोत्तम माध्यम के लिए भी (कश्मीर को) 'सर्वगोचर देवभाषा' की ओर प्रवृत्त हुए, गोकि उनके प्रारभिक सबध-सूत्र सस्कृत के साथ संलग्न थे।

अस्तु, अपने जीवन की विविध बाधापूर्ण स्थितियो मे से गुजरती हुई कश्मीरी भाषा सस्कृत, फारसी और उर्दू के साहित्यिक एकाधिपत्य मे भी जीवित रह सकी। उसके जीवित रहने का कारण यह था कि उसने इन सभी भाषाओ का सारतत्व सूझ-बूझ के साथ ग्रहण किया। इसलिए, स्वभावत, आज 'हिन्दू' कश्मीरी और 'मुस्लिम' कश्मीरी जैसी कोई चीज नही रह गई है, यद्यपि ग्रियर्सन की 'दृष्टि' मे ऐसी चीज का अस्तित्व था। वास्तव मे, कश्मीरियो की भाषा सिर्फ 'कश्मीरी' ही मिलेगी। यह जरूर है कि बोली-सबधी कुछ विभिन्नता दिखाई दे सकती है पर उसका यह कारण नही है कि ऐसे लोग निर्विवाद रूप से किसी धर्मविशेष के मानने वाले है, बल्कि यह कि वे स्वभावत. अलग-अलग तबको और व्यवसायो के लोग है। गाँव और शहर की आबादी के बीच या मराज (श्रीनगर के उत्तर) और कामराज (श्रीनगर के दक्षिण) के निवासियो के बीच कश्मीरी बोली-सबधी जो रूपान्तर है, वे उस किंचित अन्तर की अपेक्षा कही अधिक सुस्पष्ट रीति मे देखे जा सकते है जो कि तथाकित हिन्दू कश्मीरी और मुस्लिम कश्मीरी की बोली मे होगे।

कुछ भी हो, यह दुःख का विषय है कि अभी कुछ समय पहले तक कश्मीरी प्राइमरी स्कूलो में भी न पढाई जाती थी। इससे यह स्पष्ट है कि कश्मीरी में पत्रकारिता के अविकसित रहने और श्रेष्ठ गद्य का उदय न हो पाने के कारण क्या है। यह नही कि रचनात्मक प्रतिभा की कोई कमी है, वास्तव में वात यह है कि प्रकाशन की सुविधाओ का भयकर अभाव है और उसी अनुपात में पाठको के मन में भी कश्मीरी के प्रति घोर अरुचि है क्योकि कश्मीरी के ज्ञान से न तो उन्हे कोई वढिया नौकरी मिल सकती है और न भविष्य के ही सुधरने की कोई आशा रहती है।

इसके बावजूद, कौन इसमें सदेह करेगा कि केवल कश्मीरी के अर्थात् अपने घरेलू मुहावरे के ही माध्यम से इस भूभाग की आत्मा को भली प्रकार अभिव्यक्ति मिल सकती है और इसके जनसाधारण का जीवन चित्रित किया जा सकता है? इस प्रश्न का अत्यत सटीक उत्तर है वे अनेक कहानियाँ और गद्यखड जो तमाम असुविधाओ के बावजूद हाल मे ही यदा-कदा प्रकाशित होने लगी है। सोमनाथ जुत्शी, उमेश कौल, रोशन, नादिम और हारवोन के प्रारभिक प्रयत्नो के पश्चात् अख्तर मोहिउद्दीन की 'सतसगर' एक सराहनीय उपलब्धि है, और इधर हाल में कामिल, अली मोहम्मद लोन तथा अन्य लेखको (जैसे ताज बेगम) ने उन आशाओ की पुष्टि की है जो इस क्षेत्र में उनके पूर्ववर्तियो की रचनाओ द्वारा उत्पन्न हुई थी। इसी प्रकार जगन्नाथ वली ने हब्बाखातून पर अपने नाटक 'जून' और मोहिउद्दीन हजीनी ने 'ग्रिस्त सुन्दगरा' के द्वारा जो समारभ किया था, उसे बाद में पुष्करमान, अली मोहम्मद लोन, कामिल, जुत्शी और रोशन के नाटको से समुचित बढावा मिला। कश्मीरी रगमच की स्थापना का प्रयत्न करते हुए आज से लगभग तीस साल पहले नन्दलाल कौल भडाल् ने हरिश्चद्र पर 'सताच कहावत' नामक जो पौराणिक नाटक लिखा था, उससे कही अधिक विकसित वे सामाजिक नाटक है जो अभी सिर्फ तीन साल पहले 'कुणीकथ' शीर्षक से प्रकाशित हुए है। लेकिन दुर्भाग्यवश, प्रथम

कश्मीरी उपन्यास अभी भी पुस्तक रूप मे प्रकाशित नही हो सका है। इस विधा के अतर्गत जो भी लेखन-कार्य हुआ है, वह अभी पाडुलिपियो की ही शक्ल मे है। इनमे से कम-से-कम तीन उपन्यास, जिनके लेखक है—अख्तर, कामिल और लोन—और जो प्रकाशन-सबधी बाधाओ पर विजय प्राप्त करने मे सघर्षरत है, निश्चय ही इस दिशा मे एक अच्छी शुरुआत साबित होगे।

इन रचनाओ मे कोई नई शैली या रचनाओ की दृष्टि से उन्नति तो नही दृष्टिगत होती पर उनकी विषय-वस्तु मे धरती की वह सोधी बास है जो उस नई जिदगी की ओर अचूक निर्देश करती है, जो कि कश्मीर मे जाग रही है। गतिशील राजनैतिक कार्यकर्त्ता, बेदार किसान, ढुल-मुल मध्यवर्गीय मेहनती कारीगर, तेज माँझी, पसीने से लथपथ मजदूर, पागल क्लर्क, मनमौजी सैलानी, और गरीब दयनीय स्त्रियाँ—ये सब मानो एक नये सबेरे की ताजगी मे साँस लेते हुए बदलती हुई दुनिया की नई समस्याओ मे प्रवेश कर रहे है। इसमे से बहुत-सा लेखन, नि सन्देह एक प्रकाशमय विहान की आशा से भरा हुआ है, लेकिन उसमे से बहुत बडा हिस्सा आज की कठोर वास्तविकता से उलझा हुआ है। और वही सुखद धारा है, जो आज के कश्मीरी पद्य मे सर्वाधिक मुखरित हुई है।

प्राचीन परपरा

कश्मीरी गद्य तो अभी घुटनो के सहारे ही रेगना सीख रहा है। परन्तु उससे उलटे कश्मीरी पद्य की स्थिति काफी ऊँची है और वह बहुत सार्थकता लिये हुए है। कश्मीरी पद्य की साहित्यिक परपरा १३वी शती जितनी पुरानी है, जब कि शितिकठ ने अपने 'महानय प्रकाश' नामक शैव तात्रिक ग्रथ के लिए 'जनसुलभ भाषा' का प्रयोग किया। यह स्पष्ट था कि जनता की भाषा लोकप्रिय धार्मिक गाथाओ के प्रचार के लिए एक सुविधाजनक माध्यम के नाते चुनी गई, परन्तु वह जल्दी

ही दूसरे साहित्यिक कार्य भी करने लगी। उन दिनों का कश्मीर राजनैतिक संकट से पीड़ित था; और शैव दर्शन के मुस्लिम मर्सिया द्वारा प्रचारित सूफ़ी मत के अनिवार्य संपर्क से नये सामाजिक-सांस्कृतिक रूप गढ़े जा रहे थे। इस संश्लेषण का नया स्वर स्पष्टतः लल्ल द्यद (१४वीं शती) के उद्गारों में और उस कवयित्री से उम्र में छोटे समकालीन शेख नूरुद्दीन वली (नुन्द ऋषि) के उपदेशात्मक पद्यों में मिलता है। लल्ल द्यद के वचनों में परम सत्ता की कल्पनाओं से परिपूर्ण रहस्यवादी गीतात्मकता के कुछ सुन्दर अंश मिलते हैं। यह परम सत्ता सर्वतोव्यापी और फिर भी सबसे ऊपर है। इस प्रकार से आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ तत्त्व एक सुन्दर चित्रबंध में गुँथ गए हैं। नुन्द ऋषि के छंदों में भौतिक और आध्यात्मिक के संतुलन के लिए ज़ोरदार आग्रह है। इन दोनों संत कवियों में कबीर के पूर्व दर्शन मिलते हैं। इन कवियों की रचनाओं में कबीर की भाँति अंतःसंयम की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है और धर्म के नाम पर ढोंग तथा बाह्याचार के महत्त्व की खूब निंदा देखने को मिलती है। उनके पद्यों में हिंदुत्व और इस्लाम एक ही भाषा में बोलते हैं, और वे उस मानवी बंधुत्व, सामाजिक समता और आध्यात्मिक एकता के लिए सोत्साह प्रार्थना करते हैं, जो कि सब जाति, वर्ण-भेद से परे है और सैद्धांतिक जड़ता के बंधनों को काटती जाती है।

बाद में फ़ारसी 'मसनवियों' ने इस साहित्यिक विकास में एक सुविधापूर्ण टेकनीक दी। और महमूद गामी ने रहस्यवादी परंपरा को एक नया मोड़ दिया। 'यूसुफ़-ज़ुलेखा', 'लैला-मजनूँ' और 'गुलरेज़'-जैसे फ़ारसी के श्रेष्ठ काव्यों के काश्मीरी अनुवाद रूपकात्मक प्रेमाख्यानों-जैसी मौलिकता लिये हुए हैं; जब कि 'हमील' इस बात का उत्तम उदाहरण है कि कला के क्षेत्र में भी सहकारिता से कैसे काम लिया जाता है। उनका वर्णनात्मक अंश वली उल्लाह मट्टू और उसके गीत ज़रीफ की प्रतिभा से भरे हैं; फिर भी इनका संगम आश्चर्यजनक ढंग से संपूर्ण है।

लबी (वर्णनात्मक) कविताएँ, जो कि विगत दो शताब्दियो में बहुत ही लोकप्रिय थी, कई शतक पहले भी लिखी जाती थी। पन्द्रहवी शती के बहुश्रुत सुलतान जैनुल आबदीन के दरबारी कवियो ने न केवल फिरदौसी का 'शाहनामा' कश्मीरी भाषा मे अनूदित किया, प्रत्युत कश्मीरी भाषा मे 'बाणासुर-वध' नामक एक महाकाव्य, 'जैनचरित' नामक एक पद्य-जीवनी और 'जैन-विलास' नामक एक नाटक भी लिखा। इस राजाश्रयदाता की मृत्यु के बाद जो अराजकता फैली उसमे ये सब और इस काल की अन्य रचनाएँ नष्ट हो गईं। उन्नीसवी शती मे यह परपरा फिर जागी और रहस्यवादी रोमासो के लिए महमूद गामी ने उनका फिर से उपयोग किया। परमानन्द ने उसे नया अर्थ देकर, कृष्ण और शिव के विषय मे प्रचलित लोक-परपराओ से प्रेरणा ली। उनके 'राधा-स्वयवर', 'सुदामा-चरित' और 'शिवलग्न' आदि काव्य ऊँचे काव्य-गुणो से भरे है। उनमे वैष्णव-उत्साह शैव-उन्मुक्ति से मिला हुआ है। पौराणिक विषयो के बावजूद, अपने सामाजिक प्रभाव मे वे बहुत आनददायक और वास्तविकतापूर्ण जान पडते है। प्रकाशराम कुरिगामी (अठारहवी शती) के लोकप्रिय 'रामावतार-चरित्र' के रूप मे रामायण कविता, इससे बहुत पहले अपनी बहार पर पहुँच चुकी थी। वहाब परे (उन्नीसवी शती) के ऐतिहासिक आख्यान ने भी नई राह पकड ली थी।

लल्ल द्यद के वचनो के रूप मे कश्मीरी साहित्य मे गीति-काव्य के जो बीज बोये गए, वे हब्बा खातून और अरणिमाल के उत्कट विरह-काव्यो और उच्छ्वसित टोह के रूप मे सुपुष्पित हुए। वस्तुत. हब्बा खातून (यूसुफ शाह चक की प्रतिभाशाली पत्नी) ने सोलहवी शती मे साहित्यिक परम्परा को पुनर्जीवित किया। इससे कश्मीरी साहित्य मे एक प्रकार के रचनात्मक साहित्यिक कार्य का नवयुग आरम्भ हुआ। एक किसान लडकी ने, जिसे कि रानी की ऊँची प्रतिष्ठा मिली, कश्मीरी गीति-काव्य को भौतिक जीवन-स्पन्दन से झकृत कर दिया।

उसके गीतो से मुसुक और कसक की ऐसी करुण रागिनी उमड पडी कि उसने सारे युग को आप्लावित कर दिया। अठारहवी शती मे एक ब्राह्मण फारसी कवि की परित्यक्ता पत्नी अरणिमाल ने कश्मीरी भाषा को कुछ सुन्दरतम गीत दिये, जिनमे कि वैयक्तिक और पारस्परिक भावनाओ का सहज प्रवाह उमडा पडता था। यह धारा बाद मे धार्मिक कविता के रूप मे दूसरे ही रास्ते पर चली गई, और उसमे से हमे 'लीला' और 'नात' मिले। कृष्ण राज़दान और नाजिम ने लोक-साहित्य के स्वरो का उपयोग करके उनका एक उत्तम समृद्ध पट बुना। परन्तु यह रहस्यवादी गीतात्मकता भी अखड रूप से आज तक बहती आ रही है, और वह मास्टरजी* (ज़िंदा कौल) के आध्यात्मिक मानवतावादी स्वर की चरम पराकाष्ठा तक पहुँची।

विगत शताब्दी के अन्त मे कश्मीरी कविता मे समकालीन जीवन सीधा व्यक्त होने लगा। मकबूल करलावारी और वहाब परे के व्यग्य ने वह राह बनाई, जिसे आज हम यथार्थवादी कविता कहते है। इस काल के कई कवियो ने कई तरह की साहित्यिक विधाएँ आजमाई; जैसे व्यग्य, हज़लगोई, कार्टून, पैरोडी, करुणा-हास्य-मिश्रण, स्तोत्र, 'रोह' (लोक-नृत्य-गीत) और अत मे, किन्तु गुणो मे अन्तिम नही, ऐसी गजल को रसूल मीर ने एक अभूतपूर्व ऐन्द्रिकता और ऐसा माधुर्य दिया जो स्मृति मे मँडराता रहता है। मीर की गजल ने महजूर (१८८५-१९५२) को प्रेरणा दी, और 'महजूर' आधुनिक कश्मीरी कविता के अग्रदूत बने।

समकालीन स्थिति

विगत ढाई दशको की कश्मीरी कविता मे कश्मीर के सामाजिक, राजनीतिक जागरण का प्रतिबिम्ब बहुत अच्छी तरह दिखाई देने लगा।

---

* इनकी पद्य-पुस्तक 'सुमरन' को साहित्य अकादेमी ने १९५६ का पुरस्कार दिया है।

इस कविता मे सामन्ती ज़ुल्मो के नीचे दबी हुई जनता की आज़ादी के लिए महान सघर्ष का भी चित्र मिलता है। कश्मीर की जनता की नए कश्मीर के लिए कितनी अधिक जागरूक चेतना है, यह भी इस कविता मे व्यक्त हुआ है। जनता मे जो यह नया परिवर्तन आ रहा था, उसकी चेतना 'महजूर' ने ही सबसे पहले जागृत की। उनकी देशभक्तिपूर्ण राष्ट्रीय कविता ने कश्मीरी कविता को नया स्वर ही नही, एक नया दृष्टिकोण भी दिया। गुल-ओ-बुलबुल और बम्बुर-यम्बर-ज़ल (भौरा और नरगिस) आदि रूढ सकेतो मे उन्होने एक नई जान ही नही फूँकी, बल्कि नई उमगो के लायक नए सकेतवाद भी उन्होने विकसित किये। इस सकेतवाद से एक बडा लाभ यह हुआ कि वह सरकारी सेसर से बच गई, नही तो सामन्ती निरकुश शासन मे जनता मे नई सामाजिक, राजनीतिक चेतना जागृत करने वाले जेल जाने से कैसे बच पाते ? उनसे छोटे समकालीन कवि अब्दुल अहद आजाद अधिक स्पष्ट-वक्ता थे। उनकी उत्साहपूर्ण वाणी, जिसमे देश-प्रेम कूट-कूट कर भरा था, धार्मिक सम्प्रदायवाद तअस्सुब और राष्ट्रीय सकीर्णता के विरुद्ध एक ज़बरदस्त जिहाद थी। वस्तुत अहद आजाद की वाणी सब तरह के अतिवादो के विरुद्ध थी। अपवाद उनका अपना विश्वास था, वे इस बात के जबरदस्त प्रचारक थे कि एक ऐसा वर्ग-हीन समाज स्थापित हो, जहाँ व्यक्ति-व्यक्ति के बीच मे कोई भेद न किया जाय।

उन दिनो कश्मीरी अमानुष द्विविध राष्ट्रीय पद्धति के शाप से पीडित थे। एक ओर सामन्ती राजाशाही थी तो दूसरी ओर साम्राज्य-वादी रेजीडेटशाही। जनता को बडा ही सख्त मुकाबला करना पडा और तब आरिफ ने अपनी कविता 'मगर कारवाँ सोन' . (मगर हमारा आजादी का कारवाँ बढता ही गया।) मे इस युद्ध की वीर-गाथा गाई। कश्मीरी साहित्य का सारा वातावरण क्रातिकारी उत्साह से भरा हुआ है। यहाँ तक कि एक ओर आसि नामक कुली-कवि ने उन मेहनतकश

अखण्ड दौडते हुए जल-प्रपात में ;
मुझे यह सरो के पेड चट्टान की तरह खडे दिखाई
दिए,
और घास की पत्तियाँ भी
अपने पैरो पर खडी हो रही थी।"

प्रकृति को देखकर नादिम का हृदय उछल उठता है। वह लिखता है :

"पर्वतो से खेलता हुआ झरना
जिसके घाघरे में घुँघरू लगे है
और मोती जडे हुए है,
बहुत सवेरे जाग उठा,
जब कि चॉद ढल रहा था
और वह अपने उन्मत्त यौवन के साथ आकर खेलने लगा
पत्थर के गोल टुकडो के साथ।"

परन्तु कवि को यह देखकर बडा दुःख हुआ :

"मजदूर से उसका हिस्सा चुराकर
साहूकार ने अपने भण्डार भरे है
और वह बडी अकड के साथ हर बाजार में घूम रहा है
आदमी का मास जो वह बेचता है ग्राहक को देख रहा है।"

कश्मीर राज्य में जो नई आर्थिक रचनाएँ हुई है उनके साथ जनवादी विषयो के प्रति यह आग्रह बहुत स्वाभाविक है। विगत कुछ वर्षों में लोक-साहित्य की विधाओ के प्रति विशेष प्रेम प्रदर्शित करने वाली जो एक और लोकप्रिय धारा प्रवाहित हुई उससे फसल के सामूहिक गान, पालने और लोरी के गीत, तथा मजदूरो के गाने इत्यादि का स्वर और भी तेजी से गूंजा। रोशन ने कश्मीर की चित्रोपम ऋतुओ पर कई सुन्दर कविताएँ और कल्पना-चित्र लिखे है। इन चित्रो में जन-साधारण अपने सब तरह के काम करते हुए शान्ति और समृद्धि की ओर मजबूती से कदम उठाते है। प्रेमी ने भी मजदूरो की जिन्दगी के कई पहलू अपनी

कविता मे आँके है। विशेष आनन्ददायक तो वे गीत है, जिनमे कि उन किसानो के चित्र है, जो खेती पर गोडाई, बुआई तथा निराई करते है, और जो घास-फूस उखाडकर फेंकते है, जो फसल काटते है, जो केशर चुनते है। अपनी 'हारुद' (फसल) कविता मे उसने एक नये नृत्य-गीत की धुन मे एक बदली हुई किसान-जाति का बहुत सुन्दर लयपूर्ण चित्रण किया है।

सक्रान्ति-काल सदा ही कठिन और एकरसतापूर्ण होता है, लोग बहुत जल्दी अधीर हो जाते है। उन्हे विकास की गति धीमी लगती है। इसलिए कोई आश्चर्य नही यदि कही-कही स्वप्न-भग और निराशा की धारा भी बही हो। प्राय वे सब कवि, जिन्होने कि नई व्यवस्था का स्वागत किया था, कभी-कभी निराशा की आह भी भरते है। जन-साधारण जिन कष्टो मे से गुजर रहा था वे सब सामाजिक बुराइयो और नौकरशाही की पोल के कारण और भी अधिक बढ गए, और कवि को इन सब बुराइयो के विरुद्ध, जैसे चोर-बाजार और भ्रष्टाचार के विरुद्ध, आवाज बुलन्द करनी पडी। स्वर्गीय 'महजूर' की कुछ गजलो और 'आरिफ' की रुबाइयो का बहुत बडा हिस्सा इन्हीं कड्वे व्यग्यो और सच्ची आलोचनाओ से भरा हुआ है। इनमे यह दिखाया गया है कि 'पुरानी व्यवस्था' का कुछ प्रभाव अभी भी कैसे शेष है। उदाहरणार्थ 'महजूर' ने नई पाई हुई 'आजादी' का मजाक इस तरह उडाया है .

> "यह आजादी एक स्वर्गीय परी है,
> भला वह दर-दर कैसे भटक सकती है ?
> नही, वह तो एक-आध दो घरो मे ही मौज मनाती है...
> जनता दुखी है, नौकरशाही दूल्हो की तरह से
> आजादी की शहजादी के साथ अपने घरो मे सुहागरात
> मनाते है।"

इन दुष्टो का सबसे बुरा चित्र और कठिन प्रताडना रोशन की एक कविता मे है, जिसमे एक शहीद की दुखिया माँ उन ढोगियो का पर्दाफाश करती है जो कि प्रतिवर्ष उसके लडके की कब्र पर जमा होते है और

बडे स्वाग से फूल बरसाते है। वह माँ अपने लडके की अमर आत्मा से शिकायत करती है कि इन लोगो ने आज़ादी के साथ विश्वासघात किया है, इन्होने लडाई आधे रास्ते मे छोड दी और अब यह आराम से पुराने ढग की राज-व्यवस्था के सहारे सो रहे है। एक दूसरी शक्तिशाली कविता 'व्रम' में कवि ने कश्मीरियो के उस निश्चय को वाणी दी है जो कि उस साजिश को तोड देना चाहती है, जिसमे कि कश्मीर को हिन्दुस्तान से अलग काटने का जाल रचा जा रहा है।

कश्मीर के भविष्य के बारे मे सुरक्षा-परिषद के अनिश्चय के कारण, जो विषम त्रिशकु-जैसी स्थिति जनता में है, उसने भी कश्मीरी कविता को वहुत-सा नया विपय दिया। कवि यह सव जानते है कि पर्दे के पीछे क्या हो रहा है, सुरक्षा-परिषद की घटनाओ को वे बहुत उत्सुकतापूर्वक और अधीरता से देख रहे है। उन्होने युद्ध-पिपासुओ की निन्दा की, अपने राष्ट्र से उन्होने सारी दुनिया के लिए शान्ति की इच्छा का स्वाभाविक समर्थन किया, जिस शान्ति के बिना वे अपने आदर्श स्वप्नोवाले नए कश्मीर को अभी नही बना पायँगे। कश्मीरी भाषा को इस बात पर गर्व है कि उसने शान्ति के समर्थन मे बडी ही मार्मिक रचनाएँ दी। शान्ति कश्मीरियो के लिए कोई अमूर्त्त आदर्श नही है, बल्कि एक प्रत्यक्ष वास्तविकता है—दुनिया-भर के जन-साधारण के लिए आज की घडी मे वह एक अपरिहार्य आवश्यकता है। कश्मीरी कवि ने शान्ति के बारे मे इस तरह सोचा :

"आज मै नही गाऊँगा...
कोई वासना से भरा कोमल और सान्त्वना देने वाला गीत
गुल-ओ-वुलबुल का...
न झरने का, और न फूलो के कुञ्जो का,
न शवनम का, न वहार का...
क्योकि आज, क्योकि आज...
पतझड़ की विषैली साँस

बसन्त की हवा को दूर भगा देना चाहती है,
मनुष्य बडी तेजी से तैयारी कर रहा है
मनुष्य का फिर से शिकार करने के लिए···
इसलिए आज मै चल पडूंगा,
आज चल पडूंगा, आज ही चल पडूंगा
मै रास्ता बनाऊँगा,
मै सब विघ्न-बाधाओ को चूर-चूर कर एक साथ कर दूंगा,
मै दुश्मन से, डाकू से मुकाबला करूँगा,
और चिल्लाकर कहूँगा—'हाथ ऊपर उठा लो',
हँसिया, हथौडा और कलम से सुसज्जित
दृढ निश्चय के साथ
मै बराबर पहरा देता रहूँगा
एक चौकी से दूसरी चौकी तक !"

कुछ शाति की कविताएँ युद्ध-पिपासुओ को जनता की उत्कट चुनौती के रूप मे है, परन्तु सबसे अधिक प्रभावशाली वे है जिनमे कि जन-साधारण के रचनात्मक प्रयत्नो पर बल देकर जीवन के विविध क्षेत्रो मे जनता के रचनात्मक कार्य को दिखलाकर शाति की परम्परा का महत्त्व स्पष्ट किया गया है । नादिम, रोशन, राही और कामिल की कविताएँ इन्ही विषयो पर आधारित है । यही नही, उनमे प्रकृति की सुन्दर पार्श्व-भूमि पर घरेलू और राष्ट्रीय दिशाओ मे जीवन के व्यापक चित्रपट को भी खोलकर व्यक्त किया गया है ।

वस्तुत बहुत-सी आधुनिक कविता इस कल्पना से प्रभावित है कि यदि जनसाधारण को एक प्रिय और सुरक्षित भविष्य का आश्वासन मिल जाय तो वह कितना कमाल करके दिखला सकता है । इसलिए कवि उस चमकते हुए सूरज के गीत गाता है, जो कि क्षितिज पर नया सदेश लेकर घूमता है, जो कि सदियो के अधेरे को दूर करता है और नए मानवता के सवेरे की अगवानी करता है । राही पूछता है :

"अँधेरा, बिजली और तूफ़ान कैसे रह सकेंगे
जबकि सूरज उगेगा और सवेरे की किरणें फूटेंगी ?
पतझड़ का पीलापन काँपता हुआ भाग जायगा
जबकि सुन्दर वासन्तिक संगीत गूंज उठेगा ..."

राही ने अपने अन्य बड़े समकालीनो पर भी कल्पनात्मक व्यंजनो में मात दी है। कश्मीरी गज़ल में, जिसे महजूर, आज़ाद और मास्टरजी ने एक नया सामाजिक, राजनीतिक रस दिया था, राही ने सफलतापूर्वक प्रयोग किया। कामिल ने भी इकबाल के ढंग पर ऐसी कई गज़लें लिखी हैं जिनमें भावना को बौद्धिक रूप दिया गया है। उनका 'भास मलार' नामक संग्रह औसत से कही अच्छी काव्य-रचना का एक सुन्दर उदाहरण है।

गज़ल ही अकेला कोई ऐसा रूप नही है जिसमें कि नई चेतना फूंकी गई हो। समकालीन कश्मीरी कविता ने कश्मीरी छन्दशास्त्र के क्षेत्र को भी बहुत व्यापक बनाया है और उसमें कई तरह के पुराने छन्द फिर से नये किये गए हैं और कुछ छद नये भी गढे गए हैं। उदाहरणार्थ वाख्य, रुबाई, मसनवी, शेर और लोक-छदो के साथ-साथ सानेट भी अब बहुत सफलतापूर्वक लिखे जा रहे हैं। आपेरा और (रेडियो) पद्य-रूपको ने भी मुक्त छद और दूसरे नये छंद-रूपो तथा चित्र-बन्धो के प्रयोग की नई सम्भावनाएँ दी है। मुक्त छद कश्मीरी भाषा के लिए बहुत उपयुक्त है, क्योकि उसमें बड़े समृद्ध आन्तरिक अनुप्रास और लचीले स्वर-प्रयोग की क्षमता है।

कश्मीरी मे आपेरा और गीति-नाट्य बहुत हाल मे लिखे गए है और नादिम ने एक पुरानी लोक-कथा को बहुत कुशलतापूर्वक एक संगीत-रूपक के सांचे में ढाला है। बम्बूर (भ्रमर) और यम्बरज़ल (नरगिस) के पुनर्मिलन को दिखलाते हुए कवि ने शीतकाल और उसके साथियो के आक्रमण के कारण इन दोनो प्रेमियो के वियोग तथा अन्ततः रचनात्मक शक्ति, ध्वस की शक्ति पर अन्तिम विजय का प्रतीकात्मक

चित्रण किया है । एक तरह से इस रूपक मे उन्होने दुष्टो के चगुल से कश्मीर की मुक्ति ही सूचित की है । कामिल के 'रवरूपि' मे बसन्त द्वारा शिशिर के अन्तिम पराजय का चित्रण है, सबसे नये आपेरा 'हीमाल त नागराय' मे नादिम और रोशन ने मिलकर (एक पुरानी लोक-कथा का ही आधार लेकर) अपमानव के मानवीकरण की कल्पना प्रस्तुत की है । और इसके लिए उन लोगो को 'सभ्य' बनाने का रास्ता नही अपनाया, बल्कि सच्चे प्रेम के सर्वव्यापी प्रभाव द्वारा उनमे नव-जीवन भरने का यत्न किया है ।

कश्मीरी कविता मे सबसे नई धारा प्रतीकवाद की ओर फिर से लौटने की है, गोकि इसमे पहले से बडा अन्तर है, फिर भी इस कविता मे व्यक्त करने की अपेक्षा छिपाने की ओर अधिक प्रवृत्ति है और जब रूपवाद प्रधान हो उठे तो कविता धीरे-धीरे साहित्यिक व्यायाम का एक ढग बन जाती है । फिर भी हम यह देखते है कि नये कश्मीरी साहित्य मे कुल मिलाकर 'आज' की घटनाओ मे बडी सजीव दिलचस्पी दिखाई देती है । उसमे प्रकाशमय आगामी 'कल' के लिए भी प्रामाणिक चिन्ता है । यह नि सन्देह वर्तमान से भरी हुई है, जिसमे दु ख भी है, और सुख भी, समस्या भी है और सफलता भी, स्पन्दन भी है और कपन भी, आह भी है और आनन्द भी , आशा भी है और निराशा भी । फिर भी इन सबके साथ-साथ कश्मीरी साहित्य को अपने भविष्य की चिन्ता बरा-बर है, क्योकि भविष्य का वर्तमान पीढी पर बहुत सख्त दावा है ।

उगते हुए कश्मीरी गद्य ने भी सुखद आरम्भ कर दिया है । जिन्दगी जैसी है उसके साथ उसका घना सम्पर्क है और जैसी वह होनी चाहिए उस आदर्श व्यवस्था की प्राप्ति के लिए वह प्रयत्नशील है । यह आशा की जा सकती है कि कश्मीरी भाषा मे पत्रकारिता के विकास के साथ-साथ निबन्ध, समालोचना इत्यादि उपेक्षित विभाग भी धीरे-धीरे विक-सित होगे । अब राजनीतिक अनिश्चय और आर्थिक अव्यवस्था की निराशा उत्पन्न करने वाली मन स्थिति मिट चुकी है, अब ऐसा कोई

कारण नहीं कि कश्मीर साहित्य फिर से उठकर कलात्मक व्यंजना के नये क्षेत्र न खोज सके। कला के जीवन में सामाजिक उद्देश्य की बढ़ती हुई चेतना में चैतन्य; यथार्थवाद की धारा अब कश्मीरी साहित्य में प्रत्यक्ष उपलब्धियों के रूप में अधिकाधिक परिमार्जित हो रही है। केवल रूप-शिल्प और विषय-वस्तु में नवीनता की सनक अब बहुत कम होती जा रही है, उसे एक नयी समन्वित शिल्प-पूर्णता की सचेष्ट प्रयोगशीलता में परिवर्तित किया जाना चाहिए। कश्मीर के साहित्यिक कलाकारों की आज की पीढ़ी के आगे यह एक बड़ा काम है।

कश्मीरी पर चुने हुए संदर्भ-ग्रंथ

एसेज़ आन कश्मीरी ग्रामर—जी० आर० ग्रियर्सन; थैकरस्पिन्क ऐंड को०, कलकत्ता

डिक्शनरी आफ़ द कश्मीरी लैंग्वेज—जी० आर० ग्रियर्सन; लंदन

हातिम्स टेल्स—संपादक : स्टीन ऐंड ग्रियर्सन; लंदन

कश्मीर शब्दामृतम्—ईश्वर कौल; ए० एस० बी०, कलकत्ता

डिक्शनरी आफ़ कश्मीरी प्रावर्ब्स—जे० एच० नोल्स; लंदन

लल्ल वक्यानी—संपादक : जी० आर० ग्रियर्सन; लंदन

शिव-परिणय—कृष्ण राज़दान। संपादक : जी० आर० ग्रियर्सन; ए० एस० बी०, कलकत्ता

रामावतारचरित—प्रकाशराम। संपादक : जी० आर० ग्रियर्सन; ए० एस० बी०, कलकत्ता

परमानंद-सूक्ति-सार—संपादक : मास्टरजी, श्रीनगर

कश्मीरी लिरिक्स—संग्रहकर्ता और अनुवादक : जे० एल० कौल, श्रीनगर

लिंग्विस्टिक सर्वे आफ़ इंडिया—जी० ए० ग्रियर्सन, खंड ८, भाग २, पृष्ठ २३३-३४१

गुजराती

मनसुखलाल झवेरी

सामान्य परिचय

भारत के पश्चिमी समुद्र-किनारे पर गुजरात प्रदेश की जनता की भाषा गुजराती है। आजकल इस प्रदेश मे गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ ये तीनो सम्मिलित हैं। गुजराती भाषा-भाषियो की सख्या डेढ करोड से ऊपर है।

गुजराती भाषा सस्कृत से निकली है। शौरसैनी, प्राकृत और गौर्जर अपभ्रश मॅझली अवस्थाएँ थी। गुजराती करीब १२०० ईस्वी मे अपने स्वतत्र रूप मे शुरू हुई, परन्तु इस विशेष नाम से वह १७वी सदी से ही जानी गई, जबकि उस प्रदेश का नाम गुजरात रखा गया।

कवि नर्मदाशकर (या कि लोकप्रिय ढग से जैसे उन्हे कहते है नर्मद) आधुनिक गुजराती साहित्य के जनक माने जाते है। इसका अर्थ यह नही कि नर्मद के पहले कोई साहित्य नही था। गुजरात का साहित्य तो गुजराती कविता के चॉसर-जैसे प्रथम महाकवि नरसिंह महेता के समय से विकसित होता आ रहा है। चार शताब्दियो तक, (१४१४ से १८५२ ईस्वी तक) गुजरात मे सैकडो कवि हो गए, जिनमें छ. कवि गुजराती लेखको मे सदा के लिए प्रथम श्रेणी के लेखक माने जाते है।

पन्द्रहवी शताब्दी में नरसिंह महेता और मीराँबाई दो बहुत प्रसिद्ध गुजराती भक्त कवि हुए। सत्रहवी शताब्दी की बृहत्त्रयी थे—अखो, प्रेमानन्द और शामल। अखो एक सुनार थे, जो व्यग्य-तीखी आलोचना और निर्भय दम्भ-स्फोट के आचार्य थे, प्रेमानन्द आख्यान-कवि के नाते प्रसिद्ध है, उन्होंने गुजराती कविता मे विविध रसो का बहुत सुन्दर अकन किया है, और शामल पुराने लेखको मे बडे साहसी कवि थे, जिन्होने लीक-लीक चलना छोड़कर रोमाटिक कथा के क्षेत्र का पूरा-पूरा उपयोग किया। अट्ठारहवी शती के उत्तरार्द्ध मे मधुर कवि दयाराम हुए, जिनकी 'गरबीओ' के कारण उनका नाम गुजरात के अमर गीतकारो मे लिया जाता है। इन छ श्रेष्ठ लेखको के अतिरिक्त मध्ययुगीन गुजराती कवियो मे भालण भी हुए, जिन्होने मुक्त अनुवाद की परम्परा प्रतिष्ठित की। पद्मनाभ ने 'कान्नहड-दे-प्रबन्ध' मे ऐतिहासिक वीर रस की व्यजना की, भीम ने 'भागवत पुराण' के ढग पर श्रीकृष्ण की लीलाओ का वर्णन किया, धीरो और भोजो ने इस जीवन की असारता पर जोर दिया तथा स्वामीनारायण-सम्प्रदाय के ऐसे कई कवि हुए जिन्होने मानवी शरीर को ही परमात्मा एव मुक्ति के पाने का प्रधान माध्यम मानकर उसका महत्त्व वर्णित किया।

सामान्यत कविता चार शताब्दियो की लम्बी अवधि मे भौतिक यथार्थ के स्पर्श से अछूती रही। जीवन की अनन्त विविधता इन कवियो का विषय नही थी, वे प्रेम के गीत गाते थे, परन्तु वह प्रेम केवल दैवी राधा-कृष्ण का ही था। जो-कुछ साम्प्रदायिक नही है वह काल्पनिक और वायवी है, ऐसा वे मानते थे। इस प्रकार से उस समय की कविता ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की प्राचीन परम्परित लीको मे ढलकर धीरे-धीरे जम गई और अट्ठारहवी शती के अन्त तक वह मृतप्राय हो गई।

गुजरात का जीवन भी अट्ठारहवी शती के अन्त तक प्राय. जड और निरानन्द हो गया। १७९९ में सूरत के नबाब की मृत्यु के बाद और

उसी साल से श्रीरामपुर मे पहला मिशनरी स्कूल खुलने के बाद पुरानी व्यवस्था बदल गई और नई व्यवस्था ने जन्म लिया। १८१८ से १८५७ तक भारत मे ब्रिटिश शक्ति की जडे गहरी और मजबूत हो गई थी।

पश्चिम का प्रभाव

ब्रिटिश राज्य के साथ-साथ पश्चिमी सभ्यता का बलशाली प्रभाव भी आया। विज्ञान के आविष्कारो ने दूरी कम करके जनता का मानसिक क्षितिज विस्तृत बनाया। धीरे-धीरे स्थानीय राजनीतिक असन्तोष समाप्त होने लगा और गुजरात के तरुण समाज-सुधार के कार्यक्रम मे पूरी तरह जुट गए। वे अशिक्षा, अंध श्रद्धा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, और अनमेल विवाह आदि समस्याओ के समाधान मे पूरी तरह जूझ पडे।। इन सब कार्यों मे उन्होने पश्चिम को अपना आदर्श माना।

इस युग का साहित्य, जिसके एक प्रतिनिधि नर्मद (१८३३ से १८८६) हो गए थे, ऐसा है कि उसमे कविता ने पहली बार आत्म-निष्ठता के तत्त्व का पूरा मुक्त रूप पाया। ऐतिहासिक उपन्यास विकसित होने के साथ-साथ सामाजिक व्यंग्य रूपक, निबन्ध, जीवन-चरित्र, आत्मकथा, नाटक और साहित्य-आलोचना ने भी गद्य में निखार पाया।

१८८६ मे नर्मद की मृत्यु के उपरान्त गोवर्धन (१८५५-१९०७) का युग शुरू हुआ। इस युग मे पूर्वी और पश्चिमी सस्कृतियो को सर्वोत्तम सश्लेषण के रूप मे प्रस्तुत किया गया। यह सश्लेषण केवल यान्त्रिक सम्मिश्रण नही था, उसका आधार पूर्व की सस्कृति और केवल वही तत्त्व थे जो कि अनिवार्यत पश्चिम से लिये गए थे। उनकी कलम इस पौधे पर ही लगाई गई थी। यह युग उदात्त और सन्तुलित मस्तिष्क वाले ऐसे विचारको का था, जो अपने विषय का व्यापक ज्ञान रखते थे। उनका विश्वास था कि विवेक—और केवल अन्ध श्रद्धा तथा केवल रूढिवादिता ही मनुष्य के विचार और कर्म के नियन्ता नही होते। इसी दृष्टि से उन्होने अपने समय के मौलिक प्रश्नो का जो विवेचन और

विश्लेषण किया वह ऐसे ढग से किया गया कि जिससे रूढ सनातनी लोगो को चौकाने वाला धक्का भी पहुँचे और तरुणो की उपेक्षा या निष्कासन भी न हो।

इसी युग (१८८६ से १९१४) मे गद्य मे कहानी और पद्य मे खण्ड-काव्य, सानेट और विलापिका आदि का जन्म हुआ। चार खण्डो में 'सरस्वतीचन्द्र' नामक उपन्यास भी इसी युग मे लिखा गया, जो कि गुजराती भाषा का सर्वोत्तम ऐतिहासिक ग्रथ है। इस युग मे गुजराती का एकमात्र हास्य रस का उपन्यास 'भद्रभद्र' भी लिखा गया। निबध, नाटक, संवाद और पत्र गद्य की कुछ ऐसी विधाएँ है जो इसी युग मे विकसित हुई। इसी युग मे सस्कृत और अग्रेजी के श्रेष्ठ ग्रथो के प्रमाणिक अनुवादो ने भी साहित्य को समृद्ध बनाया तथा गुजराती रगमच विकसित होकर अपने परमोच्च बिन्दु पर पहुँचा। इसी युग मे नानालाल, कान्त, कलापी बलवन्तराय और नरसिंहराव-जैसे कवि हुए। कई प्रकार के मुक्त छन्द के प्रयोग भी इसी युग मे किये गए। भाषा-विज्ञान, ऐतिहासिक शोध, व्याकरण, छन्द-शास्त्र और साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र मे इस युग मे बहुत मूल्यवान कार्य हुआ। मणिलाल द्विवेदी, आनन्द शकर और केशवलाल ध्रुव तथा दूसरे कई महत्त्वपूर्ण लेखक भी इस युग मे हुए।

गाँधी-युग

१९१४ गुजराती साहित्य का युगान्तरकारी काल है। इसी समय महात्मा गाँधी अफ्रीका से लौटे थे और थोडे-से महीनो मे ही उन्होने पूरे भारत-खण्ड के वातावरण को जैसे चमत्कृत कर दिया था। गाँधीजी, होमरूल-आन्दोलन और जलियाँवाला बाग तथा देश के बाहर प्रथम महायुद्ध, उसके परिणाम और रूस की क्राति इत्यादि घटनाओ ने गुजरात के भाव-जीवन के अन्तरतम को छू लिया। केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता ही नही, अपितु धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और साहित्यिक सभी क्षेत्रो

मे सारे गुजरात की आत्मा स्वतन्त्रता की भावना से भर उठी। गुजरात नवीन जीवन से स्पन्दित हो उठा।

साहित्य के क्षेत्र में इस युग मे कई प्रमुख साहित्यिको की जयन्तियाँ और पुण्य-तिथियाँ मनाई गई, कई साहित्यिक व्याख्यानमालाएँ आयोजित की गईं। शरदोत्सव और बसन्तोत्सव हुए, कला-प्रदर्शनियाँ और वाद-विवाद तथा लोक-गाथाओ एव लोक-गीतो की सभाए भी हुई। इसी समय अव्यावसायिक रगमच का जन्म भी हुआ।

गाँधी-युग के लेखको ने जीवन को कई दृष्टिकोणो से देखा था। आर्थिक विषमता के कारण समाज की जो असह्य स्थिति थी वह उसे खटकती थी। गाँधीजी के सन्देश से प्रेरणा पाकर गुजराती लेखक सेवा और त्याग, दरिद्रनारायण के उद्धार के प्रयत्न-गाँवो के पुनरुत्थान तथा दलितोद्धार इत्यादि कार्यक्रमो मे रुचि लेने लगे और इस प्रकार से धनिक-वर्ग की ओर से उनकी दृष्टि हटकर गरीब और अशिक्षित देहाती जनता की ओर मुड गई।

गद्य-साहित्य के रचनात्मक पक्ष मे गद्य-युग के लेखक अपनी रचनाओ मे कला-पक्ष के प्रति अधिक जागरूक हो गए। इस युग के उपन्यास पिछले युगो की अपेक्षा विषय-वस्तु और शैली दोनो मे भिन्न है। साहित्य की स्वतत्र विधा होने के नाते कहानी इसी युग मे आगे बढी और लघुनिबन्ध, एकाकी, स्वगत-भाषण तथा डायरियाँ इत्यादि लिखी जाने लगी। लोक-साहित्य एव लोक-गाथा मे शोध-कार्य हुए, बच्चो के लिए साहित्य लिखा गया और इसी युग मे विज्ञान, अर्थशास्त्र, कृषि इत्यादि विषयो पर बहुत-सी पुस्तके निर्मित हुईं। इस प्रकार विषय-वस्तु का क्षेत्र व्यापक बना और शैली तथा अभिव्यजना भी पूरी तरह बदल गई। इस युग के पूर्ववर्ती गोवर्धन-युग मे साहित्य ऐसी शैली में लिखा जाता था जो कि अलकारमयी और कृत्रिम थी। ऐसा साहित्य केवल ऊँची अभिरुचिवाले सिद्धातो के लिए लिखा जाता था। गाँधी-युग मे भाषा के सब अतिरजन और शब्द-बहुलता को दूर किया गया

तथा गद्य-शैली सरल, सीधी, स्वाभाविक और प्रत्येक अर्थछटा को व्यक्त करके अस्तित्व मे आई। गाँधी-युग मे साहित्य केवल ऊँचे वर्ग के लिए नही, किन्तु जन-साधारण के लिए भी लिखा जाने लगा।

कविता के क्षेत्र मे रास, गरबी, खण्ड-काव्य, सानेट, प्रतिकाव्य (पैरोडी), विलापिका से पद्य-सवाद और मुक्तक इत्यादि विधाएँ जन्मी और इसी काल मे वे परिपक्व भी हुई। इन सब रूपो मे आख्यान-शैली की व्यग कविताओ का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहिए।

गाँधी-युग का कवि केवल प्रेम, प्रकृति और परमात्मा के विषय मे ही कविता नही लिखता था। उसने विश्व-प्रेम और विश्व-बन्धुत्व के गीत भी गए। जीवन के ताने-बाने मे मृत्यु का भी एक विशेष स्थान उसे दिखाई देने लगा। उसने यह भी देखा कि सौन्दर्य की भाँति करुणा और व्यथा का भी इस वस्तु-जगत मे अपना विशेष स्थान है।

१९१४ तक साधारणतया यह माना जाता था कि कविता के उच्च विषय बादल, चाँद, पर्वत, तारे, कमल तथा कोयल-जैसी परिचित सुन्दर या भव्य चीजे ही हो सकती है। इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि कविताएं अब सूअर, भगी, कागजी फूल, शौचालय की मक्खी, गोबर का ढेर, चूसी हुई आम की गुठली, बूट पालिश करने वाला लड़का और ऐसे ही अन्य विषयो पर भी लिखी जाने लगी। इसका कारण यह था कि कवि अब यह पहचानने लगा कि कविता की महत्ता या श्रेष्ठता विषय की महत्ता या श्रेष्ठता पर ही अवलम्बित नही है, परन्तु कवि का उस विषय के प्रति क्या रुख है इसपर भी वह अवलम्बित है। फिर भी कुछ समय तक लोग नवीनता के लिए नवीनता के पीछे दौडते रहे। मानवीय सहानुभूति के चिर व्यापक और सर्वंकष क्षेत्रो को ध्यान मे रखकर कुछ हद तक यह अनिवार्य था। इस कारण, नग्न यथार्थवाद—कभी-कभी अश्लीलता और जुगुप्सा भी—आज के साहित्य मे कोई असाधारण तत्त्व नही रहे।

स्वतन्त्रता और उसके बाद

१५ अगस्त, १९४७ ने भारत के लम्बे और विषम इतिहास मे एक नया गौरवशाली अध्याय आरम्भ किया। गुजराती साहित्य मे स्वतन्त्रता के पूर्व का और स्वतन्त्रता के बाद का अन्तर इतना तीखा नही है कि इस स्वातन्त्र्योत्तर स्थिति को नया युग माना जाय। जो कवि, उपन्यासकार, कहानी-लेखक, नाटककार और निबन्धकार १९४७ से पहले आगे आए हुए थे वे ही इस क्षेत्र मे अभी भी सक्रिय और प्रभावशाली है।

स्वतन्त्रता से पूर्व के युग मे कविता मे राष्ट्रीयता की भावना प्रधान थी। यो कहा जा सकता है कि गुजराती कवि ने अपने-आपको पूरी तरह से इस राष्ट्रीय आन्दोलन मे समर्पित कर दिया था। उसकी कविता का मुख्य स्वर स्वतन्त्रता था। उसके गीत, गाने, वीर-काव्य, लम्बी वर्णनात्मक या विचारात्मक कविताएँ इत्यादि सभी किसी-न-किसी तरह इसी भावना से आप्लावित थी। इतिहास और पुराण-गाथाओ मे से उसने केवल वे घटनाए और विषय चुने जो कि उसकी इच्छाओ और उमगो को व्यक्त करते थे। उसके लिए उद्देश्य स्पष्ट था, मनुष्य की शक्ति निश्चित रूप से उसी दिशा मे लगी हुई थी।

स्वातन्त्र्योत्तर युग मे राष्ट्रीयता के सघर्ष की प्रेरणा नही रही और अब लिखने के ऐसे कोई उद्देश्य सामने नही रहे जो कि उसका पूरा ध्यान समो लेते। आज देश मे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की कई विराट योजनाए चल रही है। पर कुछ भी कहिये, लेखक को उनसे स्पष्ट रूप से दर्शनीय मात्रा मे स्फूर्ति नही मिल रही है। यह स्थान इस सर्व-साधारण अ-सहानुभूति के कारणो की मीमासा करने का नही है। परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि समकालीन गुजराती कवि ने अब तक उसी उत्कटता के साथ इन आन्दोलनो के प्रति अपनी प्रतिक्रिया नही व्यक्त की जितनी कि उसके पूर्ववर्ती कवियो ने २५ वर्ष पहले विदेशी जूए से स्वतन्त्रता की ललकार लिखी थी।

जहा तक विषय-वस्तु का सम्बन्ध है, गुजराती कविता समूची

दुनिया को अपने घेरे मे ले आना चाहती है। वह जहाँ भी, जो कुछ भी सुन्दर और भव्य है उन तत्त्वो को अपना लेना और सौन्दर्य के उत्तम भावो को ग्रहण करना चाहती है। गाँधी-युग के गुजराती कवि के लिए, आज के कवि के लिए भी, जीवन की सभी व्यजनाएँ एक-सी पवित्र और एक-सी आदरणीय हैं।

लगभग २५ वर्ष पहले ऐसा समय था जब कि कविता और सगीत के सम्बन्ध करीब-करीब टूटने को थे, क्योकि सगीत कुछ क्षेत्रो मे कविता की सजीवता के लिए आवश्यक नही माना जाता था। सौभाग्य से कवियो ने इस भ्रम से अपने-आपको बहुत जल्दी मुक्त कर लिया और वे सुन्दर गीत लिखने लगे, साथ ही शुद्ध सस्कृत छन्दो मे कविताएँ भी लिखने लगे। आज के गुजराती कवियो ने अधिक मात्रा मे गीत लिखने मे सफलता प्राप्त की है। इस प्रकार से समकालीन कविता सगीत और लय की ओर अधिक झुकी है, प्राचीन सस्कृत छदो की ओर कम।

यह स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति मे लम्बी वर्णनात्मक या विचारात्मक कविताए कवि को अधिक अदम्य रूप से आकर्षित नही कर सकती। परन्तु गीत मे अधिक-से-अधिक एक मूड या भाव-दशा ही व्यक्त होती है, सूक्ष्म और अमूर्त्त विचारो को व्यक्त करने का वह सहज साधन नही हो सकता। गुजराती कवि ने कुछ समय के लिए कम-से-कम महाकाव्य लिखने का प्रयत्न तो मानो छोड़ दिया है। मै यह नही मानता कि मुक्त छन्द-जैसे किसी उचित छन्द के अभाव मे यह हुआ है। इसमे अधिक सचाई यह है कि सच्ची महाकाव्योचित प्रतिभा या बडा कवि हमने अभी निर्मित ही नही किया है।

कविता के क्षेत्र मे पुराने बडे नामो मे उमाशकर जोशी, सुन्दरम् और सुन्दरजी बेटाई अभी भी सक्रिय हैं। आज की पीढी के सबसे बहुमुखी प्रतिभाशाली लेखक उमाशकर ने कुछ महीने पहले अपना पाँचवाँ काव्य-सग्रह 'बसन्त वर्षा' नाम से प्रकाशित किया है। इस सग्रह

के कुछ गीतो मे प्रकृति की विविध मनोदशाओ का चित्रण हुआ है और महान भावगीतात्मक स्वर मे प्रकृति के सुख-दु ख गाए गए है। सुन्दरम् का 'यात्रा' नामक कविता-सग्रह कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था, कवि के भाव-लोक मे प्रवास का यह कलात्मक लेखा-जोखा है। सुन्दरम् अब 'वसुधा' का कवि नही रहा। अब वह उन रहस्यवादी अनुभवो के विश्व का यात्री है जो कि अत्यन्त व्यक्तिगत है। उमाशकर धरती माता के आकर्षक सौदर्य के दर्शन-मात्र से गीतमय हो उठते है तो सुन्दरम् भीतर के सौदर्य के दर्शन से दर्शन के ऊचे विश्व मे उडने लगते है। दोनो अन्तिम सत्य चाहते है, परन्तु एक की इच्छा सौदर्य के रूप मे उसे पाने की है, दूसरा उसे योग के माध्यम से पाना चाहता है। वेटाई की 'विशेषाजलि' की गम्भीरता और भव्य सयम मे कवि के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। इस पीढी के अन्य उल्लेखनीय कवि है—स्नेहरश्मि, पूजालाल, करसन दास मानेक और कृष्णलाल श्रीधराणी।

नई पीढी के कवियो मे निम्न कवियो का उल्लेख करना आवश्यक है राजेन्द्र शाह, निरजन भगत, बालमुकुन्द दवे, वेणीभाई पुरोहित और उशनस्। राजेन्द्र अपनी प्रतिमाओ की समृद्धता और दृष्टि की स्पष्टता के लिए, निरञ्जन अपनी लय की असाधारण भावना और वस्तु तथा शैली के प्रति मुक्त साहसिक झुकाव के लिए, बालमुकुन्द अपनी मधुरता के लिए, वेणीभाई सगीतमय प्रवाह के लिए, और उशनस् अपनी चित्रोपमता के लिए गुजराती कविता के नवयुग के प्रतिनिधि कवि है। समकालीन कविता पर अन्यान्य कवियो के साथ ही, मार्कंड दवे, प्रजाराम, जयत पाठक, पिनाकिन ठाकोर और प्रियकान्त मणियार की भी छाप पडी है।

आज का तरुण गुजराती कवि, ऐसा कोई विषय न पाकर कि जिसमे वह अपना पूरा हार्दिक उत्साह लगा सके, फिर प्रेम और प्रकृति के पुराने विषयो की ओर मुड गया है। उसका प्रेम यौवन से भरा है, अत बहुत उत्कट, मधुर और ताजा है। इस प्रेम को किसी प्रकार का दु ख,

अनुत्तरित या अपूर्त्त प्रेम की वेदना ज्ञात नही है। उसे अभी भी मानवीय हृदय की अन्तरतम गहराई मे डुबकी लगानी है।

आज के कवि ने छन्द और लय पर विशेष रूप से अपना अधिकार व्यक्त किया है। उनकी शब्दावली समृद्ध और प्रासो की रचना प्रौढ है। परन्तु संस्कृत शब्दो के प्रयोग से वह कई बार लडखडाता है या भद्दे तथा प्रत्ययहीन शब्दो का प्रयोग करता है। कभी-कभी वह केवल उक्ति-चमत्कार दिखलाता है और उसकी कविता शब्दो का खिलवाड बनकर रह जाती है। कभी-कभी उसकी कविता निरी लयकारी होने के अतिरिक्त और कुछ नही होती। कभी-कभी उसकी काव्य-दृष्टि सहसा समाप्त हो जाती है, और वह अपनी पूरी परिपक्वता पर नही पहुँच पाती। कभी-कभी उसके लिए एक मुक्तक से परे जाना भी कठिन जान पडता है। लम्बी सुगठित कविता, जिसमे विचार, कल्पनाचित्र और दृष्टि भरी हुई हो, ऐसी वस्तु है जो कि साहित्य मे प्रतिदिन निर्मित नही होती। इसलिए समकालीन गुजराती कविता मे उसके अभाव पर हमे चिंता नही करनी चाहिए। परन्तु इस बात पर ध्यान दिये बिना नही रहा जा सकता कि वर्तमान कविता अधिकतर संक्षिप्त मधुर, संगीतमयी और प्रवाहपूर्ण होती जा रही है। आज की कविता को गहराई, चौडाई और लम्बाई यह तीनो आयाम अभी प्राप्त करने है। जहा तक दार्शनिक दृष्टि का सम्बन्ध है, इस पीढी ने कोई नई जमीन नही छुई है।

आजकल जो कई साहित्य-विधाएँ विकसित हो रही है उनमे सबसे महत्त्वपूर्ण है 'नाट्य-रूपक'। नाट्य-रूपक न तो नाटक है, और न केवल लम्बी कविता। उसमे सार्थक और जीवन की रहस्यमयता से गर्भित एक नाटकीय स्थिति मुख्य विषय रहती है और पद्य-संवादो के रूप मे उसे व्यक्त किया जाता है। उमाशकर जोशी ने अपने 'प्राचीना' मे इस विधा के कुछ बहुत सुन्दर नमूने दिए है।

फिर एक दूसरी विधा है नृत्य-रूपक। गुजराती मे इसे इसी नाम से

अभिहित किया जाता है। यह भी एक नवीनतम साहित्य-रूप है। इसमें कई गीतो को गद्य या अनुष्टुप-जैसे छन्दो से जोडा जाता है। ऐसे 'बैले' के लिए जो विषय चुने जाते है वे अधिकतर पौराणिक, ऐतिहासिक या लोक-गाथा के रूप मे होते है। गीत इस तरह से रचे जाते है कि उनमें विविध मानसिक वृत्तियाँ या कथानक के विकास की महत्त्वपूर्ण अवस्थाएँ व्यक्त की जाती है। ऐसे 'बैले' की सफलता उनके अतर मे निहित काव्य गुणो पर इतनी आश्रित नही होती जितनी कि मानवीय रूपो और सगीत के लय-सौन्दर्य पर। आजकल सास्कृतिक समाजो और शिक्षा-सस्थाओ के वार्षिकोत्सवो मे नृत्य-रूपक खेलना एक साधारण फैशन बन गया है। उनका सीधा उद्देश्य जन-मनरजन होता है, इसी कारण उनमे से बहुत कम ऐसे होते है, जिनमे नृत्य या सगीत का क्लासिक रूप व्यक्त किया जाता हो।

'कवि-सम्मेलन' और 'मुशायरे' भी अभी तक बहुत लोकप्रिय बने हुए है। क्लासिक सस्कृत छन्दो मे या मात्रा-वृत्तो मे लिखी हुई कविताएँ कवि-सम्मेलनो मे पढी जाती है। उर्दू गजल की शैली मे लिखी हुई कविताएँ मुशायरो मे पढी जाती है। इन सम्मेलनो से नि.सदेह जन-साधारण के मन मे काव्य के प्रति अधिक अभिरुचि व्यापक रूप से उत्पन्न होती है, परन्तु इस बात मे सन्देह है कि श्रोताओ मे ऊँची कविता को समझने या उसका रस ग्रहण करने की शक्ति बढाने मे ये सम्मेलन कहाँ तक सफल होते है। चूकि इनका उद्देश्य प्रासगिक 'वाह-वाह' प्राप्त करना ही होता है, ऐसे सम्मेलनो मे प्रस्तुत की हुई कविताएँ स्वाभाविक रूप से भाषा की वह सूक्ष्म अर्थ-छटाएँ नही व्यक्त कर सकती, जो कि उनका सही रस ग्रहण करने के लिए गहरा ध्यान और आवृत्ति-पठन चाहती है। ऐसे सम्मेलनो की कविताओ की बहुत-कुछ सफलता पढने की कला और शब्दो की चतुर खिलवाड मे सन्निहित है। इसलिए ऐसा भी हो जाता है कि किसी कवि-सम्मेलन या मुशायरे मे तालियो की गडगडाहट पाने वाली कविता जब छपकर कागज पर आती है तब

सुयोग्य और विवेकी पाठक के लिए वह उतनी ग्राह्य नही जान पडती।

उपन्यास

उपन्यास की विधा मे कोई नया विकास नही हुआ है। गुजराती साहित्य मे यह शायद सबसे लोकप्रिय साहित्य-विधा है। गुजराती उपन्यास एक ऐसा रूप है जिसे कि इस तथ्य का उदाहरण कहा जा सकता है कि लोकप्रियता और गुण दोनो साथ-साथ जाते ही हो, यह आवश्यक नही। पुरानी पीढी के सर्वश्री मुशी, रमणलाल देसाई, झवेरचद मेघाणी, गुणवन्तराय आचार्य, धूमकेतु और चुनीलाल वी० शाह इत्यादि तथा नई पीढी के सर्वश्री पन्नालाल पटेल, दर्शक, ईश्वर पेटलीकर, चुनीलाल मडिया, सोपान, पिताम्बर पटेल और सारग बारोट इत्यादि गुजराती मे कई गणनीय उपन्यासकार है। उनमे से सब काफी लोकप्रिय भी है और कुछ लेखको की रचनाएँ बहुत अधिक बिकी भी है। फिर भी विश्व-साहित्य के मापदण्ड को यदि छोड दिया जाय, तो उच्चकोटि के उपन्यास गुजराती साहित्य मे बहुत ही कम है। रमणलाल देसाई और झवेरचद मेघाणी अब नही रहे। मुशी किशोरावस्था से ऊपर नही उठ पाए। पन्नालाल पटेल और 'दर्शक' (मनुभाई पचोली) ऐसे दो लेखक है जिनकी गुजराती उपन्यास को महत्त्वपूर्ण देन है। पन्नालाल ने गुजराती गाँव को अपनी पूर्णता मे व्यक्त किया है। वे अपने गाँव को उसके अन्तरतम तक जानते है, वहाँ की सरल महानता लिये उनका प्रेम, राग और द्वेष, महत्ता और क्षुद्रता, हार्दिकता और निर्ममता, सचाई और छल-बल सब मिलकर एक अपनी ही अलग दुनिया है, जिसमे कि करुणा और तीखापन भरा हुआ है। उनके दो उपन्यास 'मळेला जीव'* (जीवी) और 'मानवीनी भवाइ' (मानवीयो का नाटक) गुजराती साहित्य के सर्वोत्तम उपन्यास है; ये जल्दी भुलाये नही जा

* इसका हिन्दी अनुवाद अकादेमी की ओर से शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है।

सकेंगे। परन्तु यही लेखक जब शहर की जिन्दगी के बारे मे लिखता है तो वहाँ वह अजनबी जान पडता है।

'दर्शक' दूसरे महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार है। वे बडे विद्वान और सुसस्कृत व्यक्ति है। वे एक विचारक और सुन्दर कहानी-लेखक भी है। उनका अपना जीवन-दर्शन है, जिसे कि वे अपने उपन्यासो के माध्यम से व्यक्त करना चाहते है और इसी दर्शन के कारण उनके उपन्यास एक विशेष अर्थ रखते है। ईश्वर पेटलीकर के गुजरात के चरोतर जिले के पाटीदारो के उत्तम चित्र विशेष उल्लेखनीय है।

ऐतिहासिक उपन्यासो मे अभी भी यह वृत्ति है कि प्राचीन की अतिरजना करो और गौरव-गान गाओ। ब्रिटिश राजसत्ता के दिनो मे कदाचित हमारी स्वतत्रता के सघर्ष का यह आवश्यक भाग रहा हो, जिससे कि जनता मे स्वाभिमान की भावना पुनः जाग सके। इस कारण यह वृत्ति बढी कि हमारे अतीत काल का अच्छा और प्रशसनीय अश ही कलात्मक रूप से व्यक्त किया जाय। भूतकाल को सामान्यत दैवी रूप दिया गया और झवेरचन्द मेघाणी-जैसे लेखको द्वारा हमारी सस्कृति का भव्यतम और सर्वोत्तम युग यह भूतकाल माना गया। कभी-कभी यह भी हुआ कि हमे वह प्रेरणा दे सके, इसलिए समकालीन समस्या और सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियो का प्रतिबिम्ब उनकी भूतकालीन घटनाओ मे खोजा गया और उसपर मुशी-जैसे लेखको ने लिखा। धूमकेतु-जैसे लेखक अपने उत्साह मे कभी-कभी अपने लक्ष्य से ऊपर पहुच गए और प्राचीन काल की कुछ घटनाओ या वृत्तियो को, जो कि अच्छी नही भी थी, प्रशसनीय मानने लगे, और वैसे ही उनका चित्रण करने लगे। बहुत कम लेखको ने अपने प्राचीन का वस्तुनिष्ठ और निष्पक्ष चित्रण किया है। वस्तुत प्राचीन जीवन-पद्धति एक ऐसी पद्धति थी जिसमे से आज की जीवन-पद्धति विकसित हुई है। इस दृष्टिकोण से किसी ने नही लिखा।

ऐतिहासिक सामग्री और साक्ष्य न केवल अदलते-बदलते रहते है बल्कि बहुत-कुछ इसपर भी निर्भर है कि हम उसका क्या अर्थ लेते है।

एक सिक्का, एक पत्थर, किसी जीर्ण पाण्डुलिपि का एक अश, कभी ऐसी ही छोटी चीज हमारे पूरे दृष्टिकोण को बदलने के लिए काफी होती है और इस कारण इतिहास के सम्बन्ध मे हमारा निर्णय कभी-कभी अन्तिम नही हो सकता। परन्तु ऐसा होने पर भी यह निश्चित है कि प्राचीन का अपना एक अचूक रूप है, और व्यक्ति की तरह से राष्ट्र भी अपने पुराने जीवन का फोटोग्राफ देखना पसन्द करते है। यह भी सम्भव है कि फोटोग्राफो मे वह उतना सुन्दर न दिखाई दे, जैसा कि वह चाहता हो, यह भी हो सकता है कि कभी-कभी वह कुरूप भी दिखाई दे। फिर भी आखिर है तो वह उनका अपना ही फोटोग्राफ। वे इस बात की याद दिलाते है कि किसी समय मे उनके जीवन का यह भाग भी सच था और वह हिस्सा उनके व्यक्तित्व से सजीव रूप से सम्बद्ध है, इसलिए पारिवारिक अलबम मे उनका भी अपना एक स्थान है।

यदि गुजराती उपन्यासकार अपने भूतकाल की ओर इस दृष्टि से मुडता है कि वह उसे अतिरजित करे तो वह समकालीन समाज की स्थिति की ओर इसलिए मुडता है कि वह उनके दोष ही दिखाये। या तो वह अपने प्राचीन से इतना अधिक आकर्पित और अभिभूत है कि उसे वर्तमान शुष्क, रसहीन और क्षुद्र लगता है या उसकी आस-पास की दुनिया की क्षुद्रता से वह इतना ऊब गया है कि वह स्वाभाविक रूप से भव्यता, साहस, महत्ता और विराट्ता की झलक पाने के लिए प्राचीन की ओर मुडता है। सच कहा जाय तो वर्तमान इतना बुरा नही है। गाधीजी के १९१४ मे अफ्रीका से लौटने पर गुजरात की समूची आत्मा मे एक पूरा आमूल परिवर्तन आ गया था। सस्कृति और साहित्य, धैर्य और सहिष्णुता, वीरता, त्याग और साहस मे गुजरात ने भी अपना विनम्र योग दिया। गुजराती लेखक की समकालीन समाज के प्रति जैसी वृत्ति उसकी रचनाओ मे दिखाई देती है वह उसके आदर्शवाद के कारण अर्थात एक अच्छे समाज के प्रति उसकी पिपासा के कारण है, उसके आस-पास के प्रत्यक्ष भ्रष्टाचार के कारण नही।

कहानी

गुजराती मे कहानी मुश्किल से ६० साल पुरानी है। नाटक, उपन्यास और मुक्त छन्द के पहले प्रयत्नो के बहुत बाद कहानी आई। फिर भी उसने गुजरात की भूमि मे अपने-आपको मजबूती से जमा लिया है, और उपन्यास को एकमात्र अपवाद छोडे तो यह एक ऐसी विधा है जो लेखक और पाठक दोनो को सर्वाधिक प्रिय है।

पुराने बडे कहानी-लेखको मे इधर धूमकेतु ने उपन्यास लिखना आरम्भ किया है। धूमकेतु को 'तणखा' (चिगारियाँ) के पहले दो खण्डो मे जो कीर्ति मिली, उसमे उनकी बाद की कहानिया शायद कुछ नया नही जोडती। झवेरचन्द मेघाणी और रामनारायण पाठक (द्विरेफ) अब हमारे साथ नही रहे। मुशी ने अब करीब-करीब कहानिया लिखना बन्द कर दिया है और यही बात धनसुखलाल महेता, उमाशकर जोशी (वासुकी) और सुन्दरम् (त्रिशूल) के बारे मे भी सही है। बचे हुए लेखको मे गुलाबदास ब्रोकर और पन्नालाल पटेल अभी भी इस क्षेत्र मे है। गुलाबदास ब्रोकर की मानवीय स्वभाव मे अद्भुत पैठ है, वे बाह्यत सरल और साधारण जीवनानुभवो से बडी सुन्दर वस्तुए निर्मित करते है। पन्नालाल पटेल अभी भी जब गाव का वर्णन करते है तो वह बहुत उत्तम होता है।

उनके बाद के आये हुए लेखको मे जयन्ती दलाल मे पैनी गहरी दृष्टि और तीखा व्यग है। वे अभी भी आशय और अभिव्यक्ति के क्षेत्र मे साहसिक प्रयोग करते रहते है। विनोदिनी नीलकठ के व्यक्ति-चित्र अनुपम होते है, ईश्वर पेटलीकर की सादगी हृदयस्पर्शी है और इस दल के सबसे अधिक लिखने वाले चुनीलाल मडिया मे शब्द-चित्र का कमाल है, किसनसिह चावडा मे सौन्दर्य के प्रति अदम्य आकर्षण है : ये नाम इस क्षेत्र मे विशेष रूप से लिये जा सकते है।

उदीयमान लेखको मे केतन मुन्शी का नाम अवश्य लिया जाना चाहिए, जिनकी अभी १९५६ मे अकाल मृत्य हो गई। इसके अतिरिक्त

और जो तीन नाम उल्लेखनीय है, वे हैं वेणीभाई पुरोहित रमणलाल पाठक और शिवकुमार जोशी के।

छोटी कहानी की टेकनीक का अनुकरण करते हुए गुजराती मे पिछले कुछ वर्षों मे सत्यकथा भी प्रचलित हो गई। यह यथार्थ जीवन की नाटकीयता को बडे कलात्मक रूप से व्यक्त करती है। इस तरह की सत्यकथाए झवेरचन्द मेघाणी, किसनसिंह चावडा, गुलाबदास ब्रोकर और जी० वी० मावलकर आदि लेखको ने लिखी है। यह सिर्फ सन-सनी पैदा करने के लिए नही अपितु मनुष्य के स्वभाव के क याणकारी और उच्चतर पक्ष को व्यक्त करने के लिए लिखी गई है।

गुजरात के सर्वसाधारण लेखको को जो विषय सबसे अधिक प्रिय है, वह है—सामाजिक बुराइया। गरीबी, अशिक्षा, असूया और यौन आचार आदि कुछ ऐसे विषय है जो कि नवीन लेखको को बहुत प्रिय है। कभी-कभी यह भी होता है कि कोई यात्रा, साहस, शिकार या सर्वसाधारण दैनिक जीवन से भिन्न विषयो की कहानी भी पढने को मिल जाती है। पर ऐसी कहानियाँ बहुत ही थोडी है। १९४२ का आन्दोलन, व ाल का मनुष्य-निर्मित अकाल, स्वतन्त्रता, देश का विभाजन और शरणार्थियो की भयानक ट्रेजेडी, पहली पचवर्षीय योजना, समूचे राष्ट्र का पुनर्निर्माण, पुनर्जीवन के लिए साहसपूर्ण प्रयत्न, घर की बडी-बडी घटनाएँ, विदेश मे दूसरा महायुद्ध और उसके परिणाम इत्यादि घटनाओ का गुजराती के प्रतिभाशाली लेखको की कल्पना पर कोई महान प्रभाव अभी पडना शेष है। सम्भव है कि ये घटनाए किसी सुप्त प्रतिभा को झकझोर दे।

भारत के सबसे अधिक व्यवसाय-साहसिक लोगो मे गुजराती है। बहुत प्रचीन काल से वे दूर-दूर तक दुनिया के कोने-कोने मे फैले हुए है, बस्ती के लिए खतरनाक जगहो मे गहरे जाकर बसने वालो मे पहले लोग ये है। मुख्यत व्यापारी होने के कारण— और उनके व्यापार को कोई साम्राज्यवादी सरक्षण नही मिला—मानवीय सम्बन्धो के वे अच्छे जानकार है और कैसी भी परिस्थिति हो अपने-आपको उसमे बडी खूबी

से निभा लेते है। उनमे घुल-मिल जाने की बडी शक्ति है। फिर भी उनमे से बहुत थोडे लोगो ने गुजरात के बाहर के व्यक्तियो के बारे मे बहुत कम कहानियाँ लिखी है। मै यहाँ इस बहस मे नही पडना चाहता कि यह अच्छा है या बुरा, और न मै यह कहता हूँ कि यह गुजरात का ही विशेष स्वभाव है। मै तो केवल यह नोट करना चाहता हूँ कि आज की स्थिति जो है, वह ऐसी है। इसपर कोई टिप्पणी मै नही देना चाहता।

नाटक

उपन्यास और कहानी की तरह आधुनिक नाटक का उद्भव और विकास भी ब्रिटिश प्रभाव के कारण हुआ। गुजराती नाटक आरम्भ से ही अग्रेजी और सस्कृत-नाटको के विशेष गुणो का मिश्रण थे। सस्कृत-नाटको से कही अधिक अग्रेजी नाटक का, विशेषतया शेक्सपीयर का, प्रभाव गुजराती नाटको पर दिखाई देता है।

आरम्भ मे कुछ वर्षो तक प्रमुख साहित्यिक रगमच के लिए नाटक लिखते थे। बाद में बहुत अर्से तक साहित्यिक नाटक और अभिनय योग्य नाटक के बीच मे पूरा विच्छेद पैदा हो गया। महत्त्वपूर्ण विख्यात साहित्यिको का रगमच की ओर ध्यान नही था, और रगमच के लिए लिखने वाले पेशेवर नाटककारो को साहित्य से प्रेम नही था। प्रख्यात पेशेवर कलाकारो द्वारा २५ वर्षो के बीच मे कठिनाई से एक-दो ही साहित्यिक नाटक मच पर खेले गए। परन्तु यह दोनो पक्षो के झुकने और मिलने का सवाल था। साहित्य और रगमच दोनो ही एक-दूसरे से बिलकुल कटे हुए दो ध्रुवो की तरह बने रहे।

समय बहुत जल्दी बदलता गया और सिनेमा तथा अन्य मनोरजन के साधनो का आक्रमण होने के बाद पेशेवर रगमच अपनी जान बचाने के लिए इन बदलती हुई परिस्थितियो के अनुसार बदलता गया। सम-कालीन विषयो पर नाटक लिखे गए। स्त्रियो से स्त्री-पात्रो का अभिनय

कराया गया। नृत्य और संगीत के रूप में नये-नये प्रयोग मंच पर लाए गए। कुछ पेशेवर नाटक-कम्पनियों ने एक लम्बे नाटक के बजाय दो-तीन एकांकी एकसाथ खेलने शुरू किये मगर यह प्रयोग दर्शकों को विशेष नहीं रुचा इसलिए अब वे उसी पुराने रास्ते पर चलने लगे।

१९१४ के बाद का काल-खण्ड ऐसा था कि जिसमें अव्यावसायिक मंच का विकास हुआ। अन्य लेखकों के साथ-साथ चन्द्रवदन मेहता और क० मा० मुन्शी ने इस आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने में बड़ा योग दिया। पढ़े-लिखे लोगों ने नाटकों के प्रति दिलचस्पी पैदा करने में इन्हें सफलता मिली। मगर अव्यावसायिक मंच को लोकप्रिय बनाने के प्रयत्न ने ये अग्रदूत सामान्य लोकप्रियता के स्तर से ऊँचे नहीं उठ सके। उन्होंने जो बहुत-से नाटक खेले वे सस्ते, अतिनाटकीय ढंग के या भड़कीले असंगत प्रहसन के रूप में थे। ऐसा कई वर्षों तक चलता रहा।

इसी बीच में अव्यावसायिक रंगमंच का आन्दोलन जोर पकड़ता गया। अहमदाबाद सूरत, बड़ौदा और राजकोट में बड़ी हलचल हुई। नाटक और रंगमंच में गम्भीर दिलचस्पी लेनेवाले लोगों के दल जुटते गए। नए नाटक—फार्स या हास्य-व्यंगभरे एकांकी ही नहीं—लिखे जाने लगे। अनुवाद और अंग्रेजी तथा बंगाली नाटकों के रूपान्तर भी लोकप्रिय हुए तथा इस प्रकार से अव्यावसायिक रंगमंच विकसित होता रहा।

पिछले कई वर्षों में गुजरात ने अव्यावसायिक रंगमंच में जो प्रगति की, वह बहुत ही आश्चर्यजनक है। जहाँ तक अभिनय की प्रतिभा का सम्बन्ध है, उसका स्तर बहुत ऊँचा है। दिग्दर्शन का स्तर भी काफी ऊँचा हो रहा है। दर्शकों की अभिरुचि भी अधिक विवेकपूर्ण और औचित्य भरी होती जा रही है। इस अव्यावसायिक रंगमंच के सामने सबसे बड़ी बाधा है अच्छे नाटकों का अभाव। स्कूल और कालेज की संस्थाएँ अधिकतर प्रहसन और बहुत साधारण कोटि के हास्य के नाटक पसन्द करती हैं। अन्य संस्थाएँ दूसरी भाषाओं से अनुवाद और

रूपान्तर पर अधिक निर्भर रहती है। मूलत गुजराती मे लिखे हुए उच्चकोटि के नाटको का प्राय अभाव है और जो अनुवाद तथा रूपान्तर भी होते है वे साहित्य की श्रेष्ठ रचनाओ के नही होते। गुजरात मे अव्यावसायिक रगमच की प्रतिभा और साधन-सम्पन्नता देखते हुए उन्हे अधिक अच्छे नाटक मिलने चाहिए।

साहित्यिक नाटको मे, अब लम्बे नाटक का लिखना प्राय समाप्त हो गया है। १९१४ मे प्रकाशित 'राईनी पर्वत' (राई का पर्वत) नामक नाटक के बाद सचमुच ऊँचे साहित्यिक गुणो का एक भी नाटक गुजरात ने पैदा नही किया। गीति-नाट्य, जिसे कि नानालाल ने शुरू किया, गुजरात की जमीन मे नही पनप सका। पद्य मे भी नाटक लिखने के कुछ अच्छे प्रयत्न अवश्य हुए, लेकिन गुजरात मे नाट्य-साहित्य का सबसे समृद्ध अश है—एकाकी। बटुभाई उमरवाडिया, यशवत पण्ड्या और प्राणजीवन पाठक ने सबसे पहले गुजराती साहित्य मे जब एकाकी लिखना शुरू किया, तब से अब तक इस विशिष्ट विधा ने बडी मात्रा मे सफलता प्राप्त की है। रूप-शिल्प और विषय-वस्तु मे एकाकी अब बहुत समृद्ध विविधता प्रेषित करता है। उमाशकर जोशी ने 'सापना भारा' नामक एकाकी मे समूचे गुजराती गॉव को उसकी छाया और प्रकाश के साथ व्यक्त किया है और नारी के जीवन की शोकान्तिका दिखलाई है। आज की सभ्यता, ढोगीपन और कुरूपता को उन्होने अपनी 'शहीद अने बीजाँ नाटक' (शहीद और अन्य नाटक) पुस्तक मे व्यक्त किया है। गुलाबदास ब्रोकर ने मनोविश्लेषणात्मक ढग से मानव-मन की रहस्यात्मकता को खोलकर दिखाया है। जयन्ती दलाल ने विशिष्ट व्यगमयी शैली मे समकालीन सामाजिक, राजनैतिक खोखलेपन को व्यक्त किया है। चुनीलाल मडिया ने भाषा पर सशक्त अधिकार करने के साथ-साथ कभी पाठको को रोमान्स के क्षेत्र मे और कभी नग्न यथार्थवाद के क्षेत्र मे ले जाने का काम किया है। इस प्रकार से गुजराती के एकाकी नाटको मे हास्य और करुणा के सभी रूप पूरी तरह अभिव्यक्त हुए है।

आत्मकथा और जीवनी

स्वतन्त्रता के बाद के गुजराती साहित्य मे आत्मकथा का रूप बहुत विकसित हुआ। इस भाषा के सभी ज्येष्ठ लेखको—जैसे मुशी, रमण लाल देसाई, धूमकेतु, धनसुखलाल महेता—ने आत्मकथाएँ लिखी है। चन्द्रवदन महेता और चापशी उदेशी ने भी अपने बारे मे बहुत विस्तार से बतलाया है। यह सब आत्मकथाएँ बडी मनोरजक है। उनमे से कुछ उनकी विषय-वस्तु के कारण और कुछ उनकी अभिव्यजना-पद्धति के कारण विशिष्ट है। परन्तु तीन बहुत ही अच्छी आत्मकथाएँ है। नानाभाई के 'घड्तर अने चणतर' मर्मस्पर्शिता, सादगी, स्पष्टवादिता और प्रामाणिकता से भरा उत्तम ग्रथ है। इन्दुलाल याज्ञिक की आत्मकथाएँ यद्यपि साहित्यिक शैली का आदर्श नही है, फिर भी १८९२ से १९२१ के गुजरात का सूक्ष्म चित्र उपस्थित करती है। इन्दुलाल स्वय इस काल की सभी हलचलो से सम्पृक्त थे, इस कारण ऐसी पुस्तक लिखने का उन्हे समुचित अधिकार है। उनके कुछ व्यक्तिगत सस्मरण, विशेषतया अपनी पत्नी के विषय मे, उनकी श्रेष्ठ आत्मविश्लेषण-शैली के उत्तम उदाहरण है। इसकी तुलना गाँधीजी के 'सत्य के प्रयोग' के कुछ स्थलो से की जा सकती है। पर इन तीनो मे सर्वश्रेष्ठ है प्रभुदास गाँधी की 'जीवननु परोढ'। यह भी केवल विस्तार से लेखक के जन्म और विकास की कहानी है, परन्तु यह पाठक को फिनिक्स आश्रम के उन दिनो मे ले जाती है, जब गाँधीजी ने सत्य और अहिंसा के प्रयोग शुरू किये थे, जिनके कारण वे इतने महान बने। यह पुस्तक एक और दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि इसमे बच्चे के मन का विकास और उसमे जो विकृतियाँ प्रवेश करती है उनका भी सूक्ष्म चित्रण हुआ है। लेखक ने अपने बारे मे जो-कुछ भी लिखा है, वह बहुत ही विनम्रता से लिखा है। प्रकृति के सशक्त और चित्रोपम वर्णन तथा मनुष्य स्वभाव का बहुत गहरा अध्ययन इस पुस्तक में दिखाई देती है। यह इतनी अच्छी तरह लिखी गई है कि इसे किसी भी प्रतिभाशाली लेखक की श्रेष्ठ कृति के

समकक्ष रखा जा सकता है।

जीवनी-साहित्य भी अब गुजराती मे विकसित होने लगा है। गाँधी जी की जीवनी पर बहुत-सी पुस्तके लिखी गई है। नरहरि परीख की 'सरदार वल्लभभाई', कान्तीलाल शाह की 'ठक्कर बापा', और बबलभाई महेता की 'रविशकर महाराज' आदि पुस्तके विशेष उल्लेखनीय है।

समकालीन साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण भाग डायरियाँ भी हैं। नरसिहराव दिवेटिया की डायरी उस जीवन की कुछ झलक हमे देती है जो कि एक दृष्टि से घटनाहीन होते हुए भी दूसरी दृष्टि से निर्मम नियति के आघातो की निरन्तरता के विरुद्ध वीरतापूर्ण प्रतिकार व्यक्त करता था। मनुबेन गाँधी ने अपनी डायरी लिखी है, जो कि आगा खाँ महल और नोआखाली मे गाँधी जी के प्रतिदिन के कार्यक्रम का लेखा देती है। डायरी-विषयक इन सब पुस्तको मे 'महादेव भाईनी डायरी'* गुजराती मे सबसे प्रसिद्ध है। यह पाँच खण्डो मे है और एक भव्य पुस्तक है, क्योकि इसमे एक साथ तीन व्यक्तित्वो का सजीव चित्रण है। गाँधी जी का साक्षात्कारी व्यक्तित्व, सरदार पटेल का निष्ठापूर्ण बेपरवाह और हसोड व्यक्तित्व तथा स्वय लेखक का मिष्टभाषी, विनम्र और अत्यन्त सुसस्कृत व्यक्तित्व।

निबन्ध और पत्रकारिता

गुजरात के रचनात्मक साहित्य मे आत्म-निबन्ध सबसे कमजोर अग है। काका कालेलकर और अन्य कुछ लेखको के बाद यह साहित्य-रूप प्राय उपेक्षित रहा है। वर्तमान पीढी ने एक भी ऐसा लेखक निर्मित नही किया, जिसने कि उच्च कोटि के व्यक्तिगत निबन्ध लिखे हो।

हास्यरसात्मक निबधो के बारे मे यह बात सच नही है। यह सच है कि गुजरात मे हास्य रस के बहुत अधिक लेखक नही है, पर जो भी

* स्वतन्त्रता के पश्चात् गुजराती साहित्य में सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ के नाते १९५३ में साहित्य अकादेमी ने इसे पुरस्कृत किया।

थोड़े-बहुत हैं, उनमे काफी ऊची प्रतिभा है। पुराने लेखको मे ज्योतीन्द्र दवे का नाम लिया जा सकता है और अपेक्षया नवीन लेखको मे बकुल त्रिपाठी और नवनीत सेवक विशेष उल्लेखनीय है। इधर ज्योतीन्द्र दवे अपने को दोहरा रहे है और बिखर रहे है, फिर भी वे निश्चित रूप से गुजराती मे अब तक के हास्य-रस-लेखको मे श्रेष्ठ है। वे सौम्य, सहिष्णु, बहुमुखी प्रतिभा वाले और किसी प्रकार का दुराग्रह न रखने वाले लेखक है। हास्य, व्यग्य और विच्छित्ति (विट) के लिए उनकी विशेष पैनी दृष्टि है। वे सबसे निचले से सबसे ऊँचे ढग के हास्य के स्तर पर लिख सकते है। बकुल त्रिपाठी के हास्य में ताजगी और किसी वस्तु या स्थिति को गलत दृष्टिकोण से देखने से पैदा होने वाली विचित्रता है। नवनीत की 'सप्ततत्रनी वातो' नामक पुस्तक एक उत्तम व्यग्य रचना है, जो कि समकालीन समाज-स्थिति पर एक अर्ध-गम्भीर व्यग्य है।

गुजराती मे पत्रकारिता भी साहित्य को अप्रत्यक्ष रूप से बडी मूल्यवान सहायता दे रही है। प्राय उत्तरदायी दैनिक और साप्ताहिक बडे अर्से से साहित्यिक वाद-विवाद और साहित्य-समालोचना के लिए नियमित पृष्ठ देते रहे है। इन नियमित प्रकाशनो से पाठको मे साहित्य के प्रति उत्साह जागा है। मासिक पत्रिकाओ और त्रैमासिको ने भी बडी सेवा की है। उनकी अपनी-अपनी स्वतत्र नीतियाँ है। आज की पत्रिकाओ मे 'सस्कृति' सबसे अधिक सास्कृतिक और साहित्यिक पत्रिका है। 'कुमार' केवल मासिक पत्रिका ही नही, एक शैक्षणिक सस्था भी है। गत ३० वर्षों से पाठको की एक पीढी के मन और चरित्र को उसने आकार दिया है। 'अखण्ड आनन्द' का भी उल्लेख उचित रूप से किया जा सकता है, क्योकि दस वर्ष पूर्व उसका जो प्रसार था, उसकी अपेक्षा अब उसके पाठको की सख्या बहुत अधिक बढ़ गई है। साथ ही एक दैनिक 'जन्मभूमि' का भी उल्लेख करना चाहिए, जिसमे कि विवेकपूर्ण और गभीर नीति के कारण गुजरात की आज की राजनैतिक चेतना और समभदारी विकसित हुई है।

प्रमुख गुजराती पत्रिकाओ का एक विशेष अग है, व्यग-कविता। १९४२ के 'भारत छोडो' से यह विधा शुरू हुई। जब पत्र-पत्रिकाओ और व्याख्यानो पर कई तरह के प्रतिबन्ध थे, तब सरकार की नीतियो की आलोचना असम्भव थी। ऐसे समय में हास्य और व्यग के सहारे उस नीति का हास्यास्पद रूप अच्छी तरह व्यक्त किया जाता था। करसनदास माणेक ने गुजरात मे यह प्रयोग पहली बार किया और मध्ययुग के आख्यान नामक पद्य-प्रकार को वे इस काम मे लाये। यह कुछ हास्यपूर्ण और कुछ वीरतापूर्ण कविता होती है, जिसमे खूब व्यग और परिहास भरा रहता है। 'वैशम्पायननी वाणी' मे बडी सफलतापूर्वक और सच्ची पत्रकारिता के ढग से उन्होने ब्रिटिश सरकार और उसके उस समय के समर्थको के ढोगो, विसगतियो और क्षुद्रताओ का पर्दाफाश किया। इस काल मे माणेक के कई अनुयायी हो गए है। आज भी 'जन्मभूमि', 'गुजरात समाचार', 'सन्देश' और 'लोकसत्ता' इत्यादि दैनिक पत्रो के स्तम्भो मे ऐसी व्यग रचनाए नियमित रूप से प्रकाशित होती रहती है।

पारसी लेखक

गुजराती लेखको के अतिरिक्त साहित्यिक क्षेत्र मे पारसियो ने भी अपना विशेष योगदान दिया है। कुछ पारसियो ने साहित्यिक गुजराती कविता और कहानियाँ लिखी तथा उन्हे उन गुणो के कारण गुजराती लेखक माना गया। दूसरे लेखको ने अलग रहना पसन्द किया। उन्होने भाषा की शुद्धता या उसके बामुहावरा होने की ओर इतना ध्यान नही दिया। उनके अपने विशेष पाठक है। फिर भी उनकी भाषा गुजराती ही है और गुजराती मे ही वे कहानियाँ, उपन्यास, नाटक, कविताएँ, निबन्ध और सम्पादकीय लेख लिखते रहे है, जिसके कारण वे पाठको के प्रेम और प्रशसा के पात्र हुए है।

लेखिकाएँ

समकालीन गुजराती साहित्य को जिन स्त्रियो ने भी रुचिकर योगदान दिया है उनमे से विनोदिनी नीलकठ का उल्लेख पहले हो चुका है। उनके अतिरिक्त लाभुबेन महेता, कुन्दनिका कापडिया, धीरूबेन पटेल और गीता परीख (कुमारी कापडिया) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

अनुवाद

समकालीन गुजराती साहित्य का बहुत बडा भाग अनुवाद और रूपान्तर है। विदेशी लेखको मे शेक्सपीयर, इब्सन, टाल्सटाय, विक्टर ह्यूगो, मोपासाँ, चेखव, गोर्की, इमर्सन, प्लैटो, शॉ और भारतीय लेखको मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बकिमचन्द्र, शरत् चटर्जी, प्रेमचन्द, खाँडेकर, साने गुरुजी, आत्रे तथा कई अन्य लेखक अनुवादो द्वारा गुजराती पाठको को परिचित कराये गए है।

टाल्स्टाय के सब महत्त्वपूर्ण ग्रथ गुजराती मे अनूदित हुए है, कई वर्ष पूर्व विश्वनाथ भट्ट ने इनका अनुवाद किया था। इधर जयन्तीदलाल ने 'युद्ध और शान्ति' का बहुत बडा अनुवाद प्रस्तुत किया है। टाल्स्टाय को छोडकर और कोई दूसरा विश्व-प्रसिद्ध लेखक पूरी तरह और अच्छी तरह गुजराती मे अनूदित नही हुआ। होमर, वर्जिल, दाते, मिल्टन, गेटे और यूनान के क्लासिकल नाटको का अनुवाद होना अभी भी बाकी है।

मुख्यत उपन्यास और कहानियाँ ही दूसरे साहित्यो से अब तक अनूदित होती रही है। इसका अर्थ यह है कि व्यावसायिकता ही इन अनुवादो के पीछे प्रेरणा रही है, विशुद्ध साहित्य-प्रेम नही।

ज्ञान-विज्ञान का साहित्य

प्रतिभायुक्त रचनात्मक साहित्य से हम अपना ध्यान जब ज्ञान-विज्ञान के साहित्य की ओर मोडते है तो गुजरात मे कुछ महत्त्वपूर्ण

आन्दोलन दिखाई देते हैं। गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडौदा; चुनीलाल गाँधी रिसर्च इस्टीच्यूट, सूरत, भारतीय विद्या भवन, तथा फार्बस गुजराती सभा, बम्बई आदि सस्थाओ ने प्राचीन पुस्तको के अधिकृत पाठ प्रकाशित किये है। गुजराती भाषा-शास्त्र और इतिहास के अध्ययन मे इन ग्रथो से बडी उपयोगी सहायता मिली है। सुन्दरम् की 'अर्वाचीन कविता', जो कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थी और रामनारायण पाठक का 'बृहत् पिंगल'* ऐसे ग्रथ है, जिनके पीछे बडा परिश्रम, गहरा अध्ययन, परिपक्व दृष्टि और स्वतत्र विचार दिखाई देते है। ये ग्रथ किसी भी भाषा के साहित्य के लिए गौरवपूर्ण कहे जायँगे।

साहित्यालोचन के क्षेत्र मे विष्णुप्रसाद त्रिवेदी, दोलाराय मनकाड, जे० ई० सजाना, विश्वनाथ भट्ट, विजयराय वैद्य और अनतराय रावल, दार्शनिक चिंतन के क्षेत्र मे स्वर्गीय किशोरीलाल मशरूवाला के कार्य के अतिरिक्त पडित सुखलालजी, ऐतिहासिक अनुसधान के क्षेत्र मे स्वर्गीय दुर्गाशकर शास्त्री के कार्य के अतिरिक्त मुनि जिनविजय और हरप्रसाद शास्त्री, और भाषाविज्ञान एव भाषातत्त्व के क्षेत्र मे भोगीलाल साडेसरा, बेचारदास पडित, हरिवल्लभ भायाणी और प्रबोध पडित महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे है। परन्तु अधिकतर यह काम विद्वत्तापूर्ण पत्रिकाओ मे प्रकाशित फुटकर लेखो के रूप मे ही है। आलोचना के सैद्धान्तिक पक्ष पर किसी सुयोग्य विद्वान ने एक भी ऐसी पुस्तक नही लिखी कि जिसमे इस विषय का पूरा विवेचन हो। सस्कृत या अग्रेजी व्याकरणो पर आधारित न होकर इस भाषा के प्रयोगो के अध्ययन पर आधारित स्वतत्र सर्वव्यापी व्याकरण भी अभी तक गुजराती मे नही लिखा गया। नरसिहराव दिवेटिया के दो भागो मे प्रकाशित 'गुजराती भाषा और साहित्य' पुस्तक के पहले अब तक ऐसी एक भी पुस्तक नही लिखी गई, जिसमे इस विषय की

*साहित्य अकादेमी ने १९५६ में गुजराती में १९५३-५५ के सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक ग्रथ के नाते इसे पुरस्कार दिया।

आधुनिकतम और पूरी वैज्ञानिक छान-बीन का सार हो। दिवेटिया की पुस्तक कई वर्ष पूर्व लिखी गई थी और अब इस क्षेत्र में बहुत-सी नई शोधें हुई हैं, इसलिए पुस्तक का पुनर्लेखन आवश्यक है। गुजराती साहित्य का एक अविच्छिन्न विवरण या इतिहास, जैसा कि अंग्रेजी में सेंट्सबरी या लेगुई और केजेमिया का है, लिखा जाना चाहिए।

वस्तुतः स्वतन्त्रता के बाद के युग में ही साहित्य के विकास और निर्माण के लिए समुचित वातावरण पैदा हुआ है। केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारें उत्तम साहित्यिक गुणों की पहचान के चिह्न-स्वरूप इनाम या पुरस्कार देने लगी हैं। प्रादेशिक विश्वविद्यालय भी स्थापित हुए हैं, जिनमें भाषा और साहित्य का व्यवस्थित वैज्ञानिक अध्ययन बढ़ने लगा है। विविध भाषा के क्षेत्रों में—राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय—सम्पर्क बढ़ते जा रहे हैं, गुजरात के साहित्यिक वातावरण पर उसका प्रभाव दिखाई दे रहा है। आज का औसत गुजराती लेखक केवल गुजराती और गुजराती साहित्य की भाषा में अब नहीं सोचता उसके सामने अब नए और व्यापक क्षितिज खुलते जा रहे हैं।

कदाचित् दुनिया के अन्य देशों में भी लेखकों की यह कठिनाई हो, कम-से-कम आज के गुजराती लेखक की तो यह एक विशेष कठिनाई है। कवि के शब्दों में कहें तो वह मानो "दो दुनिया के बीच में भटक रहा है, जिसमें से एक मृत है, और दूसरी जन्म लेने के लिए अक्षम।" लेखक का 'आगामी कल' में विश्वास, आणविक और हाईड्रोजन बमों ने चूर-चूर कर दिया है और इस प्रकार के जीवन के अन्तिम आदर्शों के प्रति उसमें अनास्था है, इसलिए उसके सामने जो कार्य है, वह बहुत कठिन है। सबसे पहले तो उन अन्तिम मूल्यों में श्रद्धा जगाकर उसे अपने-आपको पुनर्जीवित करना है, और बाद में पूरी ताकत तथा सहजता से उनके बारे में गाना है, जिससे कि उस वर्ग की गूंज उन हृदयों में भी अचूक ढंग से पैदा हो जो कि अभी पूरे मर नहीं चुके हैं।

गुजराती पर चुने हुए सदर्भ-ग्रंथ

माइलस्टोन्स इन गुजराती लिट्रेचर—के० एम० भवेरी

फर्दर माइलस्टोन्स इन गुजराती लिट्रेचर—के० एम० भवेरी

प्रेजेन्ट स्टेट ऑफ गुजराती लिट्रेचर—के० एम० भवेरी

गुजरात ऐंड इट्स लिट्रेचर—के० एम० मुशी

लिग्विस्टिक सर्वे ऑफ इडिया—जी० ए० ग्रियर्सन, खड ९, भाग २, पृष्ठ ३२३—४७७

तमिल

ति० पी० मीनाक्षिसुन्दरम् पिल्लै

पार्श्वभूमि

दक्षिण भारत मे वर्तमान मद्रास राज्य और श्रीलका के उत्तरी तथा पूर्वी हिस्सो की प्रमुख भाषा तमिळ है। यह भाषा उन व्यक्तियो की भी है, जो ऊपर के प्रदेशो से दक्षिण और पूर्वी अफ्रीका, बर्मा, मलाया तथा सुदूर पूर्व मे चले गए है। भाषाओ के द्राविड-समूह मे तमिळ सबसे पुरानी भाषा है और उस समूह की अन्य महत्त्वपूर्ण भाषाएँ है—तेलुगु, कन्नड और मलयालम। इसी परिवार की अन्य विभाषाओ या बोलियो मे दक्षिण भारत मे 'तूलू', 'कोडगु', 'टोडा' और 'कोटा', मध्य प्रदेश एवं उड़ीसा मे 'गोडी', 'ओरांव', 'मालती', 'राज महल', 'कुई' और 'कोरकु' तथा सुदूर बिलोचिस्तान मे 'ब्राहुई' है। यदि कदाचित् फादर हेरास का अनुमान सही हो, तो भाषाओ के द्राविड़-परिवार का सुदूर संबध मोहनजोदारो-सभ्यता से माना जा सकता है।

विद्वानो का मत है कि तमिळ का सबसे पुराना ग्रथ 'तोल्काप्पियम्' नामक व्याकरण का ग्रंथ है। परम्परा के अनुसार यह ग्रंथ अगस्त्य ऋषि के किसी शिष्य का लिखा हुआ है। इसमे तमिळ मे उधार लिये हुए संस्कृत शब्दो का विचार है। संस्कृत-ग्रथो से पता चलता है कि तमिळ-सस्कृत-सबध कम-से-कम चौथी शती ईस्वी पूर्व-जितना प्राचीन रहा होगा।

एक समय तमिळ-प्रदेश मे जैन और बौद्ध प्रभाव बहुत अधिक था। धर्म, व्यापार और उद्योग के कारण उत्तर और दक्षिण एक-दूसरे के परस्पर-हितकारी सपर्क मे आये होगे। दो सस्कृतियो के परस्पर सहवास और परस्पर-फलन का परिणाम दक्षिण मे ब्राह्मी लिपि मे लिखा गया—तीसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व का—तमिळ-प्राकृत-मिश्रित भाषा मे गुफा-लेख है। इसपर सिंहली प्रभाव भी है।

जहाँ तक तमिळ साहित्य की प्राचीनता का सबध है, सगम-साहित्य मे यवनो और रोमनो के उल्लेख, तथा अरिकमेडु-उत्खननो से जो साक्ष्य प्राप्त हुए है उनसे यह जाना जा सकता है कि सगम-साहित्य की निर्मिति कभी ईस्वी सन् के आरभ मे हुई होगी। सगम-युग के विशाल साहित्य मे भाव-गीतो के सग्रह, लबी कविताएँ, प्रेम और कीर्ति से प्रेरित नाटकीय स्वगत-भाषण इत्यादि है। इनके अतिरिक्त 'शिलप्पदि-कारम्' (मजीर की कथा) और 'मणिमेखलै' (एक बौद्ध कृति) नामक दो और महाकाव्य थे। यह कदाचित् सगम-काल के अन्त मे या अगले युग के आरभ मे लिखे गए। यह अगला युग नैतिक सूक्तियो का युग था। इसमे अन्य कई कृतियो के साथ-साथ अमर 'कुरळ' रचा गया। यह युग पल्लव-काल तक चला। हिन्दुओ का धार्मिक जागरण, जो कि सगम-युग के अन्त मे आरभ हुआ, जैन और बौद्ध-विजय की क्षणिक प्रतिक्रिया था। यह युग शैव नायनमार और वैष्णव आळवारो की रहस्यवादी गीतियो से उच्चतम सफल कृतियो तक पहुँचा। इनकी ईश्वर-भक्ति से प्रेमोन्मत्त कविताओं ने अपने शाब्दिक व्यजना से वही चमत्कार घटित किया जो कि दक्षिण के महान हिन्दू-मदिरो के स्थपतियो और शिल्प-कारो ने अपने स्वर्गोन्मुख 'गोपुरम्' से किया। नायनमारो (मुख्यत माणि-क्कवाचगर और अप्पर ने) और आळवारो ने (मुख्यत नम्मालवार और आन्डाल) जनता को भक्ति-मार्ग का उपदेश दिया। इसके बाद साहित्यिक पुराणो के लेखक आये, जिनमे से बहुत-से चोल-साम्राज्य के समय प्रसिद्ध हुए। कम्बन की रामायण इस साहित्य-विधा की सर्वश्रेष्ठ

उपलब्धि थी, और वह आज भी तमिळ के प्राचीन श्रेष्ठ ग्रथो मे सबसे अधिक प्रशसित है। उसकी यह प्रशसा उचित ही है।

इनके बाद दार्शनिक पद्धतियो का युग आया। हमे यह नही भूलना चाहिए कि शकर और रामानुज, उस समय जो तमिळ-प्रदेश था, उसमे से आये, और वे तमिळ जानते थे। वेदान्त, शैव-सिद्धान्त और श्रीवैष्णव मत को सूत्रबद्ध करके उन्हे सुसगत दर्शनो का रूप दिया गया। निस्सन्देह इनमे से बहुत-सा साहित्य सस्कृत मे था, परन्तु तमिळ मे भी धीरे-धीरे बहुत-सा दार्शनिक साहित्य निर्मित हुआ। इस सदर्भ मे अरुलानन्दि, मेइकडार, उमापति, पिल्लै लोकाचार्य, वेदान्त देशिकर और मनवाळ महामुनि का विशेष उल्लेख करना चाहिए। जबकि प्राचीन कविता इस भाष्य और टीका के युग मे जीवित शक्ति की भाँति प्रचलित थी, मणिप्रवाल-शैली (रीतिबद्ध रचना के लिए सस्कृत-तमिळ-मिश्रित सचेष्टा रचना) दार्शनिक विवरण के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। इसका एक उत्तम उदाहरण वेदान्त देशिकर का 'रहस्य-त्रय-सार' है। आगे चलकर तमिळ-कविता उदात्त और असामान्य प्रासो का विशेष उपयोग करने लगी। ऐसा सस्कृत के प्रयोग के कारण हुआ। इस प्रकार सस्कृत और तमिळ की धाराएँ सहज गति से मिश्रित हो गई। इन दो भाषाओ के विवाद मे से सगीतमय कीर्तन का उदय हुआ। आधुनिक कर्नाटक-सगीत भी इन्ही धाराओ का विकास है। बाद के सतो की कविता मे, सार्वमत-सग्रह मिलता है। पोपिगार या छोटे सामन्त अश्लील कविता से आनन्द उठाते रहे। स्थलपुराण विशेष लोकप्रिय हुए। दलित कुरवा, पल्ला और अन्य पिछडे हुए वर्गों के जीवन चित्रित करने वाले लोक-नाट्य मे कविता, सगीत और अभिनय का अभूतपूर्व मिश्रण घटित हुआ।

आधुनिक काल

जब ईसाई मिशनरी आये, तो बच्चो और दलितो से बोलने की

उत्सुकता के कारण, बोलचाल की तमिळ भाषा मे उनका रस बढा। कविता पुरानी पड रही थी और नीरस हो जाने से उसमे कोई लोकप्रियता, लय तथा आधुनिक मुहावरे पैदा नही हो सकते थे। उन्नीसवी शताब्दी ने प्रगतिशील पश्चिम का स्वप्न सामने ला दिया और तमिळभाषियो ने अनुवाद और रूपान्तर किया। आधुनिक विचार वाले ग्रथो की पश्चिम की नकल पर पत्र-पत्रिकाएँ तथा शिक्षा-सस्थाएँ स्थापित की गई और वही साहित्यिक धारा शुरू हो गई। शासन के क्षेत्र मे जहाँ-जहाँ तमिळ थी, उस स्थान पर अग्रेजी आ गई। बीसवी शताब्दी से स्वतत्रता का युग शुरू होता है और जनसाधारण का महत्त्व सूरत में हुए काग्रेस के उस अधिवेशन से शुरू होता था, जिसमे सुब्रह्मण्य भारती गये थे।

आधुनिक तमिळ-साहित्य तमिळनाडु के आधुनिक जीवन से अपना रग और स्वर लेता है। यह साहित्य समाज के आदर्शों को भी प्रेरित करता है। २०वी सदी एशिया के जागरण की सदी है। राष्ट्रीय स्वतत्रता का आन्दोलन और पुनर्जीवन इसकी विशेष घटनाएँ है। आधुनिक तमिळ-साहित्य की सर्वोत्तम कृतियाँ राष्ट्रीय गीत है। तमिळ-साहित्य के मूल स्वर से मेल रखकर यह राष्ट्रीय गीत धार्मिक उत्साह से भरे है। एक ओर उनमे रहस्यवाद-जैसी गहराई मिलती है तो दूसरी ओर विश्वव्यापकता की ऊँचाई। उनमे विशुद्ध प्रेम और दया भरी हुई है। कोई भी व्यक्तिगत ईर्ष्या या द्वेष उनमे नही है। इन गीतो मे इतना विस्तार है कि वे सुदूर क्षितिज को छूते हुए जान पडते है। इसका तात्पर्य यह कदापि नही कि उनमे कभी तिरस्कार या कडुवाहट ही नही थी। उनमे सदा साम्राज्यवादियो के प्रति घृणा व्यक्त की गई है। विद्रोही शक्ति पहले तो रक्त और प्रतिशोध के लिए चिल्लाने वाली तलवारो के धर्म की तरह शुरू हुई—शक्ति की वेदी पर वह वलि माँगती थी—यह शक्ति भारत माता थी। नरमदलीय राजनीतिज्ञो और अग्रेजो के जो अनेक व्यग-चित्र लोकप्रिय धुनो मे लिखे गए, उनसे लोकप्रिय लोक-गीतो

की नाट्यात्मक स्थिति की याद हो आती है। राजा और प्रजा की सदियों की तंद्रा का उसमें वर्णन है। अच्छी कविताओं में जरा भी कड़ुवाहट नहीं है; सूक्ष्म परिहास के साथ व्यंग के नमूने भी उनमें मिलते हैं।

तमिळभाषी जनता के लिए प्रह्लाद और सन्त अप्पर का रास्ता हमेशा प्रिय रहा है। अप्पर दक्षिण भारत के पहले सत्याग्रही थे, जिन्होंने यह घोषणा की थी: "हम किसी के दास नहीं हैं, हम मृत्यु से नहीं डरते।" उस समय के जो पल्लव राजा थे, उनकी शक्ति और अत्याचार के विरुद्ध यह पुकार थी। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि महात्मा गाँधी शीघ्र ही तमिळभाषी प्रदेश के आदर्श पुरुष बन गए और उनके 'बिना तलवार या रक्त के युद्ध' में तमिळभाषियों ने एक महत्त्वपूर्ण भाग लिया। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के दिनों से ही महात्मा गाँधी और उनके सत्याग्रह ने तमिळनाडु के हृदय को छू लिया था। गाँधी-युग की धारा के अधिकतर तमिळ-गीत इसी भावना से प्रेरित हैं।

इस राष्ट्रीयता के कवि थे भारती। उनमें जन्म से धार्मिक रहस्य-वाद की भावना भरी थी। वे महान और सर्वव्यापिनी परम शक्ति की सच्ची पूजा से भरे हुए देश-भक्ति के गीत गाते थे। उनकी कविता में बड़ा प्रवाह है। कहीं भी कोई बेसुरापन या असतुलन नहीं दिखाई देता। एक ही कविता में भारतमाता का गुण-गान और परम सत्ता की पूजा तथा आनन्द मिले हुए हैं। वहाँ देश-भक्ति एक प्रकार का धार्मिक कर्त्तव्य बन जाती है और स्वतन्त्रता का आन्दोलन चिरन्तन का नृत्य है। शक्ति के दैवी नाटक में इस नृत्य को निश्चित सफलता और परिपूर्ति मिलने वाली है। कवि जनता के जिस वर्ग के साथ गाता और नाचता है—वह ऐसा है जो अभी तक दलित और पीड़ित था—वह सबकी स्वतंत्रता का गीत गाता है। सारे दुःखों से भरी स्वतंत्रता का यह गीत भविष्य-वाणी की तरह लगता है। यद्यपि यह गीत देश में स्वतन्त्रता के

आगमन से लगभग २५ वर्ष पहले लिखे गए थे ।

तमिळभाषियो के लिए मातृभूमि के दो रूप है । भारत माता का व्यापक दृष्टिकोण और तमिळनाडु की निकटात्मकता । कदाचित वे दूसरे पक्ष पर अधिक बल देते है, जो विशेषत भाषावार प्रदेशो के वर्तमान दशक की इधर की धारा है । तमिळ देश अपने सर्वोत्तम राष्ट्रीय गीतो मे किसी भौगोलिक इकाई का नाम न होकर एक विशेष सास्कृतिक परम्परा का पर्यायवाची है, यद्यपि वर्तमान युग मे भौगोलिक बाते भी भुलाई नही जा सकती ।

तमिळ भाषा का दैवीकरण अधिक किया जाता है और तमिळ देश का कम । यह देश की प्राचीन परम्परा के अनुसार ही है । तमिळ-भाषी साधारणत अपनी भाषा को एक अवतार मानता है । वह शिव, विष्णु और शक्ति का सम्मिलित रूप है । प्रत्येक प्राणी के भीतर देश-प्रेम की भावना होती ही है, परन्तु तमिळभाषियो के हृदय मे, इतिहास और परम्परा की शक्तियो के कारण यह एक धार्मिक उत्साह की तरह बैठ गई है । कभी-कभी तो यह कट्टरपन की सीमा पर भी पहुँच जाती है । उन्हे अपनी युगो की भाषिक स्वतत्रता पर हस्तक्षेप का सन्देह जरा भी सहन नही होता । तमिळभाषियो के लिए अपनी भाषा मे गाने की, अपनी भाषा मे शिक्षा पाने की, अपनी भाषा मे न्यायालयो मे तर्क करने की, विधान-सभाओ मे बोलने की, अपना राज्य चलाने की स्वतत्रता—यानी तमिळ का तूर्य सब जगह बजाने की स्वतत्रता, जैसा कि कवि ने कहा है, उस स्वतत्रता नामक मधुर शब्द का प्रधान प्रेरणादायक अर्थ है । उसका विश्वास है कि यह सकीर्ण प्रादेशिक भावना न होकर सजीव विश्वात्मक भावना है, जिसके कारण वह अपनी भाषा के लिए यह स्वतत्रता चाहता है । इस पार्श्वभूमि को देखे बिना तमिळ की प्रशसा मे इधर जो बहुत-सी कविता लिखी गई है, उसका पूरा अर्थ समझ मे नही आ सकता और उस अर्थ के महत्त्व का मूल्याकन नही हो सकता । यद्यपि कभी-कभी दुर्भाग्यवश कही-कही

सैनिक साम्राज्यवादी स्वर (जो अग्रेजी मे 'जिगोइज्म' कहलाता है) मिलता है।

आधुनिक धारा आदर्श को रूपायत्त करने की है। उसका प्रधान लक्ष्य जनता है। 'सीधा खडा तमिळ दीर्घजीवी हो, अच्छे तमिलभाषी दीर्घ आयु वाले हो' कवि गाता है। ऐसा समाज, जो सुखी हो, दरिद्रता, अज्ञान और रोगो से मुक्त हो, यही आदर्श है। एक प्रसिद्ध गीत की टेक है 'ऐसा समाज दीर्घजीवी हो,' कवि चिल्लाता है--"यदि एक भी व्यक्ति के लिए अन्न नही है तो ऐसी दुनिया को हम नष्ट कर दें।" अब भाग्यवाद की पुरानी बात नही की जाती। लोक-कल्याण-राज्य के निर्माण मे यह आत्म-विश्वास इतना पुराना है, जितना कि तिरुवल्लुवर नामक सत कवि था। अब यह कोरा शेखचिल्ली का सपना नही है, या तमिळ पुराणो मे सुन्दरता से वर्णित स्वर्ग का चित्रण भी नही है। यह एक ऐसी वस्तु है, जिसे हमारी राजनैतिक व्यवस्था और सामाजिक सुधार उपलब्ध करना चाहते हैं। इनमें से साधारण जनता का युग जन्म ले रहा है, राजाओ का जमाना बीत गया। यह सच्चा जनतन्त्र है, यह सच्ची स्वतत्रता और समानता है, यहाँ समानता का स्वरूप बधुता है। अब केवल राजनैतिक स्वतत्रता की आकाक्षा नही की जाती, बल्कि सामाजिक और आर्थिक स्वतत्रता पर भी उतना ही बल दिया जाता है। अब सब जातियो तथा धर्मो के स्त्री-पुरुषो के बीच स्वतत्रता और समानता का आग्रह बढा है। कविता ने एक स्वतत्र समाज के निर्माण की जिम्मेदारी स्वीकार कर ली है, परन्तु कभी-कभी उसमे सिर्फ विषैला प्रचार, सस्ते भाषण और नारेबाजी ही दिखाई देते हैं। आत्म-सम्मान का महत्त्व बढा है, परन्तु कभी-कभी इसमे औरो के लिए जुझारू असम्मान भी व्यक्त होता है। कदाचित् यह मनोदोष अनिवार्य माना जाय, क्योकि सारी दुनिया एक नई व्यवस्था के निर्माण मे लगी है।

जनतत्र और साहित्य

प्राथमिक शिक्षा का विकास, अखबार पढने की बढती हुई आदत, सिनेमा की लोकप्रियता, रेडियो और सस्ती पत्र-पत्रिकाओ का प्रचार, राजनैतिक प्रचार और वयस्क मताधिकार—इन सबका प्रभाव साहित्य पर भी पडा है। साहित्य अब थोडे-से चुने हुए लोगो के लिए नही रहा; इसका प्रभाव सब तक फैलना चाहिए। इसका अर्थ है कि शुरू-शुरू मे काव्य की सवेदना बहुत-कुछ कम हो जायगी, यह पनियल हो जायगा। बोलचाल की भाषा और साहित्य की भाषा के बीच की खाई पाटनी होगी। पुराने छन्द या तो नये रूप मे ढालने होगे या नष्ट हो जायँगे। अब लोक-गीतो और नाटको की धुने अधिक प्रचलित होने लगी है। भारती ने यह सिद्ध कर दिया कि उसकी रहस्यवादी, राष्ट्रीयतावादी और महाकाव्यात्मक कविता के लिए ये लोक-शैलियाँ उचित माध्यम है। साहित्य का जनतत्र इस प्रकार सुप्रतिष्ठित हो गया है।

तमिळनाडु के पुराने सत, सिद्ध और जोगी मानो इन परिवर्तनो के पूर्व द्रष्टा थे। भारती स्वय रहस्यवादी थे और एक सच्चे रहस्यवादी की भाँति वे सर्वत्र ईश्वर को देखते थे। नवीन जनतत्र के अनुसार, ईश्वर को मनुष्य के अधिक घनिष्ठ सम्पर्क मे आना होगा। ईश्वर अब मेरा दास है—यह बडा साहसपूर्ण कथन है। मेरा प्रियतम, मेरा पिता, मेरी माता, मेरा स्वामी है—कवि यो गाता है। आलवार सतो-जैसा ही पुराना यह कथन है। परन्तु इसका सच्चा अर्थ जनतत्र के नये युग मे व्यक्त होता है, जबकि प्रत्येक मनुष्य के भीतर हम ईश्वर को देखते है। जनतत्र की इससे अधिक दैवी भावना हमें अन्यत्र न मिलेगी। आम जनता हमेशा से यह विश्वास करती आई है—शायद पुनर्जीवन के सिद्धान्त के कारण—कि पशु-पक्षी भी मनुष्य के सगे भाई-बहन है। इस तरह सभी प्राणियो के बीच सहकारी प्रयत्न को बल मिलता आ रहा है। इस दुनिया मे, जहाँ कि ईश्वर और सत विविध रूपो में

घूमते है, पशु-पक्षी और मनुष्य सबके प्रति आदर आवश्यक है। गो-माता, शुक-कन्या, श्वान-भाई इत्यादि केवल आलकारिक शब्द न रहकर सचाइयाँ है। सत फ्रासिस के लिए यह बाते जैसे सच थी, वैसे ही भारती के लिए भी सच है। उनके लिए मन्दिर की घण्टी, भिखारी की आवाज और कुत्ते का भौकना सब एक-से दैवी गीत है। उनके बच्चो के गीतो मे यही भावना भरी है। भारती का कोयल-गीत एक बडा रहस्यवादी अव्यवसित-रूपक है, जिसका पूरा अर्थ तब तक समझ मे नही आयगा, जब तक कि उसकी पार्श्वभूमि से हम परिचित न हो, अन्यथा वह नीरस और वन्य जान पडेगा।

'कविता कविता के लिए' यह केवल अर्ध-सत्य है, क्योकि कवि भी तो इसी आदर्श और उद्देश्य वाला व्यक्ति है। भारतीय सिद्धातो मे तो मनुष्य के चरम साध्य चार पुरुपार्थ माने गए है, फिर भी काव्य के रस को कभी भुलाया नही गया। कविता कान्ता के मधुर उपदेश की तरह है, जो कि हमे अपने प्रियतम के चिरन्तन मूल्यो की ओर प्रेरित करती है। इसलिए तमिळ-कविता की उच्च गम्भीरता कभी भी नष्ट नही हुई, बल्कि उन गुणो को धार्मिक उत्साह भी कहा जा सकता है। तमिळ-साहित्य आधुनिक युग मे समाज के इस नवजागरण के उत्साह से अनुप्रेरित है। विशेपतः जनसाधारण उसका लक्ष्य है। इसमे समाज भी प्रेरित है। प्रकाश की अपेक्षा उष्णता अधिक पैदा होती है, और कभी-कभी साहित्य की अपेक्षा प्रचार अधिक हो जाता है। भारतीय साहित्य मे उपदेशात्मक कविता का चेहरा पहनकर आगे बढने का खतरा हमेशा ही रहता है। नारो का जादुई आकर्पण हमारे यहाँ है—वे आधुनिक युग के मत्र है। स्वतन्त्रता, समानता, प्रेम, देश-भक्ति, मातृ-भूमि और मातृ-भाषा इत्यादि ऐसी भावनाएँ है, जो अपने-आपमे सुन्दर होने पर भी बहुत बुरे रूप मे व्यक्त की जा सकती है। इस विचित्र स्थिति के कारण ईक कविताएँ व्यापक रूप मे पढी और गाई जाती है—अपने काव्य-गुणो के कारण नही—वरन् इसलिए कि वे लोकप्रिय है या नारो से भरी हुई,

लोक-प्रचलित विचारो की वाहिका है। जनसाधारण को कविता के वेश में सस्ती भावुकता और नाटकीयता बहुत अच्छी लगती है, परन्तु जन-साधारण मे श्रद्धा और प्रचलित वस्तुओ पर कविता लिखने का अर्थ यह नही है कि हम सस्तेपन और निम्न वासनाओ का अधिक प्रचार करे, उन्हे महत्त्व दे। सस्ते अखबारो के जमाने मे अब यह खतरा इतना बढ गया है कि ऐसा लगता है, मानो अच्छा साहित्य अब बाजार से उठ जायगा।

बोल-चाल की भाषा का पहले उल्लेख किया जा चुका है। बडे जोर की माँग है कि जैसा हम बोले, वैसा ही लिखे। पण्डिताऊ भाषा आप-से-आप मर जायगी। दूसरी ओर नाटक के पात्रो की भाषा छोड दे तो प्रादेशिक और सामाजिक उपभाषाओ मे इतनी विविधता है कि हम किसी दूसरी भाषा का 'बेबल' न पैदा कर दे। रेडियो, अखबार, राज-नैतिक भाषण और शिक्षा का प्रसार इत्यादि धीरे-धीरे एक स्टैण्डर्ड भाषा का निर्माण करते जा रहे है। इसीलिए आधुनिक तमिळ-कविता की भाषा न तो प्राचीन साहित्यिक भाषा है और न प्रचलित बोलियो की ही भाषा है, यद्यपि कभी-कभी कहानियाँ बोलियो मे गाई जाती है और प्राचीन लोक-गीतो की नकल मे पद्य भी रचे जाते है। कदाचित् यह भी अल्लि अरशाणि मालइ और देशिंगु राजन् कदै की पुरानी परम्परा का ही निर्वाह हो। यह कुछ हद तक लोकप्रिय है, परन्तु तमिळनाडु मे बोल-चाल की भाषा का आन्दोलन उतना जोर पर नही है, जितना कि आन्ध्र प्रदेश मे है। कदाचित् पश्चिम के प्रभाव के कारण मुक्त-छन्द और गद्य-काव्य भी लिखा जाता है।

साहित्यिक पुनर्जागरण जहाँ निकट अतीत के विरुद्ध विद्रोह है, वहाँ सुदूर अतीत के गौरव का पुनर्जीवन भी। पाचाली, विल्हण और बुद्ध की पुरानी कहानियाँ इस तरह से फिर लिखी जाती है कि उनमे वर्तमान काल के लिए सदेश रहे। ये कहानियाँ इस प्रकार से वर्णित की जाती है कि आधुनिक युग मे नए विचारो पर वल दिया

जा सके। स्वतन्त्रता और देश-भक्ति, वीरतापूर्ण नारीत्व और सजीव धर्म के आदर्शों पर इनमे जोर दिया जाता है।

साहित्य का दूसरा समकालीन रुझान है हास्य रस की ओर। पुराने साहित्य मे नाटक के विदूषक को छोडकर अधिकतर गम्भीरता मिलती है। आधुनिक ढग का हास्य समाचार-पत्रो के कारण निर्मित हुआ है। प्रचलित घटनाओ और व्यक्तियो पर उसमें मनोरजक टिप्पणियाँ होती है। वर्तमान साहित्य पर उनका प्रभाव कम नही है। कहानियो, पद्यो और निबन्धो सभी मे हास्य का पुट रहता है। नि स्वार्थ तटस्थता की भावना से अभिभूत सच्चे महान् लेखक ही सच्चा हास्य लिख सकते है। वे चाहे दु:ख मे हो, फिर भी हँसते रहते है। रोग से ग्रस्त होते हुए भी कविमणि ने एक द्रष्टा की वस्तुनिष्ठ दृष्टि विकसित की और उन्होंने अपने ढग का हास्य विकसित किया। उन्होने लिखा है कि उनके शरीर पर जो फोडे हो गए हैं वे उनके प्रिय रोग-राजा से प्राप्त मणि और मोती के उपहार है।

इस शताब्दी मे बच्चो के लिए ममता बढी। उनकी शिक्षा की माँग ज़ोरो से बढती गई—यह शिक्षा उनकी ऐसी मातृ-भाषा मे उन्हे प्राप्त होनी थी, जिसमे गाना और खेल मिला हो, जिसमे सृजनात्मक कार्य और प्रत्यक्ष ज्ञान भरा हो। पाठ्य-ग्रथो से भाषा की इस नई प्रसुप्त शक्ति का पता चलता है। ऐसी पाठ्य-पुस्तके लिखी गईं जो कि बच्चो के शारीरिक और मानसिक स्तर के अनुसार हो—इसकी भाषा प्राचीन शिशु-परम्परा की कविता मे थी। बच्चो के लिए लिखे गए गीत और कविता सच्चे साहित्यिक सौदर्य से भरे हुए रत्न है। इनमे भी भारती और कविमणि ने ही पथ-प्रदर्शन किया।

पत्रकारिता का प्रभाव

साहित्य पर पत्रकारिता का प्रभाव उपेक्षित नही किया जा सकता। दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र भी शायद ऐसे साहित्य न हो,

परन्तु वे एक से अधिक अर्थ मे सब प्रकार के साहित्य और आधुनिक विचारो के माध्यम के कारखाने हैं। इनमे कई आधुनिक लेखको को पहली साहित्यिक उम्मीदवारी मिल सकेगी। तमिळ दैनिको को रोज की घटनाओ और आविष्कारो की सूचना—जो कि प्रकाशन के कुछ मिनट पहले ही तार द्वारा प्राप्त होती है—का अनुवाद जनसाधारण की भाषा मे करने का कठिन कार्य करना पडता है।

प्रसिद्ध उपन्यासकार 'कल्कि' ने लिखा है कि स्वर्गीय टी० वी० कल्याणसुन्दर मुदलियार राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए पत्रकारिता के क्षेत्र मे आए। उनसे पहले समाचार-पत्र सस्कृत-बहुल सामासिक पाण्डित्य-पूर्ण शैली मे रस लेते थे, परन्तु मुदलियार के प्रभाव के कारण इन पत्रो की भाषा तमिळ के सच्चे मूल रूप के निकट पहुँच गई। एक ओर तमिळ मे से सब विदेशी शब्दो को निकाल फेकने के लिए, जिसमे सस्कृत के शब्द भी शामिल है, शुद्धिवादियो का आन्दोलन है। यह दूसरे अति-वादियो की स्वाभाविक और अनिवार्य प्रतिक्रिया है। इससे एक लाभ यह हुआ है कि भाषा के अभी तक अज्ञात मूल स्रोतो का पता चला है और उनमे से नये-नये शब्द गढे जा रहे हैं। इसलिए इस आन्दोलन को केवल जातीयतावादी या सस्कृत-विरोधी कहना उचित नही है। यह नकारात्मक आन्दोलन नही है, भाषा के विधायक सुधार की ओर भी इसका ध्यान है। परन्तु अन्य भाषाओ की भाँति इसमे भी स्वर्ण मध्यम मार्ग अधिक उचित होगा। हम अखबारी भाषा पर बोल-चाल की सस्ती भाषा का आक्रमण होते देखते है, परन्तु उसका कोई स्थायी प्रभाव मन पर नही रहता। फिर भी अभी से यह नही कहा जा सकता कि तमिळ-पत्रकारिता ने यह मध्यम मार्ग पाया है या नही।

साहित्य, एक व्यवसाय

इससे बीसवी सदी के तमिळ-साहित्य की दूसरी महत्त्वपूर्ण धारा स्पष्ट होगी। अब साहित्य एक व्यवसाय बन गया है—अब वह केवल

स्वान्त सुख की वस्तु नही रहा। कवि भी अब नौकरी चाहते हैं। अब दरबार तो रहे नही जहाँ वे राज-कवि होते, अब तो वे किसी चित्रपट के स्टुडियो मे या अन्यत्र पद्यकार के नाते ही नौकरी पाते है। जो पैसा देंगे, वे अपना नाच नचायँगे। यद्यपि शेक्सपीयर पर इस प्रकार का दबाव पडा था, किन्तु फिर भी वे एक श्रेष्ठ प्रतिभा के जनक बने रहे। जिस प्रकार शिल्पकार कठिन-से-कठिन चट्टान को अपनी रुचि के अनुसार आकार देता है, उसी प्रकार लेखक भी जन-रुचि को कच्चा माल मानकर उसमे से नया और सुन्दर कला-रूप निर्मित करता है। सतो और द्रष्टाओ वाले तथाकथित साहित्यिक स्वतत्रता के दिनो मे भी लेखक कभी भी अपने परिवेश से आँखे मूँदकर नही रहता था। साहित्य की समस्या, इस प्रकार, अर्थ-शास्त्र के प्रश्न से अप्रतिबिम्बित नही रहती। अब यदि कवि अपने आश्रयदाता की मर्जी के बिना तनिक भी इधर-उधर नही चल पाता तो वह जनसाधारण और पाठक की रुचि की उपेक्षा भी नही कर सकता। जनता की इच्छानुसार लिखने का लालच तो उसके मन में रहता ही है, परन्तु काव्यात्मक खुशामद का खतरा उसमे नही है। जैसा हम समझते है, सौभाग्यवश, हालत उतनी बुरी नही है, क्योकि पढे-लिखे लोगो की रुचि की शक्ति बडी है। आधुनिक युग मे लेखक नई समाज-व्यवस्था के स्थपति बनते जा रहे हैं, पुराने फैशन के गुलाम वे नही हैं। यह एक सुखद घटना है कि राज-नैतिक नेता, जैसे कि भारत के अन्तिम गवर्नर-जनरल श्री राजगोपाला-चार्य, विख्यात साहित्यिक भी हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

यह युग मुख्यत विज्ञान का युग है, जो प्रकृति के रहस्यो मे और सुप्त शक्तियो मे पैठता जाता है। अब सर्वत्र विज्ञान मे रुचि बढती जा रही है। फलत. कला के आदर्श भी उससे पूरी तरह अप्रभावित नही रह सकते। वस्तुत इस युग मे कुछ कलाकारो का आदर्श विज्ञान ही

बन गया है। कास्टेबल ने कहा था, "चित्र-कला एक विज्ञान है और उसका अनुसरण उसी प्रकार करना चाहिए, जैसे कि हम प्रकृति के नियमो की जाँच करते है। तो फिर दर्शन-चित्रण को प्राकृतिक दर्शन की ही एक शाखा क्यो न माना जाय, चित्र तो निरे इसी दर्शन के प्रयोग है ?" यदि यह सच है तो आश्चर्य होता है कि कुछ कहानियाँ और पद्य भी क्या केवल प्रयोग नही है। यद्यपि विज्ञान की साधारण पाठ्य-पुस्तके साहित्य से बिलकुल उल्टी है फिर भी ब्रैडले, हक्सले, या रसेल के जनप्रिय भाष्य साहित्यिक ऊँचाइयो पर पहुँचे है। ऐसे ग्रथ तमिळ मे बहुत थोडे है; लेकिन बिलकुल ही नही हो, ऐसी बात नही है। श्री राजगोपालाचार्य की 'वनस्पति जगत मे प्रेम' और 'पयल रसायन' आदि बहुत अच्छी पुस्तके है, परन्तु यह बडे भारी विज्ञान-जगत की भूमिकाएँ-मात्र है। स्वर्गीय प्रोफेसर राजेश्वरी ने 'परमाणु पुराणम्' मे अणु का विज्ञान और इतिहास इस तरह लिखा है कि वह बिलकुल पुराण की तरह जान पडता है। डॉ० के० एस० कृष्णन् को भी इस पुस्तक के बारे मे यही सम्मति है। दूसरे आधुनिक विषयो पर भी कई लोकप्रिय ग्रथ लिखे गए है। उन्हे विश्वविद्यालयो और राज्य-सरकारो की ओर से पुरस्कार भी मिले है। तमिळ भाषा पर्याप्त मात्रा मे लचीली है। वैज्ञानिक रचना की आवश्यकता के लिए उसके पास उचित शब्द-भण्डार है। हमारे इस कथन की पुष्टि आजकल प्रकाशित होने वाले 'तमिळ विश्व-कोश' से हो जाती है।

यह वैज्ञानिक रुचि आधुनिक बुद्धिवाद की व्यापक धारा का केवल एक पहलू है। दूसरा पहलू है—रूढियो और अर्थहीन उत्सवो, जातीय अभिमान तथा धार्मिक असहिष्णुता पर व्यापक आक्रमण। दुर्भाग्य से कुछ सुधारक हर चीज पर आक्रमण करते हुए साहित्य को भी उसमे मिला लेते है, जबकि उनके विरोधी अपनी इच्छानुसार प्राचीन तमिळ-साहित्य के उद्धरण देते है और उनका मनमाना अर्थ लगाते है। होता यह है कि साधारणत वैज्ञानिक या ऐतिहासिक तथ्य और साहित्यिक

या कलात्मक सत्य के बीच क्या अन्तर है, यह ठीक तरह से नही समझा जाता। पुराणो की महत्ता, साहित्य और भावना की भाषा के प्रति सही दृष्टिकोण, कला का मूल्य इत्यादि न समझने के कारण आज यह स्थिति हो गई है कि साहित्य का स्वाद भी इस कुहरे और अस्पष्टता के वातावरण मे विषाक्त हो गया है।

आलोचना और निबन्ध

इसलिए अब साहित्यिक आलोचना और कला के मूलभूत सिद्धान्तों को स्पष्ट करना आवश्यक हो गया है। पुरानी व्यवस्था और आधुनिक युग के बीच मे ज्यो-ज्यो खाई बढती जा रही है, विज्ञान और धर्म, इतिहास और परम्परा, बुद्धिवाद और साहित्य का अन्तर त्यो-त्यो बढता जा रहा है। ऐसे समय में टी० वी० कल्याणसुन्दरम् मुदलियार ने इस खाई को पाटने वाला एक पुल निर्मित किया। वे आधुनिक तमिळ-गद्य के पिता माने जाते हैं। इस दिशा मे दूसरा बडा नाम स्वामी विपुलानन्द का है। टी० के० चिदम्बरनाद मुदलियार तमिळ कवियो का अर्थ लगाने मे अपने अन्तर-ज्ञान का सहारा लेकर मानो उनकी कविता का सजीव रूप हमारे सामने उपस्थित करते हैं। भारती के गीत विद्युत्-प्रकाश की भाँति हैं, जो प्रकृति और साहित्य के उपेक्षित तथा विस्मृत सौदर्य-स्थलो को प्रकाशित करते हैं। उनकी आलोचना आत्मनिष्ठ है तथा वह उनकी दृष्टि एव अनुभव की समूची शक्ति के साथ व्यक्त होती है। कविमणि और अन्य व्यक्ति उनके काव्यमय अनुभवो को तमिळ-साहित्य के रूप मे वाणी देने मे उन्हीका अनुकरण करते हैं। आधुनिक युग के काव्य मे यह धारा सर्वाधिक प्रचलित है। मरैमलै अडिगळ ने हमे प्राचीन काव्यो का नये ढग से मूल्याकन करना सिखाया है। उन काव्यो के साथ वे पूरी तरह अपने-आपको मिला देते हैं। एडिसन और मैकाले के आलोचना के सिद्धान्तो को वे प्रयुक्त करते हैं। उनकी शैली प्रवाहपूर्ण और मधुर होते हुए भी उनके तीव्र पूर्वग्रहो से दूषित है। परन्तु

उनका लेखन साहित्य का उत्तम नमूना है, यद्यपि उसमे उनके व्यक्तित्व की झाँकी विशेष है ।

साहित्य मे निवन्ध का अपना एक अलग वर्ग है, यद्यपि वह जीवन की भाँति विविधतापूर्ण है । पहले पत्रो मे निवन्ध वहुत हुआ करते थे, अव कहानियाँ अधिक चल पडी है । इधर निवन्ध का स्थान रेडियो-वार्ता ने ले लिया है । रेडियो ने लेखक को एक वडा व्यास-पीठ दिया है । जहाँ भी तमिळभाषी लोग वसते है वहाँ तक रेडियो की ध्वनि पहुँचती है । सगीत-रूपक, वार्ता, परिसवाद, वाद-विवाद, कवि-सम्मेलन और नाटक इत्यादि सव एक विशेष समय व सारिणी के अनुसार चलते रहते है और उन लेखको के लिए यह एक नया अनुभव है, जो कि अव तक ऐसे ववनो मे नही चलते थे । उनकी कला का श्रोताओ पर क्या प्रभाव पडा यह जानने का अवसर भी उन्हे नही मिलता, क्योकि उनके सामने कोई दर्शक या श्रोता तो होता नही । एक वन्द कमरे के अन्दर एक वेजान मशीन के सामने अकेले वोलना सारे उत्साह को ठडा कर देता है । वक्ता को पूर्णत अपनी कल्पना पर ही विश्वास करना पडता है । सम्भव है सुनने वाले अपने घर-परिवार मे वैठे हो और इसलिए वोलने का ढग वातचीत की तरह होना चाहिए—परिचित, किन्तु उदात्त, लोकप्रिय, लेकिन सस्ता नही । यह साहित्य ज्यो-ज्यो सुना जाय, त्यो-त्यो समझ मे आना चाहिए । केवल कठ-स्वर या शब्द ही प्रधान है, इसलिए रेडियो-नाटक मे पात्रो का व्यक्तित्व और आवाज़ अलग-अलग होनी चाहिए, विविध दर्शन और भावनाएँ, अग-भगिमा और घटनाएँ, दर्शन और वातावरण, आरम्भ और अन्त, पात्रो का प्रवेश तथा वाहर जाना, यह सव-कुछ स्वर से ही सुनाना पडता है । ये स्वर, सकेतात्मकता से वोले हुए शब्द की यह वडी शक्ति और उसका सूक्ष्म उतार-चढाव, वदलती हुई शैली और वाक्य-रचना, सगीत का रहस्य, स्थूल तकिया-कलाम इत्यादि सव नए ढग से आविष्कृत और उपयोजित हो रहे है । तमिळ भाषा की सुप्त शक्ति का इस प्रक्रिया मे पता चलता

है। होमर चाहे गलती कर जाय, पर रेडियो के कलाकार को प्रत्येक शब्द शुद्ध बोलना चाहिए। वह गलती नही कर सकता। उसे लोगो के मन और अवधान को पकडना पडता है। कही ऐसा न हो कि दूसरे छोर पर स्विच ही बन्द हो जाय।

नाटक

दृश्य-काव्य के नाते नाटक मनुष्य की ही तरह पुराना है। तमिळ मे नाटक, सगीत, नृत्य और काव्य का सगम है। मालाबार और अन्य स्थानो पर जैसा होता है उसके विपरीत यहाँ पुराने जन-नाट्य को पुनर्जीवित करने का कोई प्रयत्न नही किया गया। केवल 'भागवत मेला' इसका एक अपवाद है। सुन्दरम् पिल्लै का काव्यमय नाटक 'मनोन्मणियम्' ही ऐसा है कि उसमे शिवकामि चरितै की उत्तम कविता बीच-बीच मे अन्तराल की तरह ही प्रयुक्त होती है। परन्तु यह नाटक रग-मच के लिए उपयोगी नही। अभी भी लोग पद्य मे नाटक लिखते है, 'अकवल छन्द' मे, परन्तु 'मनोन्मणियम्' की उत्तमता तक वे नही पहुँच पाते। वयोवृद्ध कवि सवन्द मुदलियार ने ५० से ऊपर अभिनेय नाटक लिखे है, यद्यपि साहित्य के नाते वे उतने श्रेष्ठ नही है। उनके नाटक उत्कृष्ट है, उनमे वह नग्न यथार्थवाद और सेक्स की प्रधानता नही है जो मच पर अन्यत्र दिखाई देती है। कभी-कभी प्रचार मे, केवल सुधारक के और नए दृष्टिकोण का सकेत देने वाले प्रचार मे, ही नही जैसा कि पवळर के 'केत्रिन वेरी' और अन्य नाटको मे है, वरन् स्थूल प्रचार मे भी अधिक रस लिया जाता है, जिसमे अभिनेता की रुचि हो, प्रतिदिन की घटनाओ पर प्रत्युत्पन्न भाषण होते है—पुराने जन-नाटक के विदूषक की यह परम्परा है। धार्मिक परम्पराओ का परिहास करने वाले और पौराणिक कहानियो का व्यग-चित्र देने वाले नाटक तथा अन्य साहित्य कुछ राजनैतिक-सामाजिक परिषदो मे बहुत लोकप्रिय है। यदि ऐसे नाटक सर्वप्रिय बनकर सच्चे साहित्य की कोटि तक पहुँच सके और निकट

वर्तमान के दर्शको का मनोरजन करने की भावना कुछ कम कर सके तो किसी भी दिन यह नाटक शॉ और इब्सन के नाटको से जरूर टक्कर लेगे। भयानक विषभरा, घृणित प्रचार, गन्दी अश्लीलता और भद्दे परिहास, कही-कही स्वस्थ व्यग, उत्तम सकेत काव्य-सवेदना और सूक्ष्म परिहास का स्थान लेते जा रहे है।

समय के अनुसार अब नाटको मे जनसाधारण को नायक बनाने की प्रवृत्ति बढती जा रही है। बच्चो की नट-मडली की पुरानी परम्परा अभी नष्ट नही हुई है। सगीत और नृत्य हमारे नाटक का अभी भी एक महत्त्वपूर्ण भाग है। भाषण की कला बडी प्रभावशाली होती है, लेकिन कभी-कभी नाटक अतिनाटकीय हो जाता है। दर्शको का दोष न होकर यह उन लोगो का दोष है जो इन नाटक-मण्डलियो के कर्त्ता-धर्त्ता है। जनता सेक्स और भयानकता की माँग नही करती यह बात अव्वै नामक तमिळ-कवयित्री और राज-राज नामक चोल-सम्राट् पर लिखे गए नाटको की सफलता से प्रकट है। इनमे तमिळ-कविता और तमिळ जनता के सच्चे आदर्श दिखाये गए है, मगर कई बार इनमे वर्तमान काल का प्रक्षेपण भूत काल मे मिलता है।

सिनेमा ने नाटको को मारा तो नही, लेकिन सिनेमा का प्रभाव अधिक शक्तिशाली और व्यापक है। कैमरे की युक्ति और प्रक्षेपण के जादू ने योगियो की अष्टसिद्धि का भी स्पष्ट प्रदर्शन सम्भव बना दिया है। फिर भी नाटक मे अलौकिकता दिखाई देती है। ऐसा लगता है कि सबन्द मुदलियार की 'मनोहरा' कहानी रजत-पट पर दिखाई जाती है, जिसमे सब-कुछ सम्भव है। अब सामाजिक नाटको के बदले पौराणिक और प्राचीन कहानियाँ अधिक लिखी जाती है। इधर एक ऐसी नई धारा चल पडी है जो आधुनिक चित्र-कला की तरह अमूर्त है। उसमे पुरानी लोक-कथाओ के नायक और नायिकाएँ, अच्छी बहन, नाल तगल इत्यादि दिखाये जाते है और उसका यह परिणाम है कि सारी कहानियाँ किसी पत्नी की बहन या माता के आदर्श और अमूर्त सम्बन्धो पर

आश्रित रहती है। मूल कहानी के आस-पास परिहास-प्रधान प्रसग जोड दिए जाते थे, किन्तु सौभाग्य से अब वे मूल कथा के साथ एकाकार कर दिए जाते है। तमिळ-रजतपट का मुख्य आधार नृत्य और सगीत है, उसमे बडी आलकारिक भाषा और आवश्यकता से अधिक नाटकीयता अभिनय मे दिखाई जाती है। नाटक मे यह जो दोष दिखाई देता है, वही चित्रपट मे भी है।

तमिळ-सगीत को अपने उचित स्थान मे पुन. स्थापित करने का आन्दोलन भी आजकल चल रहा है। विगत दशक तक सगीत-समारोहो मे एक-दो तमिळ-गीतो से अधिक कुछ नही गाया जाता था। नये आन्दोलन ने प्राचीन तमिळ-सगीत-रचना को विस्मृति के गर्भ से वाहर निकालकर उसे फिर से इस देश मे लोकप्रिय बनाया। नई रचनाओ को भी अव प्रोत्साहन मिलने लगा है। आधुनिक युग के सर्वोत्तम कवियो ने हमे बडे सुन्दर गीत दिए है। फिर भी एक शिकायत यह रह जाती है कि ये गाने सारी काम-काज की दुनिया से सम्वद्ध नहीं है। सभी विषयो पर नई रचनाओं की मानो फसल आ गई है और उनकी भाषा चाहे तमिळ हो, परन्तु संगीत दक्षिण भारतीय या कर्नाटक या तमिळ नही। ये गीत भी उच्च कोटि के नही होते, चाहे उनका सगीत किसी शाखा का हो। सिनेमा की लोकप्रिय धुने विशेषतः हिन्दुस्तानी सगीत की—क्लासिकल नही—नए ढग की फिल्मी तर्जें सगीत या कविता की कोटि मे नही आती, इन्हे चाहे बच्चो के गीत कह लीजिए या डा-डा-डा गीत और उडैयाडप्पा धुने। इनसे इस बात का पता चलता है कि हमारे दर्शको मे से अधिकतर लोग सिनेमाघर मे जाने पर फिर वच्चे वन जाते है और परी-कथाओ की याद दिलाने-वाले रोमाच का आनन्द लेने लगते है।

उपन्यास और कहानी

आधुनिक युग का गद्य-महाकाव्य उपन्यास है, लेकिन वहुत कम

उपन्यास उच्चकोटि के साहित्य तक पहुँच सकते हैं। तमिळ मे विदेशी उपन्यासो के बहुत अनुवाद और रूपान्तर प्रचलित हैं। इनमे से कुछ तो विदेशी श्रेष्ठ लेखको के—जैसे टाल्सटाय या हार्डी के—और कई भारतीय भाषाओ के उपन्यासो के अनुवाद हुए हैं। बगाली उपन्यास 'आनन्द मठ' उतना पुराना है, जितनी कि यह शताब्दी। दुर्भाग्य से सभी अनुवाद या रूपान्तर अच्छी पुस्तको के नही होते। मरई मलाई अडिगल-जैसे विख्यात लेखक भी अपने ढग से 'दि सोलजर्स वाइफ' की कहानी का रूपान्तर करते हैं। शेरलोक होम्ज तमिळ-चरित्र के रूप मे आ गए हैं, और जासूसी कहानियाँ, मौलिक तथा अनूदित दोनो बहुत लोकप्रिय हैं।

कुल मिलाकर जो नाटक और कहानी के लिए सच है वही उपन्यास के लिए भी सही है। कुछ ऐतिहासिक उपन्यास हैं, विशेषतः 'कल्कि' के, जिनमे पल्लव तथा चोल राज्यो के और उनकी जनता के विवरण और रोमाटिक कथाएँ मिलती हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यास, कदाचित् सबको सन्तोष नही देते, उनमे सदा ही पाप की चेतना का भय बना रहता है और वे कला में भी प्रयोगशील दृष्टिकोण का उदाहरण हैं। स्वतन्त्रता के आन्दोलन ने कुछ और उपन्यास निर्मित किये, जो ऐतिहासिक उपन्यासो से अधिक अर्थपूर्ण और महत्त्व के हैं। यहाँ उन उपन्यासो का भी उल्लेख किया जा सकता है जो यूटोपिया या 'भविष्य काल की समाज-रचना के रूप में' हैं। भारती की कल्पना ने अपने मनोरथ पर चढकर जो उडान भरी है, वह भी उल्लेखनीय है।

कहानियाँ गद्य मे सानेटो की तरह हैं। इनमे भी रवीन्द्रनाथ ठाकुर और अन्य भारतीय तथा विदेशी लेखको के अनुवाद प्रचुर मात्रा मे हैं। तमिळ की कई कहानियाँ अनूदित हो रही हैं और अग्रेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओ में पढी जाती हैं। मरई मलाई अडिगल तथा अन्य लेखको ने बच्चो के लिए तथा अन्य कहानियाँ भी लिखी हैं। भारती ने 'नवतत्र क्कैयेयिक्लि' लिखा, जोकि पुराने ढग पर ही था। उसका

विपय कुछ नवीन और दृष्टिकोण रोमाटिक था। वी० वी० एस० ऐयर ने कहानी को उसकी आधुनिक टेकनीक के रूप मे एक स्वतत्र कला की भाँति विकसित किया। कहानी नये विचारो का वाहन वन गई। वह नए आन्दोलन की साथिन हो गई। पुटुमाय-पिट्टन की कहानी तो कविता से होड लेने लगी, उनके मुहावरो, लय, सकेत और दृष्टिकोण मे काफी आकर्पण है। तमिळ मे शायद कोई और साहित्य-रूप इतने परिमाण मे न रचा जाता होगा और गुणो की दृप्टि से इतना सामान्य भी न होगा। जो वाते नाटक और उपन्यास की भापा तथा विषयो के बारे मे लिखी गयी है, वही कहानियो पर भी लागू होती है।

इस प्रकार तमिळ-साहित्य की आधुनिक धारा जनतान्त्रिक है। उसमे आधुनिकता पर आग्रह है। भारत के विभिन्न भागो और दुनिया के सम्पर्क मे, विशेपत पश्चिम के सम्पर्क से, वैज्ञानिक और बुद्धिवादी धारा तमिल मे वरावर विकसित हो रही है। इस नये जागरण से पुनर्जीवित होकर आधुनिक तमिळ-लेखक इतिहास और आत्म-विश्वास से तमिल भापा के अज्ञात स्रोतो मे पैठ रहे है और वहाँ से उल्लास-पूर्वक कई चीजे, जैसे कि सकेतमयता की जादूभरी शक्ति, कल्पना, परिहास, वेदना, और कविता आदि ऊपर ला रहे है, यद्यपि कभी कुछ सडी, दुर्गन्धित चीजे भी वाहर निकल आती है।

तमिल पर चुने हुए सदर्भ-ग्रथ

ए हिस्ट्री आफ तमिळ लिट्रेचर—एम० एस० पूर्णलिगम् पिल्लै
ए हिस्ट्री आफ तमिळ लेग्वेज ऐड लिट्रेचर—ए० वैयापुरी पिल्लै
हिम्स आफ द तमिळ शैवाइट पोएम्स—एफ० किग्सबरी तथा जी० ई० फिलिप्स
हिम्स आफ द आलवार्स–जे० एस० एम० हूपर
तमिळ लिट्रेचर—फ्रासिस किग्सवरी
सुब्रह्मण्य भारती—पैट्रियट ऐड पोएट–पी० महादेवन

भरत-मिलाप (कम्बन की तमिळ 'रामायण' से)—सं० राज गोपालाचार्य

हिस्ट्री ग्राफ ग्रामैटिकल थियरीज इन तमिळ एड देयर रिलेशन टू द ग्रामैटिकल लिट्रेचर इन संस्कृत–डा० पी० एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री

लीव्स फ्राम कम्बन—प्रो० ए० श्री निवास राघवन

तेलुगु

के० रामकोटीश्वर राव

पार्श्वभूमि

दक्षिण भारत मे तीन करोड से ऊपर जनता तेलुगु बोलती है। भारत सघ मे भाषा की दृष्टि से देखे तो तेलुगु बोलने वालो की सख्या दूसरे नम्बर पर है। तेलुगु तथा 'ग्रान्ध्र' पर्यायवाची शब्द है। भाषा का नाम है 'तेलुगु भाषा' या 'ग्रान्ध्र भाषा' ग्रौर देश का नाम है 'तेलुगु देशम्' ग्रथवा 'ग्रान्ध्र देशम्'। पादरी काल्डवेल ने १०० वर्ष पूर्व द्राविड भाषा का तुलनात्मक व्याकरण लिखा, तभी से विद्वानो की प्रवृत्ति, भारत की भाषाग्रो को 'आर्य' ग्रौर 'द्राविड' दो विभागो मे बाटने की रही है; ग्रौर तेलुगु को कन्नड, तमिळ ग्रौर मलयालम के साथ-साथ द्राविड-कुल की भाषाग्रो मे गिना जाता है। इस भाषागत पृथक्करण के सिद्धान्त से जातिगत भिन्नता का सिद्धात विकसित हुग्रा।

परन्तु स्व० डॉ० सी० नारायण राव ग्रौर ग्रन्य विद्वानो के ग्रनुसार ग्रान्ध्र भाषा पैशाची नामक प्राकृत से निकली, जिसमे गुणाढ्य ने 'वृहत्-कथा' लिखी ग्रौर ग्रान्ध्र देश के सातवाहन सम्राट हाल ने 'गाथा-सप्तशती' की रचना की। सस्कृत के तत्सम ग्रौर तद्भव शब्द लिखित ग्रौर वाचित तेलुगु मे कई शताब्दियो से इतनी मात्रा मे चले ग्रा रहे है कि यदि कोई ऐसा प्रयत्न करे कि केवल 'शुद्ध द्राविड़' शब्द ही प्रयुक्त किया जाय तो उसका परिणाम होगा, नितान्त ग्रर्थ-शून्यता। यह बात कन्नड के लिए भी

सही है। उत्तर और दक्षिण के बीच मे ये दो भाषाएँ ऐसी स्थिति मे है कि उनसे भारतीय सस्कृति का समन्वय अच्छी प्रकार हो सकता है।

नन्नय्य से बहुत पहले, जिसने कि सस्कृत महाभारत का तेलुगु रूपान्तर लिखा, बहुत-सा साहित्य ऐसा मिलता है जो लोक-गीतो और लोक-गाथाओ के रूप मे है। नन्नय्य से मार्गी तेलुगु साहित्य आरम्भ होता है। जब राजाश्रय और सामन्तो के सहयोग ने इस साहित्य के विकास को बहुत प्रोत्साहन दिया, तब कवि का सारे देश मे बडा सम्मान था। ग्यारहवी से पन्द्रहवी शताब्दी तक तेलुगु कवियो ने सस्कृत-महाकाव्यो, पुराण और इतिहास, को जनसाधारण तक पहुँचाया। आज भी जो ग्रन्थ तेलुगु-भाषियो के जीवन को निर्देशित करते है, वे है नन्नय्य, तिक्कन्न और यर्रा प्रेगड*का 'आन्ध्र महाभारतम्' और पोतन्न का 'आन्ध्र भागवतम्'। श्रीनाथ का 'नैषधम्' भी तेलुगु साहित्य को इस युग का महत्त्वपूर्ण योग-दान है।

विजयनगर-साम्राज्य के दिनो मे, पन्द्रहवी से सत्रहवी शताब्दियो मे, एक नए ढग की स्वतन्त्र रचना का विकास हुआ—जिसका नाम था 'प्रबन्ध'। पेद्दन्न कृष्णदेवराय के दरबार में राज-कवि थे, उन्होने 'मनु चरित्र' से आरभ किया। उनके बाद सम्राट् कृष्णदेवराय, रामराजभूषण, तेनालि रामकृष्ण, पिंगलि सूरन इत्यादि और कवि आए। 'प्रबन्ध' गद्य-पद्य-मिश्रित लम्बी कविता होती है, जो किसी राजसी या दैवी नायक या नायिका के चरित्र पर लिखी जाती है। उसका विषय प्राचीन या मध्ययुगीन भारत से लिया जाता है। वर्णन और कहानी की कुशलता के साथ-साथ उसमे कल्पना की समृद्धि और छन्द-रूपो की विविधता भी होती है। भारतीय साहित्य में तेलुगु 'प्रबन्ध' अपनी विशिष्टता रखता है। तजाऊर और मदुरा के नायक राजाओ के दरबारो मे तेलुगु साहित्य सगीत, नृत्य और नाटक से समन्वित हुआ। 'अजन्त' (स्वरान्त) होने से तेलुगु शब्द सस्कृत-शब्दो के साथ बडी आसानी से गुम्फित किये जा सकते

*इस कवित्रयम् ने एक ही महाकाव्य के विभिन्न अश लिखे।

है। यह भाषा-माधुर्य और सगीत के लिए बहुत उपयुक्त है।

सस्कृत के द्वारा आन्ध्र की देन बहुत उल्लेखनीय है। काव्य-शास्त्र के लेखक—विद्यानाथ और जगन्नाथ पडितराज, भाष्यकार कोण्डवीडु के राजकुमार काटयवेम और मल्लिनाथ सूरि, और उनके शिष्य लीला-शुक और नारायण तीर्थ अखिल भारतीय सस्कृति के विकास मे महत्त्व-पूर्ण भाग लेते रहे हैं। तेलुगु-रचनाकार क्षेत्रय्य अन्नमाचार्य और त्याग-राज, कूचिपूडि नृत्य-नाटक के प्रदर्शक रहे हैं और उन्हे अन्य भाषिक क्षेत्रो मे भी बडा यश मिला है।

अग्रदूत

गोदावरी के किनारे पूर्व चालुक्य-सम्राट राज-राज अथवा राज-महेन्द्र*के दरबार मे तेलुगु का पहला महान श्रेष्ठ ग्रथ नन्नय्य का 'आन्ध्र महाभारतम' लिखा गया। यह एक हजार वर्ष पहले की बात थी। यह विचित्र सयोग है कि उसी प्रिय स्थान पर तेलुगु साहित्य का नव-निर्माण विगत शताब्दी के अन्त मे हुआ। वीरेशलिंगम्, चिलकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहम् और वसुराय कवि ने फिर चूड प्रज्वलित किया। ब्रिटिश राज्य के विस्तार के कारण परम्परित सस्कृति को पूर्ण ग्रहण लग गया। लेकिन कालेजो और विश्वविद्यालयो की स्थापना ने एक भिन्न प्रकार की सभ्यता से सम्पर्क बढाया। पश्चिम के साहित्य और विज्ञान ने आन्ध्र के बुद्धिजीवियो को भारत के अन्य भाषिक समूहो की भाँति एक नई दृष्टि दी। इस सम्पर्क के प्रथम आघात के बाद तेलुगु विद्वान और कवि, जो कि नए वातावरण मे बढे थे, अपनी मातृभाषा के साहित्य को समृद्ध बनाते गए।

वीरेशलिंगम् को कई तरह से इस समृद्धि का अग्रदूत कहा जायगा। सबसे पहले वे एक समाज-सुधारक और वर्षों से चली आ रही रूढियो के प्रति बागी थे। उन्होने प्रवाहपूर्ण गद्य-शैली के अपने अस्त्र को

*राजमहेन्द्रवरन् अथवा राजमहेन्द्री।

भारतीय सिद्धान्तो की सेवा मे प्रयुक्त किया। सामाजिक अन्याय के प्रति तीव्र भावना उनका प्रमुख गुण था। कोई भी पुरानी सस्था, या लोकप्रिय धार्मिक विश्वास उसके मूर्ति-भजक उत्साह के लिए अति पवित्र नही थे। समकालीन जीवन के सहानुभूतिपूर्ण विवेक का गुण उनमे उस मात्रा मे नही था, जितना कि उनके मित्र और नगरवासी लक्ष्मीनरसिहम् मे था। साहित्यिको की जीवनिया और समालोचना, नाटक और उपन्यास, वैज्ञानिक और राजनैतिक निवन्ध, पत्रकारिता और पुस्तिका-लेखन, तथा आत्मकथा साहित्य की ये सब विधाएँ उन्ही-से शुरू हुई।

इसी युग मे और भी महान् प्रतिभाएँ पैदा हुई, जैसे नेल्लूर के वेदम् वेकटराय शास्त्री, वल्लारी के डी० कृष्णमाचार्लु, मसुलीपट्टम् के कविद्वय तिरुपति शास्त्री और वेकट शास्त्री, विजयानगरम्* के गुरजाड अप्पाराव। अप्पाराव अग्रदूत थे अगली पीढी के वडे गीत-कारो के जैसे—वसवराजु अप्पाराव और आडिवि वापिराजु (जो कि अब नही रहे) और नन्डूरी सुब्वा राव। तिरुपति वेकट कवुलु ने तेलुगु-कविता को आरम्भिक उन्नीसवी शती की रहस्योन्मुख रीतिवद्धता से मुक्त किया। वे कविता को सामन्तो के दरवारो और पडितो की गोष्ठियो से वाहर लाए। उन्हीके कारण रायप्रोलु सुब्वाराव और डी० वी० कृष्णशास्त्री की भाव-कविता निर्मित हो सकी। 'वुद्ध चरितम्' तिरुपति कवुलु की एक अद्वितीय गुणयुक्त लम्वी कविता है, जिसमें छन्द-प्रवाह और समृद्ध कल्पना-चित्र मिलते हैं। उनके महाभारत पर आधारित नाटक समय की कसौटी पर खरे उतरे हैं।

गीति-काव्य

१९०५ के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव और वकिमचन्द्र तथा

---

* यह विशाखापट्टनम् जिले में है पर महान दक्षिण भारतीय साम्राज्य की इसी नाम की राजधानी से यह स्थान भिन्न है।

रवीन्द्रनाथ के रूप मे बगाली साहित्य का प्रभाव दक्षिण भारत में किसी भी अन्य भाषाभाषी समूह से पहले तेलुगु पर पडा। इस प्रकार, जब कि वीरेशलिगम् की पीढी सत्रहवी से उन्नीसवी शती के अग्रेजी साहित्य से मोह रखती थी और कभी-कभी सस्कृत के प्राचीन साहित्य की ओर प्रेरणा के लिए मुडती थी, कृष्णा शास्त्री की पीढी पर उन्नीसवी और आरम्भिक बीसवी शती के यूरोपीय साहित्य और समकालीन बगाली साहित्य का गहरा प्रभाव पडा है।

प्रथम महायुद्ध मे जो युवक कालेजो में पढते थे उन्होने १९१५ और १९३५ के बीच अपना सर्वोत्तम साहित्य रचा। हमारे साहित्यिक इतिहास में ये दो दशाब्दियाँ अथेन्स में पेरिक्लिज, इग्लैड मे एलिजाबेथ या भारत में भोज अथवा कृष्णदेवराय के युग से तुलनीय है। भावगीतात्मक कविता, रोमाटिक सगीत, उपन्यास, कहानी, नाटक इत्यादि साहित्य-शाखाओ को इन लेखको ने स्मरणीय बनाया। विशेष रूप से उनका प्रिय अभिव्यजना-माध्यम भाव-कविता था। प्राचीन भारतीय कविता मे कवि का व्यक्तित्व कभी भी पाठक के ध्यान मे बाधा के रूप में नही आता। भक्तो की भगवान के प्रति समर्पण या श्रद्धा की भावना, जैसी कि महाकाव्यो या 'शतको' मे पाई जाती है, कुछ-कुछ आत्मनिष्ठ कविता के निकट की वस्तु थी। अब हमारे साहित्य मे कवि के व्यक्तिगत सुख-दुख का प्रकटीकरण और उसके आस-पास के विचारो तथा भावनाओ के आन्दोलनो के प्रति प्रतिक्रिया एक नया दौर उपस्थित करती है।

प्रेयसी की खोज, जो कि एक साथ सौंदर्य की पूर्ण प्रतिमा और प्रेम के मन्दिर की दिशा-निर्देशिका तारिका है, इन भाव-कवियो का प्रमुख विषय है। उनकी दृष्टि मे स्त्री एक अरूप व्यक्तित्व है, वह बिजली की कौंध, शबनम-भरी सुबह और महासागर की तरगो पर नाचने वाले सफेद फेन की तरह है। प्रेमपात्र के आदर्शीकरण और मन में गूंजते रहने वाले वर्णनो के साथ-साथ उन्होने तेलुगु-कविता को भव्यता के क्षेत्र

तक उठाया। ये वर्णन अधिकतर मासल रूप के आकर्षण की अपेक्षा प्रेयसी के मन और आत्मा के सौंदर्य-सम्बन्धी ही अधिक थे।

रायप्रोलु सुब्बाराव के 'तृणककणम्' और 'स्वप्नकुमारम्' काव्यों का विषय अरूप प्रेम है और वही विषय अब्बूरी रामकृष्ण राव की 'मल्लिकाम्बा' का भी है। इस धरती पर जन्मे एक क्षुद्र प्रेमी के मन मे किसी स्वर्गीय देवागना के प्रति उत्कट कामना और उसके विरह मे तीव्र दु ख, कृष्ण शास्त्री के 'उर्वशी' और अन्य गीतो का प्रमुख स्वर है। शिवशकर शास्त्री की 'हृदयेश्वरी' मे एक-जैसे मन और आत्माओ के मिलन की इच्छा व्यक्त की गई है। 'दीपावलि' मे वेदुल सत्यनारायण शास्त्री यह पक्का निश्चय करते है कि आखिरी दम तक वे "प्रेम-समुद्र को पार करने की तीर्थ-यात्रा पूरी करेंगे।" नायनि सुब्बाराव को यह डर है कि उनकी छोटी-सी नौका मँझधार मे टुकडे-टुकडे न हो जाय, परन्तु बाद मे इस नाव के टुकडे उनकी चिता के काम मे आयेंगे। इन सब कवियो के समूह मे अकेले नायनि विजय या आशा के स्वर मे अपनी रचनाओ का अन्त करते है। उनका प्रेम परिपूर्ण होता है और अन्तत वे स्वर्ग और पृथ्वी को जोडने मे सफल होते है।

साहिती-समिति

रायप्रोलु सुब्बाराव इन कवियो मे प्रमुख थे। साहिती-समिति के सस्थापक शिवशकर शास्त्री ने इन्हे और दूसरे कवियो को एक साहित्यिक गोष्ठी मे एकत्रित किया, जैसे कि बाद मे महाराष्ट्र के रविकिरण-मण्डल ने या कि कर्नाटक के गेलेयर गुम्पू ने किया। सस्कृत के पण्डित होने के साथ-साथ वे समकालीन अग्रेजी साहित्य के भी अच्छे विद्यार्थी थे। अन्य तीन-चार भारतीय भाषाओ के भी वे अच्छे जानकार थे। ऐसे शिवशकर शास्त्री, आन्ध्र के कवियो, कहानी-लेखको और साहित्यिक निबन्धकारो के, 'अन्नागारु' या बडे भैया बने। गिडुगु राममूर्ति पन्तुलु ने बोली जाने वाली तेलुगु को साहित्यिक अभिव्यजना का माध्यम बनाने

का आन्दोलन शुरू किया, परन्तु साहिती-समिति ने इस माध्यम को प्रत्यक्ष उपयोग में लाकर इस आन्दोलन को सफल बनाया। द्वितीय महा-युद्ध से पहले लगभग चौथाई शताब्दी तक पद्य, गीत या गद्य के क्षेत्र में जो भी स्मरणीय कृति साहित्य मे मिलती है, वह समिति के प्रतिभा-शाली सदस्यो और उनके प्रशसको तथा अनुयायियो की ही देन है, और इनका श्रेय समिति को ही देना चाहिए।

गीतकार

कुछ कवि ऐसे भी थे जो पद्य लिखने की सामर्थ्य होने पर भी गीत लिखते थे। यह कल की बात जान पडती है, परन्तु वस्तुत ४० वर्ष पूर्व की यह घटना है कि बसवराजु अप्पाराव और नडूरि सुब्बाराव ये दोनो चचेरे भाई मद्रास के लॉ कालेज और क्रिश्चियन कालेज मे पढते थे। वे गुरजाड अप्पाराव के गीतो और पद्य-गीतो से बहुत प्रेम करते थे और बडी भावना के साथ उन्हे गाया करते थे। धीरे-धीरे उत्सुक सहपाठियो के सामने उन्होंने अपने गीत भी गाने शुरू किये। वे इतने मार्मिक थे कि सुनने वालो की आँखो में आँसू आ जाते थे। 'सेलियेटि गानमु' (निर्झर का सगीत) बसवराजु अप्पाराव की रचना थी और नडूरि सुब्बाराव की 'येंकिपाटलु'। इन रचनाओं ने जनता को झकझोर दिया। आज ये गाने प्राय. प्रत्येक आन्ध्रभाषी के होठो पर है। अप्पा-राव ने कहा कि हृदय को सुकुमार बनाने के लिए दु ख से गुजरना चाहिए और अहकार पूरी तरह निकाल देना चाहिए। सुब्बाराव के ग्रामीण प्रेमी 'येंकी' और 'नाइडु बावा' सुकोमल और भले होने के साथ ही किसी राजसी रोमास के नायक-नायिकाओ की भाँति एक-दूसरे से उत्कट प्रेम भी करते है। जब प्रेमी प्रेयसी से एक सरल प्रश्न पूछता है

"ओ प्रकाश कुमारी, तुम कहाँ रहती हो ?"

तो वह भोली लडकी उत्तर देती है -

"तेरी छाया मे मै अपना महल बनाऊगी।"

अडिवि बापिराजु* चित्रकार, कवि और गीतकार थे। बाद मे कहानी और उपन्यास के क्षेत्र मे भी उन्होने ख्याति पाई। राजमहेन्द्री के सरकारी कालेज के प्रिंसिपल प्रोफेसर ओसवाल्ड कूल्ड्रे ने उन्हे पढाया। ऐसे सुसंस्कृत अग्रेज जो स्वय चित्र बनाते थे, अग्रेजी मे पद्य और कहानी लिखते थे उनकी मैत्री बापिराजु, कविकोंडल वेंकट राव, प्रसिद्ध चित्रकार दामेर्ल रामा राव और उस युग के अन्य युवको के जीवन पर लाभदायक प्रभाव डाल गई। एक सौ वर्ष पूर्व आन्ध्र के लिए सी० पी० ब्राउन आई० सी० एस० ने जो काम किया, आधुनिक आन्ध्र मे प्रोफेसर कूल्ड्रे ने वही किया। बापिराजु की प्रतिभा बहुमुखी थी। उनका प्रिय माध्यम गीत था। उनके गीत भाव-भरे है और श्रोता को ऊँची मन स्थिति मे ले जाते है। ठीक उस गोदावरी नदी की तरह, जो उनके एक गीत मे "स्वर्ग तक ऊँची बहती है।"

विश्वनाथ और पिंगलि

विश्वनाथ सत्यनारायण ने अपने 'कोकिलम्म पेंड्लि' (कोयल का विवाह) और 'किन्नेरसानि' मे प्रकृति के सुकोमल भावो को रोमाटिक कहानी गीत के माध्यम से वर्णित की है, जब कि दुव्वूरि रामि रेड्डी ने उसी कार्य के लिए उत्तम छन्दो का उपयोग किया। पुनर्जागरण लाने वालो मे विश्वनाथ का बहुत ऊँचा स्थान है। उन्होने प्राय प्रत्येक साहित्यिक व्यजना मे बडा नाम कमाया है—शास्त्रीय पद्य, रोमाटिक गीत, भाव-गीत, उपन्यास, कहानी और समालोचना आदि सभी रूपो मे। उनके लेखन मे शक्ति, समृद्धि और ऊबड-खाबडपन मिला हुआ है। 'गिरिकुमार' नाम से उन्होने एक बडी सुन्दर प्रेम-कविता लिखी है। उनकी 'आन्ध्र-प्रशस्ति' में राष्ट्रीय काव्य अपनी भव्यता प्राप्त करता है।

---

* उनकी मृत्यु १९५२ में हुई।

पिगलि लक्ष्मीकातम् और काटूरी वेंकटेश्वर राव ने अपना साहित्यिक-जीवन एक छोटी-सी काव्य-पुस्तक से आरम्भ किया, जिसका नाम 'तोलकरि' था। डॉ० सी० आर० रेड्डी ने उसकी बडी प्रशसा की थी। छोटी आयु मे जो प्रतिभा उन्होने दिखाई उसका विकास उनके 'सौन्दरनन्दम्' नामक उस लम्बे दीर्घ काव्य मे मिलता है, जिसमे वुद्ध-काल की पुन याद की गई है। रूप की पूर्णता और भावना की भव्यता से 'सौन्दरनन्दम्' एक उत्कृष्ट तथा सफल महाकाव्य बन गया है।

इस युग के कवियो के मुख्य विषय प्रेम और प्रकृति थे। परन्तु राष्ट्रीयता—विशेषत. विदेशी राज्य के विरुद्ध सघर्ष के दिनो में—उनकी भावनात्मक मनोघटना का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व थी। ये कवि स्वप्नदर्शी थे और उनकी दृष्टि विश्वात्मक और व्यापक थी। उनकी सहानुभूति जनसाधारण तक पहुँची थी, यद्यपि प्रत्यक्षत. वे सारी जनता-जैसा जीवन नही बिताते थे। गद्य-शैली और छन्द-विन्यास मे उन्होने शास्त्रीय और लोकप्रिय दोनो शैलियो के बीच का अन्तर कम करने का प्रयत्न किया। तेलुगु मे इन शैलियो को 'मार्गी' और 'देशी' कहते है।

वामपक्ष की ओर झुकाव

१९३५ के बाद तेलुगु-कविता मे वामपक्षी विचारो की ओर झुकाव हुआ। श्रीरगम् श्रीनिवास राव ('श्री श्री') ने रोमाटिक आन्दोलन के विरुद्ध विद्रोह शुरू किया, जिसका आरम्भ रायप्रोलु सुब्बा राव से हुआ था। श्रीनिवास राव अपनी कविता मे लिखते है कि अब ऐसी नई दुनिया वन रही है, जिसमे पसीने और मेहनत का फल यह होना चाहिए कि किसानो और मजदूरो के अधिकार उन्हे पूरी तरह प्राप्त हो जायें। ताजमहल की सुन्दरता के गुण गाने में कोई अर्थ नही है; जरा इस वात को तो सोचो कि ताजमहल बनाने मे कितने मजदूरो से बेगार ली

गई। कोमल भावना और प्रकृति का उत्फुल्ल पूजन उनके विविध रूपों मे अब काव्य के विषय नही रहे। यह नये कवियो का दल पश्चिम के इम्प्रेशनिस्ट और सुरियलिस्ट दल के प्रभाव मे आगे बढा। उन्होंने रूढ छन्द-बन्धनो को तोड दिया, यहाँ तक कि छायावादियो द्वारा बहुत अधिक प्रयुक्त गीत छन्द को भी उन्होंने छोड दिया। मुक्त छन्द उनका प्रिय माध्यम है। व्यापक आर्थिक असन्तोष और राजनैतिक स्वतन्त्रता के बाद का स्वप्न-भग उनके अनुसार वर्ग-सघर्ष के लिए उपयोग मे लाया जाना चाहिए। इसके साथ-ही-साथ और भी दूसरे कवि है, जैसे मल्लवरपु विश्वेश्वर राव और पिलका गणपति शास्त्री, जो कि रायप्रोलु और कृष्ण शास्त्री की पुरानी परम्परा से बँधे है। वेंकट शास्त्री के शिष्य वुच्चि सुन्दरराम शास्त्री की 'पचवटी' से भक्त-कवियो जैसे उनके उत्तम गुण प्रकट होते है।

नव्य क्लासिकवादी

आधुनिकतम वर्षों मे एक नया आन्दोलन शुरू हो रहा है, जिसका उद्देश्य महाकाव्य की ओर लौटना है। इस सदी के पहले दशक के रोमासवादियो के विरुद्ध वामपक्षियो और सुरियलिस्टो ने जैसा विद्रोह किया था, उसी प्रकार से नव्य क्लासिकवादी नडूरि कृष्णमाचार्लु, जव्वाल पापय्या शास्त्री और जी० जपुआ १९३५ से १९५० तक के सुरियलिज्म के मूल्य के प्रति शका व्यक्त करते है। सघर्ष के बदले समन्वय इनका आदर्श है। इन नव्य क्लासिकवादियो को पट्टाभि और आरुद्र का अराजक मुक्त छन्द बिलकुल नही जँचता। महायुद्ध के बाद की दुनिया मे भौतिक जगत् और आत्म-तत्त्व के बीच, आदर्शवाद और यथार्थवाद के बीच सन्तुलन स्थापित करना आवश्यक है। कृष्णमाचार्लु और उनके साथी कवि यह मानते है कि वे इस प्रकार का सश्लेषण निर्मित कर रहे है। सुरियलिस्टो ने रोमाटिको का मजाक उडाया और उन्हे पलायनवादी कहा। अब ये नव्य क्लासिकवादी यह

पूछ रहे है कि वर्ग-विपमता का बराबर प्रचार करने से वे आखिर मे कहाँ पहुँचेगे ? यह माना कि जनता गरीब और दुखी है, परन्तु द्वेष और घृणा के भजन गाने से यह दु ख कैसे दूर होगा ? क्या वर्ग-युद्ध अनिवार्य है, और क्या कविता का कार्य राजनैतिक और आर्थिक क्रान्ति की दासी बनना ही है ? ये प्रश्न आज पूछे जा रहे है। नव्य क्लासिकवादी कविता के लिए उसकी पूर्व महत्ता प्राप्त करने के लिए उत्सुक है। कविता विशेपत सौदर्य और सत्य के सर्वोत्तम सार का सकेत है। विश्वनाथ सत्यनारायण ने राम-चरित को आधार बनाकर एक महाकाव्य लिखकर एक प्रकार से महाकाव्यो की ओर लौटने का महत्त्व प्रतिपादित किया है और गडियारम शेष शास्त्री ने 'शिव भारतम्' काव्य मे शिवाजी को अपना नायक बनाया है।

कहानी

५० वर्ष से अधिक समय हुआ गुरजाड अप्पाराव ने समकालीन समाज-स्थिति के चित्रपट के नाते कहानी लिखना आरम्भ किया। परन्तु आगे के वर्षों मे उसके विकास और साहित्य मे ऊँचे स्थान पर पहुचने का श्रेय चिन्ता दीक्षितुलु और उनके अनुयायी लेखको के दल को है। दीक्षितुलु की कहानियाँ जनसाधारण के सहानुभूतिपूर्ण चित्र व्यक्त करती है, उनमे सूक्ष्म उदार परिहास भी होता है। वे कर्नाटक के मास्ती वेकटेश अयगार की कहानियो की भाँति है। यद्यपि ये पडोस के क्षेत्रो की कहानियाँ है, फिर भी एक भाषा-भाषी दूसरे भाषा-भाषी की कहानियो को बहुत कम जानते है। दोनो कहानी-लेखक उस कला मे दक्ष है, जिसमे कला छिपी रहती है। उनके वर्णन सरल होते है, मानो कहानी अपनी कहानी खुद कहती जाती है और फिर भी अन्त अनिवार्य जान पडता है। मुनिमाणिक्यम् नरसिह राव ऐसे ढंग की कहानी के सूत्रधार है जिसमे मध्यमवर्गीय परिवारो के घरेलू जीवन का चित्र हो। वे विशिष्ट स्थितियो मे हास्य

रस के वर्णन मे बहुत सफल होते है। उनकी नायिका कान्तम् सहृदया, स्नेहमयी गृहिणी है, जिसमे कि अपना विशेष हठ भी है। वह कई बार सोचती है कि वह जितनी होशियार है उसका पति शायद ही उतना होशियार हो। गुडिपाटी वेंकटाचलम् स्त्रियो द्वारा सहे जाने वाले कष्टो की कहानी बडे ही जोरो से व्यक्त करते है। वे घोर यथार्थवाद मे विश्वास करते है। विशेषतया सेक्स के वर्णनो के सम्बन्ध मे वे कभी-कभी यथार्थवाद के बदले प्रत्यक्षवाद का अनुसरण करते है और कहानियो मे इतना विवरण भर देते है कि उनके कलात्मक भाव नष्ट हो जाते है। तेलुगु मे सफल कहानी-लेखको की सख्या बहुत बडी है और वह बढती ही जा रही है। लेखिकाओ मे कनुपर्ती वरलक्ष्मम्मा, इल्लिन्दला सरस्वती देवी और मालती चन्दूर महत्त्वपूर्ण है। तेलुगु के कहानी-क्षेत्र की ऊची सफलता का एक प्रमाण यह है कि तीन वर्ष पूर्व एक विश्व-कहानी-प्रतियोगिता मे दूसरा इनाम पी० पद्मराजु को मिला। अडिवि बापिराजु की कहानियाँ साधारणतया कलाकार और उनके सौदर्य-दृश्यो के आस-पास मॅंडराती रहती है। 'शिला प्रतिमा' एक नर्तकी के प्रति एक मूर्तिकार के प्रेम की स्वप्न-कथा है और वह सहज ही एक श्रेष्ठ कृति बन गई है।

उपन्यास

वीरेशलिगम् तेलुगु के पहले उपन्यास-लेखक थे। उनका 'राजशेखर चरित्रम्' गत शताब्दी के अष्टम दशक मे प्रकाशित हुआ। वह मध्यवर्गी ब्राह्मण-परिवार का चित्र है। एक घर के मुखिया कई प्रकार की ऊची-नीची परिस्थितियो मे से गुजरते है, परन्तु अन्त मे वे विजयी होते है। इस उपन्यास का एक अग्रेज ने अग्रेजी मे तर्जुमा किया था। वीरेशलिगम के बाद इस क्षेत्र में चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिहम् है, जिनके ऐतिहासिक उपन्यास बहुत लोकप्रिय बने। उनकी कीर्ति समकालीन आन्ध्र जीवन पर लिखे हुए 'रामचन्द्र विजयम्' नामक उपन्यास पर आधारित है। रमेश दत्त के 'लेक ऑफ पाम्स' के उत्तम अनुवाद मे आन्ध्र की उन

पीढ़ी को बंगाली जीवन और आकांक्षाओं का परिचय मिला। यह श्रेष्ठ कार्य आगे वेंकट पर्वतीश्वर कवुलु करते रहे, जिन्होंने कई बंगाली उपन्यासों का अनुवाद किया, जिनमें वंकिमचन्द्र के उत्तम ग्रंथ भी हैं। इसके बाद बहुत-से जासूसी उपन्यास लिखे गए, जिनका कोई साहित्यिक मूल्य नहीं है। १९२१ में वुन्नव लक्ष्मीनारायण ने 'माल पल्ली'* नामक उपन्यास लिखा, जो कि गाँधी-युग का उत्तम उपन्यास है।

विश्वनाथ सत्यनारायण और अडिवि वापिराजु आज के दो श्रेष्ठ उपन्यासकार कहे जा सकते हैं। दोनों को आन्ध्र में बड़ी लोकप्रियता मिली है। १९३४ में आन्ध्र-विश्वविद्यालय ने इन दोनों लेखकों को अपने श्रेष्ठ पुरस्कार दिए। विश्वनाथ का उपन्यास था—'वेयि पडगलु' (सहस्र फण) और बापिराजु का 'नारायणराव'*। विश्वनाथ पुराने ढंग के जीवन के प्रेमी हैं और उनके उपन्यासों—विशेषतया 'सहस्र फण'—में ऐसी जिन्दगी का वर्णन है, जो अव बहुत-कुछ मिटती जा रही है। अगली पीढ़ियों के लाभ के लिए समाज के विविध स्तरों की विचार-पद्धतियाँ और भावनाएँ, रीति-रिवाज और कई चीज़ें उन्होंने इस उपन्यास में चित्रित की हैं। बहुत विस्तृत पट पर कार्य करते हुए विश्व-कोश-जैसा ज्ञान प्रदर्शित करते हुए विश्वनाथ में कहीं-कहीं पूरे चित्रबन्ध की अन्विति नहीं मिल पाती : विविध स्वर अच्छी तरह से समन्वित नहीं हो पाते। बापिराजु सौन्दर्य-प्रेमी और आशावादी हैं। उनके उपन्यासों का अन्त सुख और सम्पूर्ति में होता है। कलात्मक दृष्टि से उनका कार्य अधिक पक्का और सफल है।

दूसरे महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार हैं नोरि नरसिंह शास्त्री। उनके 'नारायण भट्टु' और 'रुद्रम देवी'* पूर्व चालुक्य-काकति-काल का जीवन व्यक्त करते हैं और सामाजिक-ऐतिहासिक उपन्यासों के नाते बहुत सफल हैं। तरुण लेखकों में सबसे प्रसिद्ध हैं 'बुच्चि बाबू'†। उनका 'चिवरकु मिगि-

---

*इन उपन्यासों के हिन्दी-अनुवाद साहित्य अकादेमी प्रकाशित कर रही है।
†एस० वी० सुब्बाराव।

लेदि' (जो कुछ बचा रहे) आधुनिक यान्त्रिक युग के सघर्ष को व्यक्त करता है। उपनगरो के जीवन में जो छोटी-छोटी लडाइया और झगडे चलती हैं, उनका वह चित्र है। विशेष रूप से स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध में जो विचित्र उलझने पैदा हुई है वे भी इसमे चित्रित है। चरित्र सवाद, वर्णन-शैली इत्यादि मे बुच्चि बाबू की रचनाएं एक प्रकार से विशेष प्रगति व्यक्त करती हैं, यद्यपि उनके भीतर कही-कही अविश्वास और नाश की धारा विद्यमान है।

यूरोपीय भाषाओ और बगाली तथा हिन्दी से शरच्चन्द्र एव प्रेमचन्द के उपन्यास बडी सख्या में अनूदित हुए हैं। तेलुगु-गद्य के नाते यह अनुवाद उच्चकोटि के नही हैं।

नाटककार

पुरानी सदियो के खुले रगमच पर नृत्य-नाटको की तुलना मे आधुनिक मच के नाटक बडे-बडे शहरो में कुछ अव्यावसायिक अभिनेता सामने लाए। गद्य, पद्य और गीत बडी मात्रा मे उपयोग मे लाए गए और उनके विषय भी पौराणिक, ऐतिहासिक या सामाजिक थे। आन्ध्र देश मे हरिप्रसाद राव, टी० राघवाचारी और स्थानम् नरसिंह राव-जैसे बडे अभिनेता पैदा हुए। परन्तु डी० कृष्णमाचार्लु, वेदम् वेंकटराय शास्त्री, पानुगटि नरसिह राव और गुरजाड अप्पाराव-जैसे प्रसिद्ध नाटककारो की मृत्यु के बाद कोई सफल लम्बा नाटक नही लिखा गया। हर नाटक के अन्त मे ऐसा लगता है मानो कोई कहता हो—'कितना सुन्दर अभिनय है, परन्तु नाटक निम्न श्रेणी का है!' विश्वनाथ की 'नतनशाला' और वेलूरि चन्द्रशेखरम् की 'कचनमाला' उत्तम साहित्यिक कृतियां है। परन्तु वे अभिनेताओ और जनता दोनो को ही प्रिय नही लगी।

एकाकी नाटक कार्य की क्षिप्रता और विशेषतया सामाजिक और साहित्यिक समारोहो मे मनोरजन के मूल्य के कारण लम्बे नाटकों का स्थान ले रहे हैं, और अब एकाकी नाटको मे भी ज्यादा, लोगो को

सिनेमा प्रिय है। फिर भी एकाकी के बड़े अच्छे प्रसिद्ध लेखक है—मुख्य न्यायाधीश राजमन्नार, नार्ले वेंकटेश्वर राव, मुद्दु कृष्ण और आचार्य आत्रेय। आधुनिक रंग-मंच को इनकी देन बहुत मूल्यवान है। उन्होने हमें ऐसे नाटक दिए है जो साहित्य की तरह पठनीय होने के साथ-साथ मंच पर अभिनेय भी है।

ज्ञान-विज्ञान का साहित्य

गद्य और पद्य मे रचनात्मक साहित्य की तुलना मे, ज्ञान-विज्ञान का साहित्य तेलुगु में काफी प्रगति कर चुका है। राजनीति, विज्ञान, समाज-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र और इतिहास आदि पर उच्च स्तर की पुस्तके लिखी गई है। इतिहास पर के० वी० लक्ष्मण राव, सी० वीरभद्र राव, भाव-राजु कृष्णा राव और सोमशेखर शर्मा की पुस्तके साहित्य की कोटि में मानी जाती है।

श्री टी० प्रकाशम् की आत्म-कथा एक मार्मिक मानवीय लेखा है, एक महान् व्यक्तित्व का आत्म प्रकटीकरण है। इसकी शैली सरल, सशक्त और आकर्षक है। तेलुगु में नए लेखकों के लिए ऊँची पत्रकारिता प्रोत्साहन का बड़ा स्रोत रही है। कई पत्रों में रचनात्मक साहित्य प्रकाशित होता रहता है, जो कि बाद मे पद्य, कहानी या गीत के संक-लनों के रूप मे प्रकाशित होता है। आन्ध्र पत्रकारों में सबसे बड़े 'कृष्ण पत्रिका' के स्वर्गीय श्री कृष्ण राव है, जिन्होंने बड़ा उत्तम गद्य लिखा है। उनके 'समीक्षा' नामक ग्रंथ मे साहित्य, दर्शन और कला-सम्बन्धी निबन्ध संकलित है।

नया दौर

अन्त मे मै आज की साहित्यिक स्थिति का एक सर्वेक्षण प्रस्तुत करता हूँ। अच्छी कविताएँ अभी भी लिखी जा रही है। बाल गंगाधर तिलक ने 'आ रोजुलु' (वे दिन) नामक एक कविता लिखी है, जिसमे

बचपन के जीवन और स्वप्नों के प्रति सौहार्द व्यक्त किया है। उस कविता के अन्त में यह सार्थक विचार है कि वर्तमान जीवन जीने योग्य है तो केवल इसीलिए कि पिछले दिनों की सुगन्धित याद उभर आती है। पतुल श्रीराम शास्त्री अच्छी कहानी और रेडियो-नाटकों के प्रभाव-शाली लेखक है, उन्होंने 'मानवुडु' नामक एक पद्य-गाथा लिखी है। उसमें एक चोर के मन की स्थिति दिखलाई है। एक घंटे के भीतर उसके मन में कितनी भावनाएं उठती-गिरती हैं, उनका यह सफल वर्णन है, और यह चोर अनिच्छा से उस घर की मुख्य स्त्री का रक्षक बन जाता है, क्योंकि वह स्त्री आत्म-हत्या करने जा रही थी। विद्वान् विश्वम् की लम्बी कविता 'पेन्नेटिपाट' रायल सीमा के ग्रामीण जीवन का चित्र है। एक ऐसे गांव का वातावरण उस कविता में है, जहां कि गरीबी और अभाव के प्रति निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। उस गांव की बोली का पुट इस कविता में है और तेलुगु-रचिता को यह एक महत्त्वपूर्ण देन है। परन्तु अन्त में कवि उपदेशक बन जाता है और अमीरों को कोसता है कि वे बिना हृदय तथा आत्मा के लोग हैं, वे अपनी समृद्धि की इमारत गरीबों की हड्डियों और खून पर बना रहे हैं।

पी० श्रीरामुलु रेड्डी ने तमिल के प्राचीन ग्रंथ 'कंब रामायण' और 'शिलप्पदिकारम' को प्रवाही तेलुगु-पद्य में व्यक्त किया है और वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। वे तमिल और तेलुगु को एकत्र लाने में सहायक हैं।

तेलगाना से दो प्रकाशन हुए हैं, जिनका बड़ा महत्त्व है। सी० नारा-यण रेड्डी ने अपने 'गेय-काव्य', 'नागार्जुन सागर' इत्यादि ग्रन्थों में सौन्दर्य और सत्य के पुरातन संघर्ष को सुन्दर काव्य-वाणी दी है। यह संघर्ष वस्तुतः प्रेम और कर्त्तव्य के बीच का संघर्ष है। शान्तिश्री का हृदय एक ओर पद्मदेव नामक कलाकार के प्रति प्रेम और दूसरी ओर धर्म के प्रति कर्तव्य के बीच में बंटा हुआ है। इस संघर्ष का कोई फल नहीं निकलता। पद्मदेव विजयपुरी छोड़कर चला जाता है और फिर स्वप्न के भीतर स्वप्न की तरह, शान्तिश्री नागार्जुन सागर का कल्पना-

चित्र देखते है । संकेत स्पष्टत यह है कि प्रेमी का अपूर्त्त प्रेम फैलकर एक बाढ का रूप लेता है और अन्त मे जाकर सागर वन जाता है। यह एक महान् कविता है । दशरथी का 'महाग्रोदयम्' कविता-सग्रह राष्ट्रीयता की भावना से भरा हुआ है। तरुण दाशरथी को वह कवि मानना चाहिए जिसने विशाल आन्ध्र का स्वप्न देखा था और इस राज्य के प्रत्यक्ष सम्मिलन से बहुत पहले उनके हृदय का सम्मिलन घटित किया था। राष्ट्रीय कविता के अतिरिक्त इस सग्रह मे मजीरा, माधुरी और पौपलक्ष्मी-जैसे भाव-गीत भी है।

तेलुगु के मच के नाटको को सिनेमा के कारण जो कुछ वर्षों के लिए ग्रहण लग गया था, उससे अब वे मुक्त हो रहे है। अव्यावसायिक नाटक-मण्डलियाँ, जिनमे कि विद्यार्थी और दूसरे नाटक-प्रेमी भाग लेते है, सास्कृतिक समारोहो मे एकाकियो का अभिनय प्रस्तुत करती है। पुराने नाटक, जिनमें कि पद्य और सगीत भी बहुत मात्रा मे होते थे, प्राय. दर्शको को आकर्षित करते रहते है। नए ढग के पौराणिक या ऐतिहासिक नाटक अब नही लिखे जा रहे है। कविता और लोक-कथा मे आज के नाटको मे भी विषय की पुनरावृत्ति और एकरसता है। वही गरीब किसान, वही कम वेतन वाला क्लर्क, वही वेश्यालयो मे जाने वाली स्त्री और वही रिक्शा वाला। कहानी मे जितनी अधिक मात्रा मे हमें युवक-युवती मिलन का दृश्य मिलता है उतना नाटक मे नही। कुछ आधुनिक नाटककार यह सोचते है कि कुछ विशेष हितो या दृष्टिकोण से उनका प्रचार अवश्य करना चाहिए । परन्तु वे यह बात भूलते है कि नाटको की सोद्देश्यता पर आक्रमण करने या बल देने की अपेक्षा वही विचार, घटनाओ और कथानक की रचना के द्वारा वे सरलता से व्यक्त कर सकते है । इधर रेडियो-नाटक और मंच के नाटक भी कुछ बहुत अच्छे खेले गए है । एक पुराने लेखक मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री ने 'अनश्वरम्' नामक नाटक लिखा है । इस नाटक में प्रच्छन्न उल्लेख है परम्परित हिन्दू समाज की ओर, जो कि नई विचार-धारा और

शक्तियो के आगे झुकता है। वह कई बातो को अपनाता भी है पर उनसे खण्डित नही होता। भट्टिप्रोलु कृष्णमूर्ति का रचा हुआ नाटक 'रिक्शा वाला' एक उच्चकोटि का नाटक है। इसमे एक रिक्शा वाला एक छोटी-सी लडकी के प्रति आकृष्ट होता, है, जो कि अन्त मे उसीकी नातिन निकलती है। यह करुण कथा अच्छी तरह व्यक्त की गई है। दो परि-वारो के पुनर्मिलन की बात बहुत देर बाद ध्यान मे आती है। आत्रेय के 'शालभजिका' मे यह दिखाया गया है कि कहानी अपने-आप कैसे विकसित नही होने दी जाती, परन्तु हर मोड पर अभिनेता, गायक, कवि और दिग्दर्शक उसे बदलते-बदलते जाते है। दूसरा सफल नाटक है 'गनिपि', इसके लेखक है वेल्लमकोडा रामदास। इसके सवाद और घटनाए बहुत ही सौम्य है। यह नाटक बहुत अच्छी तरह अन्तिम परिणति पर पहु-चता है। यह नाटक सूक्ष्मत व्यग्यपूर्ण है, क्योकि नायक, जो एक आदर्शवादी है, उन्ही लोगो द्वारा मारा जाता है, जिनसे कि वह मित्रता करना चाहता है।

कहानी ऐसा साहित्य-रूप है जो आजकल बहुत ही लोकप्रिय है। दैनिक, साप्ताहिक, उच्चकोटि के मासिक-पत्र सैकडो की सख्या मे कहानी प्रकाशित करते है, परन्तु साहित्यिक गुणो की दृष्टि से वे उतनी ऊँची नही होती। विषय-वस्तु की पुनरावृत्ति तो है ही, परन्तु हमारे आधुनिक कहानी-लेखको का तेलुगु गद्य भी बहुत ही असतोषजनक है। रूप, शिल्प और साहित्यिक टेकनीक की ओर यह उपेक्षा शायद कहानी को नष्ट कर देगी। कभी-कभी साहित्यिक सस्थाओ मे बहुत ऊँची कहानियाँ ऊपर आती है और प्रसन्न साहित्यिक पत्रिकाओ मे एक ऊँचा स्तर स्थापित होता है। तेन्नेटि सूरि की 'भार्गवी', कोम्मूरि वेनुगोपाल राव का 'सूर्योदयम्', बुच्चि बाबू का 'निरन्तरत्रयम्', दिगुमर्ति रामा राव का 'मेमु मुगुरम्', और वी० सीता देवी का 'मारिपोयिन मनिषि' शैली और टेकनीक दोनो ही दृष्टि से उच्चकोटि की कहानियाँ है। डॉक्टर वी० एन० शर्मा ने स्टीफेन ज्वाइग की 'एक

कला-प्रेमी की कहानी' का अनुवाद मूल जर्मन से 'थायादारि चित्रालु' नाम से किया है जो कि उल्लेखनीय है। मुनिमाणिक्यम् ने अपनी बाद की कहानियो की नायिका कान्तम् को एक बुद्धिमान और अनुभवी प्रौढा के रूप में पुन प्रस्तुत किया है।

आज का सर्वश्रेष्ठ तेलुगु-लेखन साहित्य एव कला की समीक्षा के क्षेत्रों मे ही रहा है। हमारे उच्चकोटि के मासिक एव साप्ताहिक पत्रो मे तथा दैनिक पत्रो के साप्ताहिक सस्करणो मे भी शास्त्रीय और सम-सामयिक साहित्य एव कला की सुपठित एव सुलिखित आलोचना होती है, साथ ही साहित्यिक एव कलात्मक कृतियो के मूल्याकन के सिद्धात भी निरूपित किए जाते है। यह पुराने विद्वानो की उस पीढी के काम का ही विकसित रूप है जिसमें डॉक्टर सी० आर० रेड्डी, रा० अनत कृष्ण शर्मा और पी० लक्ष्मीकान्तम् थे। वी० वी० एल० नरसिंह राव तेलुगु और अग्रेज़ी उपन्यास की तुलना बडी गहराई से करते है। पोतु-कूचि सुब्रह्मण्य शास्त्री काव्य-शास्त्र पर बड़े ही अच्छे लेखो के प्रणेता है। उन्होने रसास्वाद के सिद्धान्तो पर भी उत्तम लेख लिखे है। पी० जगन्नाथ स्वामी ने 'कलोपासना' नामक पुस्तक मे रचनात्मक कला के सिद्धान्तो की विवेचना की है। तीन छोटी पुस्तके, डॉ० सी० सत्यनारायण की 'भारतीय कला', वी० वेकटेश्वर राव की 'गृहालकरण', और डॉ० एम० रामा राव का 'नागार्जुन कोडा' भारतीय शिल्प और चित्र-कला के अध्ययन के लिए उत्तम पुस्तके है। ये सब बड़ी सरल और प्रसाद-गुणयुक्त गद्य-शैली में लिखी गई है। चित्रो का मुद्रण और प्रकाशन नयनाभिराम है।

अन्य भारतीय भाषाओ के साहित्य पर व्याख्यात्मक आलोचना का विकास स्वागत करने योग्य बात है। कर्ण राजशेषगिरि राव का निबन्ध जयशकर प्रसाद की हिन्दी 'कामायनी' पर और रहमान के निबन्ध बगाली कवि नज़रुल इस्लाम पर विशेष उल्लेखीय है। उच्च साहित्य की रचना और उसकी विवेकयुक्त समीक्षा के लिए हमे रचनात्मक आलो-

चना के सिद्धान्त ग्रहण करने होंगे। ऊपर जिनका उल्लेख हुआ है, उन लेखकों के छोटे-से वर्ग के प्रति हम आभारी हैं कि उन्होंने बहुमूल्य आलोचनात्मक साहित्य की रचना की है।

तेलुगु का साहित्य महान और विकासशील है। संस्कृत और तेलुगु का सम्पूर्ण समन्वय उस मधुरता और सौंदर्य से साहित्य को सम्पन्न कर देता है, जिससे कि त्यागराजु के गीत विश्व-विख्यात हुए। समस्त भारतीय भाषाओं के कई शतियों के साहित्य का इतिहास जब लिखा जायगा तब उसमें तेलुगु को सम्मानयुक्त स्थान मिलेगा। नन्नय के युग से आज तक साहित्यिक परम्परा अखंड रूप से चली आ रही है।

तेलुगु पर चुने हुए संदर्भ-ग्रंथ

तेलुगु लिट्रेचर—पी० चेनचैया तथा राजा एच० भुजंग रावबहादुर
तेलुगु लिट्रेचर—डा० पी० टी० राजु
ए हैंडबुक आफ तेलुगु लिट्रेचर—एल० के० सीतारामैया
ए हिस्टारिकल स्केच आफ तेलुगु लिट्रेचर—टी० राजगोपाल राव
द सांग्स आफ त्यागराजु—डा० सी० नारायण राव
द नावेल इन तेलुगु लिट्रेचर—प्रो० पी० एन० भूषण
माडर्न तेलुगु पोएट्री (संकलन)—संपादिका श्रीमती ए० छायादेवी
लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया—जी० ए० ग्रियर्सन, खंड ४, पृ० ५७६-६१८

पंजाबी

खुशवन्तसिंह

पंजाबी दो करोड़ से अधिक हिन्दू, मुस्लिम और सिखों की भाषा है। इसके बोलने वाले भारत और पाकिस्तान दोनों में हैं। इसलिए इसकी साहित्यिक परम्परा में तीन अलग-अलग धर्मों के लोगों की रचनाएँ आती हैं, जो तीन अलग-अलग लिपियों में—अरबी, देवनागरी और गुरुमुखी में हैं। फलतः पंजाबी की साहित्यिक परम्परा को, उन दूसरी भाषाओं की रचनाओं में प्रचलित विचारों ने भी समृद्ध किया है, जो कि उन-उन लिपियों में लिखी गई हैं। उदाहरणार्थ : अरबी, फ़ारसी और संस्कृत की विविध शाखाएँ। यह मज़ेदार पँचमेल खिचड़ी पंजाबी की अलग-अलग बोलियों के मिश्रण से और भी स्वादिष्ट बनी है। इन बोलियों ने पंजाबी भाषा को एक ख़ास क़िस्म का अक्खड़पन और पौरुष दिया है।

किसी भी भाषा के आरम्भ की तारीख़ क़ायम करना आसान नहीं है। खास तौर से पंजाबी जैसी भाषा के लिए तो यह और भी कठिन है, क्योंकि इसकी पूर्व परम्परा के बारे में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वान उसे १२वीं शती तक ले जाते हैं, कुछ उससे भी पहले। जब कोई प्रामाणिक लेखा नहीं है, तब बेहतर यही है कि उन लेखकों से शुरू

किया जाय जिनकी तारीखों का निश्चित पता है। जिनकी रचनाएँ हमारे साहित्य की अभिन्न अंग बन गई हैं और समकालीन लेखकों को प्रभावित करती हैं। इनमें दो मुख्य दल हैं, एक तो मुस्लिम सूफी और दूसरे सिक्ख गुरु। दोनों १५वीं शती में शुरू होते हैं। ये दोनों धाराएँ बहुत पहले एक हो गईं, मानो यही हमारी भाषा की जनक-जननी रही हो।

सूफी

भारत में मुसलमानों के आक्रमण के पीछे-पीछे सूफी आये। भारतीय जीवन और साहित्य पर उनका प्रभाव तब तक नहीं हुआ जब तक उन्होंने यहाँ की भाषा और यहाँ के लोगों की रिवाज नहीं अपनाये। जब तक वे यह सब करने लगे तब तक उनका धार्मिक उत्साह बहुत कुछ ठण्डा हो गया था और वे अपने से भिन्न दूसरे धर्मों को मानने और उनके प्रति आदर भी व्यक्त करने लगे थे। सूफियों का पंजाब में मुख्य स्थान था, मुल्तान के पास 'पाकपट्टन'। उस प्रदेश में धार्मिक विचारों पर उनका प्रभाव सबसे अधिक है। सिख गुरु, विशेषतया सिख-धर्म के संस्थापक गुरु नानक ने उतनी ही भक्ति से सूफियों को पढ़ा, जितनी से भक्ति-आन्दोलन के भक्तों और सन्तों को।

सूफियों की दृष्टि में परमात्मा और भक्त का वही सम्बन्ध है, जो एक प्रेयसी और प्रेमी का होता है। दोनों के बीच माया का पर्दा है, इसी कारण विरह है। यह विरह गहरी लगन और प्रेम से ही दूर हो सकता है। बुल्लेशाह के लोकप्रिय गीतों में व्याप्त यही भावना प्रायः इन सब कवियों में है

"प्रेम की सदा एक नई बहार होती है।
मैं वेद के शब्दों से थक गया,
कुरान पढ़ने से थक गया।
प्रार्थना से मैं थक गया।

मिज़्दे मे मेरा माथा घिस गया।
न मैंने हिंदुओ के तीर्थो मे भगवान पाया।
और न मक्का को हज पर जाने से।
केवल जिसे प्रेम मिला उसे ही प्रकाश मिला।"

यह विचार सिख-गुरुओ के लेखन में बार-बार आता है, और पजाब के तीन महाकाव्यो के पीछे यह भावना बराबर काम करती है। ये तीन महाकाव्य है 'हीर-राँझा', 'ससि-पुन्नू' और 'सोहनी-माहीवाल'। इन सबमे जीवन-भर वियोग और विरह सहने के बाद प्रेमी मिलते है तो मृत्यु में। इसी भावना की गूंज आज के सबसे बडे कवि भाई वीरसिंह की कविता में भी हमे मिलती है।

सूफी लोग गाँवो मे रहते थे और उनकी शब्दावली मे बडी ताज़गी और देहाती रग है। किसानो के प्रतिदिन के काम, हल चलाना, बुनना, छाछ मथना, सयुक्त परिवार के कारण रिश्तेदारो की बडी सख्या मे चलने वाली रार-तकरार, कही बहनो का भाइयो के लिए प्रेम और भौजाइयो से ननद की लडाई, सास के अत्याचार, लडकी का पीहर की याद मे तडपना इत्यादि बातो से उन्होने अपनी आवश्यक उपमाएँ और रूपक ग्रहण किए। सिख गुरुओ, विशेषतया गुरु नानक ने इन लोक-प्रिय बातो और घटनाओ का बडा सदुपयोग किया और उन्हीके द्वारा अपना सदेश दिया।

सूफियो की पजाबी साहित्य को दूसरी महत्त्वपूर्ण देन है, कुछ छन्द-रूपो को विशेष लोकप्रिय बनाना। सूफी साहित्य मे कुछ छन्द बहुत मिलते है, जैसे 'काफी', 'बारह-माह', और 'सिहरफी'। 'काफी' फारसी के कवियो को बहुत अच्छी तरह मालूम थी और आज भी यह उर्दू-कविता मे लोकप्रिय है। 'बारह-माह', या कि वर्ष के बारह महीनो का वर्णन ऐसा विषय था, जिसमें कवि स्वतन्त्रतापूर्वक ऋतुओ का सौंदर्य वर्णित करते थे। इस प्रकार कवि इस विषय की डोर को लेकर जो चाहते थे, इसमे गूँथ देते थे। पजाबी कविता

मे प्रकृति-वर्णन के कुछ बहुत ही समृद्ध स्थलो का आरम्भ 'बारह-माह' की रचना-पद्धति मे मिलता है। वारिस शाह ने एक सुन्दर 'बारह-माह' अपने 'हीर-राँझा' मे दिया है और 'आदि ग्रथ' मे सम्मिलित गुरु नानक का 'बारह-माह' भी पजाबी साहित्य का अत्यत सुन्दर अश है (यह दु ख की बात है कि समकालीन लेखक इस पद्धति को छोडते जा रहे है)। 'सिहरफी' यानी अक्षरबन्ध, जिसमे एक छन्द का अन्तिम अक्षर अगले छन्द का आरम्भिक अक्षर होता है, पजाबी का अपना विशेष काव्य-रूप है। सिख गुरुओ ने इस रूप मे लिखा, पर उनके बाद इसे छोड दिया गया और उसे पुनर्जन्म कभी नही मिला।

सिख गुरु

अधिकतर सिख गुरु कवि थे और 'ग्रथ साहिब' मे नानक, अगद, अमरदास, रामदास, अर्जुन और तेगबहादुर की रचनाएँ सुरक्षित है। दो सिख धर्म-ग्रथो के सबसे प्रमुख रचयिता है—प्रथम गुरु नानक और पाँचवे गुरु अर्जुन देव।

गुरु नानक (१४६९-१५३९) ने कविता द्वारा उपदेश दिए। फलत उनकी रचनाओ मे उनके जीवन-दर्शन को व्यक्त करने वाली उपदेशात्मकता है। उनमे दूसरो को एक खास ढग का जीवन बिताने के लिए सीख और नसीहत है। अधिकतर ऐसी उपदेशपरक नीति-प्रधान कविता सकीर्ण होती है, क्योकि उसका उद्देश्य सकुचित होता है, परन्तु गुरु नानक की कविता मे वाणी की स्वतन्त्रता विशेष रूप से है। देहाती पजाब का सौदर्य—लहलहाते गेहूँ के खेत, ऊषाकाल और पक्षियो का जगना, जगल मे हिरनो के झुण्डो का भागना, वर्षाकालीन घटाओ की भव्यता और पावस का सगीत—इन सबसे उनमे एक धार्मिक और काव्यमय उन्माद जागता था। उनके लिए सामान्य विषयो मे भी नैतिक अर्थ की सकेत-योजना गर्भित रहती थी :

"जैसे बैलो की जोडी हाँकी जाए

हलवाहे द्वारा, वैसे ही हमारे लिए हमारा गुरु है।
जिस तरह खेत मे लकीरे बनती जाती है,
इस धरती के कागज पर हमारे कर्म लिखे जाते है।
ये पसीने की बूंदे, जो मणियो की तरह है,
इस तरह गिरती है जैसे किसान के हाथो से बीज।
जैसा हम बोते है, वैसा ही काटते है,
कुछ अपने लिए रख लेते है, कुछ औरो को दे देते है।
ओ नानक, यही सच्चे जीवन का रास्ता है।"

गुरु नानक का सबसे प्रसिद्ध ग्रथ है—'जप साहब'। यह सवेरे की प्रार्थना है। निम्नलिखित पद्य उस धार्मिक उमग का एक नमूना है, जिससे उनकी सारी रचनाएँ भरी हुई है :

"एक के बदले मुझे लाख जिह्वाएँ दी होतीं,
और हर लाख बीस गुना होता,
तो लाख बार मै कहता, और फिर कहता हूँ,
सारी दुनिया का स्वामी एक है।
वही रास्ता है जो मज़िल पर पहुँचाता है,
यही सीढियाँ है जो ऊपर ले जाती है,
इसी तरह स्वामी के महल मे चढ,
और उससे जाकर मिल जा, एक हो जा।
स्वर्ग के सगीत की ध्वनि स्पन्दित होती है
उन सबके लिए एक-सी, जो रेग रही है, ऊपर उड़ना चाहती है।
ओ नानक, उसीकी कृपा यहाँ-वहाँ सब ओर फैली है,
बाकी सब बकवास है, और झूठ है।"

गुरु अर्जुन (१५६३-१६०६) ने वही गहरा भाव अपनी कविता मे व्यक्त किया है, जैसा गुरु नानक का है। उनकी कविता मे रत्नो-जैसे शब्द और वाक्याश भरे है। अनुप्रास और शब्दानुवृत्ति के कारण

उनकी कविता मे मार्मिक सगीत पैदा हुआ है। 'सुखमनी' गुरु अर्जुन देव की बहुत लोकप्रिय रचना है और वे हमारी भाषा मे सबसे अधिक गाये जाने वाले कवियो में है।

पजाबी साहित्य की सबसे महान कृति 'ग्रथ साहब' है। इसे सकलित करने मे सबसे अधिक श्रम गुरु अर्जुन देव और उनके समकालीन लेखक भाई गुरुदास ने किया। यह बहुत बडा ग्रथ है, कई हजार छन्द इसमे है। ऊपर जिन छ: गुरुओ का नाम आया है, उनके अलावा कई सन्त कवियो के पद्य भी इसमे जुडे है। ये सत भक्ति-आन्दोलन से सम्बद्ध थे। भाषा कई बार उस प्रदेश की नही है, जिस प्रदेश के ये सत माने जाते है।

गुरु गोविन्द सिंह (१६६६-१७०८) सब सिख गुरुओ मे सबसे सुपठित और विद्वान् थे। हिन्दू पुराण ग्रथो और इस्लाम के धर्मशास्त्र से वे सुपरिचित थे। वे कला और साहित्य के प्रेमी थे, उनके दरबार में ५२ कवि थे। उन्होने सस्कृत, फारसी, पजाबी तीनो भाषाओ मे लिखा है। अपने पूर्वजो से भिन्न उन्होने अपनी रचनाएँ केवल पद्य मे परमात्मा की स्तुति के लिए ही नही लिखी। गुरु गोविन्द सिह की रचनाओ मे नैतिक और राजनैतिक अर्थ है। उन्होने अपने अनुयायियो मे जो वीरता की भावना फूंकी वह उनके प्रसिद्ध 'जफरनामा' नामक विजय के गीत-जैसी सबल कविता मे व्यक्त है। यह कविता सम्राट औरगजेब को सम्बोधित है। उनका 'जप साहब' उनके अनुयायियो के लिए आज भी एक प्रेरणा-स्रोत है। गुरु गोविन्द सिंह की कृतियाँ उनके समकालीन मणीसिंह ने सकलित और सम्पादित की।

गोविन्द सिह की रचना की शक्ति का एक नमूना निम्नलिखित है:

"अनन्त ईश्वर, तू हमारी डाल है,
कटार, चाकू, तलवार तू ही है।
हमारी रक्षा के लिए दिया हुआ
अजर-अमर स्वर्ग का स्वामी तू है,

हमारे लिए पूरे इस्पात की अपराजित शक्ति,
हमारे लिए त्रिकाल की अबाध गति,
सिर्फ तू ही है, ओ हमारे वीर रक्षणकर्त्ता,
पूरे इस्पात के बने, क्या इस दास को नही बचाओगे !"

दस गुरुओ की मृत्यु के बाद इन गुरुओ की जीवनियो पर समकालीन और अन्य लेखको ने इतना लिखा कि मानो एक बाढ आ गई और इस विषय पर जो जानकारी मिली वह सब जमा की गई। इन जीवनियो का नाम 'जनम साखी' है और वह मूल्यवान ऐतिहासिक वर्णन हे। इस काल के अच्छे जानने वाले इतिहासकार थे—सेवाराम, राम कौर, सतोख सिंह, रतन सिंह भगु और ग्यान सिंह।

सत्ता के लिए सघर्ष के समय सिखो ने कोई साहित्य नही रचा और न सिख राज्य के उस छोटे-से काल मे ही कुछ लिखा गया, जबकि फारसी का ज्यादा मान था, और पजाबी का कम। परन्तु जब वे विजय करने और अपने राज्य को सघटित करने मे लगे हुए थे तब दो मुसलमानो—बुल्ले शाह (१६८०-१७५८) और वारिस शाह (१७३५-१७९८) ने ऐसी कविता लिखी जो रोमाटिक और रहस्यवादी पजाबी काव्य का उत्कृष्ट नमूना है। बुल्ले शाह की 'काफी' और वारिस शाह का महाकाव्य 'हीर-राँझा' बहुत ही लोकप्रिय हे और इस प्रदेश के हर गाँव मे ये पढे जाते हे। उन्होने पजाबी लेखको की आगे आने वाली पीढियो को भी प्रभावित किया।

समकालीन पजाबी लेखक

अग्रेजो के कब्जा करने के आधी शताब्दी बाद तक भारत मे बहुत-सा साहित्य पैदा हुआ। राजनैतिक भावना के परिणामो से उबरने मे बहुत साल लगे, पश्चिम के मूल्यो को समझने मे बहुत समय लगा। प्रमुख अग्रेजी शासक यह मानते थे कि सारी पूर्वी सस्कृति बेकार है और भारतीयो के लिए सबसे अच्छा सही मार्ग यही है कि वे यूरोपियन

सस्कृति को अपना ले। भारत की एक पीढी इस राय से सहमत थी और उन्होने अपने-आपको इतनी अग्रेजियत मे डुबो लिया कि उनका भारतीय परम्परा और गुण से सम्बन्ध जैसे छूट ही गया। अगली पीढी ने इस मूर्खता को समझ लिया और प्राचीन भारत की उपलब्धियो को जिन सग्रहालयो मे रखा था, उन पर से धूल साफ करनी शुरू की। यही प्रक्रिया सारे देश मे चलती रही। चूँकि पजाब मे इन पश्चिमी प्रभावो का असर सबसे अन्त मे आया, अत उस प्रभाव को दूर करने मे भी वह सबसे पीछे रहा। इसी कारण पजाबी साहित्य का पुनर्जागरण शेष देश की अपेक्षा बहुत देर से घटित हुआ।

अग्रेजो के आने के बाद, पहले सिह सभा के आन्दोलन और बाद मे अकालियो व कम्युनिस्टो के प्रभाव से जो सामाजिक और राजनैतिक भावनाएँ घटित हुई, उन्ही को पजाबी साहित्य प्रतिबिम्बित करता रहा। प्रत्येक समय की साहित्यिक रचनाओ पर उन समस्याओ का प्रभाव है, जो कि इन आन्दोलनो के प्रवर्त्तको के सामने थी। फिर भी कुछ लेखक ऐसे थे जो सामाजिक-राजनैतिक समस्याओ से बेफिक्र रहते थे और मानो लिखने के लिए ही लिखते थे।

सिह सभा के लेखक

सिह सभा के आन्दोलन का साहित्यिक कृतित्व सिख धर्म को उनके योगदान का ही महत्त्वपूर्ण अग है। जिस व्यक्ति ने इस दिशा मे सबसे अधिक काम किया, वे थे भाई वीरसिह। उन्होने पजाबी भाषा मे लोगो की दिलचस्पी फिर से पैदा की। इस भाषा के इतिहास मे उनका नाम हमेशा एक पथ-चिन्ह की तरह माना जायगा। वीरसिह (१८७२–१९५७) ने ८५ वर्ष के जीवन मे इतना लिखा, जितना कि शायद किसी भी जीवित या मृत भारतीय लेखक ने न लिखा होगा। उनकी रचनाएँ इतनी अधिक है कि 'एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटानिका' के २४ खण्डो के बराबर उनका स्थान है—और अपने जीवन के अन्त तक भी

उनका लिखना वन्द नही हुआ था। उन्होने उपन्यास, कहानी, धर्म-ग्रथो की टीकाएँ सब-कुछ लिखा है।

जब उन्होने लिखना शुरू किया तब १९ वी शताब्दी के अन्त मे जो सामाजिक और राजनैतिक स्थिति थी उसी परिपार्श्व मे वीरसिंह के लेखन को देखना होगा। उनके उपन्यास, जिनसे कि उनका नाम लाखो घरो मे जाना गया, ऐसे समय लिखे गए थे जब कि पजाबी लोग अपने पुरखो की उपलब्धियो पर शका करना शुरू कर रहे थे। अग्रेज इतिहास-कार स्थूल और अनैतिक सिख-राज्य की निन्दा करते थे और कहते थे कि अग्रेजो ने उसके बदले अधिक सुसभ्य राज्य कायम किया। सस्कृत के विद्वान् सिखो के धर्म का मजाक उडाते थे कि यह तो वेदो का ही वहुत दरिद्र अनुकरण है और सिख धर्म के बाह्य रूपो तथा सकेतो को जगली करार दे रहे थे। भाई वीरसिह के सुन्दरी, विजयसिह, सतवत कौर और बाबा नौधसिंह उपन्यासो मे सिखो की वीरता और वहादुरी का मुख्य विषय मिलेगा। सिख धर्म की नैतिक श्रेष्ठता ही उनके उपन्यासो का मुख्य विषय है। सिखो की अच्छाई से उलटे जनसाधारण की दासता, पठान और मुगल राजाओ के अत्याचार भी वर्णित किये गए। सिखो ने वीरसिंह के उपन्यास बडे उत्साह और श्रद्धा से पढे। लेकिन धीरे-धीरे वह विशेष मन स्थिति बदल गई और उनके उपन्यासों की लोकप्रियता भी कम हो गई। आज के पाठक को ये उपन्यास बहुत नीरस लगते है। उनका स्थान साहित्य मे नहीं, इतिहास मे है।

वीरसिंह ने उपन्यास लिखना छोड दिया और धर्म-ग्रथो पर टीका और उनके अनुवाद कई छोटी-छोटी पुस्तिकाओ मे तथा 'खालसा समा-चार' नामी अपने साप्ताहिक पत्र मे लिखने शुरू किये। इसीमे उनकी कविता भी प्रकाशित होनी शुरू हुई, जिसके कारण उन्हे पजाबी कवियो मे वहुत वडे सम्मान का स्थान मिला।

वीरसिह ने पहले मुक्तछन्द के प्रयोग किए। एक लम्बी कविता 'राणा सूरत सिंह' नाम से प्रकाशित हुई। इसका विषय भी वही हमेशा की तरह

धार्मिक था। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था और शैली बडी प्रभावशाली थी। पजाबी मे पहले किसीने सफलतापूर्वक मुक्तक नही लिखा था। वीरसिह ने एक लम्बी कविता ऐसी सफलता से लिखी कि उसमे अनुप्रास और शब्द-सगीत, लय और आवृत्ति से ऐसा आनन्द निर्मित हुआ कि मानो उसमे किसी ग्रीष्म की दोपहरी का सालस सरस वातावरण हो। इसके बाद वीरसिह ने नानक और गुरु गोविन्दसिह दो सिख गुरुओ की जीवनियाँ लिखीं। पहले 'कलगीधर चमत्कार' नाम से गुरु गोविन्द सिह की जीवनी प्रकाशित हुई और इसके तीन वर्ष बाद 'गुरु नानक चमत्कार' निकली।

इन जीवनियो के बीच मे वीरसिह ने कई कविता-सग्रह प्रकाशित किए, जिनमे उन्होने ऐसा छोटा छन्द प्रयुक्त किया जो आज तक पजाबी कवियो ने प्रयुक्त नही किया था। इनमे से अधिक लोकप्रिय थी 'रूबाइयाँ' (उमर खय्याम के पाठक इन्हे जानते है)। इनमे उन्होने अपने दर्शन और रहस्यवाद को व्यक्त किया। उनकी रूबाइयो मे ईश्वर और मनुष्य-जाति का प्रेम, आध्यात्मिक और ऐंद्रिक, नैतिक तथा दैवी धाराओ का रगीन मिश्रण मिलता है। इन्हे पढकर सौदर्य और आश्चर्य दोनो का बोध होता है। इन सबमे विनम्रता का और कभी-कभी आत्म-पीडन का अन्त स्वर भी दिखाई देता है ·

"तुमने मुझे शाख से तोडकर अलग किया,
मुझे हाथ मे लेकर सुगन्ध सूँघी,
और मुझे फेक दिया।
इस तरह फेका हुआ, उपेक्षित, पददलित, धूलि-धूसरित मै हूँ।
मुझे केवल इतनी ही याद है—और मै उसके लिए कृतज्ञ हूँ,
तुम्हारे स्पर्श की स्मृति का।"

और उनकी यह कविता बहुत अधिक उद्धृत हुई है ·

"सपने मे तुम मेरे पास आए,
मैंने उछलकर अपनी बाँहो मे भर लेना चाहा,

पर वह केवल आभास था, जिसे कि मै पकड न सका।
मेरी बाँहे साध से दुखती रही।
फिर मैंने लपककर तुम्हारे पैर पकडने चाहे
कि मै उन पर अपना सिर टेक दूँ।
वहाँ तक भी मै न पहुँच सका
क्योकि तुम बहुत ऊँचे थे और मै नीचा था।"

एक और कविता मे वीरसिंह ने बुद्धि पर श्रद्धा की विजय और महत्ता व्यक्त की है :

"मैंने अपने मन को एक भिखारी का कटोरा बना दिया।
मै दर-दर ज्ञान की रोटी माँगता फिरा।
ज्ञान के घरो से जो टुकडे गिरते रहे
उन्हे अपने कटोरे मे ठूँस-ठूँस कर भर लिया।
अब वह भारी था,
मुझे अहंकार हुआ,
कि अब मै पण्डित हूँ।
अब मै बादलो में घूमने की कोशिश करने लगा,
मगर सचाई यह थी कि जमीन पर भी मै ठोकर खा रहा था।
एक दिन मै अपने गुरु के पास गया
और यह कटोरा उसके सामने मैंने उपहार के रूप मे रख दिया।
'मिट्टी है', उसने कहा, 'मिट्टी'।
उसने उसे उलट दिया।
उसने मेरे टुकडे फेंक दिए,
कटोरे को रेती से माँजा,
उसे पानी से धोया,
उसमे से ज्ञान का मैल निकाल दिया।"

अधिकतर लोगो की सृजनात्मक शक्ति ६० वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुँचते समाप्त हो जाती है। परन्तु वीरसिंह के साथ ऐसी बात न थी। वे कभी भी उन साग्निक कवियो के दल मे न थे, जो अपनी ही रचनाओ की लपटो मे जल जाते है। जिस तरह का जीवन वे जीते थे और जैसी कविता लिखते थे, दोनो ही शुद्धतावादी परम्परा मे रहे— भाषा साफ, विचार पवित्र, व्यजना हार्दिक। निश्चय ही, वही ज्यादा दिन टिकने वाली चीज है। यह उचित ही हुआ कि उनकी 'मेरे सैयाँ जिओ'* नामक ग्रथ को देश के सर्वोत्तम साहित्यिक पुरस्कार का सम्मान मिला। इससे कम-से-कम यह लाभ तो हुआ कि पजाबी भाषा के बाहर के दूसरे लोगो को वीरसिंह के नाम का पता लग गया। अब किसी उत्तम अनुवाद की बडी जरूरत है।

भाई वीरसिंह के चार समकालीन कवि, जो अब जीवित नही है, उल्लेखनीय है। काहनसिंह ने सिख धर्म का सबसे प्रसिद्ध विश्व-कोश बनाया। चरणसिंह 'मौजी' के सपादक थे, उन्होने पजाबी गद्य मे हास्य की शुरुआत की। पूरणसिंह ने कुछ उत्तम रचनाएँ मुक्त छद मे दी और बडी ही परपरा-रहित शैली मे और वह भी अपरिचित विषयो पर। और धनीराम चात्रिक, जिनकी कीर्ति जबतक वे जीवित थे भाई वीर-सिंह से दूसरे नबर पर थी। उनके काव्य-सग्रहो, विशेषत 'चानन वारी', 'केसर क्यारी', 'नवाँ जहान', और 'सूफीखाना' मे कुछ बहुत सुन्दर भाव-गीत है, जिनमे पजाबी बोलियो की मुहावरेदारी भी है।

तरुण पीढी मे भी कविता ही साहित्यिक व्यजना का सबसे लोक-प्रिय रूप बना हुआ है। ऐसा कोई महीना नही बीतता जिसमे एक नया कवि आगे न आता हो। अखबारो और पत्रिकाओ मे बहुत-सी जगह कविताओ के लिए दी जाती है और किसी राजनैतिक या धार्मिक सभा से अधिक जनता पजाबी कवि-दरबार मे जमा होती है।

---

* साहित्य अकादेमी ने स्वतत्रता के बाद प्रकाशित पजाबी की श्रेष्ठ रचना का पुरस्कार इस ग्रथ को दिया।

वहुत-सी नई कविताएँ ऐसी है जिनमे गुण बहुत कम है। इस सर्व-साधारण नियम के दो अपवाद है, मोहनसिंह और अमृता प्रीतम। मोहनसिंह साहित्यिक पत्रिका 'पंज दरिया' के सम्पादक है, उन्होने 'सावे पत्तर', 'कुसूम्बा' और 'अधवाटे' नामक तीन पुस्तको से बड़ा ही उत्तम आरम्भ किया है। वे तरुण कवियो मे सबसे अच्छे माने जाते है, इसमे कोई शका नही। उनकी बाद की रचनाएँ विशेषतया—'कच्छ-सच', जो कि देश के विभाजन के वाद प्रकाशित हुई, ऐसी है कि उसमे वाम पक्ष की ओर जवरदस्त झुकाव है। इसमे राजनैतिक भावनाओ को काव्य-रूप से भी अधिक महत्त्व दिया गया है और यह बीमारी ऐसे बहुत-से नौजवान लेखको को लग गई है, जो अपने-आपको 'प्रगतिवादी' कहते है। मोहनसिंह के मामले मे मार्क्सवाद के प्रति पहला उत्साह जल्दी ही ठण्डा हो गया, और अब उनमे दलितो का नेतृत्व करने की इच्छा और कर्म के लिए प्रेरणा के रूप में ही वह मार्क्सवाद बाकी है। वे अपने पहले के लेखन की सहज सुन्दरता को फिर से पकड़ सके है और अगर वे इसी रफ्तार से लिखते रहे तो वे हमारी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि जरूर वन जायँगे, क्योकि उनके आगे बडी उम्र बाकी है। एक नवीन किन्तु अनुल्लेखित गजल मे उन्होने अपनी क्रान्तिकारी भावना इस प्रकार से व्यक्त की है :

"घडे के अन्दर का अँधेरा फूट पडा,
चाँदनी का दूधिया सफेद रग फैल गया;
समय हो गया है कि हम सवेरे की बात करे,
और रात के बारे मे गप्प लडाना छोड दे।
मै मानता हूँ कि शिशिर के स्पर्श से
कुछ पत्ते पीले पडते जा रहे है।
जो कुछ खोया और बीत गया उसके लिए दुःख मत करो
अपनी गोद नई आशाओ से भर लो !
कब तक स्वर्ग के प्राचीन पनघट पर

वेकार कल्पनाएँ खीचोगे और उन्हे प्रिय मानोगे ?
चलो इस धरती के बालो को चूमे,
चलो कुछ नजदीकी चीजो के वारे मे वात करे।"

दोनो पजाबो मे—यानी पाकिस्तान और भारत मे—अमृता प्रीतम साहित्यिको मे बहुत लोकप्रिय है। वह कोई 'प्रगतिशील' कवयित्री नही है, न उन्हे कोई सदेश ही देना है। वे किसी और कारण से कविता नही लिखती, केवल इसलिए लिखती है कि लिखे बिना उनसे रहा नही जाता। वह विद्वान् नही है, लेकिन उनकी कविता की सादगी और ताजगी उस विद्वता के अभाव को भर देती है। उनकी सभी रचनाओ मे लोक-गाथा और वीर-काव्य की मधुर धुन समाई रहती है। कभी-कभी सुन्दर उक्तियो या शब्दो का माधुर्य उन्हे अपने मूल विषय से दूर ले जाता है और उससे कविता का मुख्य विषय धुँधला हो जाता है। एक कविता मे जो कि उनकी प्रिय कविता है, प्रेमी अपनी प्रेमिका से कहता है .

"जागो, प्रिय !
तुम्हारी पलके स्वप्नो से भारी है,
बीते हुए दिनो के स्वप्नो से,
जब हवाएँ सुगन्धि से गुँथी हुई थी
(क्या उस कारण से तुम आह भर रही हो ?)
अमावस्या की अँधेरी रात मे
अनगिनत तारे तुम्हारे बालो को चमका दे।"

जिस कविता ने अमृता प्रीतम की कीर्ति को भारत की सीमा पार कर पाकिस्तान तक फैलाया वह 'वारिस शाह के प्रति' है। वारिस शाह विभाजन के पूर्व के उन अच्छे दिनो का प्रतीक है जब हिन्दू, मुसल-मान और सिख भाई-भाई की तरह रहते थे। अमृता की कविता इस प्रदेश के विभाजन पर एक मर्सिया है। विभाजन के वाद जो खून-खराबा हुआ उस पर उसमे शोक व्यक्त किया गया है। वह वारिस शाह से

पूछती है कि अब तू कब्र मे से क्यो नही जागता और तेरी मातृभूमि मे जो विनाश हो रहा है उसे क्यो नही देखता :

"ओ दु ख को शान्त करने वाले उठ, और अपना पजाब देख,
उसके खेतो मे लाशे फैली है, चिंनाब मे खून बह रहा है ।
हमारी पाँचो नदियाँ उसी हाथ ने जहरीली बना दी,
जो कि इस जहरीले पानी को जमीन की सिचाई के लिए
काम मे लाता है ।"

अमृता की कविता को लोकप्रियता कुछ सहज ढग से मिल गई और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि काव्यात्मक गुण छोड़कर वह लोक-प्रशसा का रास्ता अपनाती है। (उनकी कविता की शुरू की पक्तियाँ सबसे अच्छी होती है, उनके बाद करुण अन्त सबमे प्राय. पाया जाता है।) परन्तु वह अभी आयु मे छोटी है और उस कवयित्री के आगे बडा अच्छा भविष्य है। पजाब को उनसे बहुत आशाएँ है।

दूसरी भाषाओ की तरह पजाबी मे भी कविता मे ऐसी आधुनिक धाराएँ है जो रूप-छन्द-तुक आदि को न मानने का आग्रह रखती है और इस कारण वे साधारण पाठक के लिए बहुत अर्थहीन हो जाती है। इस तरह का बहुत-सा लिखना उनके दिन चुक जाने पर खत्म हो जाता है; सिर्फ जो अच्छा है, वही बचता है। जो बचने लायक थोडा-सा है, उसका उदाहरण वकील प्रीतमसिंह 'सफीर' की कविता है। इधर बहुत दिनो से वे भी प्राय. मौन है।

चले, अब हम गद्य की ओर मुड़े। पजाबी गद्य मे सबसे बड़ा नाम गुरबख्शसिंह का है। गुरबख्शसिह ने अपना जीवन इजीनियर के नाते शुरू किया और अध्ययन के लिए वे अमरीका पहुँचे। वहाँ से लौटने पर उन्होने इजीनियरी छोड दी और आधुनिक विचारो का प्रचार करने लगे। 'प्रीत लडी' नाम से उन्होने एक अखबार चालू किया और उस मासिक के द्वारा अपने विचारो का प्रचार करने लगे। उन्होने एक सामूहिक केन्द्र स्थापित किया, जिसे प्रीतनगर कहते है और जो भारत तथा

पाकिस्तान की सीमा पर है। प्रीतनगर ऐसी शिक्षा का केन्द्र बन गया। गुरबख्शसिह का 'साँवी पधरी जिन्दगी' निबन्ध-सग्रह ऐसा था कि उसने उन्हे पजाब का सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार और गद्यकार बना दिया। सामाजिक प्रवृत्ति के जिन कई लेखको के पीछे उनकी प्रेरणा प्रधान है, उसमे उनके पुत्र नवतेजसिंह भी हैं। पिता-पुत्र दोनो चीन, पूर्वी यूरोप, सोवियत रूस इत्यादि स्थानो पर 'शान्ति-सम्मेलनो' मे जाते रहते हैं। यद्यपि उनका बहुत-कुछ लेखन कसमिया प्रचारात्मक है, फिर भी यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि वह अच्छे स्तर का है, क्योकि वह बाहर की दुनिया के अनुभव से समृद्ध है और विदेशी साहित्य की आधुनिक धाराओ का उसमे प्रतिबिम्ब है।

पजाबी उपन्यास मे बहुत कम गणनीय हैं। वैसे तो कई उपन्यास लिखे जा रहे हैं और हर मास प्रकाशित हो रहे हैं। भाई वीरसिंह, जिनकी कविता मे श्रेष्ठता इतनी उच्चकोटि की थी, उपन्यास के आवश्यक गुण नही पैदा कर सके और दुग्गल-जैसे तरुण लेखक लम्बी कहानियाँ लिखते हैं, और उसीसे सन्तुष्ट रहते हैं। दुग्गल की कहानियो के सिलसिलो मे वही चरित्र होते हैं, और शायद यो सोच लिया जाता है कि इसीका नाम उपन्यास है। सबसे अधिक लोकप्रिय उपन्यासकार नानकसिह है, जिन्होने करीब चालीस उपन्यास लिखे है, जिनमे 'चिट्टा लहू' और 'आदमखोर'* सर्वोत्तम हैं। नानकसिह अपनी रचनाओ द्वारा सामाजिक सुधार का सदेश फैलाना चाहते हैं। उनकी कहानिया दिलचस्प होती हैं, परन्तु उनकी भाषा अग्रेजी शब्दो से विकृत है, जबकि उन्ही शब्दो के लिए अच्छे-खासे पजाबी शब्द मौजूद हैं। दो तरुण लेखक, जो यदि सुधरते जायँ तो आगे बहुत अच्छा लिखेंगे, सुरिन्दरसिह नरूला और जसवन्तसिह 'कँवल' हैं। 'कँवल' की 'पूरणमासी' बहुत आशापूर्ण रचना है।

रचनात्मक साहित्य की एक और विधा, जिसमे पजाबी लेखको ने

* आदमखोर का अनुवाद साहित्य अकादेमी अन्य भारतीय भाषाओं मे कर रही है।

विशेष सफलता प्राप्त की है, लघुकथा या कहानियाँ हैं। पजाबी पत्रिकाओं में जो कहानियाँ प्रकाशित होती हैं उनका साधारण स्तर बहुत ऊँचा है। इसका कारण यह है कि इस क्षेत्र के प्रमुख अगुवा सतसिंह सेखों ने युरोपीय और अमरीकी कहानी-लेखकों की टेकनीक का अनुसरण किया है। सीधा-सच्चा घटना-वर्णन छोडकर सदर्भ-सकेत, नाटकीय वस्तु, मनोविश्लेषण और अवकथन आदि युक्तियों का कुशलतापूर्वक उपयोग किया गया। करतार सिंह दुग्गल ने, जो सबसे प्रमुख कहानी-लेखक हैं, सेखों से यह कला सीखी। दुग्गल की विशेषता है रावलपिंडी जिले की बोलियों का ज्ञान, जिसे वे बहुत मजे से उपयोजित करते हैं। उन्होंने करीब सौ कहानियाँ प्रकाशित की हैं, जिनमें से 'सवेरे सर' और 'नवाँ घर' प्रसिद्ध हैं। उन्होंने विभाजन की मुश्किलात पर उपन्यास भी लिखे हैं, मगर वे, जैसा कि ऊपर कहा गया है, निरे कहानियों के गुम्फन-मात्र हैं। उनका 'नहूँ ते मास' पजाबी उपन्यासों में आने वाले वर्षों में एक पथ-चिन्ह की तरह रहेगा। उसमें किसान-चरित्रों का बडा ही साधिकार चित्रण हुआ है और ऐसी वस्तु का कुशल वर्णन है, जिसमें कि गाँव, देहात की शान्ति बहुत जल्दी साम्प्रदायिक दगों के करुण अन्त तक पहुँच जाती है। यह कहानियाँ साम्प्रदायिक पक्षपात से बिलकुल दूर हैं। 'लडाई नही' नामक बाद की रचना में भी उन्होंने वस्तुनिष्ठता का स्तर रखा है। दुग्गल ने कुछ कविताएँ भी लिखी हैं जो विशेष प्रसिद्ध नहीं हैं, और यह अच्छा ही है। उनके नाटक स्टेज पर कभी नहीं खेले गए, परन्तु कुछ प्रसारित हुए हैं। इनके नाटक किसी भी और पजाबी नाटककार से अधिक प्रसारित हुए हैं।

दूसरे सफल कहानी-लेखक कुलवतसिंह विर्क हैं। दुग्गल ने जो कमाल उत्तरी पजाब की बोली से हासिल किया है, विर्क लाहौर की आस-पास की बोली से वही काम लेते हैं। यद्यपि दुग्गल का प्रभाव उस पर स्पष्ट है, फिर भी विर्क के पात्र और विषय इस प्रदेश के अधिक जोशीले हिस्से से आते हैं, और इस कारण इनका लेखन अधिक परुष है

और उसमे बेकार रोना-धोना तथा वृथा भावुकता नही है ।

पजाबी लेखन का सबसे उपेक्षित अग है—नाटक । इसका सीधा-सा कारण यह है कि यहाँ कोई सगठित स्टेज नही है । नाटककार नाटक लिखकर सिर्फ यह आशा भर कर सकते है कि उनके नाटक कोई पढेगा और अधिक-से-अधिक प्रसारित करेगा । नाट्य-कला के लिए न केवल पठन और प्रसारण पूरा न्याय करता है—अव्यावसायिक अभिनेता स्कूल-कालेजो से चुन लेने भर से कभी नाट्य-कला नही बनती । फिर भी प्रोफेसर ईश्वरचन्द्र नन्दा के सुखान्त नाटको ने कुछ थोडी-सी शाब्दिक हेर-फेर युक्ति-प्रयुक्ति से हँसी पैदा की थी । अभी भी पजाबी साहित्यिको मे उनके बारे मे बातचीत होती है । कुछ कमजोर कोशिश एक-आध नए नाटक को स्टेज पर दिखाने के बारे मे की जाती है । गुरदयाल सिह खोसला ने बच्चो के लिए नाटक लिखने मे विशेषता हासिल की है और छोटी-छोटी पाठशालाओ से वे किसी तरह अभिनेता पैदा कर लेते है । बलवन्त गार्गी, जिनका नाम नाटककार के नाते अधिक प्रसिद्ध है, बहुत अर्से से वामपक्षी राजनीति से सम्बद्ध है, और अभी हाल मे वे रूस और युरोप के स्टेज का बहुत समय तक अध्ययन करके लौटे है । उनके अनेक नाटक उस भावना से भरे हुए है और उनमे एक राजनैतिक प्रयोजन होता है, उनका व्यग्य तीखा और उनका हास्य कडुवा है, जिससे कि उनका सदेश अच्छी तरह व्यक्त होता है । उनका पटियाला मे बोली जाने वाली बोली का उपयोग ऐसा है कि इससे उनके नाटक जानदार जान पडते है । उनकी देहाती कहानियो के लिए वह भाषा उपयुक्त है । यह दुख की बात है कि गार्गी के नाटक समझने के लिए उन्हे पढना पडता है, और जो मच पर खेले जाते है वे राजनैतिक दलो द्वारा खेले जाते है और इनमे से बहुत थोडे ऐसे है जो रेडियो पर खेले जा सके । अब उन्होने उपन्यास लिखना भी शुरू किया है ।

भविष्य

यह विचित्र बात है कि अधिकतर सिख राजनैतिक नेताओ ने कभी-न-कभी लिखने की या कविता रचने की कोशिश की है। गुरमुख सिंह 'मुसाफिर' (जो प्रादेशिक काग्रेस पार्टी के प्रमुख है) काफी प्रभावशाली कवि है। मास्टर तारासिंह ने कुछ उपन्यास लिखे हैं, पश्चिम के जगल-उपन्यासो के ढग पर। वे सिर्फ 'बिल कोडी' और 'डेवी क्रोकेट' के बजाय सिख-चरित्र ले आते है, और आप विश्वास करे या न करे, कम्युनिस्ट नेता सोहनसिंह 'जोश' धर्म ग्रथो के बहुत अच्छे टीकाकार के नाते प्रसिद्ध थे। साहित्यिक शक्ति पर राजनीतिज्ञो द्वारा यो बल देने का सुखद परिणाम यह हुआ कि पजाबी को सरकारी भाषा बनाने की सयुक्त माँग को अधिक शक्ति मिली। इसी कारण एक पजाबी-भाषी प्रदेश और एक पजाबी साहित्य अकादेमी स्थापित हुई। अब जबकि यह सब बाते हो चुकी है, कोई पूछ सकता है कि भविष्य क्या है ?

सरकारी मान्यता से साहित्य नही पैदा होता। कुछ हद तक विभाजन के कारण और पाकिस्तान मे उर्दू को राज-मान्यता और भारत मे हिन्दी को राजाश्रय मिलने से पजाबी भाषा को जो ठेस पहुँची, उसकी क्षति-पूर्ति शायद कुछ दिनो बाद हो जाय। परन्तु अभी तो कुछ वर्षो के लिए पजाबी में साहित्यिक रचना उन सिख-लेखको पर अधिक अवलम्बित रहेगी जो केवल गुरमुखी का प्रयोग करते है। पजाबी-भाषी प्रदेश की भाषा और शैली ज्यो-ज्यो मानदड प्राप्त करती जायगी, बोली का महत्त्व कम होगा और उतनी ही मात्रा मे उसकी देहाती शक्ति भी कम होगी। यह बाधक प्रभाव इस तरह दूर किया जा सकता है कि दूसरी भाषा के श्रेष्ठ ग्रथो के अनुवाद पजाबी मे हो, उन्ही को प्रथम महत्त्व दिया जाय। दूसरे दर्जे का साधारण लेखन, जो केवल पजाबी मे होने से स्कूल-कालेजो के पाठ्य-ग्रथो मे लिखा जाता है, कम करना होगा। इससे साहित्य का स्तर गिरता है, इस तरह कल्पनाहीन लेखन को बढावा मिलता है। जिन पजाबियो ने ऊँचे पारिश्रमिक के अभाव मे दूसरी भाषा मे लिखना

शुरू किया उन्हे अपनी मातृभापा की ओर लौटने के लिए प्रेरित करना होगा (उदाहरणार्थ राजेन्द्रसिह वेदी, जिनकी उर्दू कहानियाँ बहुत ही उच्चकोटि की होती हैं)। पजावी मासिक पत्रिकाओ को उन खराव प्सर से मुक्त होना होगा, जिसके कारण वे केवल परीक्षार्थियो के लिए सामग्री देती हैं। ऊपर जिनका उल्लेख आ चुका है, उनके अलावा कुछ अच्छे पत्र भी हैं। पेप्सू और पजाब सरकारे ऐसी योजनाओ को शुरू कर रही हैं, और हरी किशन का 'पजाबी साहित्य', जो जालन्धर से निकलता है, बहुत वर्षो से उच्च साहित्यिक स्तर कायम रखे हुए हे। अन्त मे पजावी मे प्रमुख समालोचको का ऐसा वर्ग विज्ञापित होना चाहिए जो रचनात्मक लेखन की सहायता कर सके और बेचारे भोले पाठको को रद्दी किताबो से बचा सके। अब तक पजावी साहित्य-जगत् बहुत सकीर्ण रहा है, इसमे 'परस्पर भावयन्त' और 'अहो रूप अहो ध्वनि' बहुत होता रहा है। अब उसे अच्छे और बुरे के बीच मे विवेक करना होगा और अपने बहुत दिनो से प्रतीक्षित पुनर्जागरण की ओर बढना होगा।

पजाबी पर चुने हुए सदर्भ ग्रथ

ए हिस्ट्री आफ पजाबी लिट्रेचर—डा० मोहनसिह

इट्रोडक्शन टु द स्टडी आफ पजाबी लिट्रेचर—डा० मोहनसिह

पजाबी सूफी पोएट्स—लाजवन्ती रामकृष्ण

द सिक्ख्स—खुशवन्तसिह

लिग्विस्टिक सर्वे आफ इडिया—जी०ए० ग्रियर्सन, खड ९, भाग १, पृष्ठ ६०७–८२३

बँगला

काजी अब्दुल वदूद

परम्परा

सुयोग्य विद्वानो के अनुसार बँगला भाषा का प्रारम्भ, असमिया, उडिया और मैथिली की ही भाँति पूर्व-प्राकृत से हुआ, जो कि भारोपीय भाषाओं के वडे परिवार की एक शाखा है। ज्यो-ज्यो इस भाषा का विकास होता गया, उसने अपने भीतर कई अनार्य तत्त्वो को समो लिया। न केवल शब्दावली, अपितु कल्पना-चित्र और विचारो मे भी बहुत-सी अनार्य बाते घुल-मिलकर एक होने लगी।

जहाँ तक पता चलता है, इसके साहित्य का सबसे पुराना नमूना, 'चर्या'-गीत है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री बडे प्रसिद्ध प्राच्य विद्याविद् थे। उन्होने नेपाल के सरकारी पुस्तकालय मे से इनका पता लगाया और १९१६ में उन्हे प्रकाशित किया। 'चर्या'-गीतो का समय १०००–१२०० ई० माना जाता है यद्यपि कुछ विद्वान् उन्हे ८ वी शती ई० तक पीछे ठेलना चाहते है। सच कहा जाय तो ये गीत साहित्यिक रचनाएँ न होकर महायान बौद्ध-धर्म की शाखा के आचार्यों के सकेतात्मक उपदेश है। जो लोग योग-विद्या सीखना चाहते थे, उनके दिशा-निर्देश के लिए ये उपदेश है। इन गीतो और बगाल के १९वी शती के बाउल नामक रहस्यवादी घुमक्कडो के गानो मे बडी विचित्र समानता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मानव धर्म पर अपने 'हिब्बर्ट भाषणों' में इन बाउलों का उल्लेख किया था।

सेन राजाओं (१०००-१२०० ई०) के राज्य-काल में बंगाल, जो पहले एक बौद्ध देश था, प्रमुख रूप से हिन्दू देश बन गया। हमारे एक प्राचीन महाकाव्य 'शून्य पुराण' में ऐसा उल्लेख आता है कि बौद्धों का ब्राह्मण्य-पुनर्जीवनवादियों ने उत्पीडन किया और इसके कारण बौद्ध लोग उस समय के तुर्की विजेताओं को अपना मुक्तिदाता मानने लगे। बंगाल की व्यापक मुस्लिम जनसंख्या, इसी कारण से, हिन्दुओं की तरह ही पुराने बौद्ध लोगों से भी निर्मित हुई होगी, ऐसा माना जाता है।

प्राचीन बँगला की लम्बी कविताओं में मुकुन्दराव चक्रवर्ती का 'चंडी मंगल' प्रसिद्ध है।* यह करीब १६वीं शती या उसके आस-पास के कवि थे। उन्होंने अपने काव्य में स्त्री-पुरुषों के लिए तत्कालीन रीति-रिवाजों और घटनाओं के बड़े ही प्रामाणिक और स्पष्ट चित्र दिए हैं। जैसा कि कविता के नाम से स्पष्ट है, इस रचना में फैलाव अधिक और आकर्षण कम है। इसमें चण्डीदेवी की पूजा पृथ्वी पर कैसे प्रचलित हुई, इसकी कहानी है। इन सब दोषों के होते हुए भी उसमें मानवीय सम्बन्धों की जैसी विविधता प्रतिबिम्बित है, उसके कारण वह सचमुच महाकाव्य की कोटि की रचना है।

'चण्डी-मंगल' के बाद या उसके साथ-साथ वैष्णव भाव-गीतों का उल्लेख करना चाहिए। ये राधाकृष्ण-सम्बन्धी गीत हैं, जो विद्यापति, चण्डीदास, ज्ञानदास और गोविन्ददास ने रचे हैं। इनमें से कुछ गीत तो बहुत सुन्दर हैं—केवल बँगाली पाठकों के लिए ही नहीं, बल्कि उन सब लोगों के लिए, जो सच्चे, प्रभावशाली शब्दों का मूल्य जानते हैं।† इन में कुछ अच्छे गीत प्रेम और भक्ति के दिव्य क्षणों की झाँकी देते हैं,

---

* यह कवि 'कवि कंकण' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है।

† इन गीतों का एक संग्रह साहित्य अकादेमी ने प्रकाशित किया है। (वैष्णव पदावली—संपादक और प्रस्तावना-लेखक डा० सुकुमार सेन)।

और विश्व के किसी भी प्रसिद्ध साहित्य मे मानवीय अथवा दैवी उत्तम प्रेम-गीतो के साथ इनका तुलना हो सकती है । यह विचारणीय है कि इस युग को महान चैतन्य ने प्रेरणा दी। उनके अनेक जीवन-चरित्रो मे से दो अतिस्मरणीय हैं, एक है वृन्दावनदास का और दूसरा कृष्णदास कविराज का।

वैष्णवो के कार्य के बाद कृत्तिवास की रामायण और काशी रामदास के महाभारत का उल्लेख करना चाहिए। ये प्रायः १६वी शती मे रचे गए। रामायण इस शती के आरभिक काल मे और महाभारत अन्तिम काल मे। ये दो प्राचीन महाकाव्य वास्तव मे जनता की पुस्तके हैं। वे उनके सुन्दर प्रसाद-पूर्ण छन्दो के लिए, सरल और गहरे करुण-रस के लिए तथा उच्च नैतिक मूल्यो के लिए आज भी उतनी ही महत्व-पूर्ण हैं।

१७ वी शती मे—दौलत काजी और सैयद अलाउल—दो बडे प्रतिभाशाली मुसलमान कवि हुए—इन्होने अराकान के मूग राजा और उनके मुसलमान सरदारो का आश्रय प्राप्त किया था। दौलत काजी मे बहुत प्रतिभा थी, लेकिन वे बहुत जल्दी मर गए। अलाउल बहुत उम्र तक जिदा रहे और उनमे काव्य-गुणो के साथ-साथ विस्तृत अध्ययन भी था। दोनो ने बँगला-साहित्य की बडी सेवा की। मानवीय प्रेम और अभियान के वर्णन पर उनका आग्रह था, जबकि सारा वातावरण देवी-देवताओ के ऐसे प्रेम और अभियानो से भरा हुआ था, जो बहुत शोभन नही थे।

इसके बाद भारतचन्द्र १८वी शती मे आये। वे अधिक सुलझे हुए कलाकार थे और प्राय एक शती तक बहुत लोकप्रिय रहे। उनमे चमत्कार और काव्य-कुशलता अवश्य थी, परन्तु मूल्यो की भावना कम थी। वे ह्रासोन्मुख युग मे हुए। भारतचन्द्र के बाद रामप्रसाद आये। उन्होने भारतचन्द्र का कुछ अनुकरण किया, किंतु वे सफल नही हुए। उनके धार्मिक गीत कालीमाता के प्रेम और भक्ति से भरे है, जो काफी

उच्च कोटि के है। इन गीतो के कारण बँगाल के सब वर्गों के लोगो मे वे बहुत प्रिय है।

उन्नीसवी शती

उन्नीसवी शती का आरम्भ ब्रिटिश राज्य की शक्ति और प्रतिष्ठा की सुस्थापना के साथ हुआ। अब अग्रेजो को सब पहचानने लगे थे। यह एक सक्रान्ति युग था। इस शताब्दी के प्रथमार्द्ध के कवि थे ईश्वर गुप्त। उनमे उच्च काव्य-गुण नही थे, परन्तु अपने आस-पास की चीजो और घटनाओ के वे सूक्ष्मदर्शी निरीक्षक थे, और उनका वर्णन उन्होने चुटीली शैली मे किया। उनकी लोकप्रियता बहुत उचित ही है। हमारे साहित्य के आधुनिक युग के नायको मे से तीन—रगलाल, दीनबन्धु और बकिमचन्द्र—का आरम्भिक विकास उन्हीके प्रभाव मे हुआ।

यहाँ पर हमे उन समृद्ध लोक-गीतो और लोक-कथाओ की परम्परा का भी उल्लेख करना चाहिए, जिनमे से कुछ अब अग्रेजी में भी मिल जाती है।* यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि ये गीत बहुत प्राचीन काल से चले आ रहे थे, परन्तु उनका कलेवर सक्रान्ति के साथ बहुत-कुछ अदलता-बदलता गया। उनके विशिष्ट साहित्यिक गुण भारत के बाहर भी पहचाने जाते है।

बँगला मे उन्नीसवी शताब्दी के पूर्व उल्लेखनीय गद्य-साहित्य नही मिलता। इस शताब्दी के आरम्भ मे फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई और विलियम कैरे तथा मृत्युञ्जय विद्यालकार ने बँगला-गद्य को रूप देने का प्रयत्न किया। इन्होने अपने पास पढने वाले अफसरो के लिए पाठ्य-पुस्तके लिखी। यह प्रयत्न कुछ हद तक सफल था। परन्तु सबसे पहला शक्तिशाली बँगाली गद्य हमे राजा राममोहन राय की लेखनी से मिला। धर्म, नीति और सामाजिक आचार में उन्होने पूरे सुधार सुझाते हुए कई पुस्तिकाएँ लिखी। उनकी प्रतिभा अपूर्व थी—

* कलकत्ता-यूनिवर्सिटी से प्रकाशित 'मैमनसिह बैलड्स' और 'ईस्ट बगाल बैलड्स।'

उनमें तीक्ष्णता, पौरुष और सन्तुलन तीनो गुण थे, परन्तु वे अपने समय के बहुत आगे के लेखक थे। परिणाम यह हुआ कि उन्हे अपनी महत्ता का दण्ड इस रूप मे देना पडा कि उनके ही लोगो ने उनकी उपेक्षा की। केवल उन्नीसवी शताब्दी के कुछ प्रतिभाशाली बगालियो को छोडकर, जिन्होने कि उनके आदर्श और विद्वत्ता से लाभ उठाया और अपने ढग से देश के विकास मे सहायता की, राममोहन राय की ओर किसीने ध्यान नही दिया। वस्तुत राममोहन राय की कल्पना और प्रयत्नो से ही बँगला मे उन्नीसवी शती मे पुनर्जागरण आ सका। हमारे देश के ब्रिटिश काल के इतिहास मे यह अद्भुत घटना थी। आधुनिक सस्कृति के सबसे बडे उद्गाता रवीन्द्रनाथ राममोहन राय के अत्यधिक ऋणी है।

राममोहन राय पूरे सुधारक थे। वे देश की शिक्षा-पद्धति मे दूर-दर्शी परिवर्तन करने के पक्ष मे थे। उस समय का हिन्दू कालेज (स्थापित १८१७), जो कि अग्रेजी भाषा और साहित्य तथा कुछ आधुनिक विज्ञान पढाता था, एक आदर्श विद्यालय नही था, क्योकि वहाँ पर नैतिक शिक्षा का कोई प्रबन्ध नही था। भारतीय भाषाएँ और दर्शन भी वहाँ नही पढाये जाते थे। फिर भी हिन्दू कालेज अपने तरीके से बहुत प्रभावपूर्ण ढग से कार्य करता था। वहा से तरुण विचारको का एक दल शिक्षित हुआ, जिन्हे 'तरुण बगाल' कहते थे। राममोहन-वादियो के जीवन मे जो समाज-सुधार उन दिनो आया था, वह इन तरुण बगालियो की दृष्टि मे असन्तोषजनक और बहुत धीमा था। वे चाहते थे कि समाज मे जल्दी-से-जल्दी क्रान्ति हो और सारी प्राप्य वस्तुओ के स्थान पर पश्चिमी चीजे अपना ली जायँ। इन दोनो दलो के जो अच्छे-अच्छे लोग थे, वे बहुत खुले दिल के, चरित्र के मजबूत और सच्चे देश-भक्त थे। उनके अपने अलग-अलग तरीके थे। बगाली गद्य ने थोडे ही समय मे 'तत्त्वबोधिनी' शाला* के राममोहनवादियो के हाथो

* अक्षय कुमार दत्त, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर इस विचार-धारा के सुविख्यात नेता थे।

ओर भी अधिक प्रगति की, परन्तु रूप तथा आगय की दृष्टि से आधुनिक बगाली साहित्य 'तरुण बगाल' दल से शुरू हुआ। माइकेल मधुसूदन दत्त अपने समय के अग्रगामी तरुण बगालवादी थे। वे अग्रेजी पद्य लिखकर कीर्ति कमाने का स्वप्न देखते थे। वे ईसाई बने और उन्होने कई यूरोपीय भाषाओ पर अधिकार प्राप्त किया। इनमे प्राचीन और आधुनिक दोनो प्रकार की भाषाएँ थी—(मानो वे यह चाहते थे कि प्रगति के पथ मे कोई बाधा या रोक न हो) आधुनिक बगाली साहित्य के वे सबसे बडे पहले महाकवि बनकर रहे। वस्तुत वे ही आधुनिक बगाली काव्य के प्रमुख सस्थापक है। हमारे देश को यूरोप से दूर करने वाली जो खाई पैदा हुई थी, उस पर माइकेल ने मानो एक पुल बनाया, जिससे दोनो के सबध घनिष्ठ हो गए। यूरोप हमारे लिए अब विदेश नही रह गया था। माइकेल की प्रतिभा ने यूरोप को मानो हमारे मनो-लोक का एक भाग बना दिया। अब तक यह हिस्सा जैसे अज्ञात था। बगाल की पुन उठती हुई आत्मा के लिए यह सचमुच बहुत बडा लाभ था। इसके अपने खतरे भी थे—उन लोगो के लिए, जो इस बात के लिए मानसिक तौर पर तैयार नही थे। कुछ दिनो के बाद एक दूसरे तरुण बगालवादी बकिमचद्र चट्टोपाध्याय ने अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ मे 'राजमोहन्स वाइफ' नामक अग्रेजी उपन्यास लिखा। लेकिन बाद मे वे बगला की ओर मुडे और एक के बाद एक बडी शक्तिशाली रचनाएँ उपन्यास के रूप मे उन्होने बगाल को दी। इस प्रकार कुछ ही वर्षो मे वे अपने समय के प्रमुख साहित्यकार बन गए। आधुनिक बगाली गद्य के वे पहले बडे लेखक थे।

बाद के दिनो मे बकिमचन्द्र राष्ट्रीय पुनर्सगठन की समस्याओ की ओर मुडे। वह हिन्दू-जातिवाद का युग था। यह कई प्रकार की प्रतिक्रियाओ के कारण उत्पन्न हुआ था, जिनमे कुछ मुख्य कारण ये थे, ब्रिटिश शासक अपनी हठधर्मी नही छोड रहे थे, शिक्षित हिन्दुओ की बढती हुई आकाक्षाओ को पहचानना अस्वीकार कर रहे थे, फलत

हिन्दुओ के स्वाभिमान को चोट लगी और उसके साथ-साथ आत्म-निर्भरता की भावना उनमे तीखी होकर जागी, टाड की रोमाटिक 'राजस्थान की गाथाओ' ने उन्हे बहुत प्रभावित किया। उनका देश-प्रेम का भाव जैसे जाग उठा। राष्ट्रीय नाटको के साथ-साथ मुख्यत बडे ही अतिनाटकीय प्रसग, वृथा-भावुक देशभक्ति के प्रदर्शन के साथ-साथ दिखाये जाने लगे। प्राचीन हिन्दू धर्म के अध्यात्म मे मादाम ब्लैवट्स्की नामक थियोसोफिस्ट ने श्रद्धा प्रकट की। कई अन्य यूरोपीय विद्वानो ने भी प्राचीनता के गुणगान किये। बकिमचन्द्र, वैसे और बातो को देखे तो, कोई कम बुद्धि वाले विचारक नही थे, परन्तु कुछ भी कहिए, वे रोमाटिक देश-भक्ति के आकर्षण के शिकार हो गए, या यो कहिए कि उस युग के रोमाटिक जातीयतावाद की लपेट मे आ गए। देश-भक्ति और हिन्दू-जातिवाद के नाते उन्हे जो सफलता मिली वह बहुत अधिक थी। परन्तु सच कहा जाय तो उनमे जो कुछ उत्तम था, उसका अधिकाश व्यर्थ हुआ। जीवन के अतिम दिनो मे जो उपन्यास उन्होने लिखे है उनमे गभीर दोष है, यद्यपि यह नही कहा जा सकता कि वे बिलकुल गुण-विहीन है। अपने दिनो मे, इस देश की उलझी हुई राष्ट्रीय समस्याओ का सामना करने की उनकी तैयारी भी नही थी। इससे पता चलेगा कि उनकी स्थिति कैसी विचित्र थी। * यद्यपि बकिम-चन्द्र के विचारो मे कुछ गडबडी है, फिर भी उनकी मातृभूमि के प्रति आस्था और देश की दुर्दशा के प्रति पीडा अत्यन्त तीव्र थी; और कम-से-कम कुछ समय के लिए वे हमारे राष्ट्रीय जीवन मे बडी विधायक शक्ति के रूप मे काम करते रहे। उन दिनो बकिमचन्द्र के जातीय पुनर्जागरण के विचारो से प्रेरित हेमचन्द्र और नवीनचन्द्र-जैसे कवि

* 'धर्म-तत्त्व' पुस्तक में बगाल के मुसलमानों पर बकिमचन्द्र के विचार देखिये। 'बगदेशेर कृषक' में विशेष रूप से उन्होंने किसानों की दुर्दशा का विश्लेषण किया, परन्तु वे कोई उपाय नहीं सुझा सके, क्योंकि वे राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तन नही चाहते थे।

ऊँचे कीर्ति-शिखर तक पहुँचे, मगर बाद में वे मानो पिछड़ गए। प्रसिद्ध सरकारी अधिकारी रमेशचन्द्र दत्त बंकिमचन्द्र के दूसरे श्रेष्ठ अनुगामी थे। उन्होंने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के कई बंगाली उपन्यास लिखे, परन्तु अब वे एक अर्थशास्त्री के नाते अधिक याद किये जाते हैं। उसी युग के दो कवि बिहारीलाल चक्रवर्ती और सुरेन्द्रनाथ मजूमदार, उनके अपने समय में इतने प्रसिद्ध नहीं थे, परन्तु अपनी मूलभूत साहित्यिक शक्तियों के कारण वे धीरे-धीरे ऊपर उठते गए। बिहारीलाल प्रकृति और अपने देशवासियों के बड़े प्रेमी तथा अपने रहन-सहन में बहुत ही सादे थे। उनका प्रभाव तरुण रवीन्द्रनाथ पर गहरे रूप में पड़ा।

इस हिन्दू-जातिवाद के वातावरण में रवीन्द्रनाथ का विकास हुआ। परन्तु उनके ऊपर इसका जो उतना प्रभाव नहीं पड़ा, इसके दो प्रमुख कारण हैं। एक तो बचपन से वे कविता के भक्त थे—वे कालिदास, जयदेव और अन्य वैष्णव कवियों की कृतियों एवं दूसरी ओर बाइरन, शेली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स और ब्राउनिंग की कृतियों के प्रेमी थे। दूसरा कारण यह है कि जिस बड़े परिवार में वे पले, वह स्वाभिमानी, गंभीर जातिवादी और कट्टरता से मुक्त उदार परिवार था। तरुण कवि के ये संस्कार कवि बिहारीलाल चक्रवर्ती द्वारा और भी गहरे बने।

रवीन्द्रनाथ प्रधान रूप में प्रकृति के कवि के नाते विकसित हुए, उनमें बौद्धिक तीक्ष्णता और सहृदयता प्रचुर मात्रा में विद्यमान थी। वे २६ वर्ष की छोटी-सी उम्र में 'कला के लिए कला' मतवाद के पूर्ण विकसित कवि बने। अपनी कला पर उन्हें सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया था। प्रायः आठ वर्ष तक उन्होंने ज़ोर से हृदयस्पर्शी भाव-गीत, अच्छे नाटक, कहानियाँ और निबन्ध लिखे। इसके बाद उनके मन में और भी गहरे पैठने, जीवन के सत्य के और भी निकट पहुँचने तथा अपने प्रति और भी अधिक प्रामाणिक होने की भावना जगी। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके प्रकृति के प्रति गहरे प्रेम में ईश्वर के प्रति गहरी लगन

जुड गई। दूसरे शब्दो मे कहे तो उनकी सत् तथा कल्याण-चेतना और भी प्रदीप्त हो गई। अब उनके लिए देश-प्रेम और राष्ट्र-भक्ति का एक नया अर्थ सामने आया। वे आत्म-विस्मृत हिन्दू के प्रति चिन्ता रखने के कारण लगभग एक हिन्दूजातिवादी बन गए। अन्तर केवल इतना था कि बकिमचन्द्र और उनकी शाखा के लेखक जहाँ हिन्दुओ के प्रचलित व्यवहार और रूढियो को महत्त्व देते थे, वहाँ रवीन्द्रनाथ ने उपनिषद् और बुद्ध के जीवन-दर्शन से प्रेरणा पाई। उन्होने यह भी अनुभव किया कि उनके देशवासी फिर वैसा ही उच्च आदर्श ग्रहण करे, यूरोप की भोग-वादिता और शक्ति के प्रति आकर्षण उनपर हावी न हो। सन् १९०० मे रवीन्द्रनाथ ४० वर्ष के थे और उनकी विचार-धारा यह थी। इस समय तक वे हर प्रकार से महाकवि की ऊँचाई तक पहुँच चुके थे, और उनकी साधना यह बतलाती थी कि उन्हे आगे और भी महानता मिलने वाली है। तब तक अपने प्रदेश मे ही वे अधिक लोकप्रिय नही हो पाए; बगाल के बाहर तो शायद ही उन्हे कोई जानता हो।

बीसवी सदी

हमारे साहित्य मे बीसवी सदी का उदय रवीन्द्रनाथ के 'नैवेद्य' से हुआ। १०० कविताओ के इस सग्रह मे सबसे अधिक सख्या सुगठित और चुस्त सानेटो की है। परमात्म तत्त्व की जाग्रत चेतना, प्रतिदिन के जीवन-व्यवहार की पवित्रता और अभागी मातृभूमि के प्रति कर्त्तव्य की प्रेरणा इन कविताओ मे है। कवि की दृष्टि मे हमारी मातृभूमि दो प्रकार की दासताओ मे आबद्ध थी, एक ओर तो अहकारी विदेशी विजेता था और दूसरी ओर उसीके पुत्रो का अविवेक तथा प्रमाद। 'नैवेद्य' सचमुच एक शक्तिशाली पुस्तक है। देश और मानव जाति को रवीन्द्रनाथ की जो देन है, उसमे इस पुस्तक का स्थान बहुत बडा है। इसी पुस्तक मे उन्होने उस आने वाले सकट का इगित किया, जो अति-

राष्ट्रवादी पश्चिम के सम्मुख था।' यह भी विचारणीय है कि इस धारा में उन्होंने जो कविताएं लिखी, उनने उन्हें १९१३ में विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त हुई।*

लार्ड कर्जन ने १९०५ में बंग-भंग किया और बंगाल इसे मानने के लिए बिलकुल तैयार नहीं था। इस सुदृढ़ विरोध का आध्यात्मिक पक्ष अपनी पूरी दिव्यता के साथ रवीन्द्रनाथ में प्रतिबिम्बित हुआ। उनके गीतों और भाषणों ने बंगाल की जनता को अभूतपूर्व रूप से उत्प्रेरित किया। राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पक्ष में उन्होंने आत्मनिर्भरता को महत्त्व दिया और फिर भी अंग्रेजों के प्रति घृणा का एक अक्षर भी व्यक्त नहीं किया। आज भी उन गीतों और भाषणों का रस कम नहीं हुआ है। इसका एक प्रधान कारण यह है कि वे केवल देश-भक्ति से प्रेरित रचनाएं नहीं थीं, बल्कि उनमें देश-भक्ति परमात्म-भावना से ऊर्जित थी। दूसरे शब्दों में, इसे यों भी कह सकते हैं कि देश-भक्ति की भावना के साथ सत्य और मानव-मात्र के प्रति उत्तरदायित्व की परम भावना भी संलग्न थी। दूसरे बड़े कलाकारों की भाँति रवीन्द्रनाथ ने भी स्त्री-पुरुषों के मनो-रंजक और स्मरणीय चित्र खींचे हैं, परन्तु उनकी सबसे बड़ी सफलता यह है कि वे अपनी कृतियों में अपने-आपको चित्रित और उद्घाटित कर सके हैं। एक के बाद एक उनकी रचनाओं में आश्चर्यजनक संवेदनशील सत्य और जीवनानन्द की प्रेरणा से निरंतर विकसित होने वाली चेतना व्यक्त हुई है।

बहिष्कार और स्वदेशी-आन्दोलन 'बंग-भंग' के बाद देशव्यापी बने, परन्तु उनके भीतर उतनी महत्ता नहीं रही कि जिसने रवीन्द्रनाथ के

---

*इस सानेट की अन्तिम पंक्तियां थीं

छुटियाछे जाति-प्रेम मृत्युर सन्धाने।
बाहि स्वार्थ तरी गुप्त पर्वतेर पाने।।

(देखो जातीयता आत्मनाश की ओर जा रही है, स्वार्थ और लोभ का सामान इसमें लदा है और वह छिपी हुई चट्टानों से जाकर किसी समय टकरायगी।)

हृदय को प्रसन्नता प्राप्त होती। इसके विपरीत, आन्दोलन आतंकवाद की उस दिशा मे मुड गया, जिसे रवीन्द्रनाथ कभी सहन न कर सके। यह स्वाभाविक था कि उन आन्दोलनो से उनका सम्बन्ध टूट गया। राष्ट्रवाद की यह परिणति उनके हृदय को भीतर-ही-भीतर कचोटती रही। इसका एक परिणाम यह हुआ कि उनकी आध्यात्मिक चेतना और भी गहरी हो गई। अब उनका हिन्दू या भारतीय राष्ट्रवाद सीमित न रहकर स्वदेशी-आन्दोलन के निकट सम्पर्क मे आने के बाद व्यापक बन गया। रवीन्द्रनाथ बहुत जल्दी यह समझ गए कि सब तरह की अह-ग्रथि और आत्म-समर्थन की भावना, कितनी ही भोली और अच्छी क्यो न जान पडे, अतत. वह मानवीय चरित्र और कृति को खराब कर देती है। इस दु ख मे से एक ऐसी भावना जगी कि सब-कुछ स्वच्छ किया जाय। उनका राष्ट्रवाद इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रवाद का पर्यायवाची बन गया। लोगो ने उसे ठीक तरह से नही समझा। उतकी बातो का गलत मतलब लगाया गया। पर उन्हे इस बात का पूर्ण विश्वास था कि उनके लिए ईश्वर ने कोई दूसरा मार्ग खुला नही छोडा है। केवल वही एक रास्ता है। सच्चा अन्तर्राष्ट्रवाद प्रामाणिक राष्ट्रीय आकाक्षाओ का शत्रु नही, बल्कि वह एकमात्र आधार है, जिससे कि वे अपना सही दृष्टिकोण कायम कर सकते है। उनके विश्वासो का बल कुछ वर्ष बाद दुनिया ने उस समय जाना जब कि उन्होने जापान और अमरीका मे राष्ट्रीयता पर भाषण दिए। इसके बाद विश्व मे जो भी घटनाएँ घटित हुई उनसे यह सिद्ध होता है कि वे एक सच्चे व्यक्ति थे और उन्होने अपने युग के विशिष्ट रोगो को समझने मे कोई गलती नही की थी।

जैसा कि हम देख चुके है, बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे रवीन्द्र-नाथ एक प्रसिद्ध कवि थे और वे बहुत-कुछ लिख चुके थे. परन्तु उस समय तक उन्हे ज्यादा लोग नही जानते थे। यद्यपि वे इतने लोकप्रिय नही थे, फिर भी उनकी एक मित्र-मडली और अनुयायियो का एक ऐसा दल था, जो उनकी गहरी प्रशसा करता था और यह जानता था कि

उनमे एक दुर्लभ कवित्व-शक्ति है। स्वदेशी-आन्दोलन मे उनका सक्रिय सहयोग सब लोग जानते थे। इसी कारण साहित्य-जगत् में उनके बहुत-से अनुयायी बने। बंगाल के जीवन के अभावों को ये दूसरे लेखक आदर्शवादी दृष्टि से देखते थे। वे कहते थे कि चाहे भौतिक साधनो मे बंगाल पिछड़ा हुआ हो, परन्तु उनकी दृष्टि से, आध्यात्मिक साधनो मे बंगाल किसीसे कम नही है। इन लेखकों मे विचारो और भावनाओ की गहराई कम थी और इसी कारण रवीन्द्रनाथ के शब्द-शिल्प का बहुत-सा अनुकरण करने पर भी वे ऐसी बहुत थोडी कविताए लिख पाए जो सामान्य स्तर से ऊंची हो। रवीन्द्रनाथ के समकालीन कवियो मे देवेन्द्र-नाथ सेन, अक्षयकुमार बडाल और द्विजेन्द्रलाल राय स्मरणीय हैं। उनके शिष्यो मे सत्येन्द्रनाथ दत्त सबसे प्रमुख थे, क्योंकि उनकी सहानुभूति व्यापक थी और बंगाली भाषा का प्रयोग उन्होंने बहुत ही नैपुण्य के साथ किया था। करुणानिधान बैनर्जी, जितीन्द्रनाथ सेनगुप्त और मोहितलाल मजूमदार भी प्रसिद्ध हुए। करुणानिधान प्रकृति-प्रेम और विगत वैभव के अच्छे वर्णन के लिए, और जितीन्द्रनाथ तथा मोहितलाल अपने बौद्धिक निराशावाद के लिए विख्यात थे। उसी युग के कुमुद-रंजन मल्लिक और कालिदास राय व्यापक रूप से लोकप्रिय हैं।

कथा-साहित्य के क्षेत्र मे रवीन्द्रनाथ के आरम्भिक अनुयायियो मे प्रभात कुमार मुखर्जी प्रमुख थे। उनकी हास्यपूर्ण कहानियां बहुत अधिक पढी गई। चारुचन्द्र बैनर्जी और सौरीन्द्र मोहन मुखर्जी को भी कुछ लोकप्रियता मिली। मगर इन सबसे आगे बढकर शरत्चन्द्र चटर्जी अत्यधिक लोकप्रिय बने। रवीन्द्रनाथ के मानवतावाद और कला ने उन्हें गभीरता से स्पर्श किया। यद्यपि उन्होंने उन्नीसवी शताब्दी के अन्त मे लिखना शुरू किया था, परन्तु १९१३ के पहले उनकी रचनाएं प्रकाश मे नही आई। उनकी सफलता असाधारण हुई और १९३८ मे उनकी मृत्यु के समय तक उनका यश बढ़ता ही गया।

आरम्भ मे शरत्चन्द्र एक शक्तिशाली यथार्थवादी लेखक माने गए।

इसलिए हमारे पाठको के एक बहुत बडे अश मे वे लोकप्रिय बने और इसीलिए दूसरी ओर पुराने लोगो ने उनका बहुत अधिक विरोध भी किया। बगाल की साहित्यिक परम्परा में यथार्थवाद प्राय. एक नई चीज़ थी। आलोचक कुछ वर्षों में धीरे-धीरे शान्त हो गए, इसलिए नही कि उन्हे अपने दृष्टिकोण की गलती समझ मे आ गई थी, वरन् इसलिए कि अब उनकी आलोचना सुनने को कोई तैयार ही नही था। ऐसी व्यापक और सच्ची लोकप्रियता किसी भी आधुनिक बगाली को नही मिली, कदाचित् बकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ को भी नही। यद्यपि उनके विरुद्ध काफी आवाज़ उठाई जाती है, फिर भी शरत्चन्द्र आज बहुत अधिक पढे जाते है।

जब शरत्चन्द्र ने बगाल के पाठको मे मानो तूफान पैदा कर दिया था, तबसे आधी शताब्दी बीत गई। आज हम उनके बारे मे कुछ तटस्थता से विचार कर सकते है। आज हमे उनकी सीमाएँ बहुत स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी रचनात्मक कल्पना-शक्ति बहुत समृद्ध नही है। जीवन के सब पहलुओ मे उनकी उतनी दिलचस्पी भी नही है। कई जगह उनमे भावुकता का ऐसा अतिरेक दिखाई देता है, जो यथार्थवाद से बिलकुल उलटा है। परन्तु इन सब गम्भीर दोषो के बावजूद शरत्चन्द्र की लोकप्रियता या महत्त्व कम नही हो सकता। इसका मुख्य कारण यह है कि उन्होने जिस दु ख को प्रत्यक्ष किया है, वह कुछ तो स्वनिर्मित है, और कुछ अनिवार्य। यह दु ख उन्होने विविध आकारो में देखा है और उसे अचूक ढग से व्यक्त करने मे उन्हे सफलता मिली है। यही उनका यथार्थवाद है, जिसके बिना कोई भी लेखक लेखक नही होता। परन्तु साथ-ही-साथ वे आदर्शवादी भी है, और खासे बडे आदर्शवादी है। उनके भीतर यह प्रबल आस्था है कि मनुष्य स्वभावत. सुन्दर और महान है। उसकी सब गलतियाँ, पाप और दोष केवल धूल और मिट्टी है, जो कि बाहर जमी हुई है। किसी भी क्षण यह मिट्टी हट जाने पर मनुष्य की निजी महत्ता प्रकट हो सकती है।

कुछ लोगो की दृष्टि मे शरत्चन्द्र का यह दृष्टिकोण भी निरी भावुकता है। लेकिन वास्तव में, इसमें भावुकता से कुछ अधिक मजबूत और जानदार तत्त्व है। यह उनका विश्वास ही है जोकि मनुष्य के अन्दर सबसे अधिक स्थायी वस्तु है। हाँ, कई गलतियाँ या बुरे विश्वास भी हैं, परन्तु अच्छे हो या बुरे, उनका विचार तो हमें करना ही होगा। यह सौभाग्य की बात है कि शरत्चन्द्र का विश्वास दिव्य था। उनकी कला जो इतनी निखरी, वह इसी दिव्य आस्था के कारण, यद्यपि उनमे कई दुर्बलताएँ भी थी। साहित्यिक मूल्याकन अथवा किसी भी प्रकार के मूल्याकन मे यथार्थ गुणो का महत्त्व अनेक दोषो से कही अधिक है।

शरत्चन्द्र के आगमन के कुछ वर्ष बाद बगाली पाठको को डा० नरेशचन्द्र सेनगुप्त नामक दूसरे यथार्थवादी लेखक कानून-विशारद के रूप मे मिले। वे भी बहुत पढे गए। मगर अब उनकी लोकप्रियता बहुत कम हो गई है। उन्होने जनता का ध्यान अपने उपन्यासो मे विविध प्रकार की जानकारी देकर आकर्षित किया। उनके चरित्र विचारो के प्रतीक थे और इस कारण वे जल्दी ही भुला दिए गए।

काजी नजरुल इस्लाम कलकत्ता के साहित्यिक क्षेत्र में विशेषतया एक भावुक कहानी-लेखक के नाते १९१९ मे उभरे। उस समय उनकी उम्र २० वर्ष की थी, और विद्वान होने का भी कोई दावा उनका नही था। परन्तु उनकी कहानियाँ ऐसी थी कि वे तरुण पाठको और लेखको को आकर्षित करती थी। उनकी आश्चर्यजनक सप्राणता बच्चो तथा बूढो सभी को अपनी ओर खीचती थी। वह युग राजनैतिक उत्साह मे आन्दोलित था। खिलाफत और कांग्रेस दोनो जोरो पर थे, और नजरुल ने दोनो स्रोतो से खूब ग्रहण किया। बगाल के स्वदेशी-आन्दोलन, और विशेषतया आतकवादियो के कारनामो से वे बहुत अधिक प्रभावित हुए। नये वातावरण ने उनकी कल्पना-शक्ति को प्रज्वलित किया। उन्होने वीर-काव्य और गीत लिखे, जो बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गए। दो वर्ष बाद उन्होने अपनी प्रसिद्ध कविता 'विद्रोही' लिखी, जिससे उनकी कीर्ति

देखते-देखते व्याप्त हो गई और बाद मे वह कविता अखिल भारतीय कीर्ति अर्जित कर सकी। अपनी ऐसी ही रचनाओ के कारण उन्हे जेल भी जाना पडा, जहाँ उन्होने लगभग ४० दिन का उपवास किया।

स्वतन्त्रता के सघर्ष मे काजी नजरुल इस्लाम बडी शक्ति थे। उनके प्रमुख अस्त्र गीत और कविता थे। अन्याय और अत्याचार चाहे किसी रूप में हो, नजरुल इस्लाम उसके सीधे विरोध मे थे। वे वास्तव मे एक श्रेष्ठ जन-कवि बन गए। उन्होने अगणित प्रेम-गीत, विशेषतया गज़ले और कुछ धार्मिक गीत भी लिखे। कुछ उपन्यास और नाटक भी उन्होने लिखे है। परन्तु उनकी कीर्ति कविताओ तथा गीतो के कारण ही है।

नजरुल की कविता के साहित्यिक गुणो के विरुद्ध उसी समय आवाज उठी, जब कि उनकी लोकप्रियता परमोच्च बिन्दु पर थी। आज भी कई लोग उनका विरोध करते है। इसमे सन्देह नही कि उनकी रचनाओ में दोष है : कई स्थलो पर अपरिपक्वता है, उनके शब्द सदा चुने हुए नही होते; परन्तु इन सब दोषो की तुलना मे एक श्रेष्ठ आत्मा की दुर्मिल विशेषता हमे देखनी चाहिए। उनकी निर्भयता और जन-साधारण तथा दलित और हेय समझे जाने वाले लोगो की सम्भावनाओं मे उनकी अपार श्रद्धा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यदि उनकी कवि-ताओ मे उनकी कमजोरिया दिखाई देती है तो उनकी दिव्य आत्मा के विशेष गुण भी उनमे अच्छी तरह दिखाई देते है। यह उल्लेखनीय है कि गत १५ वर्षों से उन्हे ऐसे रोग ने ग्रस लिया है, जिसका कोई इलाज नही है और वे मृतप्राय हो गए है। इसके बाद ही पूर्वी और पश्चिमी दोनो बगालो के असख्य नर-नारी बडी सहृदयता और सद्भावना के साथ प्रतिवर्ष उनकी याद करते है। वाल्ट विटमैन की तरह नज़रुल पूरे-पूरे जनता के कवि है। जनता भी उन्हे अच्छी तरह समझती है और उनकी उठती हुई भावनाओ का उत्थान स्वय अनुभव करती है। ज्यों-ज्यो हमारे देश की जनता आत्म-बोध पाती जा रही है, त्यो-त्यो यह

सम्भव है कि वह अपने इस कवि को और भी अधिक हार्दिकता के साथ याद करेगी। नजरुल इस्लाम के बाद जसीमुद्दीन ने विशेषतया एक देहाती कवि के रूप में व्यापक ख्याति पाई। बंगाल का लोक-साहित्य बड़ा ही समृद्ध है, उन्होंने उससे प्रेरणा ग्रहण की।

ब्रिटिश-पूर्व बंगाली साहित्य में बंगाल के मुसलमानों ने काफी योग दिया था। सत्रहवीं शती के दौलत काजी और अलाओल का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। मुस्लिम जाति के और भी दूसरे प्रसिद्ध कवि हैं। बाउलों में तो मुस्लिम कवि सबसे अधिक और प्रधान थे। बंगाली साहित्य को पुराने मुसलमान राजाओं और सरदारों ने बड़ा आश्रय दिया। कुछ लोग तो यहां तक कहते हैं कि चूंकि उस युग में ब्राह्मण 'भाषा' के विकास के विरुद्ध और संस्कृत के पक्ष में थे, अतः साहित्य के विकास को मोड़ देने का श्रेय इस मुस्लिम राज्याश्रय को ही दिया जाना चाहिए। परन्तु उन्नीसवीं शती में जो नया साहित्य विकसित हुआ, उसमें मुसलमानों ने कोई सक्रिय भाग नहीं लिया। कम-से-कम इस शती में प्रथम श्रेणी के जो साहित्यकार पाये जाते हैं उनमें से कोई भी मुसलमान नहीं है। इस तथ्य का कारण यह दिया जाता है कि नये समय के साथ-साथ मुस्लिम मिल्लत को नये नेतृत्व की आवश्यकता थी, जो उसे कहीं से भी प्राप्त नहीं हो सका। इसके विपरीत इस जाति के सजग अंश का ध्यान 'वहाबी' आन्दोलन की ओर खिंचा। उसका नारा था, 'इस्लाम की पुरानी कट्टर पवित्रता की ओर लौटो।' यह स्पष्ट है कि इसके राजनैतिक कारण थे। परिणाम यह हुआ कि भारत के मुसलमान अंग्रेजी शिक्षा से दूर हटते गए। करीब आधी शती तक यह होता रहा। १८५७ के गदर में मुसलमान पर्याप्त संख्या में भारत में अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध शस्त्र लेकर विरोध के लिए खड़े हो गए। इसके बाद इस जाति के लिए और भी अधिक मुसीबत आई। बंगाल में नवाब अब्दुल लतीफ खान बहादुर और उत्तर प्रदेश के सर सैयद अहमद खां ने इस मुसीबत को दूर करने की बहुत-कुछ कोशिश की। उन्होंने मुसलमानों

में अंग्रेज़ी शिक्षा फैलाई और उनकी आमदनी के ज़रिये बढाये। लेकिन यह सब काम दरिया मे खश-खश के बराबर था, क्योंकि मुस्लिम जाति को बौद्धिक और आध्यात्मिक पुनर्वास की बहुत जरूरत थी। तेजी से बदलने वाले दुनिया के हालात से बगाल के मुसलमानो ने ये पुनर्वास के पाठ ग्रहण किए, विशेषतः बगाल के स्वदेशी आदोलन से। हमारे उन्नी-सवी शती के पुनर्जागरण ने आकर्षक और विवेकपूर्ण रूप मे इस स्वदेशी-आदोलन को बढावा दिया। इस प्रकार, बगाल के मुसलमानो मे भी सुयोग्य साहित्यिक पैदा हुए, जैसे बेगम रुकैया (जिन्हे साधारणतया मिसेज आर० एस० हुसैन के नाम से जाना जाता है), काजी इम्दादुल हक और लुत्फ़ररहमान, लगभग बीसवी शती के प्रथम दशक मे हुए। यद्यपि उन्होने ज्यादा नही लिखा है मगर उनके साहित्य के गुण स्मरणीय हैं, वे सच्चे मानवतावादी थे और उनकी शैली अत्यन्त प्रभावशाली थी।

नजरुल इस्लाम के बारे मे तो हम पहले ही लिख चुके है। उनके अवतरण के कुछ ही वर्षो बाद ढाका यूनिवर्सिटी (पूर्वी बगाल) परि-मडल मे एक साहित्यिक सगठन निर्मित हुआ, जिसका नाम था 'मुस्लिम साहित्य समाज'। उनका मूल मत्र था 'बुद्धि की मुक्ति'। तुर्की मे कमाल अतातुर्क के सुधार से उन्होने स्फूर्ति ली थी, और राममोहन राय तथा उनके बाद के अनुयायियो, जैसे रवीन्द्रनाथ और प्रमथ चौधरी से, प्रसिद्ध सूफी कविगण और हज़रत मुहम्मद से उन्होने स्फूर्ति ग्रहण की थी। ढाका के मुस्लिम कालेज और विश्वविद्यालय से उन्हे बडा अच्छा समर्थन मिला। विद्यार्थियो को उनके बौद्धिक और सास्कृतिक सम्पर्क से बडा लाभ हुआ (ऐसा उस समय के ढाका यूनिवर्सिटी के अधिकारी लिखते हैं)। सारे प्रदेश मे सुशिक्षित मुसलमानो के एक बहुत बड़े भाग ने उसे अच्छी तरह ग्रहण किया। परन्तु थोडे ही दिनो मे इस जाति के रूढिवादी हिस्से ने उनका बडा विरोध किया, यहाँ तक कि ढाका यूनिवर्सिटी के मुस्लिम-हॉल मे इसके तीसरे अधिवेशन के बाद इस समाज के सम्मेलन को अनुमति नही मिल सकी। बाकी की कहानी

छोटी नही है, मगर सक्षेप मे हम यही कह सकते है कि वे दिन ऐसे थे जब वह साम्प्रदायिक तनातनी शुरू हुई थी जिससे कि अन्तत. हमारे देश का विभाजन हुआ। उस दल के कुछ सदस्य आज भी लेखक के नाते क्रियाशील है ।

ढाका के मुस्लिम बुद्धिवादियो का जागरण जिन दिनो मे हुआ, उन्ही दिनो अपने-आपको अति-आधुनिक कहने वाले तरुण प्रभावशाली लेखको का एक दल आगे आया। इस दल के प्रमुख लेखक थे गोकुल नाग, प्रेमेन्द्र मित्र, जीवनानन्द दास*, बुद्धदेव बसु और अचिंत्य सेनगुप्त। प्रेमेन्द्र मित्र ने अपने दल का घोषणा-पत्र इस प्रकार लिखा

आमि कवि जत कामारेर
आर कासारीर आर छुतारेर
मूठे मजूरेर
आमि कवि जत इतरेर

(मै लुहारो, पीतल का काम करने वालो, बढइयो और रोजनदारी मजदूरो का कवि हूँ, मै दलितो का कवि हूँ ।)

बुद्धदेव बसु और अचित्य सेनगुप्त उस समय प्रसिद्ध फ्रायडवादी थे। इतनी छोटी उम्र में भी वे बहुत लिखने वाले लेखक थे और वे यह बात बडे जोर से कहते थे कि उनका अपना एक अलग रास्ता है। रवीन्द्रनाथ इन अति-आधुनिको से विचलित हुए और उनके बीच कुछ अप्रिय बातचीत भी हुई। मगर इसका कोई तत्काल प्रभाव उन लेखको पर नही हुआ। रवीन्द्रनाथ ने अपनी शालीनता और सर्वत्र गुण-ग्रहण करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण इस वाद-विवाद को आगे नही बढने दिया। कवि-गुरु ने जो नए उपन्यास और कहानियाँ लिखी उनमे इन अति आधुनिको ने अपना प्रभाव देखकर विजय की प्रसन्नता प्रकट की। परन्तु प्रवीण कवि ने इन अति-आधुनिको को यह दिखलाया कि

*दुर्भाग्य से इनका जीवन अकाल मृत्यु के कारण समाप्त हुआ। इनकी पुस्तक 'श्रेष्ठ कविता' को १९५५ में साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला है।

जिन नवीन विषयो की ओर वे आकर्षित हुए है उन पर कैसे लिखा जाय । अब तक तो अति-आधुनिक लेखक रवीन्द्रनाथ की कलात्मक सुरुचि से कही दूर थे ।

बहरहाल, उनका विकास भी हुआ । उनमे जीवनानन्द दास का सन्तुलन और प्रकृति के प्रति प्रेम, प्रेमेन्द्र मित्र का ओजस्विल रोमाटिक-वाद और बुद्धदेव बसु का काव्य-गुण-प्रतिभा के कारण आनन्द-बोध उल्लेखनीय है । अजित दत्त इस दल के मित्र होने के अतिरिक्त स्वभाव से कुछ भिन्न है । उन्होने यौवन, प्रेम और प्रकृति पर शक्ति के साथ लिखा । उनके बाद सुधीन्द्रनाथ दत्त, विष्णु दे और अमिय चक्रवर्ती आए । इनमें सुधीन्द्रनाथ दत्त अपनी शक्तिशाली शैली और बौद्धिकता के लिए सहज विशिष्ट है । इन आधुनिको (सम्भवत प्रेमेन्द्र मित्र को छोडकर) की श्रेष्ठ रचनाओ को जब पढा जाय तो वे रवीन्द्रनाथ अथवा अन्य बगाली कवियो से इतने अधिक प्रेरित नही जान पडते, जितने कि आधुनिक अग्रेजी और यूरोपीय कवियो से । इन काव्यो मे आज की दुनिया की हालत के लिए इतना अधिक दुख, तिरस्कार, कटुवाहट और अहकार है कि वह यूरोपीय कविता के समान लगती है। रवीन्द्रनाथ के साथ इनका मौलिक मतभेद यही है। रवीन्द्र-नाथ कभी निराशावादी नही हो सकते थे, यद्यपि वे कभी कही 'हाथी दाँत की मीनार' में नही रहे, और वे सचमुच आत्म-केन्द्रित भी नही थे । उन्होने बगाली जीवन और साहित्य मे इन आधुनिक लेखको के प्रभाव की विशेषता दीख पडती है। उनकी रचना के ढग भी रवीन्द्रनाथ से बहुत-कुछ भिन्न है । इन नये लेखको के अनुयायी भी कम नहीं है। भविष्य में इनकी क्या स्थिति होगी इसके सबध मे कुछ भी कहना कठिन है, और शायद असामयिक भी होगा। निस्सदेह वे शक्तिशाली लेखक है। उनका अहवाद जो कि उनकी मुख्य वस्तु है—आकर्षण-शक्ति रखता है। परतु यह भी देखना होगा कि उनमें वह शक्ति कहाँ तक है ज कि मानवीय हृदयो मे चिरस्मरणीय स्थान पा ले । वह गुण कही भी

उनमें है या नही। हमारे तरुण कवियो मे नरेश गुह, दिनेश दास और गोविंद चक्रवर्ती उल्लेखनीय हैं।

हमारे अति-आधुनिक कवियो में प्रमुख रूप से आधुनिक युग की बेचैनी व्यक्त हुई है। परतु वही बात आज के उपन्यास और कहानी-लेखको के विषय मे नही कही जा सकती। कम-से-कम, उनमे से अधिकाश कवियो के विपय मे तो यह बात सही है। वे कमो-बेश आधुनिक बँगला-कथा-साहित्य की परपरा, विशेषत रवीन्द्रनाथ और शरतचन्द्र की परपरा का निर्वाह कर रहे हैं। शरत्चन्द्र के पश्चात् विभूतिभूपण बनर्जी ने बँगला-कथा-साहित्य को अपनी कहानियो और उपन्यासो से विशेष देन दी—विशेषत 'आरण्यक'* और 'पथेर पाचाली' से (जो फिल्म रूप में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी है)। विभूतिभूषण प्रकृति के बडे प्रेमी और हमारे उस सरल सहृदयतापूर्ण ग्राम-जीवन के चाहने वाले थे, जो अब बहुत जल्दी मिटता जा रहा है। जीवन और चरित्र का सघर्ष आधुनिक उपन्यासकारो का प्रिय विषय रहा है, किन्तु विभूतिभूषण के लिए उसमें कोई आकर्षण नही था। इसलिए उन्हे उन आधुनिको में भी नही माना जा सकता। चाहे वे 'आधुनिक' न हो, परन्तु कलाकार के नाते वे महान हैं। वे महान इसलिए हैं कि प्रकृति के स थ मनुष्य के दैनिक सम्बन्ध की समझ और उसकी अभिव्यजना के मामले मे उनकी रचनाओ मे बडी हार्दिकता मिलती है।

विभूतिभूषण को छोडकर शरत्चन्द्रोत्तर उपन्यासकारो और कहानीकारो मे तीन वर्ग के लोग हैं: वे जिन्होने रवीन्द्रनाथ और शरत्चन्द्र की परपरा का कम या अधिक अनुसरण किया, वे जो कविता मे अति-आधुनिक और अपनी कहानियो मे भी उस मनोवृत्ति से भिन्न नही हैं; और वे जो वामपक्षी हैं। पहले दल मे प्रसिद्ध नाम हैं शैलजानन्द मुखर्जी,

*इसे साहित्य अकादेमी ने सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में अनुवाद के लिए चुना है।

प्रेमेन्द्र मित्र, मेहवुवल आलम (चित्तगांग के), वनफूल, अन्नदा शकर राय, ताराशकर वन्दोपाध्याय, सरोज रायचौधुरी, विभूतिभूषण मुखोपाध्याय, सुबोध घोष, नारायण गगोपाध्याय, सतीनाथ भादुरी, नरेन्द्र मित्र और आशापूर्णा देवी। माणिक वन्दोपाध्याय भी परम्परावादी के नाते प्रसिद्ध हुए, परन्तु वाद में वे वामपक्षी आग्रह से प्रभावित हो गए। शैलजानन्द एक उत्तम कलाकार है, वगाली जीवन से उनका बहुत व्यापक और निकट परिचय है। आदिवासी जनता के उनके चित्र सर्वोत्तम माने जाते है। निम्न माने जाने वाले लोगो के जीवन से प्रेमेन्द्र मित्र का उत्कट परिचय है। परन्तु उनकी प्रतिभा कहानियो मे अधिक अच्छी तरह व्यक्त हुई है, शायद इस कारण कि सुन्दरता की उनकी कल्पना अत्यन्त रोमाटिक है। वे विकसनशील सौंदर्य के कलाकार है। मेहवुवल आलम की सर्वोत्तम कृति है 'मोमिनेर जवानवन्दी' (ईमानदार की आत्म-स्वीकृति)। जीवन जैसा है, उसे ज्यो-का-त्यो देखने में वे आनन्द लेते है, किसी रगीन काँच का सहारा वे नही चाहते। उनके भीतर आदिम ओज है। परन्तु उन्होने लिखा बहुत थोड़ा है। वनफूल का झुकाव भी आदिम ओज की ओर है, किन्तु वे अपनी कहानियो में अधिक अच्छे कलाकार है। अन्नदाशकर राय आधुनिक लेखको में सबसे अधिक महत्त्वाकाक्षी उपन्यासकार है। उन्होने छ: खण्डो मे एक उपन्यास लिखा है और उतना ही वडा एक दूसरा उपन्यास लिखना शुरू किया है। फिर भी उनकी 'मन-पावन' कृति सर्वोत्तम है, जो कि कहानियो का एक सकलन है और जिसमें सुखद, सूक्ष्म चरित्र-चित्रण मिलता है। ताराशकर वन्दोपाध्याय आज के उपन्यासकारो मे सबसे अधिक लोकप्रिय है। वे प्रादेशिक जीवन वडे परिमाण मे चित्रित करते है और इस काम में उन्हें अच्छी सफलता मिली है। शायद इसी कारण वे लोकप्रिय हुए है और शायद इसलिए भी कि उनकी कला प्रधान रूप से फोटोग्राफर-जैसी है। इधर वे कुछ सूक्ष्म चरित्र-चित्रण करने लगे है। सरोज रायचौधुरी ने हमारे लिए एक नया 'फोरसाइट सागा' (गाल्सवर्दी का पीढ़ियो तक चलने वाला चरित्र-प्रधान उपन्यास) लिखा

है। विभूतिभूषण मुखोपाध्याय हास्य-रस के भी अच्छे लेखक है। सुबोध घोष सशक्त तूलिका से 'टिपिकल' चरित्र व्यक्त करते है; नारायण गगोपाध्याय विशेषत विपन्न मनुष्यता का तीव्रता से चित्रण करते है; सतीनाथ भादुडी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मे आनन्द लेते है, नरेन्द्र मित्र बगाल के दैनिक जीवन का प्रेम से समझ-बूझकर चित्रण करते है, और आशापूर्ण देवी जीवन की छोटी-छोटी विडबनात्मक घटनाओ और विशेषत. बगाल के मध्यवर्गीय जीवन को चित्रित करती है तथा नारी की आत्मा के वे अग चित्रित करती है जिनमे वह निभृत और एकान्त पसद करती है किन्तु भोडेपन को सहन नही करती। हमारे रोमाटिक लेखको में प्रेमेन्द्र मित्र, बुद्धदेव बसु, अचित्य सेनगुप्त, मौनीन्द्रपाल बसु, मनोज बसु और प्रबोधकुमार सान्याल आदि प्रमुख लेखक है। इसमे प्रेमेन्द्र मित्र, विशेषत अपनी कहानियो मे, सचमुच सबसे श्रेष्ठ है। रवीन्द्र-नाथ और शरत्चन्द्र के बाद कहानियो के वे ही कदाचित् सर्वश्रेष्ठ लेखक है। अशीम राय एक तरुण उदीयमान रोमाटिक लेखक है।

माणिक बन्दोपाध्याय वामपक्षियो के प्रसिद्ध नेता है। अपने उपन्यास 'पुतुलनाचेर इतिकथा' (कठपुतली के नाच की कहानी) से उन्हे बडी कीर्ति मिली। इसमें उन्होने अपने-आपको एक ऐसे पक्के कलाकार की भाँति दिखलाया है जिसका जीवन के प्रति भग्नाश दृष्टिकोण है। उनके द्वारा चित्रित स्त्री-पुरुष प्रेम करते है और उसमें सन्तोष भी पाते है। अपने वामपक्षी धारा के लेखन मे उन्होने नई ऊँचाइयाँ नही छुई। केवल उनकी कडुवाहट अधिक स्पष्ट होकर सामने आई है। हमारे वाम-पक्षी लेखक कथा-साहित्य मे कुछ बहुत अधिक उपलब्ध न कर सके। माणिक बन्दोपाध्याय के बाद अमरेद्र घोष का नाम लिया जा सकता है। उनकी 'चार काशेम' हमारे समय की स्मरमीय कृति है, जैसे कि यूरोप मे 'ग्रोथ आफ् दि साइल'। परतु घोष वामपक्षी से अधिक मानवतावादी है, और इस तरह कुछ अन्य तरुण वामपक्षी भी दिखाई देते है,—जिनमे समरेश बसु और गुलाम कुद्दूस उल्लेखनीय है—जिनका आज

के जीवन के कुछ पक्षो से घनिष्ठ परिचय है। गोपाल हालदार की उपन्यासत्रयी—'एकदा', 'अन्य दिन', और 'एक दिन'—विचारणीय कथाएँ हैं। वे वामपक्षी रचनाओ मे उल्लेखयोग्य हैं।

कविता मे भी, वामपक्षियो को, सिवाय सुकान्त भट्टाचार्य के, जिनकी अकाल मृत्यु हो गई, अब तक कोई बडी सफलता नही मिली। वे भी वामपक्षी से अधिक मानवतावादी थे। हमारे कुछ तरुण वामपक्षी कवि, जिनमे सुभाष मुखोपाध्याय, मणीन्द्रराय और पूर्णेन्दु पत्री अलग से उल्लेख्य हैं, अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठावान हैं और शायद आगे चलकर वे और भी सफल हो।

हमारी जिन स्त्रियो ने आधुनिक साहित्य को बडी सार्थक देन दी है उनमे स्वर्ण कुमारी देवी, गिरीन्द्र मोहिनी दासी, मानकुमारी देवी, कामिनी राय, प्रियम्वदा देवी, बेगम रुकैया, निरुपमा देवी, अनुरूपा देवी, सीता देवी, शान्ता देवी, लीला मजूमदार, मैत्रेयी देवी, प्रतिभा बसु, बेगम सूफिया कमाल, प्रभावती देवी, बेगम शम्स-उन्-नाहर, महमूदा खातून सिद्दीकी, राधारानी देवी, आशापूर्णा देवी और बाणी राय उल्लेखनीय हैं।

हमारे बाल-साहित्य का विशेष रूप से उल्लेख होना चाहिए। प्राचीन रामायण, महाभारत और हमारे लोक-साहित्य मे बच्चो के लिए बडी आकर्षक बाते थी। परन्तु हमारे आधुनिक लेखको ने उसे और भी विशिष्ट बनाया। रवीन्द्रनाथ के शिशु-गीत विश्व मे विख्यात हैं। उनके बाद अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम लिया जा सकता है, जो कि भारत के कलात्मक पुनर्जीवन के नेता थे। इनके अतिरिक्त दक्षिणारजन मित्र मजूमदार, उपेन्द्रकिशोर रायचौधुरी, योगीन्द्रनाथ बसु, सुकुमार राय, सुखलता राव और सुनिर्मल बसु उल्लेख्य हैं।

हमने यह देखा कि आधुनिक बगाली साहित्य कविता और उपन्यास मे समृद्ध है, परन्तु नाटक मे स्थिति ऐसी नहीं है। नाटक का आरम्भ दीनबधु मित्र के 'नील दर्पण' से १८६० के बाद बडी अच्छी तरह से

हुआ, परतु अतिनाटकीयता ने उसके विकास के पथ को रोक दिया और अभी तक वह साफ नही हुआ है। गिरीशचद्र घोष और द्विजेन्द्रलाल राय, जो हमारे दो प्रसिद्ध नाटककार है, मुख्यत अतिनाटकीयता के ही लेखक है। रवीद्रनाथ के नाटक तो अपने ढग के अलग है। उनमे कई साहित्यिक रत्न है, परन्तु थोडे-मे अपवादो को छोडकर, जनता के नाटकों मे वे स्थान नही ले सकते।

निबध मे बगाल उच्च स्तर पर पहुँच चुका है। रवीद्रनाथ और प्रमथ चौधरी इस क्षेत्र मे हमारे सबसे बडे नाम है। अन्य प्रसिद्ध नामों मे भूदेव मुखोपाध्याय, बिपिनचद्र पाल, रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी, शशाक-मोहन सेन, मोहितलाल मजूमदार, अतुलचद्र गुप्त, गोपाल हालदार, धूर्जटीप्रसाद मुखोपाध्याय, अन्नदाशकर राय, हुमायूँ कबीर, श्रीकुमार बनर्जी, प्रमथनाथ बिशी, अबु सैयद अयूब, बुद्धदेव बसु, काजी मोहतर हुसैन, सजय भट्टाचार्य, सैयद मोतहर हुसैन चौधरी और शिवनरायन रे का उल्लेख किया जा सकता है। कुछ सचमुच अच्छी जीवनियाँ भी लिखी गई है, परन्तु वे बहुत थोडी है। वर्णनात्मक-सस्मरणात्मक ललित-साहित्य मे हमारे दो आधुनिक लेखक बहुत लोकप्रिय है—यायावर और सैयद मुज्तबा अली। परशुराम, बहुत दूर-दूर तक प्रसिद्ध हास्य-लेखक है, उनकी कोटि विशिष्ट है।

डॉ० दिनेशचद्र सेन, डॉ० सुकुमार सेन और सजनीकात दास ने साहित्य के इतिहासकार के नाते नाम अर्जित किया है, और डॉ० सुनीति-कुमार चटर्जी और डॉ० मुहम्मद शहीदुल्लाह हमारे भाषा-वैज्ञानिक है।

प्रो० क्षितिजमोहन सेन और प्रो० रजाउल करीम हमारे हिंदू-मुस्लिम-एकता के बडे सास्कृतिक कार्यकर्ता है।

आधुनिक बगाली मे विशिष्ट धार्मिक साहित्य भी है। इस क्षेत्र में सबसे बडे नाम सर्वश्री महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, ब्रह्मानद केशवचद्र सेन, श्री रामकृष्ण, मौलाना गिरीशचद्र सेन, अश्विनीकुमार दत्त और रवीन्द्र-नाथ आदि के है।

अनुवाद में हम सचमुच गरीब है—हमारी भाषा मे दुनिया के श्रेष्ठ ग्रथो में से बहुत थोडे मिलते है। परन्तु इधर हमारे कुछ तरुण लेखको ने इस काम को बडी गम्भीरता से लिया है। रवीन्द्रनाथ ने जीवन के उत्तरार्ध मे हमारे गद्य को और भी उत्कर्ष पर पहुँचाया था और उनकी परम्परा अब हमारे गद्य-लेखको को बडी उपयोगी सिद्ध हो रही है। विशुद्ध साहित्य के साथ-साथ बँगला मे दर्शन, इतिहास आदि विषयो पर भी उत्तम पुस्तके है, पर वे बहुत थोडी है।

समाज-विज्ञान और अन्य विज्ञानो मे इधर हमने कुछ अच्छी रचनाएँ शुरू की है। सार्वजनिक ग्रथालय और वाचनालय वढते जा रहे है और गम्भीर साहित्य के सृजन मे सहायता मिल रही है।

हमारे प्राचीन 'विश्व-कोश' के रूप में एक उत्तम विश्व-कोश हमारी भाषा मे है, परन्तु नये विश्व-कोश अवश्य बनने चाहिएँ। कुछ अच्छे भाषा-कोश भी हमारी भाषा मे है।

पूर्व पाकिस्तान के बगालियो मे सबसे उल्लेखनीय है—तरुण लेखको का विकास, जो सच्चे देश-भक्त और बुद्धिवादी है। वे मूलत. वहाबी चिंता-धारा से बहुत भिन्न है। शान्ति और उत्तम शासन के साथ-साथ बगाली उनकी सुगठित सुन्दर भाषा और साहित्य-परम्पराओ को और भी आगे बढाकर ले जायँगे। निकट भूतकाल बहुत प्रेरणाप्रद था और साहित्य के क्षेत्र मे भविष्य मे भी अधिक उज्ज्वल सभावनाएँ है।

बँगला पर चुने हुए सदर्भ-ग्रथ

द ओरीजिन ऐड डेवेलपमेट आफ द बगाली लैग्वेज—डा० सुनीति कुमार चटर्जी

हिस्ट्री आफ बगाली लैग्वेज—डा० दिनेशचद्र सेन

वैष्णव लिरिक्स—अग्रेजी मे अनुवादित : सुरेन्द्रनाथ कुमार, नन्दलाल दत्त और जे०ए० चैपमैन

हिस्ट्री आफ द बगाली लिटेचर इन द नाइन्टीन्थ सेचुरी (१८००-१८२५)—डा० एस० के० दे

ईस्टर्न बंगाली बैलड्स—कलकत्ता यूनिवर्सिटी
बंगाली लिट्रेचर—ए०एस० रे और लीला रे
हिस्ट्री आफ बंगाली ड्रामा—डा० पी०सी० गुहा ठाकूरता
हिस्ट्री आफ बंगाली लिट्रेचर—डा० सुकुमार सेन
ऐन एकर आफ ग्रीन ग्रास—बुद्धदेव बसु
लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया—जी०ए० ग्रियर्सन, खंड ५, भाग १, पृष्ठ १–३९१

मराठी

मंगेश विट्ठल राजाध्यक्ष

प्रास्ताविक

मराठी भाषा एक हजार वर्ष से कुछ अधिक पुरानी है। मराठी साहित्य मराठी भाषा से वय मे करीब दो सौ वर्ष छोटा है। इस अर्से मे एक नवजात भाषा साहित्य के माध्यम के रूप मे पक्की बनती गई। यह प्रक्रिया सामाजिक प्रेरणा के कारण अधिक गतिमान हुई। एक आध्यात्मिक जनतत्र मानो वाणी चाह रहा था। उसे अब रूढिग्रस्त पुरोहित की कोई आवश्यकता नही थी, अत उसे ,सस्कृत की भी उतनी आवश्यकता नही थी। उसे मनुष्य और ईश्वर के बीच मे कोई कृत्रिम बाधा स्वीकार्य नही थी। सत-कवियो की एक उदात्त मालिका—ज्ञानेश्वर (१२७१-१२९६), नामदेव (१२७०-१३५०), एकनाथ, (१५३३-१५९९), तुकाराम (१६०८-१६४९) और रामदास (१६०८-१६८१) की परम्परा ने जनता से उसकी अपनी भाषा मे बोलना शुरू किया। उन्होने जनता मे राष्ट्रीयता की भावना जागृत की। उन्होने भाषा को ओजस्वी बनाया। ज्ञानेश्वर की शैली समृद्ध थी, सहज-निर्मित थी, उसमे विद्वत्ता जैसे छनकर रच गई थी। तुकाराम की शैली धरती के प्रसादपूर्ण मुहावरे से भारी थी। वह मृदु और कठोर, दोनों रूप ग्रहण कर सकती थी। इनसे भी पहले बारहवी और तेरहवी शती

मे वैदिक कर्मकाड से विद्रोह करने वाले मुकुदराज और महानुभावो ने अपने-अपने ढग से भाषा का साधिकार आत्म-विश्वासपूर्ण उपयोग किया।

परन्तु अधिक असाम्प्रदायिक प्रेरणा बहुत समय तक दबाई न जा सकी। पुराणो को पुन वर्णित करने मे उसने अभिव्यजना पाई उदाहरणार्थ, एकनाथ ने उपदेश के लिए रामायण और भागवत का आधार लिया। उनके प्रपौत्र मुक्तेश्वर (१५७४-१६४५) ने प्राचीन महाकाव्यो का उपयोग अधिक साहित्यिक उद्देश्य से किया। उन्होने स्पष्ट शब्द-चित्र निर्मित किये, सस्कृत से सीखी हुई रीतियो का उन्होने बहुत सावधानी से उपयोग किया। परन्तु अनिवार्य रूप से सस्कृत 'रीति' मराठी-कविता की जकडबदी मे आकर और भी मजबूत बनती गई। इसके बाद की दो शताब्दियो मे एक से बढकर एक पडित कवि काव्य-रचना करने लगे और काव्य-कला को पाडित्य-प्रदर्शन का क्षेत्र समझने लगे। १७ वी शती के वामन और रघुनाथ, और १८ वी के मोरो पत, इन पडित कवियो मे से प्रमुख थे। परन्तु उनकी कविता थोडे-से ही लोगो की समझ मे आ सकती थी, जन-साधारण ने अपनी कविता की प्यास वीररसपूर्ण 'पोवाडो' और शृङ्गारिक 'लावणियो' से बुझाई। फिर भी स -कवियो की परम्परा बराबर चलती रही और वह आज तक चली आ ी है। वह आतो को आशा और शान्ति देती रही।

गद्य बहुत बाद मे विकसित हुआ। महानुभावो ने उसका उपयोग किया था, परन्तु उन्होने उसे सकेत-लिपि और गुह्य-भाषा मे बद कर रखा था। मराठो के दरबारो मे, वृत्तात-लेखको, डायरी और पत्र-लेखको ने कुछ प्रासगिक गद्य-रचना की। परन्तु १९ वी शताब्दी मे, मुद्रणालय के आने के बाद और सरकार तथा शिक्षा-क्षेत्र में एक नई व्यवस्था स्थापित होने पर, गद्य को एक नया महत्त्व और उपयोगिता मिली। और परिमाण मे वह बहुत जल्दी पद्य से आगे बढ गया। कई पत्र-पत्रिकाएँ शुरू हुईं। उनका उद्देश्य मुख्यत नवप्राप्त पाश्चात्य विद्या का

प्रसार था। पुरानी मान्यताओं पर नये विचारों के प्रभाव के कारण जो मनोरंजक वाद-विवाद चल पड़े, ये पत्र उनके उत्तम माध्यम बने। गो० ह० देशमुख (लोकहितवादी) और जोतिराव फुले-जैसे व्यक्तियों ने हमारे सामाजिक पतन के बारे में बड़ी खरी-खरी सुनाई, प्रामाणिक, सावेग, वक्तृतापूर्ण शैली में। मराठी का पहला उपन्यास बाबा पद्मन-जीका 'यमुना-पर्यटन' १८५७ में लिखा गया। वह समाज-सुधार-प्रधान उपन्यास था। बाद में सस्ते रोमासों की इस क्षेत्र में बाढ़ आ गई। इस काल में कविता बहुत झीनी हो गई। अधिकांश काव्य-रचना साधारण कोटि का छन्द-व्यायाम-मात्र थी। परन्तु वहाँ भी शान्त सतह के भीतर असन्तोष जाग पड़ा था। पुरानी धरती में नूतन ने जड़ें जमा ली थीं।

१८८५-१९२० : कविता

१८८५ में 'केशवसुत' (१८६६-१९०५) की पहली कविता के और हरिनारायण आपटे (१८६४-१९१९) के पहले उपन्यास के प्रकाशन के साथ आधुनिक मराठी साहित्य का प्रारम्भ हुआ। ये दोनों रचनाएँ काव्य और उपन्यास के क्षेत्र में आधुनिकता की अग्रदूत थीं। पुनर्जागरण की पार्श्वभूमि विविध तत्त्वों से मिली हुई थी। साहित्य में इसी पुनर्जागरण की व्यंजना आधुनिकता के रूप में हुई। इसमें कई परस्पर-विरोधी तत्त्व मिले हुए थे. पश्चिमी विचारों का प्रभाव, विशेषत. उदारतावाद (लिबरलिज्म) का प्रभाव ; अंग्रेजी साहित्य की दी हुई प्रेरणा—विशेषत रोमांटिकों की प्रेरणा, यूरोपीय राष्ट्रवाद का प्रभाव, अतीत के गौरव-गान की प्रवृत्ति—विशेषत महाराष्ट्र के भूतकाल की प्रतिष्ठा-प्रशस्ति, अंग्रेजों और सामान्यत सभी पश्चिम वालों की चिढ़ाने वाली अहंता की युयुत्सु प्रतिक्रिया। बंगाल में ऐसे ही किन्तु सरलतर पुनर्जागरण का अंग था ब्रह्म-समाज। शायद उसका भी प्रभाव महाराष्ट्र में पड़ा।

केशवसुत का विद्रोह केवल साहित्यिक नही था। वह केवल रूप-शिल्प और शैली मे प्रयोग-मात्र नही था, और केवल काव्य मे आत्म-निष्ठता का प्रतिष्ठापन भी नही था। केशवसुत के लिए कविता का आन्दोलनात्मक प्रयोजन था। उन्होने हमारे जीवन की कई बुराइयो की निदा करने के लिए कविता का प्रभावशाली उपयोग किया। उनके कुछ गीतो मे कोई उच्चतर अशान्ति जैसे उन्हे प्रेरित करती रही है। इन गीतो मे आत्मा के रहस्यमय आनन्द का उल्लेख है। यह 'कवियो का कवि' अपनी पीढी और बाद की पीढी के भी प्रमुख कवियो मे से अधिकतर कवियो को स्फूर्ति देता रहा। केशवसुत ने किसी 'धारा' के बधन मे डालकर इन कवियो मे से किसीके भी व्यक्तित्व को कुठित नही किया। रेवरड नारायण वामन टिळक (१८६५-१९१९) ने अपने घर, परिवार और प्रकृति के कोमल सौदर्य के विषय मे भावनापूर्ण ढग से लिखा, और उसीमे बच्चो-जैसे विश्वास से दिव्यता का साक्षात्कार किया। उनके विचार से वही दिव्यता आत्मिक शाति दे सकती है। विनायक (१८७२-१९०९) की पीडा व्यक्तित्व के विभाजन के कारण निर्मित हुई। रूढ नैतिकता और ऐंद्रिक आसक्ति के बीच मे जो विरोध पैदा हुआ उसके कारण एक प्रकार की अपराध-ग्रथि इस कवि मे पैदा हुई और वह पूर्वकाल की श्रेष्ठता के अतिरजित नाटकीय चित्र प्रस्तुत करके उस ग्रथि को अपनी कविता मे ढाँकने की कोशिश करता रहा। उसी प्रकार का विरोध राम गणेश गडकरी (१८८५-१९१९) उर्फ कवि 'गोविदाग्रज' मे मिलता है। उनमे विरोध का समाधान नही है। उनकी कविता और नाटको मे इस विरोध ने और भी सार्थकता पैदा की। क्योकि उस समय पढे-लिखे वर्ग के एक तबके मे दो परस्पर-विरोधी और कभी भी समन्वित न हो सकने वाली प्रवृत्तियो का अनजान मे सहअस्तित्व कराने की जो वृत्ति चल रही थी, वही उन रचनाओ मे दिखाई देती है। एक थी प्रगतिशील प्रवृत्ति, जिसे कि आगरकर या केशवसुत ने चलाया, और दूसरी पुनरुज्जीवनवादी प्रवृत्ति,

जिसे टिळक या चिपळूणकर ने बढावा दिया। गडकरी के भरपूर हास्य से भरे व्यग-लेखो ने सामाजिक रूढिवादिता को खूब दयनीय बनाया है। परन्तु रगमच पर उन्होंने उसी रूढ नैतिकता को उपयोगी पाया उस रूढ नैतिकता को स्वीकार्य बनाने के लिए—स्वय के लिए भी स्वीकार्य बनाने के लिए—अतिरजित करके दिखाना आवश्यक था। अत अतिनाटकीयता, जो कि उनके स्पृहणीय भाषा-प्रभुत्व के कारण और भी बढती गई, उनके नाटको मे दोष के रूप मे पाई जाती है। कवि और नाटककार के नाते गडकरी की विलक्षण लोकप्रियता, उसी अतिनाटकीयता, हास्य और मुख्यत भाषा-शैली के कारण है जो पाठको पर अपना प्रभाव छोडे बिना नही रहती। इस प्रकार, पाठक को जीवन की साधारण नीरसता से पलायन का एक मार्ग मिला। खडित और निराश जीवन की पीडा से पलायन का एक मार्ग लेखको को भी मिला। बालकवि (१८९०-१९१८) की शुद्ध गीत-रचना पाठक के लिए आनन्द का विषय है, किन्तु वे भी अपनी छोटी-सी उम्र मे किसी निराशा की छाया मे ग्रस्त हो गए थे। सपनो की और बाल-भाव भरी समर्पण की वह सुन्दर दुनिया, जिसमे से उनके सुन्दर गीत निर्मित हुए, धीरे-धीरे टूटने लगी थी कि तभी क्रूर मृत्यु ने इस युवक कवि को भी हमसे छीन लिया। 'बी'-नारायण मुरलीधर गुप्ते (१८७२-१९४७) की भी केशव-सुत के साथ घनिष्ठता थी, विशेषत. सामाजिक और साहित्यिक रूढियो के अत्याचारो के विरुद्ध उत्कट अभियोग मे। परन्तु 'बी' की थोड़ी-सी कविताए साठ वर्ष की आयु तक अज्ञातप्राय रही। उनसे उलटे भास्कर रामचद्र ताबे (१८७४-१९४१) ने बड़ी लोकप्रियता प्राप्त की, और प्राय सभी कवि उनका अनुकरण करने लगे, विशेषत. १९२० के बाद यह सफलता उनकी गीतात्मकता और उनकी शैली की इन्द्रियगोचरता के कारण थी। उसमे परपरित कल्पना-चित्रो का उपयोग तो था ही साथ ही सहज रस-निष्पत्ति की सभवना भी थी। ताबे मध्यभारत के थे, इस कारण उनकी कविता को एक सामती-रोमाटिक वातावरण

मिला और अलसता भी प्राप्त हुई, जिससे कि उनकी कविता मे एक और ही आनन्द पैदा हुआ। केशवसुत और उनकी धारा के कवियो के बाद, यह एक प्रकार से पुन पलायनवाद की ओर मुडना था। इसी युग के दूसरे बडे कवि थे चन्द्रशेखर। उनकी चतुर शब्द-सयोजना सस्कृत-कवियो और पडित कवियो के उक्ति-चमत्कार के सौदर्य से सतुष्ट थी। इस कारण यह प्रत्यावर्तन और भी दृढ हुआ। आज तक ये दोनो काव्य-पद्धतियाँ अपने महत्ता-प्रस्थापन के लिए यत्नशील रही हैं। परन्तु इन्हे एक व्यापक सघर्ष का, साहित्यिक समतल पर, प्रक्षेपण समझना चाहिए।

नाटक

मराठी-रगभूमि का जन्म १८४३ मे हुआ। अलिखित नाटको और पेटेण्ट पात्रो की सृष्टि वाले बाल्य-काल से वह शीघ्र ही आगे बढी। बी० पी० किर्लोस्कर (१८४३-१८८५)-जैसे दिग्दर्शक-अभिनेता-नाटककार के रूप मे उसने प्रथम सफल व्यजना पाई। किर्लोस्कर का 'सौभद्र' (१८८२) इतने सारे वर्षों मे बराबर लोकप्रिय नाटक बना रहा है, परन्तु मुख्यत सगीत के कारण। गो० ब० देवल (१८५४-१९१६) किर्लोस्कर को अपना गुरु मानते थे, परन्तु उन्होने अपना अलग रास्ता बनाया। देवल के सात नाटको मे छह सस्कृत और अग्रेजी के शुद्ध अनुवाद थे। सातवाँ नाटक 'शारदा' आज भी दर्शको को मोहित करता है, क्योकि उसके चरित्र-चित्रण और सवादो मे यथार्थवादिता है। यद्यपि उसकी विषय-वस्तु—एक वृद्ध का बाल-वधू को खरीदना—अब बासी हो चुकी। यदि देवल के नाटको मे और कृष्णाजी प्रभाकर खाडिल-कर (१८७२-१९४८) के आरम्भिक नाटको मे पाये जाने वाले नाट्य ने सुदृढ परम्परा कायम की होती तो मराठी रगमच इस शताब्दी के आरम्भिक दो दशको मे जिस प्रकार से व्यावसायिक रूप से सफल हुआ, उससे अधिक यशस्वी होता। खाडिलकर का 'कीचक-वध' (१९१०)

अपने राजनैतिक रूपकत्व में प्रभावशाली नाट्य-गुणों से युक्त था। टिळक और लाट कर्जन उसमें भीम और कीचक के रूप में दिखाये गए थे। यह नाटक ज़ब्त हुआ। उनके ऐतिहासिक नाटकों में भी वैसी ही शक्ति थी। कुछ तो शेक्सपीयर से यह शक्ति ली गई थी। परन्तु शेक्सपीयर के नाटकों के दोष, जैसे उलझे हुए कथानक और असंबद्ध या थेगर की तरह चिपकाये गए विदूषकी हास्य आदि, जल्दी आ गए; और इन्होंने अच्छे गुणों का जैसे गला घोट दिया। खाडिलकर नाटककार के नाते गिरते गए, क्योंकि उन्होंने अपने नाटकों में पुराणों से चटपटे विषय लेकर उनमें आधुनिक, विशेषतः राजनैतिक सन्देश या निष्कर्ष जोड़ने का यत्न किया। रंगमंच पर ये नाटक संगीत के कारण किसी तरह से जिन्दा रहे। श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर (१८७१-१९३४) ने व्यंग-प्रधान रोमांटिक कथानक वाले सुखान्त नाटक लिखने का प्रयत्न किया, पर इससे न तो व्यंग ही सधा और न रोमांस ही। उनका समाज-सुधार के लिए उत्साह उनके हास्यपूर्ण निबन्धों में अधिक दिखाई देता है, नाटकों में उतना नहीं। क्योंकि नाटकों ने परिहास में नाट्य-गुणों को कुण्ठित कर दिया। गडकरी, जो उन्हें अपना गुरु मानते थे, अधिक सफल हुए। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, उनकी सफलता का रहस्य रोमांस, परिहास, चरित्र-चित्रण और ओजस्वी गद्य-शैली के उत्तम मिश्रण में है। गडकरी के नाटकों की असंगतियाँ और अतिरंजन हास्यास्पद जान पड़ते हैं; परन्तु उनकी चमक और सम्पूर्ण प्रभाव हँसने वालों को चौंका देते हैं। नरसिंह चिन्तामण केळकर (१८७२-१९४७) की प्रतिभा तुलना में कम थी। उन्होंने पाँच नाटक लिखे; जिनमें से तीन ऐतिहासिक हैं और दो पौराणिक। आधुनिक मराठी रंगमंच के प्रथम उत्थान के ये कुछ प्रसिद्ध नाटककार हैं। इन और कुछ अन्य नाटककारों ने—जिनमें शेक्सपीयर के कुछ अच्छे अनुवादक भी हैं—रंगमंच को बहुत शक्ति दी; परन्तु यथार्थवाद और उच्चकोटि का यथार्थवाद इनमें से एक भी नाटककार में नहीं मिलता। रंगमंच ज्यों-ज्यों अधिकाधिक

'सगीतमय' बनता गया, त्यो-त्यो यथार्थवाद अपने बचाव के लिए दबता गया। और यो उसकी पूर्ण समाप्ति होने से रह गई। साधारण दर्शक को यह अभाव नही खटका, उसका मनोरजन तो होता ही था, पुराण, इतिहास के कथानक से कुछ व्यापक उपदेश उसे मिल ही जाता था। वासुदेव शास्त्री खरे, जो स्वय एक अच्छे इतिहासकार थे, अपने ऐतिहासिक नाटको से रोमास को दूर नही रख सके। यह रोमाटिक बनने की प्रवृत्ति किसी अन्य कारण से नही बढी, किन्तु राजनैतिक गौरव-गाथा की भावना इसके पीछे थी। इस प्रकार महाराष्ट्र और भारत के ब्रिटिश इतिहासकारो ने जो लाछन लगाया था, उसका उत्तर रगमच से दिया जाता था। उपन्यास ने तो यह उत्तर और भी जोरो से दिया।

उपन्यास

हरिनारायण आपटे (१८६४-१९१९) के रूप मे उपन्यास बहुत शीघ्र परिपक्व हो गया। उन्होने 'मधली स्थिति' (१८८५) से प्रारम्भ करके मध्य-वर्ग के जीवन मे पैठने वाले कुछ उपन्यास लिखे—जिनमे सबमे उत्तम था 'पण लक्षात कोण घेतो' ? (१८९०-१८९३)। इस उपन्यास मे एक बाल-विधवा की मार्मिक कहानी है। इसके बाद आपटे ने ऐतिहासिक रोमास अधिक लिखे। इस प्रकार लेखको और पाठको मे भी रुचि-परिवर्तन दिखाई देता है। आपटे ने अपने विद्यार्थी-काल मे आगरकर से समाज-सुधार का उत्साह ग्रहण किया था। बाद मे वे रानडे की भाँति सुधार और परम्परा के बीच समन्वय टटोलने लगे। मराठो और राजपूतो के इतिहास से कहानियाँ लेकर उनमे रोमास भरने से इस असम्भव समन्वय को और भी धुँधला करने मे सहायता मिली। ये रोमास उपदेश के लिए प्रयोजित थे, उपदेश राजनैतिक और नैतिक दोनो ही प्रकार के थे। इस युग के अधिकतर लेखको के बारे मे यह सच है। बुद्धिवादी तथा राष्ट्रीयतावादी दोनो आत्म-तृप्ति और रूपको के लिए रोमास की ओर झुकते थे। साधारण पाठक भी

उन्हीके साथ था। उसे सामाजिक समस्याओ के प्रति धैर्य नही था एक तो इस कारण कि उसका विश्वास था कि ऐसी कोई समस्याएँ ही नही है, या इसलिए कि वह इन समस्याओ को टाल देना चाहता था। जब बाद मे वह इतिहास से अघा गया, तब केवल सामाजिक समस्याओ की ओर, रुचि बदलने के लिए, वह देखने को तैयार था। तब ऐसे लेखको ने उस पाठक से सतोष और प्रशंसा प्राप्त करने के लिए इन सामाजिक समस्याओ को नए रोमास मे लपेटकर पेश किया! कलाकार के नाते आपटे असतुलित है। उनके उपन्यासो के कथानक बहुत धीमे चलते है और उनमे पुनरावृत्ति बहुत है। शायद इसका एक कारण यह हुआ कि ये उपन्यास अधिकतर क्रमश प्रकाशित होते थे। परन्तु उपन्यास-रचना के इन दोषो को, उनके विचारो की गहराई, पकड़ और चरित्रो के सुदृढ ज्ञान ने पूरा कर दिया है। आपटे की ख्याति के कारण कई लेखक इस विधा की ओर आकर्षित हुए, फिर भी बहुत समय तक उनकी समता का कोई उपन्यासकार नही हुआ। हरिनारायण आपटे १९०९ से उपन्यास लिखते रहे है, उन्होने कुछ समय तक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे, बाद मे वे चीख-चीखकर पारिवारिक सद्‌गुणो को प्रचारित करने लगे। 'नाथमाधव'—डी० एम० पितळे (१८८२-१९२८), दूसरी ओर, कुछ समकालीन जीवन पर साधारण कोटि की रचनाएँ लिखकर ऐतिहासिक उपन्यासो की ओर झुके। सशक्त वर्णन-शैली मे प्रचीन काल को इतनी स्पष्टता से चित्रित किया गया था कि साधारण पाठक, इन कथानको मे जो आधुनिक रग दिया जाता था, उसकी असगति या कि उत्तम साहित्यिक गुणो के अभाव की ओर ध्यान नही दे पाए। बेचारा इतिहास चिं० वि० वैद्य, शि० म० परांजपे और चिं० गो० भानु जैसे विद्वान् उपन्यासकारो के हाथ मे सुरक्षित था। परन्तु युग-धर्म कुछ ऐसा था कि उन्होने भी अपने उपन्यासो मे रोमास और उपदेशात्मकता का पुट देकर ऐतिहासिकता को कुछ हल्का बना दिया। इस प्रकार अतीत का भार उनपर बढता जा रहा था और

रोमास यथार्थवाद को उलझन मे डाल रहा था, बँगला से बकिमचन्द्र चटर्जी, शरत्चन्द्र चटर्जी, और प्रभातकुमार मुखर्जी के उपन्यास— गुर्जर, मित्र और भिसे ने अनूदित किये, जो बैसाखी की तरह काम आए। जो गुण उपन्यासो मे कम होते जा रहे थे, वे कुछ मात्रा मे बढे। उस शुद्धिवादी युग मे उपन्यास, अधिकाश ललित साहित्य की भाँति, एक हल्की चीज माना जाता था, उससे भी बुरी बात यह थी कि उपन्यास युवको को बिगाडने वाली वस्तु माना जाता था। फलतः उपन्यास को अपनी प्रतिष्ठा बढाने के लिए पाठको को सुधारना आवश्यक था। यह सुधार वे इस तरह कल्पित कर सकते थे कि प्राचीन काल को एक वस्तुपाठ की भाँति उपस्थित करते । यह पाठ अनिवार्यत रूढिवादी था। वामन मल्हार जोशी ने 'रागिणी' (१९१५) मे उपन्यास के इस उपदेशात्मक स्तर को ऊँचा उठाया और एक नया क्षेत्र खोला, जिसमे कि इसी उपन्यासकार ने आगे अधिक आत्म-विश्वास और परिपक्वता के साथ खोज की। यह कार्य उनके उपन्यासो मे कुछ कृत्रिमता के साथ ऐसे चरित्रो द्वारा कराया गया जो पढे-लिखे और वाद-विवाद-प्रिय है और जो आचार तथा नीति-शास्त्र की समस्याओ पर बहस करते रहते है।

वादविवादात्मक गद्य

इस गम्भीर युग मे साहित्य का सर्वोत्तम उद्देश्य वादविवादात्मक गद्य माना गया । बहुत ओजस्वी गद्य इस काल के आरम्भ मे इस विषय को लेकर लिखा गया कि सुधार कैसे हो। गोपाल गणेश आगरकर (१८५६-१८९५) और लोकमान्य बाळ गगाधर टिळक (१८५६-१९२०) ने मिलकर 'केसरी' नामक साप्ताहिक स्थापित किया। टिळक के हाथो क्रान्तिकारी राष्ट्रीयता का यह पत्र प्रमुख अस्त्र और प्रतीक बना, परन्तु बहुत जल्दी टिळक और आगरकर एक-दूसरे से अलग हो गए। आगरगर सामाजिक सुधारों को प्राथमिकता देते थे, टिळक राजनैतिक

सुधारों को अधिक आवश्यक समझते थे। आगरकर के साप्ताहिक 'सुधारक' ने निर्भयता से समाज-सुधार का पक्ष लिया। उनकी राह में बहुत बाधाएँ आईं, क्योंकि वे एक ऐसे विषय के प्रथम प्रचारक थे जो लोकप्रिय नहीं था, परन्तु इन बाधाओं की परवाह उन्होंने नहीं की। आगरकर की वीरता, जो उनके उद्देश्य की ही भाँति विनयपूर्ण थी, समाज-सुधार के कार्य में अधिक बल और प्रतिष्ठा देने में उपयोगी सिद्ध हुई। उनकी शैली उनके उत्तम गुणों का दर्पण है। टिळक अधिक उत्साही थे, वे इस वाद-विवाद में रूढिवादी खेमे में ऐसी स्थिति में पहुँचे कि उनके समय से अब तक उनके विचार सामाजिक पुनर्जागरणवादी रहस्यमयता के पर्यायवाची बन गए। इस वाद-विवाद की सार्थकता क्या थी और इसके प्रमुख योद्धाओं की सामाजिक महत्ता क्या थी, यह सब छोड दें, तो भी एक बात जरूर हुई कि इस बड़े प्रश्न पर दिन-प्रतिदिन पाठकों की बढ़ती हुई संख्या प्रबुद्ध और विवेकशील बनती गई। यह स्वाभाविक ही था कि बहुसंख्यक पाठक प्रतिक्रियावादियों के साथ थे। परन्तु यह भी उतना ही अनिवार्य था कि नए विचार सामाजिक मन में घुसते जा रहे थे चाहे बहुत धीमे-धीमे और सूक्ष्मता से ही क्यों न हो। समाज प्रामाणिक आत्म-परीक्षण की ओर उत्प्रेरित हो रहा था।

टिळक की राजनैतिक महत्ता ने गद्य-शैलीकार के नाते उनकी प्रसिद्धि को ढाँक लिया है। उनकी विद्वत्ता ने उनके गद्य को समृद्ध बनाया, किन्तु वह गद्य-शैली बोझिल नहीं हुई। टिळक की गद्य-शैली गौरवपूर्ण थी, शब्द-बहुल नहीं थी। वह आवश्यकता होने पर कठोर और व्यंगपूर्ण भी हो सकते थे। विष्णुशास्त्री चिपळूणकर (१८५०-१८८२) उनके आरम्भिक सहकर्मियों में से एक थे। सामाजिक सुधार के विरुद्ध संघर्ष, विरोध, खंडनात्मक आलोचना के लिए उन्होंने जो शैली अपनाई, उसके कारण उन्हें बड़ी ख्याति मिली। यह एक प्रकार से आत्मचेतन शैली थी, उसमें आलंकारिकता और उलझाव अधिक था; वह शैली बहुत तीखी थी। इसीके कारण वे राष्ट्रीय भावना जगाने

मे सफल हुए। चिपळूणकर के निबन्ध बहुत दिन तक पुनरुज्जीवनवादियो के लिए पवित्रप्राय बने रहे। शिवराम महादेव पराजपे (१८६४-१९२९) की वक्रतापूर्ण शैली एक गाथा के रूप मे याद की जाती है, वे भी पुनरुज्जीवनवादी थे। उन्होने अपनी सारी शक्ति विदेशी सत्ता के विरोध मे खर्च की। विदेशी सत्ता भी उनके व्यग से इतनी मर्माहत हुई कि उनके निबन्ध जब्त किये गए। लोकमान्य टिळक के निकटतम न० चि० केळकर थे, जो टिळक के बाद 'केसरी' के सम्पादक बने। केळकर बहुश्रुत, बहुमुखी प्रतिभा वाले पत्रकार थे, उनमे सारे गुणो का सुन्दर सम्मिश्रण था। गद्य की ऐसी कोई विधा नही थी, जिसमे उन्होने न लिखा हो, उनका लेखन प्रसादपूर्ण और सभी शैलियो मे मनोहर था। उनका बहुत-सा कृतित्व अगले काल-खड मे आता है, और कई रूपो में उसमे प्रथम दशक के गुण बने रहते है। कुछ-कुछ यही बात अच्युत बळवत कोल्हटकर (१८७९ १९३१) के बारे मे भी कही जा सकती है, जो केळकर से बहुत भिन्न थे और उनके कड़ुवे प्रतिद्वदी भी थे। उन्हे नीतिवादी पाठको का रोष सहना पडा, परन्तु निम्न सामाजिक स्तर से जो पाठको की बडी सख्या आगे बढ रही थी— उसकी ओर से उन्हे प्रशसा मिली, क्योकि उनकी पत्रकारिता बडी चटपटी थी और उस समय की प्रचलित शान्त गम्भीर पत्रकार-शैली से वह एकदम भिन्न थी। उनकी शैली मे एक किस्म का बॉकापन था, और सयम बिलकुल नही था। उन्होने जनसाधारण को अखबार पढना सिखाया, लेकिन साथ ही उनकी अभिरुचि को बिगाड भी दिया।

ऐसे गम्भीर युग मे जीवनी-साहित्य विकसित हुआ होगा, ऐसी आशा की जाती है। परन्तु बहुत कम जीवनियाॅ लिखी गई, और जो लिखी भी गई, वे महत्त्वपूर्ण न थी। सहजता की दृष्टि से दो आत्मकथाएँ बहुत महत्त्वपूर्ण है—एक श्रीमती रमाबाई रानडे द्वारा लिखित अपने प्रसिद्ध पति म० गो० रानडे का अत्यधिक प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करने वाली पुस्तक है, इसमे लेखिका की त्यागमयी, विनम्र शैली बहुत महत्त्व

पूर्ण है। दूसरी आत्मकथा डाक्टर धो० के० कर्वे की है, जिसमे स्त्री-शिक्षा के कार्य मे उन्हे कितना सघर्ष करना पड़ा, इसका वृत्तान्त है।

१९२०-१९४५ · कविता

१९२० का समय शमित-दमित काल का है। लोकमान्य टिळक के सामाजिक-राजनैतिक वारिस जल्दी ही सकीर्ण दृष्टिवाले प्रतिक्रियावादी वन गए, सामाजिक सुधार वाले छोटे-मोटे परिवर्तनो से सतोष मानने लगे। सतही समझौते से समाधान पाने की प्रवृत्ति बढी, गहरे सामाजिक सघर्ष अनसुलझे ही रह गए। यह एक प्रकार से छोटे आदमियो का युग था। छोटे-छोटे स्वप्नो मे से इस युग का रोमास बुना गया, छोटी-छोटी शिकायतो ने अर्ध-करुण मुद्राएँ धारण की, हर चीज का साधारणी-करण किया जाने लगा। सुघर विभाजन करके उनपर अच्छे 'लेबल' लगाना इस युग मे चल पडा। थोडी-सी टेकनीक की नवीनता और शव्दो की रमणीयता के सहारे लेखक आलोचक को सतुष्ट करने लगा और दोनो ने मिलकर कच्चे पाठको को बरगलाना शुरू किया।

मगर यह वात सभी लेखको के लिए सही नही थी। बेहतर लेखक और वेहतर आलोचक इन ह्रासोन्मुख वृत्तियो का विरोध करते थे। यह विरोध वल पकडता गया और १९३० के करीब अन्य रूपो के साथ-साथ नवीन विपय और नवीन शिल्प की खोज के रूप मे इस विरोध ने व्यजना पाई। वीसवी शती के दूसरे दशक के उत्तरार्ध की निराशा, मजदूर-आन्दोलन का उत्थान, और इससे भी अधिक १९३०-१९३१ मे गाधीजी के नेतृत्व मे राष्ट्रीय सघर्ष ने ये अल्प-तुष्टि की दीवारे जड से हिला दी। कम-से-कम कुछ लोगो मे एक नवीन चेतना जाग पडी। मध्य वर्ग उस समय साहित्य का प्रमुख निर्माता और उपभोक्ता था। उसने वडे-वडे वाद-विवाद शुरू किये, वडे समझौते भी किये और अन्त मे वे आलस्य मे खो गए। आत्मा की सच्ची प्रेरणा के स्थान पर रूढि-वादी शुद्धिवादिता काम करने लगी, और वही विवेक की दासी बनकर

सब ओर दिखाई देने लगी। मध्य वर्ग का एक छोटा-सा हिस्सा बदलती हुई परिस्थितियो के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगा। प्रथम महायुद्ध के बाद के साहित्य का स्वप्न-भग, नव-नाट्य और इग्लैड मे तीसरे दशक के 'प्रगतिशील' कवि आदि इस छोटे-से दल पर अपना प्रभाव डाल गए। इस दल ने साहित्य को सार्वत्रिक ह्रासोन्मुखता से बचाने का यत्न किया। यह प्रयत्न आज तक चला आ रहा है, जिसमे कभी सफलता मिली है और कभी नही भी मिली है, क्योकि इस प्रयत्न की दिशा अनिश्चित है।

कविता मे दूसरे दशक पर कवियो का एक दल हावी था, जिसका नाम 'रविकिरण-मण्डळ' था। इसका प्रयत्न था कविता को सामान्य जीवन के निकट लाया जाय। 'गोविन्दाग्रज' के बाद कविता जिस अलकारप्रियता मे खो गई थी, उसमे से उसे उबारा जाय। उन्होने इस काम को इतनी सचेतनता से किया कि वे उल्टे गलती मे पड गए। कविता को उन्होने अति-सामान्य बना दिया। उत्कटता और भाव-मुक्ति के प्रति उनका अविश्वास उस समय की प्रवृत्तियो के साथ अच्छी तरह चलता था, क्योकि समाज यह चहता था कि हर चीज़ को, ललित कलाओ को भी अपनी सकीर्ण प्रतिष्ठा की भावना से बॉध दिया जाय। उनकी कविता व्यापक रूप से प्रचलित हुई। कवि-सम्मेलनो मे कवियो द्वारा कविता-पाठ इसका प्रधान कारण था। इन कविताओ मे एक सीधा निष्कर्ष ठप्पे की तरह लगा रहता था, और कभी-कभी उनका दूसरा पहलू यह भी होता था कि हल्का-सा समाज-सुधार उनमे सुझाया जाए। उदाहरण के लिए प्रेम कुछ देर तक मुक्त चल सकता था, परन्तु अन्त मे उसे पारिवारिक सुशीलता के रूप मे ही विकसित होना आवश्यक था। ऐसा प्रेम देहाती स्वच्छ वातावरण में अधिक अच्छी तरह पुष्पित हो सकता था, इसलिए कुछ समय तक कविताओ और उपन्यासो मे भी ग्राम-वर्णन का सर्वसाधारण रसाभास चलता रहा। कविता को गाकर पढने के फैशन तावे वर्ग के नेतृत्व मे करुण अतिरजना

तक पहुँच गया और उसने कविता में गौण तत्त्वों को प्रधानता दी, जैसे शब्द-संगीत और पद-कौशल को। मंडळ ने कविता के रूप और शिल्प में सँभल-सँभलकर काफी प्रयोग किये। इस कारण, उस समय कविता में आवश्यक विविधता निर्मित हुई। इस दल के 'यशवन्त'—य० दि० पेंढरकर—सबसे अधिक लोकप्रिय हुए। उनकी कविताओं में छोटी-छोटी निराशाओं और शिकायतों का गिला है, मगर सर्वसाधारण पाठक को इन्हींमें अपने दुःखों की प्रतिगूंज मिली। 'गिरीश'—श० के० कानेटकर—क्षुद्र विषयों पर सुकोमल साधारणीकरण करते रहे। 'माधव जूलियन'—मा० त्रि० पटवर्धन (१८९४-१९३९) ने आकर्षक, स्वच्छंद स्वाद-भरे प्रेम-गीत लिखे (कुछ प्रेरणा उन्होंने फारसी गजलों से ली), लेकिन बहुत जल्दी वे भी एक परम्परावादी पंडित के रूप में परिणत हो गए और पुनः अपनी प्रेम-कविता को शैली की शुद्धता और भावना की शुद्धता से भी परिशोधित करने लगे।

प्र० के० अत्रे का 'झेण्डूची फुलें' (गेंदे के फूल, १९२५) आज तक बराबर लोकप्रिय बना हुआ पैरोडी-संग्रह है, क्योंकि इस पुस्तक में इन सभी कवियों की शैलियों का कुशल परिहास किया गया है। किन्तु इसका एक बुरा परिणाम यह भी हुआ कि पाठक, जिसमें इतना विवेक नहीं था, मूल व्यंग्य वस्तु को भूलकर कविता-मात्र पर हँसने लगा। फल यह हुआ कि तीसरे दशक के आरम्भ में 'मीडियाकर' कवि और उनके 'मीडियाकर' पैरोडीकार बढ़ते गए। उनकी कविता के प्रति एक विडम्बनात्मक प्रवृत्ति ही बढ़ी। कुछ कवि कुंठित हो गए और अन्य कवि पाठकों पर और भी मधुमय पद्य उँडेलने लगे।

तांबे की कविता—जिसका अधिक उत्तम अंश दूसरे दशक में लिखा गया—तीसरे दशक के लिए आदर्श बनी। उसके प्रभाव में कवियों ने किशोर-भावना को सन्तुष्ट करने वाले मधुर-मधुर गीत रच डाले, चाहे कवियों की उम्र कुछ भी रही हो। कविता का विषय चाहे जितना झीना हो, बस शैली बड़ी रोचक होनी चाहिए थी। गाने वालों को भी

गीत बडे उपयोगी जान पडे और श्रोताओ के विशाल समूह तक ये गीत पहुँचे । ताबे की कविता मे जो सूक्ष्मता या सवेदनशीलता थी वह उनका अनुकरण करने वाले प्राय भूल गए, वे केवल ऐन्द्रिक और नाद-मधुर-शैली मे बनावटी सरल कल्पना-चित्र रचते थे। कविता एक तरह का हल्का नशा बन गई, जिससे पाठक जीवन से दूर, मधुर-स्वप्निल दुनिया मे खो सके। शैली और भावना दोनो के कुछ साँचे बन गए। पाठक के लिए ऐसी कविता का भावन करने मे किसी भी बौद्धिक प्रयत्न की आवश्यकता नही थी। कवि भी सुकुमार बनता गया। उसका स्वाभाविक विकास रुक गया। इस पीढी के कुछ तरुण कवियो की यही शोक-कथा थी कि उन्होने आरभ तो बडा अच्छा किया, लेकिन आगे जो आशाएँ उनसे अपेक्षित थी, वे पूरी नही हो सकी। आलोचको का विश्वास है कि बा० भ० बोरकर तावे के सर्वोत्तम शिष्य है। वे उनसे भी कुछ अधिक है। वे अपने साथ व्यक्तिगत इन्द्रियगोचर प्रतिमानो का आनन्द, और प्रकृति के सौदर्य के प्रति सूक्ष्म सवेदनशीलता लाये—विशेषतया जहाँ के वे है—उस गोआ की प्रकृति का सौदर्य उनकी कविता मे निखरा है। ताबे की परम्परा मे उन्होने चार चाँद लगा दिए। अगर कही बोरकर ने अपने काव्य-चाप मे एक दूसरी विसगत डोरी—नैतिक आदर्शवादिता की—न जोडी होती और अपनी प्रतिभा के मौलिक गुणो तक ही सीमित रहते, तो उन्हे और अधिक ख्याति तथा सफलता मिलती।

रविकिरण-मडळ और ताबे-शैली की सचेष्ट प्रतिक्रिया मे आधुनिक युग की कुछ उत्तम कविता लिखी गई। अनन्त काणेकर ने अपने छोटे-से काव्य-सग्रह 'चाँदरात' (१९३३) के बाद कविता लिखना मानो छोड-दिया, लेकिन उस सग्रह ने नई दिशा की छोटी-सी झाँकी जागरूक पाठको के लिए प्रस्तुत की। उस सग्रह मे चाँदनी और कारखाने की चिमनी और व्यग का अद्भुत मिश्रण था। कदाचित् यह एक सक्रान्तिकालीन अल्पजीवी नवीनता थी। 'अनिल' (आ० रा० देशपाडे) ने विशिष्ट,

सूक्ष्म और सोद्देश्य नवीनता का प्रवर्त्तन अपनी कविता मे किया। कवि के नाते उनका कार्य बहुत वर्षो का और क्रान्तिकारी है। आरम्भ मे उन्होने स्वकेन्द्रित सुकोमल प्रेम-गीत लिखे—'फुलवात' (१९३२) और बाद मे 'भग्नमूर्ति' (१९४०) मे, उन्होने सास्कृतिक गम्भीर उपदेश पद्य-बद्ध किया। 'पेर्तेवा' (१९४७) मे विचार और भावना का सगम मिलता है। उन्होने मराठी-कविता मे मुक्त-छन्द का निर्माण और प्रचार किया। इसके द्वारा पुराने यान्त्रिक और रूढ छन्द-बन्धन की जकडन से कविता मुक्त हुई। ना० घ० देशपाडे की कविता मे शुद्ध गीतात्मकता और ईमानदार जानपद तत्त्व मिलता है, और गु० ह० देशपाडे की कविता मे आध्यात्मिक विरोधाभास सन्त-कवियो-जैसी सूत्रात्मकता के साथ व्यक्त किया गया है। इस प्रकार से प्रचलित कविता की नीरसता मे कुछ कवियो ने नयापन पैदा किया।

१९४२ के आन्दोलन का प्रभाव साहित्य पर इस प्रकार पड़ा कि जो थोडा-सा नीम-हकीमपन चल रहा था, उससे साहित्य मुक्त हुआ। 'कुसुमाग्रज'—वि० वा० शिरवाडकर—अपने जिस कविता-सग्रह से लोकप्रियता के उत्तुग शिखर पर पहुँचे, उसका नाम था 'विशाखा' (१९४२)। उनकी महान् साहित्यिक प्रतिभा उन्हे इस ख्याति-शिखर पर बनाए रखती, किन्तु साहित्य की और विधाओ की ओर वे आकृष्ट हुए और कविता की ओर से कुछ उदासीन हो गए। 'कुसुमाग्रज' साम्राज्यवाद-विरोधी कविता की साग्निकता फिर उसी तरह से प्राप्त न कर सके, उनका मूल स्वर शान्त सौन्दर्य के लिए दौर्हार्द (नास्टे-ल्जिया) की कविता का ही था। उनकी सफलता के कारण एक क्षणजीवी सम्प्रदाय चल पडा, कुछ समय तक रक्त और अश्रु वाले उफान कविता मे आये, जो कि बहुत जल्दी समाप्त हो गए। यह भाव-धारा गद्य मे भी फैल उठी। कविता अपने बधनो से अधीर हो उठी थी, अतः यह नया विद्रोह कविता के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ। उदाहरणार्थ, 'मन-मोहन' की कविता मे यह विद्रोह अपनी अति पर पहुँचा—'मनमोहन'

किसी के शिष्य नही हैं। कुछ और तरुण कवि, जो पहले आ रहे थे, बदली हुई परिस्थिति की माँग पूरी करने लगे और अपनी सीमाओ के भीतर धीरे-धीरे परिपक्व हो गए।

नाटक

बीसवी सदी के दूसरे दशक मे थियेटर का आधार था—प्राचीन गौरव। कुछ अभिनेता बहुत लोकप्रिय थे। उनकी लोकप्रियता अभिनय के लिए उतनी नही थी, जितनी कि उनके गाने के लिए, और वही उस गौरव का परम्परित रूप मान लिया गया। उस समय के कुछ अच्छे गायक, उस्ताद, सगीत-रचयिता और वादक—रगमच की ओर खिच आए, उनके कारण कई अ-मराठी आश्रयदाता रगमच को मिले। उन सबके लिए सगीत प्रधान आकर्षण था। मराठी दर्शको के लिए भी रंगमच पर सगीत का आकर्षण अधिक प्रिय था। तीसरे दशक के आरम्भ तक सवाक् चित्रपट शुरू हो गए। ये बोलपट सगीत और मनोरजन के क्षेत्र मे नाटक के प्रतिस्पर्धी बने। तब रगमच ने दुःख से अपने कमजोर हाथ सूने आसमान मे फैलाये, और फिर वह अचकचाकर निराशा के ढेर में मूर्छित होकर गिर पडा। रगमच तब लडखडा ही रहा था, चित्रपट अपने आपको विजेता की तरह मानने लगा।

दूसरे दशक के छोटे नाटककार, जिन्हे कुछ समय तक थोडी ख्याति भी मिली—लोकप्रियता और जन-अभिरुचि के लिए, कुछ परिवर्तन के साथ, वही पुराने फार्मूले दोहराने लगे। इतिहास और पुराण के नायक और खल-नायक तथा सन्त-कवि उनके लिए उपयोगी सामग्री बने। यह सब नायक मानो एक ही चेहरे-मोहरे के थे, वैसे ही खल-नायक भी एक-से थे। पहले हम जिन प्रमुख नाटककारो का उल्लेख कर चुके हैं, उनमे से खाडिलकर और कोल्हटकर रगमच के पतन के साथ-साथ गिरते गए। केळकर नाटक से अधिक अन्य विषयो मे रस लेने लगे। मामा वरेरकर, जिनका पहला नाटक १९१७ मे खेला

गया, अब आगे बढ़े। वरेरकर के जीवन-वृत्त में आधुनिक मराठी रंगमंच के विकास का बड़ा-सा भाग व्याप्त है। पौराणिक नाटकों से शुरू करके विषय और टेकनीक के निरन्तर प्रयोगकर्त्ता के नाते मामा ने अपनी इच्छानुसार रंगमंच का उपयोग सामाजिक समस्याओं के निरूपण के लिए किया। नाटकीय संवाद के नाम पर अब तक जो कृत्रिम भाषा चल रही थी, उनसे उलटे वरेरकर के नाटकों में सहज खड़ी और खुली भाषा का प्रयोग किया गया। वरेरकर ने करीब ४० नाटक लिखे हैं और इधर के 'अ-पूर्व बंगाल' (१९५३) और 'भूमिकन्या सीता' (१९५५) यह दिखलाते हैं कि उनकी नाट्य-शक्ति अभी भी कम नहीं हुई है। मराठी-रंगमंच को उन्होंने यथार्थवाद दिया और उसके क्षितिज को व्यापक बनाया, इसलिए रंगमंच को उनका आभारी होना चाहिए।

रंगमंच को सजीव बनाने के लिए सबसे बड़ा प्रयत्न 'नाट्य-मन्वन्तर' ने किया, जो यूरोप के 'न्यू ड्रामा' आन्दोलन से प्रभावित था। उनका पहला नाटक और एकमात्र सफल नाटक 'आन्धळ्याची शाळा' ('अंधों की पाठशाला', १९३३) नार्वे के नाटककार ब्योर्नसन् के नाटक का श्री० वी० वर्तक द्वारा किया हुआ रूपान्तर था। यह नाटक बहुत अच्छी तरह दिग्दर्शित किया गया था, परन्तु उसका प्रभाव बहुत सीमित था। साधारण दर्शक इस नाटक में कुछ विदेशीपन की बू पाता था। यह दल बहुत जल्दी टूट गया। लेकिन इसने अच्छे दर्शकों के मन में रंगमंच के सुधार और सच्चे आधुनिक नाटक के लिए प्यास जगाई। कुछ अन्य अविकसित लेखकों ने एकांकी नाटक लिखकर फिल्मों की चुनौती का जवाब देने की कोशिश की, पर वह ज्यादा दिन न चल सका। बालमोहन कम्पनी के पुराने ढंग के दिग्दर्शन की टेकनीक और प्र० के० अत्रे के अर्ध-आधुनिक नाटकों को कुछ व्यावसायिक सफलता मिलती रही। अत्रे ने विशेष प्रकार के प्रहसन लिखे। कथानक उनमें बहुत थोड़े थे, चरित्र हास्यपूर्ण थे। परन्तु अत्रे की रुचि अतिरंजित नाट्य की ओर थी। इसमें उन्हें और सफलता मिली। उनके समान प्रसिद्ध

हास्य-लेखक जब मेलोड्रामा लिखते है तो यह खतरा पैदा होता है कि गम्भीर बातो को भी लोग मजाक समझने लगते है। इन सफलताओ के साथ अत्रे हल्के व्यग-नाटक की ओर झुके और विनोद, चरित्र-चित्रण और भाषा-शैली की जो-कुछ शक्ति उनमे थी, उसका उन्होने बहुत दुखद ढग से व्यय किया। इस दशक के अन्त मे वे फिल्म और पत्र-कारिता की ओर झुके, और रगमच एकदम गिर पडा। चौथे दशक के आरम्भ मे मो० ग० रॉगणेकर नामक एक पत्रकार ने नाटककार बनकर रगमच को अपनी 'नाट्य-निकेतन' नामक सस्था से पुनर्जीवित किया। उनका उद्देश्य केवल लोकरजन था, इसलिए उन्होने ड्राइग-रूम तक सीमित, चतुर, सुखान्त नाटक लिखे। उनके नाटको मे मध्य-वर्ग के जीवन की बडी यथार्थता थी, सवाद बहुत सजीव थे और दो-तीन गाने बीच-बीच मे आ जाते थे। दर्शको को नए नाटक बहुत अच्छे लगे। इन वर्षो मे अव्यावसायिक रगमच विदेशी नाटको के रूपान्तर की ओर अधिक झुका था, इस कारण वह फीका और कृत्रिम होता गया।

उपन्यास

व्यावसायिक रगमच के पतन के साथ-साथ उपन्यास मध्यमवर्ग का प्रमुख मनोरजन करने वाला माध्यम बनकर सामने आया। बाद मे फिल्म के एक सशक्त प्रतिस्पर्धी की तरह जम जाने पर, शुद्धिवादियो ने उसे अपना प्रिय व्यग-बिन्दु बनाया। उपन्यास ने बडी विविधता प्राप्त की और कुछ अच्छे लेखको के हाथो वह उत्तम सोद्देश्यता भी पा सका। वा० म० जोशी (१८८२-१९४३) ने 'रागिणी' से जो आशा बँधाई थी, वह पाँच और उपन्यासो से पूरी की। इनमे सबसे अच्छा है, 'सुशीलेचा देव' (१९३०)। यह एक पढी-लिखी स्त्री के बौद्धिक दृष्टिकोण के विकास का गहरा अध्ययन है। 'इन्दु काळे आणि सरला भोळे' (१९३५) कला और नीति के बीच सघर्ष को व्यक्त करता है। यह सघर्ष कुछ व्यक्तियो के जीवन को उलझाता है। जोशी के सामाजिक विश्लेपण मे

दार्शनिक तटस्थता के आस-पास सशयवाद का हल्का स्मित मिलता है। डाक्टर श्री० व्य० केतकर (१८८४-१९३७) के उपन्यासो मे तटस्थता बहुत कम है। रूप और शैली के सब प्रचलित नियमो को अस्वीकार करके उन्होने बहुत ही साधारण सामग्री और असम्भव कथानको का आश्रय लेकर अपने उपन्यास रचे। डाक्टर केतकर समाजशास्त्री थे, और उपन्यास का उपयोग उन्होने अपनी समस्याओ के समाधान के लिए किया। सर्व-साधारण पाठक उनके उपन्यासो के बेढगेपन से चौक उठे और जो अच्छे पाठक थे वे इन उपन्यासो के आन्तरिक परस्पर-विरोध से चकित हुए। परन्तु उन्होने उपन्यास मे बौद्धिक साहसिकता शुरू की। केतकर और जोशी मिलकर उपन्यास को एक ऐसी ऊँचाई पर ले गए, जिससे सस्ते कथा-लेखन की क्षुद्रता और भी ज्यादा स्पष्ट होती गई। मामा वरेरकर ने नाटक से भी अधिक उपन्यास लिखे। अब तक उन्होने ११५ उपन्यास लिखे है। इनमे से २८ जासूसी उपन्यास है और ५८ बगला के अनुवाद है। इन अनुवादो मे, विशेषतया शरत्‌चन्द्र चटर्जी के अनुवादो मे, बडी सहजता है। उनके मौलिक उपन्यास दलितो के जीवन को लेकर लिखे गए है। उनके पात्र, जो कि शोषित वर्ग के है, दुर्विनीत है और उनके नारी-चरित्र कुछ आवश्यकता से अधिक युयुत्सु है। परन्तु उस समय गरीवी के जो भावुकतापूर्ण चित्र खीचे जाते थे और स्त्रियो की जैसी पूजा की जाती थी, उनसे ये चित्र सर्वथा भिन्न है।

१९२६ के बाद दो प्रसिद्ध उपन्यासकार, जो अपने प्रशसको की दृष्टि मे कहानी-लेखक, निबन्धकार और आलोचक भी बनते गए— ना० सी० फडके और वि० स० खाडेकर है। अति-सरल आलोचक इन लेखको के अपने दावो को सच मानकर फडके को 'कला के लिए कला' वाले सिद्धान्त का, और खाडेकर को 'जीवन के लिए कला' वाले सिद्धान्त का प्रतिपादक मानते है। दोनो के नाम से ये लेबल चलते रहे है। फडके के कुशलतापूर्ण उपन्यासो मे बडी चतुराई से एक ही केन्द्रीय फार्मूले के विविध रूप मिलते है। उनमे उच्च मध्यवर्गीय जीवन के

प्रेम-प्रसगो का अति-सरलीकरण है। फडके बहुत ही कुशल शिल्पी है, वे अपने कथानक को प्रभावशाली ढग से खोलते चले जाते है। उनकी शैली बहुत रम्य है और जब से उनकी ख्याति बढती गई तब से आलोचको और लेखको मे शैली और टेकनीक को अनावश्यक महत्त्व दिया जाने लगा। फडके के लिए उनकी शैली उनके कला-कौशल का एक भाग बन गई और उन्होने इस बात को छिपाकर नही रखा। बडी ईमानदारी के साथ और मधुर ढग से उन्होने यह सब-कुछ अपनी 'उपन्यास और कहानियाँ कैसे लिखे ?' जैसे पुस्तिकाओ मे समझाया। खाडेकर फडके के कुछ वर्षो बाद इस क्षेत्र मे आए। पहले कहानी-लेखन के क्षेत्र मे उन्होने कुछ कीर्ति अर्जित की थी। फडके के फार्मूले को उन्होने अपने फार्मूले से चुनौती दी। खाडेकर के सिद्धान्तो मे आदर्शवाद का गहरा पुट था। उनके युवक चरित्र सामाजिक और राजनैतिक सेवा के लिए कटिबद्ध थे। उसके लिए वे बडे ज़ोर से भाषण देते, और इसी सिलसिले मे प्रेम करना शुरू कर देते। पाठको को खाडेकर की प्रामाणिकता ने स्पन्दित कर दिया और सुखवादी फडके के दोषों के प्रति वे जागरूक हो उठे। फडके ने भी जल्दी से अपने कथानक बदले और उनके युवक पात्र किसी दीवानखाने के बदले राजनैतिक सभाओ मे मिलने लगे। ये दोनो लेखक एक-दूसरे से भिन्न रहे, परन्तु उनके प्रशसक दूर न रह सके। यह विचित्र जान पडेगा, परन्तु यह सच है कि एक ही समय दोनो लेखक एक-दूसरे के पूरक अथवा एक-दूसरे से पलायन के साधन की तरह माने जाने लगे, और दोनो से ही एक-सा आनन्द प्राप्त होने लगा। आज भी दोनो लेखक कई विधाओ मे लिखते आ रहे है। फडके इन दोनो मे कुछ अधिक लिखते रहे है। परन्तु अब इन लेखको कीशैली पाठको के लिए रहस्यमय नही रही विशेपतया फडके की। ग०त्र्य० माडखोलकर के उपन्यासो पर राजनीति आवश्यकता से कुछ अधिक छाई हुई थी और वह उपन्यास के कथानक से तद्रूप भी नही हो सकी थी। उनकी आलकारिक शैली की तरह यह राजनीति भी एक बाह्य

शोभा की भाँति जान पडती थी। पु० य० देशपाडे मे राजनीति गर्भित थी, परन्तु भावुकता और शैली के अतिरजन से वह जैसे कुंठित हो गई। यदि विश्राम बेडकर के एकमात्र उपन्यास 'रणागण' (१९३९) में चित्रित अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के बिगडने को और प्रमुख पात्रो के जीवन पर उसके प्रभाव को गम्भीरता से ग्रहण किया जाता तो बाद के उपन्यासो में अर्ध-राजनैतिक रचनाएँ कम लिखी जाती। यदि भूतकाल के इतिहास को पीछली पीढियो के लेखक ने कल्पनारम्य बनाया, तो इस पीढी के उपन्यासकारो ने वर्तमान इतिहास को रोमाटिक रूप दिया, और अधिकतर पाठक इसीको यथार्थवाद और राजनीति मानकर ग्रहण करने लगे।

पाठको और आलोचको का एक दल—यद्यपि वह बहुत छोटा था—उस समय के प्रचलित उपन्यास-साहित्य के प्रति अपने विरोध का स्वर बराबर उठाता रहा। कुछ लेखको को प्रेरणा मिली कि वे इस फैशन को तोड़कर नए रास्ते खोजे। जो लेखिकाएँ इस समय आगे बढी, उनमें कई बहुत महत्त्वपूर्ण है। विभावरी शिरुरकर ने, जिनके सम्बन्ध में यह बात अब छिपी नही है कि उनका असली नाम श्रीमती मालती बेडेकर है, अपनी कहानियो और दो उपन्यासो (१९३३-१९३५) से तहलका मचा दिया। जागृत नारी के दुखो का उत्कट सत्य इनकी रचनाओ मे अभूतपूर्व ढग से व्यक्त हुआ था। श्रीमती गीता साने ने बड़े साहस से लिखा, परन्तु उतनी प्रभावशालिता से नही। कृष्णाबाई' —श्रीमती मुक्ताबाई दीक्षित—और श्रीमती कमलाबाई टिळक मध्यवर्ग के घरो की कहानियाँ उतनी चुनौती से नही, किन्तु अधिक सूक्ष्मता से लिखती रही। श्रीमती कुसुमावती देशपाडे के सवेदनशील रेखा-चित्र बहुत लोकप्रिय हुए, उनमे काव्य-गुण और आलोचनात्मक गुण बहुत अच्छी तरह सतुलित है। हाँ, कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी अवश्य थी जो स्त्रियो के बारे मे उसी तरह से लिखती रही जैसे कि स्त्री-दाक्षिण्य-प्रदर्शक पुरुष प्राचीन काल से लिखते आ रहे थे। जिन लेखको

ने लीक-लीक छोड़कर नया रास्ता अपनाया, उनमे र० वि० दिघे का नाम प्रमुखत. लेना चाहिए। उन्होंने सह्याद्रि के आदिवासियो के बारे में घटना-बहुल उपन्यास लिखे, यद्यपि उन्होंने भी रोमास का झीना आवरण अपने कथानक पर डाला। साने गुरूजी (१८९९-१९५०) की भावुकतापूर्ण, उपदेश-प्रधान कहानियाँ और उपन्यास १९४२ के बाद किशोरो पर बड़ा जादू कर गए। इससे एक लाभ हुआ कि उन दिनो जो खराब जासूसी उपन्यास प्रचलित हो गए थे, कम-से-कम तरुण पीढी तो उनसे बच सकी।

कहानी

कहानी इस काल मे एक विशेष साहित्यिक विधा के नाते विकसित हुई। पुराने काल के ह० ना० आपटे, श्री० कृ० कोल्हटकर, न० चिं० केळकर, वि० सी० गुर्जर तथा अन्य लेखको की कहानियाँ कोरे कथानक या सक्षिप्त उपन्यास के रूप मे होती थी, और उनका लेखन भी ठीक वैसे ढग से होता था, जैसे उपन्यास का। दिवाकर-कृष्ण की 'समाधि तथा छ और कहानियाँ' (१९२३) से रचना की अन्विति और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मराठी-कहानी मे शुरू हुआ। एक प्रकार से आधुनिक कहानियो का यह पहला सग्रह था। खाडेकर और फडके ने अपने विशेष गुण कहानी को दिए और इस दशक के अन्त तक यह रूप सुनिश्चित हो गया। तीसरे दशक मे कुछ और नई विविधता कहानी मे शुरू हुई जो खाडेकर और फडके की शैलियो की प्रतिक्रिया के रूप मे थी। य० गो० जोशी ने इन दोनो लोकप्रिय लेखको की कृत्रिमता पर हँसते हुए घरेलू जीवन की भावुक कहानियाँ लिखी। उनसे वे लोकप्रिय बने। वि० वि० बोकिल ने बडी अच्छी कहानियाँ लिखनी शुरू की थी। निम्न मध्य-वर्ग की दयनीय दशा की झलक उनमे मिलती थी। जरूर कभी-कभी हास्य का पुट उनमे अधिक हो जाता था, परन्तु इनकी कहानियो मे न सयम था, न विविधता। बोकिल ने हास्यप्रियता को उपन्यासो

मे वढा-चढाकर दिखाया और उनके अच्छे गुणो का इस प्रकार अन्त हो गया। अनन्त काणेकर की थोडी-सी कहानियाँ सयत व्यग का अच्छा नमूना थी, परन्तु लेखक ने स्वय इस कला को बढाया ही नही। श्री० म० माटे की सशक्त कहानियो ने उस समय की लोकप्रिय कहानियों की नकली मधुरता के विरोध मे ग्राम-जीवन के चित्र प्रस्तुत किये। कुछ लोगो ने प्रादेशिक या आचलिक कहानियाँ लिखने का भी यत्न किया। कुछ लेखक गोआ के प्राकृतिक सौंदर्य और महाराष्ट्र के प्राचीन जीवन की ओर झुके; परन्तु अधिकतर लेखको ने अनैतिकता के चित्रण के लिए इसे एक सुविधाजनक पार्श्व-भूमि समझकर इसका उपयोग किया। चि० वि० जोशी, प्र० के० अत्रे और शामराव ओक-जैसे हास्य-लेखक कभी-कभी साहित्यिक व्यग के साधन के रूप मे कहानी का और भी चतुराई से उपयोग करते रहे।

व्यक्तिगत निबन्ध और अन्य गद्य रचनाएँ

अन्य साहित्यिक विधाओ की अपेक्षा व्यक्तिगत निबध अग्रेजी से अधिक सीधा चल निकला। वह दूसरे दशक के अन्त मे जम गया। फडके और खाडेकर दोनो ने उसे पाठको के लिए अधिक रोचक बनाया। फडके के निवन्ध अधिक चुस्त-दुरुस्त और हल्के-फुल्के थे। खाडेकर के निबन्धो मे भावुकता-जैसे अपने अलकार थे, और उनमे सुघरता कम थी। फडके ने अपने निबन्ध-लेखन का 'तत्र' समझा दिया, और हर कोई समझने लगा कि वह भी अच्छा निबन्ध-लेखक हो सकता है। ना० म० सत को छोडकर शायद ही किसीने अच्छे निबन्ध लिखे। अनत काणेकर के निबन्धो मे जनसाधारण के रूढ विश्वासो को उलट-पुलट कर, उनका हल्का ढग से मजाक उडाकर, जीवन-परक भाष्य था। यह ढग अनुकरण के लिए बहुत आसान था; काणेकर ने स्वय अपनी पुनरावृत्ति बहुत अधिक की, परन्तु उन्होने इस साहित्यिक रूप को बहुत जल्दी छोड़ दिया। श्रीमती कुसुमावती देशपाडे का अनुकरण करना

अधिक कठिन था; क्योकि उनकी शैली मे कोई सहज पहचानी जा सकने वाली विशिष्टता नही थी और उनकी सुकुमारता और काव्यमय भावना सचमुच व्यक्तिगत थी। इस विधा की लोकप्रियता और सफलता तथा उसका शीघ्र ह्रास, क्योकि उसकी छोटी-छोटी युक्तियाँ जल्दी ही चुक गई—युग के स्वभाव का प्रतिबिंबन करता है।

विविध विधाओ मे प्रयोग और कार्य से जीवनी-साहित्य को वल मिलना चाहिए था, परन्तु ऐसा नही हुआ, और वह आजतक वैसा ही बना है। पर एक बडी प्रसिद्ध आत्मकथा इस काल मे लिखी गई। यह है—श्रीमती लक्ष्मीबाई टिळक की 'स्मृति-चित्र' (१९३४-४६)। लक्ष्मीवाई रेवरेड ना० बा० टिळक नामक कवि की पत्नी थी। इस स्त्री को अक्षर-ज्ञान नही था, वाक्य-रचना तो दूर की बात है। इस युग के अधिकतर लेखको का ध्यान छोटी-छोटी बातो मे उलझा रहा, फिर भी कुछ लेखको ने गम्भीर गद्य की ओर ध्यान दिया। इनमे प्रमुख है—वा० म० जोशी, डा० केतकर, श्री० म० माटे, वि० दा० सावरकर (जिनकी कविता भी सदेश देने की भावना से लिखी गई थी) और श० दा० जावडेकर। कुल मिलाकर, पत्रकारिता जन-साधारण की रुचि से समझौता कर बैठी, और अच्छे साहित्यिक पत्र मुश्किल से चल सके। चतुर पत्रकार के लिए अत्यधिक सरलीकरण और जटिल सिद्धान्तो को जनसाधारण के उपयोग के लिए पनियल बनाने से बढकर बडा कोई और खतरा नही। केळकर उसी मे अटक गए। फडके भी, पत्रकार न होकर, उसी जाल मे फँसे। यह इस युग की ही विशेषता थी। वहुत-सा आलोचनात्मक साहित्य भी लिखा गया, जिसमे से बहु-सा 'टेकनीक' और 'तत्र' के यान्त्रिक विचार मे अपनी शक्ति का अपव्यय करता रहा। कुछ और शक्ति का अपव्यय सस्कृत-काव्य-शास्त्र की वासी कढी मे उवाल देने के लिए किया गया। साहित्यिक जमात का एक हिस्सा, जो पश्चिम से प्रेरणा पाता रहा था, मार्क्सवाद की विचार-धारा से आकर्षित हुआ। इसमे अनिवार्य रूप से एक दिलचस्प बहस शुरू हुई, और कुछ पुनर्विचार भी हुआ।

१६४५-५५

पहले काल के अंत तक साहित्यिक विधाओं के प्रति बड़ा ही असतोष आरम्भ हो गया था, जो साफ दिखाई देता था। १९४२ का आन्दोलन, दूसरा महायुद्ध और उसके बाद की राजनैतिक अस्थिरता तथा अंत मे स्वतत्रता के आगमन ने साहित्य के प्रति एक 'नये दृष्टि-कोण' के आरम्भ के लिए सार्थक पार्श्वभूमि का काम किया। जन-साधारण के जीवन से सुरक्षित रूप से तटस्थ रहने की वृत्ति साहित्य मे ठहराव पा गई थी। इसकी अपनी आत्म-प्रवचनाएँ थी। उन्हे जैसे एक झकझोर मिली। हमारे खडित जीवन की करुण थेगरबदी इस सारे ऊपर से ढाँके हुए तथाकथित सुन्दर आवरण मे से झाँक उठी। यह मुद्रा अधिक देर तक न टिक सकी। इस नई वृत्ति से जिन साहित्य-रूपो को विशेष नवजीवन मिला, वे थे कविता और लघु-कथा। अब इन माध्यमो से लेखक जीवन की विविधता, उसकी अति-अज्ञात गुह्यता को खोजता है। जिन पदो ने हमारी अनुभूतियो को नीरस और एकरूप बना दिया था, उन्हे अब तोड़ दिया गया है।

नई कविता पाठक को जगाती है और कवि की अनुभूति की सूक्ष्म धार को महसूस करने के लिए जैसे उसे भीतर से बाहर खीच लाती है। अब जल्दी से किये जाने वाले साधारणीकरण नही है, काव्य की वस्तु उत्कट और व्यक्तिगत है। विचार और भावना सश्लिष्ट हो गई है। काव्य के बाह्य रूप को उसका उचित स्थान दिया गया है, और अब वह कवि के लिए ग्रथि के समान नही है। उसके कल्पना-चित्र बिलकुल नपे-तुले होते है। क्योकि वे सजीव अनुभव मे से निकलते है। विज्ञान ने उसे बडे ही प्रभावशाली रूपक दिये है। जीवन के सत्य का कोई भी अग कवि के लिए पराया नही है। उदाहरणार्थ सेक्स की बीभत्सता और सुन्दरता दोनो ही को कवि खोलकर रख देता है। अर्द्ध-चेतन मन की अनिर्बंध सहस्मृतियाँ जैसे बाहर फेक दी गई है। शिथिल या भोथरी सवेदना वाला पाठक इस नई कविता मे जो दुस्सहता देखता

ई, उसका बहुत-कुछ कारण जिस प्रकार के अनुभव-विश्व में से वह अपनी कविता रचता है, उसके स्वभाव मे ही निहित है। भाषा की दृष्टि से नई कविता, काव्य-शैली की कृत्रिम नकली भाषा की अपेक्षा जीवन्त बोलचाल का सीधापन पसद करती है।

बा० सी० मर्ढेकर (१९०७-१९५६) की 'काही कविता' (१९४७) के साथ नई कविता का पूरा प्रभाव सहसा पहली बार सबने अनुभव किया, यद्यपि पू० शि० रेगे की पूर्व रचना मे नई कविता के कुछ विशिष्ट लक्षण पहले से दिखाई देने लगे थे। मर्ढेकर की कविता एक ऐसे गहरे सवेदनशील व्यक्ति की कविता है, जो वीरान जीवन की निराशाओ से मूलत- कुठित हो गया है। परन्तु इस कविता मे शोक नही है, उसमे एक निजी सौदर्य-स्वप्न और उसकी पूर्ति की आशा है। मर्ढेकर के कल्पना-चित्र ऐद्रिक कम और बौद्धिक अधिक है, जबकि रेगे की कविता अपने ऊष्म विवरणो सहित व्यक्तिगत उत्तेजना के अल्पजीवी क्षणो को पकड रखती है। रेगे की कविता मे और लोगो की तथा अन्य विषयो की दुनिया जैसे जान-बूझकर अलग रखी गई है। उनका उपयोग केवल वही तक होता है, जहाँ तक कवि का अनुभव उससे समृद्ध किया जाता है। मर्ढेकर और रेगे दोनो ऐसी गठित अभिव्यजना का प्रयोग करते है कि उसमे अनावश्यक को बिलकुल कम कर दिया गया है। कवि अपनी कविताओ का भाष्य नही करता। शरच्चद्र मुक्तिबोध और विंदा करन्दीकर अपने आनन्द मे शब्दो को कुछ अधिक ढील देते है—और अपने कल्पना-चित्रो को विकसित होने का अधिक अवकाश देते है—विशेषत अपनी सामाजिक आन्दोलन-प्रधान कविताओ मे। उसी तरह के कवि है—मगेश पाडगावकर, जिनके आरम्भिक उम्मीदवारी के दिन—जो बोरकर और तावे-शैली के मधुर अनुकरण के दिन थे—अभी भी उनमे मँडराते रहते है। वसन्त बापट भी नई शैली के विकसित कवि है, परन्तु उन्होने अपने मूल कवि-स्वभाव के प्रति अन्याय नही होने दिया है। श्रीमती इदिरा सत के काव्य मे प्रौढता और भी सहज ढग से निर्मित

हुई, क्योंकि उनके निवेदनात्मक (अप्रदर्शनात्मक) गीति-काव्य ने उन्हें अनावश्यक तत्त्वों से सदा दूर रखा। य० दि० भावे ने कुछ नये ढंग की सचेष्ट रचना अल्पकाल के लिए की और बाद में वे जैसे चुप हो गए। इनमें से प्रत्येक कवि ने नई कविता में अपना व्यक्तिगत स्वर मिलाया और इस प्रकार सबने मिलकर नई मराठी कविता को बड़ी विविधता तथा समृद्धि दी। इनमें से कुछ कवियों ने सार्वजनिक काव्य-वाचन किया, और इस प्रकार पुराने आलोचकों एवं केवल दोषदर्शियों के द्वारा साधारण पाठक तथा आधुनिक कविता के बीच जो खाई पैदा हो रही थी—उसे कवियों ने पाटा। इस नये वातावरण ने कई युवक-युवतियों को उत्तम कविता लिखने के लिए प्रेरित किया। पुराने कवियों में 'अनिल' ने इस वातावरण के अनुकूल अपने-आपको ढाला और अन्य कवियों से अधिक उदारता से नवीन प्रभावों को ग्रहण किया। बहुत कम कवि इस नये प्रभाव से अछूते रहे। यह नहीं कि पुरानी कविता से नई कविता की ओर सभी कवि मुड़ गए हों। ग० दि० माडगूलर की झिलमिलाती हुई गीत-काव्य-सुन्दरता प्राचीन परम्परित संत-काव्य तथा लोक-गीतों की शैली और कल्पना-चित्रों पर आश्रित है; परन्तु रूप और वस्तु के बीच में पूरा समन्वय, और उनके अधिक अच्छे गीतों में कल्पना-चित्रों की सशक्तता उन्हें उन अन्य कवियों से भिन्न और उच्चतर बनाती है, जो निरी नक़ल करते हैं। परन्तु पुरानी और नई कविता की गम्भीर बहस बिलकुल खोखली जान पड़ती है जब कि 'बहीणाईची गाणी' (बहणाई के गाने, १९५२)-जैसे कविता-संग्रह द्वारा एक बे-पढ़ी-लिखी किसान स्त्री अपनी स्फूर्तिदायिनी प्राचीन समझदारी से पाठक को हिला देती है—इस कवयित्री का नाम है: श्रीमती बहिणाबाई चौधरी।

नई कविता और नई कहानियों के बीच का घनिष्ठ सम्बन्ध गंगाधर गाडगिळ की कहानियों में बहुत अच्छी तरह से व्यक्त हुआ है। ये कहानियों के क्षेत्र में सबसे साहसिक प्रयोगकर्त्ता हैं। गाडगिल की अजीब

कल्पना-शक्ति हमारे अनुभवो की गहराई मे जाकर परस्पर अज्ञात विरोध व्यक्त करती है मानो हमारे भीतर की झाँकी वाहर दिखाई गई है, जो छोटे-छोटे सपने हमने अपने आराम के लिए छाती से चिपटाये थे, उन्हे हमसे छीन लिया जाता है। अरविन्द गोखले व्यक्ति के भीतर परिस्थितियो के प्रति तनाव का वर्णन करते हैं। भावे व्यक्ति पर अधिक जोर देते हैं, परन्तु उनका स्फूर्ति-स्थान व्यक्ति और समाज दोनो से वाहर है, और वह है—परम्परित नीतिवाद। व्यकटेश माडगूळकर की कहानियो मे देहात के सही-सही चित्र मिलते हैं। झूठे सौंदर्य-वर्णन देहातो के बारे मे सुप्रचलित थे उन्हे तोडकर देहात की सच्ची झाँकी इस कहानी-लेखक ने दी है। देहाती लोगो के वृथा-भावुक चित्र देकर उनके प्रति करुणा उपजाने की जो वृत्ति अन्य कहानी-लेखको मे थी, उसका पूरा दम्भस्फोट व्यकटेश ने किया है। इनकी कहानियो मे देहाती लोग व्यक्ति के नाते जीवित हैं, वे उनपर कोई जवरदस्ती के सिद्धान्त नही लटकाते। ये चार लेखक आधुनिक मराठी कहानियो के सच्चे निर्माता माने जाते हैं। इनके हाथो कहानी ने वडी गहराई और विविधता प्राप्त की है। दि० बा० मोकाशी और 'शान्ताराम' ने भी कहानियो मे योगदान दिया है। इन सभी कहानियो मे साधारणत कथानक वहुत कम होते है, घटना के पीछे जो वृत्ति है वही कहानी को अधिक आकार देती है। आरम्भिक विरोध के बाद, जो कि नएपन के कारण अनिवार्य था, पाठक इस कहानी के प्रति अधिक उत्सुकता से खिंचने लगा है। कविता मे भी वहुत-से तरुण लेखक रूप-शिल्प की ओर पहले खिचे थे। वाद मे उसका पूरा पता चल जाने पर नवप्राप्त स्वतत्रता के लिए इनमे से हर कवि सघर्ष करने लगा और अपना अलग रास्ता वनाने लगा। माडगूलकर की तरह ही रणजीत देसाई और डी० एम० मिरासदार भी गाँवो की कहानियाँ लिखते हैं। सदानन्द रेगे भी गाडगिल की तरह विक्षिप्त ढग से लिखते हैं पर उनका अपना एक तरीका है। पुराने ढग की कहानियाँ अभी भी लिखी जाती हैं और उनमे कुछ तो महत्त्वपूर्ण भी हैं।

महादेव शास्त्री जोशी की गोआ-सम्बन्धी कहानियाँ भावुकता से भरी हैं। वहाँ के सरल, ईश्वर से डरने वाले लोगो का वर्णन उनमे है। उनकी प्रामाणिकता पाठको को मोह लेती है। ये वर्णन कदाचित् गाँव-सम्बन्धी पुराने अनैतिक प्रेम की लोकप्रिय प्रादेशिक कथा की प्रक्रिया मे निर्मित हुए। ना० ग० गोरे के रेखा-चित्र भी, जो कि अधिकतर कोकण के लोगो के विषय में हैं, भावुकतापूर्ण हैं, लेकिन कुछ कम मात्रा मे। उनका साहित्यिक गुण अधिक स्पष्ट है।

यह एक विचित्र बात है कि कहानी की भाँति उपन्यास का विकास नही हो रहा है। युद्ध-पूर्व युग के उपन्यास मे जो अवास्तविकता, वृथा-भावुकता और 'तंत्र' के सौदर्य पर अधिक बल था, वही आग्रह अब भी कुछ लेखको के प्रयत्न मे बाधा की तरह आता है। और इस कारण कुछ लेखक उपन्यास को पर्याप्त प्रौढता नही दे पाते। कुछ अपवाद अवश्य हैं, जिनमे सबसे अधिक आशाप्रद हैं श्री० ना० पेंडसे। इनके चार उपन्यास लेखन-शक्ति के विकास के परिचायक हैं। कोकण के एक अपेक्षाकृत अज्ञात प्रदेश के बारे मे ये उपन्यास हैं। इस प्रदेश के अलक्ष्य जीवन की सतह के नीचे जो सघर्ष चल रहा है उन्हे पेंडसे ने पकडा है। इसके कारण उनके उपन्यासो को एक नाटकीय गुण प्राप्त हुआ है। उनके चरित्रो मे इस नाटकीयता को बनाये रखने वाली शक्ति है। एस० आर० बिवलकर का प्रथम उपन्यास 'सुनीता' (१९४८) जो विभाजन के समय पूर्वी बगाल के दु खो पर आधारित था—बडा आशाप्रद था, परन्तु उनका दूसरा और अन्तिम उपन्यास उस आशा को पूरा न कर सका। विभावरी शिरूरकर (श्रीमती मालती बेडेकर) के 'बळी' मे जरायमपेशा आदिवासियो की बस्ती का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत है। वि० वा० शिरवाडकर (कवि 'कुसुमाग्रज') के उपन्यास पुराने और नए का विचित्र मिश्रण प्रस्तुत करते हैं। नवीन सामाजिक परिस्थितियाँ और रोमाटिक के प्रति पुराने झुकाव दोनो ही उनमे मिलते है। यही बात दूसरे कवि बा० भ० बोरकर के विषय मे कही जा सकती है, जिनके उपन्यास

गोआ के बारे मे होते है। बा० सी० मर्ढेकर ने कविता मे जितना काम किया उतना उपन्यास मे नही किया। उनकी विशेषता यही है कि उन्होने 'चेतना-प्रवाह' (स्ट्रीम श्राफ कान्शसनेस) की शैली का पहला उपन्यास मराठी को दिया। अचेतन मन के चित्रण का इसी प्रकार का प्रयत्न वसन्त कानेटकर ने भी अपने उपन्यासो मे किया, परन्तु उन्हे और भी कम सफलता मिली। गो० नी० दाडेकर काफी अधिक लिखते है और मानो उपन्यास को जहाँ साने गुरुजी ने छोडा था वहाँ से उसे आगे बढाते है। परन्तु उनकी रचना एक-सी नही है, उसमे ऊबड-खाबडपन है और भावुकतापूर्ण तथा सचमुच भावना-सघन के बीच जो झीनी मर्यादा-रेखा है, उसे वे पूरी तरह निभा नही पाते। पुराने लेखको मे फडके अभी भी लिख रहे है और अपने 'तन्त्र' के उदाहरण पेश करते है। कहा जा सकता है कि उनके कुछ थोडे अनुयायी भी है।

रगमच की हालत अच्छी नही है। बडे शहरो मे जो कुछ अव्यावसायिक हलचल दिखाई देती है, वह प्राय नाट्य-महोत्सवो के समय अधिक जोर पकडती है और बाद मे समाप्त हो जाती है। सच्चा अव्यावसायिक अभिनेता 'आधुनिक' नाटक खेलना चाहता है, परन्तु वह इतनी सहजता से नही मिलता। जो कुछ पुराना व्यावसायिक मच बाकी है वह बासी मनोरजन की युक्तियो से सतुष्ट है, परन्तु अब उसके भी पैर लडखडा रहे है। बम्बई के मजदूर-जगत् मे बहुत दिनो से नाटक खेलने का रिवाज चला आ रहा है, परन्तु ये नाटक उच्च वर्ग के नाटको मे बिलकुल अलग ढग के होते है। उच्च वर्ग के नाटक तो 'साहित्यिक' होने का गौरव रखते है, जबकि मजदूरो के नाटक पुराने नाटको की सभी बुराइयाँ लिये हुए रहते है। उनमे पुराने नाटक के गुण बहुत कम है। मामा वरेरकर के अलावा कुछ और भी नाम है जिनसे इस दिशा मे आशा की जा सकती है। नाना जोग ने नाटक को सामाजिक समस्याओ के समाधान के लिए प्रभावशाली रूप से प्रेरित किया है। श्रीमती मुक्ताबाई दीक्षित ने भी वही काम किया है, परन्तु उनके नाटको की

समस्याओं के क्षेत्र उतना व्यापक नही है। व्यकटेश वकील के नाटकीय गुण, विशेषत सवाद लिखने के, दिग्दर्शन के अभाव मे बेकार पडे हुए है। प्राय यही बात इन सभी नाटककारो और दूसरे कई लोगो के लिए कही जा सकती है। अव्यावसायिक रगमच की दो नई खोजे है, चिं० य० मराठे—जो ऐतिहासिक नाटक के पुनर्जागरण की आशा बँधाते है—और विजय तेडुलकर, जो बहुत प्रभावशाली लेखक है और व्यग जिनका प्रधान गुण है। इधर कई वर्षों मे सबसे अधिक सफल नाटक रहा है—पी० एल० देशपाडे का 'अमलदार', जो गोगोल के 'सरकारी इस्पेक्टर' का बहुत मनोरजक रूपान्तर है। और भी कई लेखक है, जिन्होने यूरोपीय नाटको से रूपान्तर किये है। इनमे एक प्रमुख लेखक है, अनन्त काणेकर। लोगो मे नाटक देखने का सच्चा उत्साह और प्रेम है, परन्तु रगमच का विकास जैसा होना चाहिए, वैसा नही हो सका है। उसके मार्ग मे बहुत बाधाएँ है। फलत रगमच का उपयोग वे लोग कर रहे है जो सस्ता मुनाफा या थोडी-सी कीर्ति चाहते है।

दूसरी विधाओ के बारे मे कुछ कहने लायक नही है। व्यक्तिगत निबन्ध को पिछली पीढी के टेकनीकवादियो ने जो बिगाड़ दिया तो वह अब तक नही पनपा। एक ऐसे ढग का नया निबन्ध विकसित हो रहा है जो व्यक्तिगत और गप-शप के ढग का नहीं है, फिर भी जिसमे एक सूक्ष्म व्यक्तिगत रस और गम्भीर आशय है। श्रीमती इरावती कर्वे और कुमारी दुर्गा भागवत ने इस नए ढग के निबन्ध को सफलता से प्रयुक्त किया है। रा० भि० जोशी के 'यात्रा रेखाचित्रो' मे सच्चे निबन्ध के गुण है। हास्य का विशेष रूप से अलग वर्णन करना आवश्यक नही है, क्योकि उसका जगह-जगह पर उल्लेख हो चुका है, विशेषतः नई कहानी के प्रसग मे। पु० ल० देशपाडे के व्यग-रेखा-चित्र और हास-परिहासपूर्ण नाटक विशेष उल्लेखनीय है। साहित्यिक समालोचना मे बा० सी० मर्ढेकर की कृतियाँ आज तक कला की गहराई मे अन्य आलोचना जितनी नही पैठी थी उससे भी अधिक पैठती है। इस पर

वाद-विवाद भी वहुत हुआ, परन्तु ये और अन्य वाद-विवाद—उदाहरणार्थ कलाकार और समाज के सम्बन्धो पर एक मनोरजक वाद-विवाद—साहित्य मे गम्भीर लेखन और स्वीकृत मान्यताओ तथा निष्ठाओ के पुनर्मूल्याकन का प्रश्न प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार के पुनर्मूल्याकन की ओर स्वस्थ दिशा-निर्देश करनेवालो मे श्रीमती कुसुमावती देशपाडे, वा० ल० कुलकर्णी और दि० के० वेडेकर-जैसे आलोचक हैं। जिस सतह पर यह वाद-विवाद चल रहा है, उससे आशा वँधती है कि साहित्यिक अध्ययन का भविष्य उज्ज्वल है।

मराठी पर चुने हुए सदर्भ-ग्रथ

ए शार्ट हिस्ट्री आफ मराठी लिट्रेचर—एम० के० नादकर्णी, वडौदा, १९२१

हिस्ट्री आफ माडर्न मराठी लिट्रेचर (१८००-१९३८)—जी० सी० भाटे, पूना, १९३९

द रेलीजस लाइफ आफ इडिया—(१) रामदास ऐंड रामदासीज, मैसूर, १९२८, तथा (२) एकनाथ, ए मराठी भक्त, १९३१—डब्ल्यू० एस० डेमिंग

द भगत नामदेव आफ दी सिक्खस, बम्बई १९३८, ग्रैमेटिका माराष्ट्र, बबई, १९५४, ए पैजा-ड-क्राइस्टो, ववई, १९४०—ए० के० प्रियोलकर

द लाइफ ऐंड टीचिंग आफ तुकाराम—जे० एन० फ्रेजर और जे० एफ्० एडवर्ड्स, मद्रास, १९२२

द पोएट सेन्ट्स आफ महाराष्ट्र—ई० जस्टीन ऐवट, पूना, १९३२

वैलड्स आफ द मराठाज—हैरी आर्बुथनाट, ऐकवर्थ, लदन १८९४

द पोएम्स आफ तुकाराम—जे० एन० फ्रेजर और के० वी० मराठे, खड १,१९०९, खड २,१९१३, खड ३,१९१५

मिस्टिसिज्म इन महाराष्ट्र—आर० डी० रानाडे, पूना, १९३३

द क्रिश्चियन पुराण—टामस स्टीफ़ेंस, संपादक : एल० एल० सलदना, मंगलौर, १९०७

साम्स आफ़ मराठा सेन्ट्स—निकोल मैकनिकोल, १९३०

ज्ञानेश्वरी—मनु सूबेदार

लिंग्विस्टिक सर्वे आफ़ इंडिया—जी० ए० ग्रियर्सन, खंड २, पृष्ठ १-३७१

मलयालम

सी० कुञ्ञन् राजा

प्रास्ताविक

मलयालम करीब एक करोड चालीस लाख लोगो की भाषा है। मलयालम-भाषा-भाषी केरल नाम के छोटे-से सुन्दर प्रदेश के निवासी हैं, जो पश्चिमी घाट और अरब सागर के बीच दक्षिण के छोर तक फैला हुआ है। प्राचीन यूनानियो को इस देश का पता था और अशोक के शिला-लेखो मे भी इसका उल्लेख है। रामायण, महाभारत और कालिदास की कृतियो मे भी केरल का सदर्भ आता है। परन्तु ९ वी शताब्दी से पहले केरल का कोई साहित्य नही मिलता। उस समय का भी जो थोडा-सा साहित्य मिलता है, उसकी तिथियाँ अनिश्चित है। १४ वी शती मे मलयालम पूरी विकसित भाषा के रूप में और पर्याप्त साहित्य के साथ सामने आती है। इस युग के 'लीलातिलकम्' नामक व्याकरण और भाषा-शास्त्र के ग्रन्थ मे उक्त साहित्य के कई उद्धरण दिये गए है।

ऐसा भी प्रयत्न किया गया है कि मलयालम को तमिल भाषा की एक मध्यकालीन शाखा के रूप मे माना जाय। परन्तु इस मत के समर्थन मे कोई सबूत नही मिलता। जब हम मलयालम को सर्वप्रथम एक साहित्यिक भाषा के रूप मे देखते है, तब उसका अपना शब्द-भडार,

व्याकरण, छन्द और काव्य-शैली आदि मिलते हैं। बाद में मलयालम संस्कृत से अधिक प्रभावित हुई और कविता में संस्कृत-छंदों का प्रयोग भी प्रचुरता से होने लगा। फिर भी इस भाषा के महान साहित्यिक कलाकारों ने केवल मूल मलयालम छन्दों को ही अपनाया और केवल उन्हीं संस्कृत शब्दों का उपयोग किया जो मलयालम की शब्दावली का अंग बन गए थे। फिर भी, संस्कृत-छन्द और शब्दावली का प्रभाव कुछ ऐसे साहित्यिक प्रकारों पर पड़ता रहा, जो मलयालम-छन्दों में लिखी सरल, शुद्ध मलयालम-कविता के साथ-साथ विकसित हो रहे थे।

मलयालम साहित्य के शास्त्रीयकाल का प्रारम्भ पंद्रहवीं शताब्दी से माना जा सकता है, जबकि चेरूसरी की 'कृष्णगाथा' रची गई। शास्त्रीय मलयालम से पहले के युग में तीन स्पष्ट साहित्यिक संप्रदाय दिखाई देते हैं, एक पर तमिल का प्रभाव था, दूसरे पर संस्कृत का और तीसरे में अधिकतर लोकगीत तथा अन्य लोक-विधाएँ आती थीं। इन संप्रदायों ने एक शास्त्रीय भाषा के निरूपण में योग दिया और इस भाषा को स्थायित्व दिया एजहुत्राचन ने, जोकि सोलहवीं शताब्दी में हुए थे। मलयालम साहित्य में एजहुत्राचन का वही स्थान है जो हिन्दी में तुलसीदास और तमिल में कंबन का है। विशाल जनसमूह द्वारा उनके 'अध्यात्म रामायणम्' तथा 'महाभारतम्' नामक ग्रंथ धार्मिक श्रद्धा के साथ पढ़े जाते हैं। एजहुत्राचन ने कई अन्य ग्रन्थों की भी रचना की। उनके सभी ग्रन्थों की विशेषता है—विशिष्ट साहित्यिकता और दार्शनिकता।

सत्रहवीं सदी के मध्य से लेकर लगभग दो सौ वर्षों तक, केरल में सर्वाधिक प्रचलित साहित्य-रूप कथाकली था। इसके रचनाकारों में प्रमुख हैं—कोट्टारक्कर थामपुरन, कोट्टायम केरल वर्मा, उन्नायि वारियार और ईरायिम्मन थम्पि।

मलयालम के मध्य-युग के सभी महत्त्वपूर्ण लेखकों का उल्लेख करना सम्भव नहीं है, परन्तु एजहुत्राचन से तुलनीय एक अन्य महान

लेखक का उल्लेख तो करना ही होगा। वे हैं कुंचन नम्बियार, जो अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुए थे। वे 'तुल्लल पट्टु' नामक विधा के जनक और उन्नायक माने जाते हैं और केरल के प्रथम जन कवि हैं। उन्होंने पुराणों से अपनी कथाएं लीं, लेकिन यह तो समाज के प्रति उनके व्यंग्य और कटाक्ष का एक बहाना भर था। उन्होंने पुराणों को स्थानीय परिवेश में ढाल दिया और सरल एवं जन-सुलभ भाषा में कथाएं कहीं। इनके बावजूद उनकी कविता में गाम्भीर्य गरिमा है, वह उच्च कोटि के साहित्यिक गुणों से युक्त है और मूलवस्तु की अंतर्निहित भावना उसमें सुरक्षित रह सकी है।

उन्नीसवीं शती

यह ठीक है कि चौदहवीं शती में भी एक प्रकार का गद्य मलयालम में लिखा गया था, जिसका प्रमाण कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' की प्रसिद्ध टीका में मिलता है। लेकिन आधुनिक गद्य—विशेषकर साहित्यिक गद्य-का स्वरूप उन्नीसवीं शती में ही निखरा। इस सम्बन्ध में, ईसाई धर्म-प्रचारकों के प्रयत्नों का भी आभार-सहित स्मरण किया जाना चाहिए। सचमुच ही उन्होंने मलयालम में उदार शिक्षा का तथा धार्मिक एवं नैतिक रचनाओं के अनुवाद का समारम्भ किया था।

उन्नीसवीं शती के मध्य में नई शिक्षा का प्रभाव केरल में दिखाई देने लगा था। नए स्कूलों के लिए सब तरह के पाठ्य-ग्रंथ आवश्यक थे। फलत: संस्कृत के महान् ग्रंथों के अनुवाद का एक लोक-आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। मौलिक कविता भी प्राचीन लेखकों के जनप्रिय आधार से दूर होने लगी और संस्कृत की काव्य शैली के अनुकरण में क्लासिकल ढंग की ओर अधिक मुड़ने लगी। रूपवाद के प्रति आग्रह और सक्ति के बावजूद, कुछ श्रेष्ठ काव्य ग्रंथ लिखनेवाले केरल वर्मा (मृत्यु १९१५) इस धारा के अग्रणी थे। वे 'मयूर संदेशम्' के रचयिता थे।

इसके साथ-ही-साथ एक नई धारा भी लोकप्रिय हो रही थी। उनका मुख्य गुण था—साहित्यिक अभिव्यंजना के लिए जन-साधारण की भाषा का प्रयोग। इस आन्दोलन के नेता थे—कोडुंङल्लूर के राजा और वेण्मणि नम्पूतिरिप्पाडु। कोडुंङल्लूर कुञ्ञिक्कुट्टन् तम्पुरान् और उनके भाई दोनों ही संस्कृत के प्रकांड पण्डित थे, परन्तु उन्होंने अपनी (मलयालम) रचनाओं में संस्कृत के व्याकरण-रूपों का प्रयोग करने का कोई प्रयत्न नहीं किया, जब कि केरल वर्मा ने ऐसा किया था। वेण्मणि कुछ आगे बढ़े और उन्होंने अपनी कविता ऐसी भाषा में लिखी जो जनता की बोलचाल की भाषा थी, और मलयालम साहित्य के इस प्रयोग को उन्होंने शक्ति और सीधापन दिया। यद्यपि उनके मूल लेखन के गुण बहुत उच्च नहीं थे, फिर भी वे मलयालम के पहले आधुनिक लेखक माने जाते हैं।

गद्य में भी ऐसी ही प्रवृत्ति दिखाई देती थी। प्राचीन मलयालम-गद्य-परम्परा के कुछ अच्छे नमूने १५वीं और १६वीं शताब्दी में मिलते हैं। वे संस्कृत-रूपों से अधिक भरे हुए हैं; क्योंकि यह काल क्लासिक के पुनर्जागरण का था। यहाँ भी केरल वर्मा ने ही स्तर-निर्माण किया। उनकी आलंकारिक और अत्यन्त पंडित-शैली के बहुत कम अनुयायी मिले, फिर भी तिरुअनन्तपुरम् या दक्षिण शैली संस्कृत की ओर अधिक झुकी हुई थी। इसमें न केवल संस्कृत से शब्द अधिक लिये जाते थे, वरन् संस्कृत-शब्दों के साहित्यिक शुद्ध रूप को रखने पर भी आग्रह किया जाता था जो कि एक बढ़ती हुई भाषा के लिए अस्वाभाविक था।

किन्तु यह शैली कभी लोकप्रिय न हो सकी। पत्र-पत्रिकाएँ, जो कि गद्य को आकार दे रही थीं, दैनिक प्रयोग के लिए ऐसी शैली को बहुत बोझिल और उलझी हुई समझती थीं। साथ ही लोकप्रिय गद्य के प्रयोग में एक नवीन महान् लेखक इस क्षेत्र में आये। चन्तु मेनन के प्रसिद्ध उपन्यास 'इन्दुलेखा' ने क्लासिकवादियों के सिद्धान्त को साहसपूर्वक चुनौती दी और प्रभावशाली ढंग से इस उपन्यास ने सिद्ध किया कि

उच्चकोटि का साहित्यिक गद्य भी जन-साधारण की दैनिक बोलचाल की भाषा मे लिखा जा सकता है।

गद्य और पद्य दोनो मे एक और प्रसिद्ध व्यक्ति ने मध्यम मार्ग खोज निकाला और मलयालम भाषा के लिए भावी विकास के अनुरूप धारा दी—वे थे ए० आर० राजराज वर्मा। वे वैयाकरणी, कवि और आलोचक थे। उन्होने मलयालम भाषा का पहला अधिकृत व्याकरण 'केरल पाणिनीयम्' लिखा। केरल वर्मा के बाद जो सस्कृत-बहुलता चल पडी थी और वेण्मणि के बाद भाषा मे जो भदेसपन आ गया था, उसे दूर करके उन्होने भाषा को एक स्तर दिया। इस प्रकार १९१५ तक का काल तैयारी का समय माना जा सकता है।

फिर भी इसपर ध्यान देना उचित होगा कि इस काल मे मौलिक साहित्य चाहे कम लिखा गया हो, फिर भी प्रत्येक क्षेत्र मे बडा कार्य हुआ। सस्कृत और अग्रेजी से अगणित अनुवाद मलयालम मे किये गए। महाकाव्य और नाटक तथा 'कुमारसम्भव'-जैसे कुछ काव्यो मे मूल के अनुसार उत्तम अनुवाद प्रस्तुत किये गए। अग्रेजी क्लासिक ग्रथो की भी उपेक्षा नही की गई, यद्यपि ये अनुवाद उच्च स्तर के नही थे। कुछ महत्त्वपूर्ण उपन्यास इसी युग मे लिखे गए चन्तु मेनन का 'इन्दुलेखा' और 'शारदा' और सी० वी० रामन पिल्लई का 'मार्तंड वर्मा'। नाटक के क्षेत्र मे भी पुरानी शैलियो को अपना कर भी विषय नए रखे गए, जैसे कोच्चुण्णित्तम्पुरान् के 'कल्याणी नाटकम्' मे उस काल की सामाजिक दशा का और मावेलिक्करा कोच्चीप्पन तरकन् के 'मरियाम्म नाटकम्' मे ईसाई जमात का चित्र मिलता है। साहित्य के अन्य रूप भी उपेक्षित नही रहे। छोटे हास्य-निबन्ध एक कुशल लेखक कुञ्ञिरामन नायनार ने लिखे। वे 'केसरी' उपनाम से लिखते थे और उन्होने इस साहित्य रूप को लोकप्रिय बनाया। प्राचीन और नवीन काव्यो का सफलतापूर्वक गम्भीर साहित्यिक आलोचन, पश्चिम के सिद्धान्तो का उपयोग करके पी० के० नारायण पिल्लई और अन्यप्पाई ने किया।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यह युग तैयारी का ुग था, जिसमे भापा अधिक समृद्ध और लचीली बनी। इस युग मे विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ निर्मित हुई, नए रूप शुरू हुए, टेकनीक और विचारो मे भी नवीनता आई, साहित्यिक कार्य-कलाप को वडी प्रेरणा मिली। इस युग के, परिमाण मे विपुल साहित्य मे—प्राचीन ग्रथो के अनुवाद छोड दे तो—बहुत कम ऐसा है जो स्थायी गुण वाला साहित्य हो। रघुवश और नैषध के ढग पर बडे महाकाव्य लिखे गए, जिनमे उस काल के प्रमुख कवियो ने अपनी विद्वत्ता और काव्य-कला का परिचय दिया पर भविष्य मे वे शायद ही पढे जायँ क्योकि साहित्यिक विचित्रता के नाते ही उनका मूल्य है। किन्तु वे एक बहुत बडे यत्न के प्रतीक अवश्य है, और भाषा को बनाने मे भी उनका बहुत हाथ रहा।

आधुनिक काल

जनता की अभिरुचि मे क्रान्तिकारी भावना की पहली सूचना कुमारन आशान् के 'नलिनि' के प्रकाशन मे मिलती है। यह एक छोटी-सी कविता थी, जिसका विषय प्रेम था, परन्तु यह एक भिन्न प्रकार का प्रेम था। कुमारन आशान् के प्रेम-विषयक लेखन मे प्रेम एक उच्चतर जीवन मे परिवर्तित हो जाता है। यह उत्तोलन बहुत कुशलता और सूक्ष्मता के साथ उन्होने चित्रित किया है। इस प्रकार प्राचीन काल के निर्जीव शृगार से हटकर उन्होने नए ढग से प्रेम का वर्णन किया। वह प्राचीन परम्परा तो सस्कृत के शृंगारिक कवियो पर आश्रित थी और नायिका-भेद मे खो गई थी। आशान् ने केरल वर्मा की ललित भाषा-' परम्परा को भी छोड दिया और इसके बदले एक सीधी और परिष्कृत अभिव्यक्ति अपनाई। इसमे बाह्य रूप के बदले विचारो की सूक्ष्मता पर अधिक बल दिया गया था।

नई भावना का पहला रूप 'नलिनि' मे व्यक्त हुआ। फिर भी पुरानी परम्परा को जाते-जाते बहुत वर्ष लगे। मलयालम साहित्य मे

काव्य की आधुनिक अवस्था आने मे बहुत समय लगा। इस आन्दोलन के प्रमुख व्यक्ति है—वल्लत्तोल। उन्होने भी गद्य से कविता की ओर अपने चरण १९१५ मे बढाए, जबकि 'ओरु चित्रम्' नामक पुस्तक उन्होने प्रकाशित की। वल्लत्तोल पुराने क्लासिक शैली के प्रसिद्ध कवि थे, जबकि नव-युग ने उन्हे परिवर्तित किया। वाल्मीकि रामायण का समश्लोकी अनुवाद उन्होने पहले ही प्रकाशित किया था और उस युग की वति के अनुसार 'चित्रयोगम्' नामक १८ सर्गों का महाकाव्य भी लिखा था। पर महान राष्ट्रीय आन्दोलन ने उन्हे परिवर्तित कर दिया। प्रथम महायुद्ध ने राष्ट्रीय पुनरुत्थान की शक्ति को मुक्त किया था और सब ओर जनता नवजीवन के लिए छटपटा रही थी। इस नवजीवन की माँग के नए भाष्यकार वल्लत्तोल बने। उनके स्वर मे राष्ट्रीयता का तूर्य-नाद था। यह राष्ट्रीयता कोई अलग कटी हुई सकीर्ण भावना नही थी, वरन् रचनात्मक रूप से एक राष्ट्रीय प्रतिमा को भव्य, उदात्त और आदर्शवादी ढग पर निर्मित किया गया था। उन्होने परम्परित सस्कृत-छन्दो को छोड दिया, जिनमे वे पहले लिखते थे, और मलयालम महाकवियो की प्रारभिक शैली को अपनाया। १० वर्षो से अधिक समय तक उनकी प्रतिभा काव्य-सृजन करती रही, जिसमे न केवल भावनाएँ थी, बल्कि जो साहित्यिक रूप से भी सर्व-गुणसपन्न थी। उन्होने राष्ट्रीय महत्त्व के प्रत्येक विषय पर लिखा—सामाजिक और आर्थिक अन्याय पर भी और भविष्य की पुकार पर भी। परन्तु इस काल मे भी, वल्लत्तोल केवल राष्ट्रीयता या सामाजिक सदेश के कवि न थे। उनकी महान् कृति 'मगदलन मरियम'* भी इसी युग मे लिखी गई। इस कृति मे मेरी मैगडलीन के जीवन और मत-परिवर्तन का चित्र है। ईसा की प्रतिभा के आस-पास उन्होने दैवी शान्ति का बडा ही अदभुत वातावरण निर्मित किया है।

नवीन आन्दोलन तीन व्यक्तियो के साथ बढा, वल्लत्तोल स्वय,

---

* इसका अनुवाद साहित्य अकादेमी अन्य भारतीय भाषाओं में करा रही है।

कुमारन् आशान् और उल्लूर परमेश्वर ऐय्यर। उल्लूर प्रसिद्ध विद्वान् थे और आरम्भिक दिनो मे उन्होने केरल वर्मा की साहित्यिक टेकनीक का अनुकरण किया और एक सामान्य गुण वाला महाकाव्य 'उमाकेरलम्' नाम से लिखा। यद्यपि इसमे पुराने ही सिद्धान्त का अधिक निरूपण था, फिर भी वे नए आन्दोलन की भावना से प्रेरित हुए। लेकिन सामाजिक विपयो मे वे पुनरुत्थानवादी थे, इस कारण युग की आत्मा को नही पकड सके। वे सदा पीछे मुडकर देखते थे और 'पिगला' और 'कर्णभूपणम्'—जैसे उनके प्रमुख काव्यो मे, उनका विषय प्राचीन की उद्भावना ही रहा। 'पिंगला' भी मेरी मैगडलीन की तरह एक ऐसी गणिका की कहानी थी, जिसे मुक्ति मिली। उनकी भाषा भी बहुत अलकृत और वोभिल थी, उसमे सस्कृत ढग के समास अधिक होते थे। इस कारण उनकी रचनाएँ कभी भी अधिक लोकप्रिय न हो सकी।

कुमारन् आशान् की वात दूसरी थी। वल्लत्तोल से भी अधिक नए आन्दोलन ने उनकी अभिव्यजना मे सहायता दी। उनके काव्य मे बड़ी गहराई और शक्ति थी, इसके कारण मलयालम साहित्य मे उन्हे बहुत ऊँचा स्थान मिला। उनकी सबसे प्रारभिक कविता 'वीण पूवु' मे भी परम्परागत लीक से हटकर चलने की सजग वृत्ति दिखाई देती है। उनकी आरम्भिक कृतिया 'नलिनि' और 'लीला' असफल प्रेम पर आधारित है। इनमे वहुत उच्च प्रतिभा दिखाई देती है, परन्तु जब उन्होने सामाजिक विपयो पर लिखना आरम्भ किया तव उनकी प्रतिभा पूर्ण पुष्पित हुई। 'दुरवस्था', 'चाण्डाल भिक्षुकी' और 'करुणा' मे कुमारन् आशान् ने तीन शाहकार पैदा किए। इनमे से पहली दो रचनाओ मे ऐसी जाति का दर्द प्रतिगुजित है, जिसे वहुत लम्वे समय तक सामाजिक अन्याय सहना पडा था। 'दुरवस्था' मे एक ऐसी ब्राह्मण स्त्री की जीवनी है, जो मोपला-विद्रोह के दिनो मे अपना घर-बार खो बैठी और उसे एक हरिजन की पत्नी होना पडा। इस कविता मे वडा सौदर्य है और यह उत्कट भावना तथा गहरी प्रामाणिकता से भरी रचना है। उनकी

दूसरी कविता-पुस्तक 'चिन्ताविष्टयाय सीता' भी नारी-चरित्र का बडा अच्छा अध्ययन है। सनातन मतावलम्बी इसमे व्यक्त सीता की सच्ची मानवीय भावना के कारण इस ग्रथ की बहुत आलोचना करते है, परन्तु कविता के नाते यह ग्रथ सचमुच श्रेष्ठ गुणयुक्त है। अनेकानेक जीवन्त-चरित्रो का निर्माण उनकी प्रमुख उपलब्धि है। उनकी शैली कभी-कभी उबड-खाबड हो जाती है, पर चरित्र-चित्रण के मामले मे वे अन्य दोनो लेखको से निश्चित ही श्रेष्ठ है।

इन तीन महान लेखको को लेकर मलयालम-कविता आज की उच्च अवस्था तक विकसित हुई। इस निबन्ध की सीमा मे यह सम्भव नही है कि इस काल के और दूसरे सभी बडे कवियो का उल्लेख किया जाय। जो कवि अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण होते हुए भी रोमाचवाद के क्षेत्र मे प्रमुख रहे, उनमे बी० सी० बालकृष्ण पणिक्कर का नाम सबसे पहला है। अकाल मृत्यु हो जाने के बावजूद उनका बहुत गहरा प्रभाव उनकी पीढी पर पडा। नालप्पाटु नारायण मेनन ऐसे कवि नही है, जिन्होने अधिक लिखा हो, परन्तु उनकी कुछ कृतियो मे, विशेषतः 'कण्णुनीर तुल्ली' मे-जो एक विलाप-कविता है और जिसमे पत्नी की मृत्यु पर शोक व्यक्त किया गया है—स्थायी साहित्यिक गुण है। इस रचना मे भावना की प्रामाणिकता ऐसी है कि वह जीवन के तलस्पर्शी सत्यो का छूती है। उनकी सभी कविताओ मे दार्शनिकता का पुट मिलता है—विशेषत· 'चक्रवालम्' (क्षितिज) और 'ओरु मणल् तरि' (सिकता-कण) मे। इसके कारण उनकी कविता जनसाधारण के लिए न होकर मुट्ठी-भर लोगो तक ही सीमित रह गई।

चङ्ङम्पुषा कृष्ण पिल्लई एक अन्य प्रसिद्ध लेखक थे, जिनकी अकाल-मृत्यु हो गई और जिन्हे अपनी कविता की सगीतमयता और विषाद की भावना के कारण अपने जीवन-काल मे अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। उनकी सबसे पहली प्रमुख रचना एक ग्राम-जीवन का शोक-काव्य थी, जिसका शीर्षक था—'रमणन्' और जो कवि ने अपने

एक असामान्य प्रतिभावन और होनहार कवि-मित्र ईडप्पल्ली राघवन पिल्लई की दुखद परिस्थितियो मे हुई मृत्यु पर लिखी थी। 'रमणन्' की रचना कवि ने बीस-पचीस वर्ष की उम्र मे ही की थी और यह एक अत्यन्त सुन्दर काव्य है। उसका भयोत्पादक सगीत विषय-वस्तु के नितान्त अनुरूप है और उसके माध्यम से कवि अकेलेपन की भावना को पाठको के सम्मुख व्यक्त कर सका है, जो केवल शब्दों की सहायता से इतने प्रभावपूर्ण ढग से न किया जा सकता था। चड्ङम्पुषा ने प्रचुर मात्रा मे लेखन-कार्य किया था और युवा पीढी पर उनकी रचनाओ का बडा प्रभाव पडा है। उनके मित्र ईडप्पल्ली ने अधिक तो नही लिखा, पर उनकी कुछ कविताएँ इतनी उच्च कोटि की है कि वे वर्षों तक बडी रुचि के साथ पढी जाती रहेगी।

आधुनिक लेखको मे सबसे अधिक बहुमुखी प्रतिभा वाले लेखक है—सरदार का० मा० पणिक्कर। वस्तुत. वे इतने बहुमुखी है, और अपने प्रदेश के बाहर राजदूत इतिहासकार और अंग्रेजी लेखक के नाते इतने प्रसिद्ध है कि केरल के बाहर बहुत थोड़े लोग यह जानते है कि वे मलयालम के प्रसिद्ध लेखको मे से एक है। वे कवि, नाटककार, उपन्यासकार और आलोचक के नाते प्रसिद्ध है। साहित्य की शायद ही कोई शाखा हो, जिसे उन्होने समृद्ध न किया हो। उनकी काव्य-कृतियो मे 'चिन्ता तरगिणी', 'पकीपरिणयम्' और 'अम्बापाली' विशेष उल्लेखनीय है। 'कुमार सम्भव', 'इणपक्षीकल', और 'पटिञ्ञारे मुरि' उनके कुछ पद्यानुवाद है और प्राचीन क्लासिक शैलियो मे लिखी गई उनकी नाट्य कृतियो मे 'भीष्मर', 'मन्डोदरी' और 'ध्रुवस्वामिनि' बहुत प्रसिद्ध है। उनकी शैली सरल और प्रसादयुक्त है, संस्कृत और द्राविड़ दोनो प्रकार के छन्दो मे वे एक-सी आसानी से लिखते है। मलयालम मे उनके गद्य-ग्रथो मे विशेष प्रसिद्ध है—उनकी 'आत्मकथा' और ऐतिहासिक उपन्यास 'केरलसिंह'*। उनकी सशक्त बौद्धिकता, व्यापक

* साहित्य अकादेमी की ओर से यह पुस्तक हिन्दी में प्रकाशित की गई है।

अभिरुचि और ऐतिहासिक दृष्टिकोण उनकी सभी रचनाओ मे व्यक्त होते हैं ।

इस काल मे जो कवि अधिक प्रसिद्ध हुए, उनमे प्रमुख जी० शकर कुरुप्प है। बाद मे आने वाले युग मे, उनकी काव्य-शक्ति मे प्रौढता आई। गीतकार और कवि के नाते वे सकेतवाद या प्रतीकवाद को अपनी प्रमुख शैली मानते है और नई पीढी के कवियो मे उनका ऊँचा स्थान है। उनकी रचनाओ में आलकारिक गुण है, लेकिन अलकृत मुहावरो का उपयोग करने वाले अन्य लेखको से वे इस अर्थ मे भिन्न है कि वे अपने विचारो की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीको का व्यापक रूप से प्रयोग करते है। निश्चय ही वे कवियो की तरुण पीढी के अग्रणी है और उनके विचारो तथा कल्पनाओ को व्यक्त करते हैं। आधुनिक युग की सामाजिक और आर्थिक आकाक्षाओ से वे बहुत प्रभावित हुए है और तरुण पीढी की प्रगतिशीलता उनकी कविता मे व्यक्त हुई है। परन्तु वल्लत्तोल की तरह इनमे भी परिवर्तनो का द्वद्व है, कुछ मामलो मे तो वे एकदम प्राचीनपथी है और हमारी सस्कृति की भारतीयता पर तथा परम्परा के निर्वाह पर बल देते हैं। इसके साथ-ही-साथ कुछ मात्रा मे वे वाम-पक्षियो के सामाजिक सिद्धान्तो से भी प्रभावित होते हैं।

इसी पीढी के कुछ और कवि व्यक्तिगत रूप से उल्लेख-योग्य है। कुण्डूर नारायण मेनन ने सफलतापूर्वक एक नए ढग की वीर-गाथा-जैसी कविता शुरू की, जिसका कथानक लोकप्रिय गीतो से लिया गया था। उनकी विशेष देन यह थी कि उन्होने सब सस्कृत शब्दो को दूर रखा और ऐसी शब्दावलो मे ही लिखा, जिसे 'पच्चा' या शुद्ध अमिश्रित मलयालम भाषा कहा जाता है। उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रथ 'कोमप्पन्' है। उसमे उन्हे अद्भुत सफलता मिली है। उन्होने एक लम्बी वर्णनात्मक कविता एक भी सस्कृत का शब्द न प्रयुक्त करते हुए, लिखी—यह तो एक बहुत बड़ी बात थी ही साथ ही, इस शाब्दिक कसरत के अलावा,

कुन्हूर ने अपने काव्य में असामान्य ताज़गी, ओज और साहित्यिक गुण अपूर्व ढंग से व्यक्त किए। कट्टक्कयत्तिल् चेरियान माप्पिला पुरानी धारा के एक दूसरे कवि थे जिनका महाकाव्य 'श्री येशु विजयम्' ओल्ड टेस्टामेण्ट और ईसा की जीवनी की प्रमुख घटनाओं पर आधारित प्रबन्ध है। वडक्कुकूर राजराज वर्मा पुरानी शैली के उन लेखकों में है जिनकी साहित्यिक कृतियां आज भी उतनी ही सशक्त है। उन्होंने बहुत-से महाकाव्य लिखे जिनमें सबसे प्रसिद्ध है—'राघवाभ्युदयम्'। इसमें वे अपनी शक्ति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचे है।

सभी युगों में मलयालम की लेखिकाएँ बराबर योग देती रही। अपेक्षाकृत पहले के काल में, १९१५ के पहले, तोट्टक्काटर इक्कावम्मा थीं, जिनका नाटक 'सुभद्रार्जुनम्' गद्य-पद्य-मिश्रित चम्पू शैली में लिखा गया था, जिसके कारण वे प्रसिद्ध हुईं। इधर आधुनिक काल में, कविता के क्षेत्र में, नालप्पाट्टु बालामणी अम्मा, ललिताम्बिका अन्तर्जनं मेरी जोन तोट्टं मुतुकुल पार्वति अम्मा उल्लेखनीय है। बालामणी अम्मा वात्सल्य रस की कवयित्री है, उनकी कविता में विशेष भावनात्मक गहराई तो है ही, रूप-शिल्प और शैली भी बहुत शुद्ध है। औचित्य का सामान्य ध्यान भी बहुत अच्छी तरह रखा गया है। ललिताम्बिका अन्तर्जनं कहानी-लेखिका के नाते अधिक प्रसिद्ध है, परन्तु वे भी एक प्रसिद्ध कवयित्री है। मेरी जोन तोट्ट साहित्य-जगत् में थोड़ा कार्य करके बाद में ईसाई साध्वी बन गईं। उनकी रचनाओं में दार्शनिक और धार्मिक रुझान दिखाई देता है। उनकी कविताएँ विशेषतः 'कवितारामम्' में संग्रहीत 'आत्मा का स्वगत भाषण'—यद्यपि शैली में कच्ची है, फिर भी यह दर्शाती है कि वे एक उच्चकोटि की विचारशील कवयित्री है।

नया मोड़

१९३६ के करीब मलयालम कविता ने नया मोड़ लिया। राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रेरणा कम हो गई थी और एक नई पीढ़ी सामने आ रही

थी, जिसे वामपक्षी राजनीति से प्रधान प्रेरणा मिलती थी। इन लेखको मे जो सशक्त आलोचक थे, उनके समर्थन से पुराने कवियो के ढोंगीपन और झूठी भावुकता का पर्दाफाश किया गया, तथाकथित प्रतिक्रियावादी साहित्य की निंदा की गई और इनके साथ वह नया 'प्रगतिवाद' शुरू हुआ, जिसे मलयालम मे 'पुरोगमन वादम्' कहते हैं। इस धारा के अग्रणी लेखक आलोचना के क्षेत्र मे ए० बालकृष्ण पिल्लई, जोसेफ मुण्डश्शेरी और एम० पी० पॉल है। इस धारा ने जो कविता निर्मित की वह बहुत उच्च कोटि की थी, परन्तु कहानी और उपन्यास के क्षेत्र मे इसकी सफलता नि.सन्देह बहुत है। परन्तु यह मानना चाहिए कि अनेक प्रमुख लेखको पर इस 'वाद' का प्रभाव पडा और इसने उन्हे एक नया दृष्टिकोण दिया। विशेषत. वल्लत्तोल और शकर कुरुप्प पर 'प्रगतिवादी' विचारो का प्रभाव बहुत स्पष्ट है। शुद्ध 'प्रगतिवादी' धारा ने हमे कुछ अच्छे कवि दिए, जिनमे ये नाम प्रमुख है एन० वी० कृष्ण वारियर, अक्कीत्तम, ओलप्पमण्णा, वयलार रामवर्मा, पी० भास्करन्, केडमगलम् पप्पुकुट्टि, इडश्शेरी गोविन्दन नायर, ओ० एन० वी० कुरुप्प, और अनुजन।

यद्यपि यह सही तौर पर कहा जा सकता है कि गए २० वर्षो मे ऐसा कोई भी कवि नही है, जिसे 'प्रगतिवादी' विचारो ने, अनजाने रूप से ही क्यो न हो, प्रभावित न किया हो; फिर भी मलयालम कविता का मूल प्रवाह उसकी प्रमुख धारा से अलग नही हुआ। तरुण पीढी के तीन प्रसिद्ध कवियो के नाम हम दे सकते हैं : वैलोप्पल्ली श्रीधरा मेनन, वेण्णिकुलम् गोपाल कुरुप्प और पालाई नारायणन नायर। ये मलयालम-कविता की सच्ची परम्परा मे हैं, यद्यपि ये प्रगतिशील विचारो से अधिक प्रभावित हैं। पालाई की 'केरलम वलरुन्नू' (केरल बढता है) एक ऐसी कविता है, जो आधुनिक केरल के विषय मे एक महाकाव्य की तरह है। एक ही कविता मे मलयालम-भाषी प्रदेश की लोक-गाथाएँ, चरित्रादि और सभी प्रवृत्तियाँ मिली हुई हैं। प्राचीन शैली भी बिलकुल

मरी नही है । पी० कुञ्ञिरामन् नायर, के० के० राजा और अन्य इस परम्परा को अच्छी तरह से निभा रहे हैं ।

गद्य

१९१९ के बाद का नया युग गद्य-साहित्य के लिए प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक उपन्यास अपनी प्रौढता पर पहुँचे। सी० वी० रामन् पिल्लई का टीपू के आक्रमण पर लिखा गया 'रामराजाबहादुर', अप्पन तम्पुरान का 'भूतरायर' और का० मा० पणिक्कर का 'केरलसिंहम्' इसके अच्छे उदाहरण हैं। एक नए ढग का सामाजिक उपन्यास भी निर्मित हुआ, जिसमे बदलते हुए समाज की स्थिति का निरीक्षण और वर्णन था। 'इन्दुलेखा' और 'शारदा' ने इसका आदर्श प्रस्तुत किया था कि रोमाटिक लेखक की दृष्टि से उपन्यास कैसे लिखा जाता है, परन्तु नई धारा ने प्राचीन रोमाटिक दृष्टिकोण छोड दिया और नग्न यथार्थवाद की ओर मुडी। 'अफण्टे मकल' नम्पूतिरी-नायर-सम्बन्धो का एक अध्ययन था और इसे पहला यथार्थवादी उपन्यास कहा जा सकता है। बशीर का 'बाल्यकाल सखी' इस प्रकार का एक और महत्त्वपूर्ण उपन्यास था। परन्तु जिस लेखक ने यथार्थवादी और सामाजिक उपन्यास को महान साहित्य के स्तर तक उठाया, वह है . तकषी शिवशकर पिल्लई। तकषी ने पहले कहानी-लेखक के नाते बडी ख्याति पाई। उस क्षेत्र मे तो वे मलयालम के सबसे बड़े उस्ताद है । पर 'थोट्टियूटे मकण' के द्वारा उन्होने उपन्यास के क्षेत्र मे प्रवेश करके भी बडी प्रसिद्धि पाई । उनका एक उपन्यास 'रण्टिटङ्डषि' (दो सेर धान)* है। इसमे अलेप्पी के दलदल या उसके नजदीक के भूमिहीन खेत-मजदूरो का एक सच्चा चित्र है। इसमें चरित्र-चित्रण इतनी अच्छी तरह हुआ है और सामाजिक परिस्थितियो का ऐसा यथार्थ चित्र खीचा गया है कि यह रचना

* यह उपन्यास साहित्य अकादेमी द्वारा हिन्दी में अनूदित और प्रकाशित हो चुका है। अन्य भारतीय भाषाओं में भी यह अनूदित हो रहा है।

एक श्रेष्ठ कृति (क्लासिक) बन गई है। उनका नया उपन्यास 'चैम्मीन' * (एक विशेष प्रकार की मछली) अलेप्पी के करीब मछुओ की जिन्दगी का चित्र प्रस्तुत करता है। मलयालम मे आज तक लिखित उपन्यासो मे यह सर्वश्रेष्ठ है और अपने ढग का एक अकेला उपन्यास है।

आधुनिक मलयालम कहानी और उपन्यास मे महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले पुराने लेखको मे पी० केशवदेव का नाम उल्लेखनीय है। उनका 'ओडाविल निन्नु' मलयालम के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासो मे से है। एस० के० पोट्टेक्काट्ट की 'विषकन्यका' भी बडी अच्छी कृति है। एक दूसरे उपन्यासकार, जिनका उल्लेख यहाँ किया जा सकता है, जोसेफ मुण्डश्शेरी हैं। जिनका 'प्रोफेसर' नामक उपन्यास एक निर्धन अध्यापक की हृदयद्रावक कहानी है। इनका उपन्यास, 'कोन्तयु कुरिशु' ईसाइयो के गरीब वर्ग का चित्रण करता है और उनपर गिर्जे की सस्थाओ का प्रभाव चित्रित करता है।

मलयालम मे कहानी बहुत जल्दी प्रौढ हो गई और उसका सामान्य स्तर बहुत उच्च है। इस क्षेत्र मे इतने प्रसिद्ध लेखक हैं कि उनके नाम कहाँ तक गिनाएँ। परन्तु नि सन्देह सबसे बडे लेखक है तकषी, जिनकी कहानियाँ आसानी से मोपासाँ या चेखव के समकक्ष रखी जा सकती हैं। अन्य उल्लेखनीय लेखक है . पोन् कुन्न वर्की, के० टी० मुहम्मद, बशीर, पी० सी० कुट्टी कृष्णन्, पोट्टेक्काट, कोबूर, कारूर, सरस्वती अम्मा और ललिताम्बिका अन्तर्जन। वर्की, बशीर, पोट्टेक्काट और कुट्टीकृष्णन् वामपक्षी लेखक कहे जा सकते हैं, ये मुख्यत सामाजिक अन्यायो की समस्याओ को अपना विषय बनाते हैं। कुट्टिकृष्णन् का उपन्यास 'उम्माबु' अत्यत विशिष्ट माना गया है। ललिताम्बिका अन्तर्जन नम्पूतिरि समुदाय के सामाजिक अन्तर्विरोध को व्यक्त करती हैं, और इस कारण उनकी कहानियाँ उन लोगो के एक बन्द हिस्से की सामाजिक जिन्दगी पर प्रकाश डालती है।

---

* इस उपन्यास को साहित्य अकादेमी का १९५७ का पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

नाटक

नाटक के क्षेत्र में बड़ा साहित्यिक कार्य हो रहा है। मलयालम में नाटक को साहित्य समझने की परम्परा रही है। कालिदास और भवभूति तथा अन्य नाटककारों की शैलियों में नाटक को 'दृश्यकाव्य' माना जाता है और यह परम्परा अभी तक मृत नहीं है। नए विषयों में ज्यों-ज्यों रुचि बढ़ती गई, पश्चिमी नाटकों के ढंग के अभिनेय नाटक अधिक लोकप्रिय होने लगे, गोकि जो बहुत-से नाटक मंच पर खेलने के लिए लिखे जाते हैं, उन्हें साहित्यिक गुणयुक्त शायद ही कहा जा सके।

इनमें सबसे प्रमुख हैं सी० वी० रामन पिल्लई का 'कुरुपिल्ला कळरी' (बिना मास्टर का स्कूल)। इस नाटक में नायरों की सामाजिक अराजकता का चित्रण है। इस सामाजिक सुखान्त नाटक में संक्रान्ति-कालीन अनिश्चित स्थिति का बड़ा अच्छा वर्णन मिलता है। ई० वी० कृष्ण पिल्लई दूसरे ऐसे लेखक थे, जिन्होंने ऐतिहासिक नाटक के द्वारा रंगमंच के विकास में सहायता दी। केनिक्करा पद्मनाभ पिल्लई ने ईसा के आदेश पर एक महत्त्वपूर्ण नाटक 'कालिवारिथिले कल्पपादपं' लिखा। एन० कृष्ण पिल्लई और इडामेरी गोविन्दन नायर प्रसिद्ध नाटककार हैं, जिनकी कृतियों में पर्याप्त साहित्यिक गुण हैं। तरुण और सफल नाटक-लेखकों में चेल्लप्पन नायर, के० टी० मुहम्मद और टी० एन० गोपीनाथन नायर हैं।

आलोचना

इस युग में आलोचना-साहित्य में बड़ी प्रगति हुई। पुराने आलोचक प्राचीन संस्कृत-साहित्य-शास्त्र से ही अधिक सम्बद्ध थे और उन्होंने स्वस्थ आलोचनात्मक परम्परा को विकसित करने में बड़ी मदद दी। इनमें पी० के० नारायण पिल्लई और के० रामकृष्ण पिल्लई सर्व-प्रमुख हैं। परन्तु एम० पी० पॉल, मुण्डश्शेरी और ए० बालकृष्ण

पिल्लई के साथ-साथ मलयालम-आलोचना मे नई जान-आ गई। एम० पी० पॉल ने उपन्यासो और कहानियो के रूप का जो अध्ययन प्रस्तुत किया वह तरुण लेखको के लिए पथ-प्रदर्शक बना। जोसेफ मुण्डश्शेरी ने प्राचीन साहित्य के विद्वत्तापूर्ण अध्ययन के साथ अत्याधुनिक दृष्टि-कोण का समन्वय किया और वे आधुनिक विचार-धारा के प्रमुख उद्गाता बने। ए० बालकृष्ण पिल्लई ने मलयालम मे फ्रेंच-साहित्य-रूपो को प्रस्तुत किया और उनकी ही प्रेरणा से मोपासाँ का बहुत बडा प्रभाव केरल के साहित्य पर पडा। कुट्टी कृष्ण मरार और मूर्कोत्तु कुञ्ञप्पा गुप्तन् नायर और अन्य आलोचको ने नये विचारो के विकास मे मदद दी और मलयालम का आलोचनात्मक साहित्य यद्यपि बहुत-कुछ प्रगतिवाद की ओर झुका है, फिर भी उसे सुपठित, सुयोग्य और विश्व की विचार-धारा का उत्तम ज्ञान रखने वाला कहा जा सकता है।

जीवनी, यात्रा-साहित्य इत्यादि

आधुनिक काल मे गद्य-साहित्य की एक और विधा ने बडी प्रगति की। वह है—जीवनी-साहित्य। पी० के० नारायण पिल्लई की जीवनी पी० के० परमेश्वरन् नायर ने लिखी (और उसके बाद उन्होने सी० वी० रामन पिल्लई की जीवनी भी लिखी)। और इसके द्वारा इस क्षेत्र मे मानदड स्थिर किया। केरल वर्मा, राजराज वर्मा और उल्लूर परमेश्वरा अय्यर-जैसे व्यक्तित्वो की पुरानी जीवनियाँ एक तरह से प्रशस्तियाँ और स्तुति-पाठ-जैसी ही थी, उनमे कोई तटस्थता और गुण-दोष-विवेचन का प्रयत्न नही दिखाई देता था। परमेश्वरन् नायर ने जीवनी-लेखन की कला को गम्भीरतापूर्वक लिया और वे न केवल उसमे आलोचना और शोध की भावना लाए, वरन् उसमे साहित्यिक कला-कौशल भी जोडा। इस क्षेत्र मे आई० सी० चाको, ए० डी० हरिशर्मा और डा० के० एम० जार्ज ने यथेष्ट कार्य किया है।

आत्म-कथा-लेखन भी अब शुरू हुआ। इस क्षेत्र मे महान् ग्रथ

है—'स्मरण मण्डलम्' जिसके लेखक पी० के० नारायण पिल्लई आलोचक, कवि और विद्वान् है, और उन्होने वकील और जज के नाते बडी भारी ख्याति पाई थी। पी० के० की आत्म-कथा उनके बचपन मे त्रावनकोर की सामाजिक दशा का पूरा विस्तृत चित्र व्यक्त करती है, इसमे एक महान् लेखक की मँजी हुई शैली का पता लगता है। दूसरे महत्त्वपूर्ण ग्रथ के लेखक ई० वी० कृष्ण पिल्लई है। उनके जीवन मे अनिश्चितता थी और इस कारण यह आत्म-कथा अधिक रोचक बनी। प्रसगवश यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कृष्ण पिल्लई इस शताब्दी के एक प्रसिद्ध हास्य-लेखक माने जाते है। हास्य-लेखन मे दूसरा बडा नाम सजयन (एम० आर० नायर) का है। का० मा० पणिक्कर की 'आत्म-कथा', सी० केशवन की 'जीवित-समाम्' और के० पी० केशव मेनन की 'कार्षिञ कालगल' का भी उल्लेख इस प्रसग मे आवश्यक है।

प्राचीन काल से ही मलयालम भाषा यात्रा-साहित्य के लिए प्रसिद्ध रही है। एक ईसाई पादरी ने यूरोप-यात्रा का अपना वर्णन १८वी शती मे लिखा था। १९वी शती मे यह फैशन चल पडा कि यात्रा-वर्णन पद्य मे लिखा जाय। आधुनिक काल मे साहित्यिक गुणयुक्त यात्रा-ग्रथ के० पी० केशव मेनन का 'बिलात्ति विशेष' है, जिसे एक प्रकार से इग्लैड की रिपोर्ट कहना चाहिए, जब वे विद्यार्थी के नाते वहाँ रहते थे। पोट्टेक्काटु ने इस तरह के साहित्य मे विशेषता प्राप्त की। इनके यात्रा-साहित्य मे दुनिया का बहुत बडा हिस्सा हमे देखने को मिलता है, अर्थात् एशिया, अफ्रीका और यूरोप के वर्णन इनके साहित्य मे है। पोट्टक्काटु की दृष्टि मनोरजक वस्तुओ की ओर है और वे सरल प्रसादपूर्ण गद्य-शैली के उस्ताद है। इसी सम्बन्ध मे एक और उल्लेखनीय ग्रथ का० मा० पणिक्कर का 'आपत्करमाय यात्रा' (एक भयानक यात्रा) है। इसमे उनकी युद्धकालीन यात्रा का वर्णन है और 'चैनायिले ओरु यात्रा' (चीन की यात्रा) मे चीन का विस्तृत वर्णन है।

साहित्य का इतिहास

साहित्यिक इतिहास इधर कई वर्षों से विद्वत्तापूर्ण अध्ययन का विषय बना हुआ है। इस दिशा मे सबसे पहला प्रयत्न पी० गोविन्द पिल्लई ने 'मलयाल भाषा चरित्रम्' के जरिए किया था। १९वी शताब्दी के अन्तिम दशक मे उनका यह मलयालम साहित्य का इतिहास प्रकाशित हुआ। तब से अब तक इस विषय मे बराबर शोध-कार्य हो रहा है और प्राचीन कृतियो पर तथा विस्मृत लेखको पर बहुत-सा प्रकाश डाला जा रहा है। इस दिशा मे सबसे महत्त्वपूर्ण शोध 'लीलातिलक' नामक ग्रथ की थी, जोकि मलयालम भाषा-शास्त्र और अलकार-शास्त्र की रचना है, यह सस्कृत मे १५वी शताब्दी मे लिखी गई थी। 'लीलातिलक' प्राचीनतम मलयालम साहित्य का एक सकलन है, क्योकि इसमे से उदाहरण के लिए प्राचीन लेखको ने बहुत बार मसाला लिया है। ऐसे ग्रथो मे 'उण्णिनीलि सन्देश' नामक १४ वी शती मे 'दूतकाव्यम्' की शैली से लिखा हुआ 'मेघदूत'-जैसा ग्रथ है। दूसरे और प्राचीन ग्रथो मे, जो इधर प्रकाश मे आये है, 'उण्णियाटि चरित' है। यह जानना मनोरजक होगा कि गत दस वर्षों मे 'उण्णिनीलि सन्देश' के पाँच सस्करण प्रकाशित हो चुके है। और 'लीलातिलक' के भी कई समीक्षात्मक सस्करण निकले है। इन सबमे महत्त्वपूर्ण है, इलकुल कुञ्जन् पिल्लई और सूरनाद कुञ्जन् पिल्लई, जिन्होने मिलकर बडे व्यापक क्षेत्र पर कार्य किया है।

साहित्यिक इतिहास के दो बडे लेखक है आर० नारायण पणिक्कर और उल्लूर परमेश्वर अय्यर। नारायण पणिक्कर का 'केरल भाषा साहित्य चरित्रम्'* नामक इतिहास ७ खण्डो मे है। इसमे कई मत ऐसे है, जिनके बारे मे विवाद हो सकता है, फिर भी यह विद्वत्तापूर्ण ग्रथ है। परमेश्वर अय्यर के ग्रथ 'केरल साहित्य चरित्रम्' का प्रकाशन

*साहित्य अकादेमी ने १९५५ में, मलयालम में १९४७ के बाद से प्रकाशित सर्वोत्तम ग्रथ का पुरस्कार इसे दिया है।

ट्रावनकोर विश्वविद्यालय ने लेखक की मृत्यु के बाद अपने हाथ मे ले लिया और यह अभी पूरा नही हो पाया है। यह विशेपत मलयालम का ही इतिहास नही, केरल का भी इतिहास है, क्योकि इसमे सस्कृत मे लिखनेवाले केरलीय कवियो का वर्णन भी है। वडक्कुकूर राजराज वर्मा का 'केरल सस्कृत साहित्य चरित्रम्' यद्यपि बहुत विस्तृत है और उसमे की तिथियाँ अविश्वसनीय है, फिर भी वह एक महत्त्वपूर्ण प्रथमकार्य है।

भाषा-शास्त्र, इतिहास इत्यादि

भाषा-शास्त्र और मलयालम से सम्बद्ध अन्य शोध-कार्यो ने आधुनिक काल मे बडी प्रगति की है। ए० आर० राजराज वर्मा और अट्टूर कृष्ण पिषारैडि ने इस क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण जमीन तैयार की। डॉ० के० गोविन्दराम ने भाषा-शास्त्र का अध्ययन प्रस्तुत किया और मलयालम मे अन्य भाषाओ से लिए गए शब्दो पर उन्होने उल्लेखनीय शोध-कार्य किया। इस दिशा मे दूसरा महत्त्वपूर्ण योगदान डॉ० के० एम० जार्ज ने दिया। 'रामचरितम्' मे शब्द-रचना का उनका अध्ययन मलयालम भाषा के स्वतत्र आत्म-विकास पर काफी प्रकाश डालता है। डॉ० एस० के० नायर ने केरल के लोक-नाट्य और वीर-गाथा साहित्य का सग्रह किया और यह सग्रह बोली हुई भाषा के अध्ययन और मध्य-युग के सामाजिक जीवन के प्रतिबिम्ब के नाते बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इतिहास मलयालम साहित्य का सबसे उपेक्षित अग है। के० पी० पद्मनाभ मेनन के दो खण्डो के 'कोची राज्य चरित्रम्' को छोडकर कोई भी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक रचना इस भाषा मे नही है। सी० अच्युत मेनन द्वारा अग्रेजी मे लिखित द कोचीन स्टेट मैनुअल' साथ ही साथ प्रामाणिक रूप से मलयालम मे भी रूपातरित होता रहा। इलमकुलम कुञ्जन पिल्लई का 'केरल इतिहास के कुछ अँधेरे पन्ने' और डॉ० गोदवर्मा की 'आरम्भिक ताम्रपत्रो के अध्ययन' केवल यही उल्लेखनीय रचनाएँ है।

पत्र-पत्रिकाएँ

मलयालम साहित्य की प्रगति मे पत्र-पत्रिकाओ का विशेप महत्त्व-पूर्ण योग रहा है। इस शताब्दी के आरम्भिक काल मे 'मलयालमनोरमा' कण्डत्तिल वर्गीस मप्पिल्लइ ने शुरू की और उसके द्वारा साहित्य को प्रोत्साहन दिया गया। साहित्यिक रचनाओं के लिए स्तम्भ खुले थे और मनोरमा ने केरल मे सबसे पहली साहित्यिक सभा बुलाई, जिसका नाम 'भापा पोपिणी सभा' था। इस प्रकार साहित्यिक आन्दोलन को बडा प्रोत्साहन मिला। उन्होने 'भाषा पोषिणी सभा' नामक एक साहित्यिक पत्रिका भी शुरू की, जो कि रचनात्मक साहित्य का माध्यम थी। 'विद्या विनोदिनी' और 'रसिक रजनी' नामक दूसरे महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पत्र कुछ विद्वानो के दल ने त्रिचूर से शुरू किए। 'आत्म पोषिणी' के सम्पादक कुछ दिनो के लिए वल्लत्तोल थे। 'मगलोदयम्' की प्रमुख आत्मा है अप्पन तम्पुरान्। ऐसी साहित्यिक मासिक पत्रिका का एक उत्तम प्रयोग, जो कि केवल कविता के लिए हो, करीब २५ वर्षो के लिए वी० के० कृष्ण वारियर के सपादन मे चलता रहा। इस पत्रिका का नाम 'कवन कौमुदी' था। इस युग का ऐसा शायद ही कोई कवि हो, जिसने इसमे न लिखा हो। 'कौमुदी' के द्वारा बहुत-से तरुण लेखको को प्रथम अनुभव मिला। वल्लत्तोल, उल्लूर, शकर कुरुप और अन्य लेखक इसमे बराबर लिखते रहे और 'कौमुदी' ने साहित्य मे अपना स्थान बनाया, क्योकि उसमे पहली बार कई उच्चकोटि की रचनाएँ प्रकाशित हुई, उदाहरणार्थ वल्लत्तोल की 'विलास लतिका', जो कि बाद मे एक क्लासिक बन गई। समस्त केरल साहित्य परिषद ने विशुद्ध साहित्यिक लेखो की एक पत्रिका प्रकाशित की और इसमे इतिहास, साहित्यालोचन तथा प्राचीन ग्रथो पर अनेकानेक निवन्ध प्रकाशित हुए।

तीसरे दशक मे न केवल मासिक पत्रिकाओ ने साहित्य को आकार दिया, बल्कि साहित्यिक साप्ताहिक भी शुरू हुए, जो दैनिक पत्रिकाओ के कार्यालय से निकलते थे। कोषीकोड का 'मातृभूमि' साप्ताहिक और

कोल्ल का 'मलयाल राज्य' तरुण लेखको का प्रमुख व्यासपीठ बन गया। इनका प्रचार अधिकाधिक सख्या मे होने लगा और लेखक साहित्यिक पत्रिकाओ की अपेक्षा पाठको की कही बडी सख्या तक पहुँचने लगे।

इस सर्वेक्षण को समाप्त करने से पहले अनूदित साहित्य का उल्लेख करना चाहिए। पहले अनुवाद सस्कृत से होते थे। वस्तुत इस शताब्दी के प्रथम दशक तक मलयालम मे सस्कृत के सभी प्रमुख श्रेष्ठ ग्रथ अनूदित हो चुके थे। आरम्भिक युग मे अग्रेजी से अनुवाद किया हुआ साहित्य प्रसिद्ध क्लासिको का था। शुरू से ही बगाली के जो अनुवाद मलयालम मे होते थे, वे अग्रेजी की मार्फत थे। बकिमचन्द्र चटर्जी की कृतियाँ सब प्रकार के पाठको को अच्छी लगती थी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर को साहित्य के क्षेत्र मे बडा गौरव मिला। उसका प्रतिबिम्ब बगाली से अनुवाद की एक नई लहर मे मिलता है।

प्रथम महायुद्ध के बाद जब कि लोगो की रुचि व्यापक होने लगी, फ्रेच, रूसी और अन्य भाषाओ के श्रेष्ठ ग्रथो के अनुवाद मलयालम मे छपने लगे। यद्यपि कई रचनाएँ सीधी मूल से अनूदित नही होती थी, फिर भी तरुण लेखको के मन को आकार देने मे उनका प्रभाव कम नही मानना चाहिए। विशेषतः नालाप्पाट नारायण मेनन का 'ले मिजराब्स' का अनुवाद, गाय द मोपासाँ की कहानियो का ए० बालकृष्ण पिल्लई द्वारा किया गया अनुवाद, टाल्सटाय के 'रिसरेक्शन' का सी० गोविन्द कुरुप-कृत अनुवाद। राजनैतिक श्रेष्ठ ग्रथ, जैसे महात्मा गाँधी के 'सत्य के प्रयोग' और जवाहरलाल नेहरू की 'आत्मकथाएँ' मलयालम अनुवाद मे क्लासिक बन गई। दूसरे स्रोतो से मलयालम ने बडा बल पाया। फिट्जजेराल्ड के 'उमर खय्याम' के मलयालम मे सात अलग-अलग अनुवाद हुए, जिसमें एक जी० शकर कुरुप का है और दूसरा का० मा० पणिक्कर का। पवित्र कुरान का मलयालम मे अनुवाद एक प्रसिद्ध मुस्लिम अनुवादक ने किया है। वल्लत्तोल बडे भारी अनुवादक रहे है। वाल्मीकि रामायण, पाँच पुराण, कालिदास का 'शाकुन्तल', वत्सराज के

सब नाटक, भास के छह नाटक, हाल की गाथासप्तशती (प्राकृत से) और अन्त मे समूची 'ऋग्वेद सहिता'* अकेले वल्लत्तोल ने मलयालम पद्य मे अनूदित की है। इस क्षेत्र मे पाणिनि के सस्कृत व्याकरण का श्री आई० सी० चाको कृत अनुवाद और भाष्य† एक उल्लेखनीय योगदान है।

अन्त मे एक महत्त्व की बात पर जोर देना चाहिए। इस शताब्दी के आरम्भ मे साहित्य एक वर्ग-विशेष की वस्तु थी। उच्च वर्ग मे और राज-दरबारी सामन्त और अमीर वर्ग मे ही साहित्य की रुचि थी और वही वह पनपता था। इस काल के आरम्भ मे केरल वर्मा, राजराज वर्मा, कुञ्ञिकुट्टन् तम्पुरान् और अन्य महान् व्यक्तियो का शासक-परिवार से गहरा सम्बन्ध था। धीरे-धीरे लेखको का क्षेत्र विस्तृत होने लगा। १९१५ से १९३६ के बीच साहित्य मध्यम वर्ग की वस्तु बन गया, अधिकतर अग्रेजी पढे-लिखे लोगो तक ही साहित्य सीमित था जिनकी सामाजिक इच्छाएँ और आर्थिक वृत्तियाँ साधारणत आत्मसतोष वाली थी। कुमारन् आशान् एकमात्र अपवाद थे, जिन्होने सामाजिक अन्याय के विरुद्ध विद्रोह किया। राजनीतिक स्वतत्रता के पक्ष मे कुछ लेखको ने आवाज उठाई। बीसवी शती के तीसरे दशक मे यह स्थिति आमूल बदल गई। अब साहित्य ने महलो से छुट्टी ले ली, विलासी मध्यम वर्गीय घरो से वह विदा हो गया और गरीब, दमित और शोषितो के बीच रहने लग गया। साहित्य जन-साधारण की वस्तु बन गया। केरल मे प्राय सब लोग पढे-लिखे है, कम-से-कम छोटी उम्र के लोगो के बारे मे तो यह बात सही है ही कि भारत मे सबसे अधिक साक्षरता का प्रतिशत यहाँ है, अत यह सही आशा की गई थी कि साहित्य जन-साधारण की वस्तु बन जाता। आज सभी वर्गों और जातियो का प्रतिनिधित्व मलयालम के तरुण सृजनात्मक लेखको मे दिखाई देता है।

---

*साहित्य अकादेमी ने १५ हजार रुपये का अनुदान देकर इसके प्रकाशन में सहायता दी है।

†इसे साहित्य अकादेमी ने १९५६ में पुरस्कृत किया है।

केरल वर्मा के साथ प्राचीन पाण्डित्यपूर्ण रीतिबद्ध शैली और उसका दरवारीपन विनप्ट हो गया और 'मयूर सदेशम्' का सुमधुर सगीत अब हमे स्पर्शित नही करता, पर उसके स्थान पर जो साहित्य आया है वह अधिक ओजस्वी, प्रामाणिक और जन-जीवन से घनिष्ठतापूर्वक सम्बद्ध है ।

मलयालम पर चुने हुए सदर्भ-ग्रथ

रिपोर्ट आफ द फर्स्ट आल-इडिया राइटर्स काफ्रेस, १९४५—सिम्पोजियम आन माडर्न लिटरेचर्स खड, मलयालम पर निबध

शिपलेज इन्साइक्लोपीडिया आफ वर्ल्ड लिट्रेचर—मलयालम पर निबध

ए प्राइमर आफ मलयालम लिट्रेचर—टी० के० कृष्ण मेनन

क्वेस्ट ऐड अदर पोएम्स—जी० शकर कुरुप

टियर ड्राप्स—नालप्पट नारायण मेनन

मेरी मैगडलीन—वल्लत्तोल नारायण मेनन

रामचरितम् ऐड द स्टडी आफ अर्ली मलयालम—डा० के० एम० जार्ज

संस्कृत

वे० राघवन

प्रास्ताविक

सस्कृत भारत की प्राचीन श्रेष्ठ भाषा है । इसका इतिहास चार हजार वर्ष पुराना है । इसका आरम्भिक साहित्य 'ऋग्वेद' की ऋचाओ मे मिलता है । भारतीय-यूरोपीय साहित्य के प्राचीनतम और सबसे विशाल अवशेष इन ऋचाओ मे है । सस्कृत की प्राचीनता तो सर्वविदित है ही, उसकी परम्परा और सरणि भी कम महत्त्वपूर्ण नही है । जिस उच्चारण-पद्धति और जिन स्वराघातो से वैदिक ऋषियो ने मत्र-पाठ किया था, आज भी उसी उच्चारण और स्वर-पद्धति से मन्त्र-पाठ किया जाता है । जिस माधुर्यपूर्ण शैली मे कालिदास और बाण ने साहित्य-रचना की, उसी शैली मे आज का सस्कृत-रचनाकार गद्य या पद्य लिखता है । वैदिक उपभाषाएँ, लोकप्रिय पुराण-शैली की स्वतन्त्रता, पाणिनि के व्याकरण मे वाड्मय के लिए नियम, आरम्भिक नाटक की शैली आदि उस युग का सकेत करते है जब सस्कृत एक सजीव भाषा थी । जब उसकी उपभाषाओ मे एक साहित्यिक मानदड स्थिर हुआ और आरम्भिक प्राथमिक प्राकृत धीरे-धीरे अधिकाधिक साहित्यिक प्रयोग मे आने लगी, तब भी सस्कृत ने अपना महत्त्वपूर्ण अधिकार बनाए रखा । इस भाषा के एक अधुनातन विद्वान् ने लिखा है कि यद्यपि यह प्रथम दर्शन मे

विरोधाभासपूर्ण लगेगा फिर भी सस्कृत भाषा, सस्कृति और शासन की भाषा के नाते अपनी पूरी विकासावस्था मे उस समय पहुँची जब वह मातृभाषा न रह गई थी।* बौद्ध और जैन धर्मों ने जन-भाषा का उपयोग करना आरम्भ किया। पर वे भी सस्कृत की उपेक्षा न कर सके और उन्हे भी बाद में उसीमे रचना करनी पडी। सस्कृत एक अखिल भारतीय भाषा के नाते सगठित बनी, क्योंकि उसमे एक सामान्य सस्कृति और विचारो की व्यजना थी। इस देश की अधिकतर मातृभाषाओ की जननी सस्कृत थी। यह भाषा देश की एकता का सबसे दृढ सूत्र थी और आज भी है।

पालि और अर्द्धमागधी मे धार्मिक साहित्य के आरम्भिक विकास के बाद शौरसेनी-जैसी प्राचीन प्राकृतो मे साहित्यिक सृजन अधिक हुआ। यही प्राकृत सस्कृत-नाटक मे प्रयुक्त की गई और महाराष्ट्री मे कविता भी विकसित हुई। इतना ही नही कि यह प्राकृत साहित्य सस्कृत के ही ढग पर रचा गया और वह सस्कृत के साथ-साथ ही विकसित हुआ, बल्कि यह भी कि इन भाषाओ के व्याकरण भी सस्कृत मे ही लिखे गए। जब ये प्राकृत भी, अपनी साहित्यिक रीतिबद्धता के कारण स्तरीकृत बनकर विजडित हो गए, तब दूसरी अधिक लोकप्रिय बोलियाँ उनके स्थान पर प्रचलित हुई, ये थी : पहले अपभ्रंश और बाद मे उत्तर भारत की आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाएँ।

प्राकृतो की भाँति ही, दक्षिण भारत की भाषाओ मे भी सस्कृत के प्रभाव से साहित्यिक पुनर्जागरण घटित हुआ। शब्द, व्यजना के रूप और विषय तथा साहित्यिक विधाएँ आदि सस्कृत से इन भाषाओ मे परिव्याप्त होती गई। इनमे से तीन भाषाओ ने सस्कृत के आधार पर अपनी वर्णमाला विकसित की। उन्होने अपने-आपको सस्कृत से उतना अधिक प्रभावित होने दिया जितना कि एक भाषा किसी अन्य भाषा से प्रभावित हो सकती है। दो भाषाओ मे, सस्कृत के पूरे उद्धरण,

* टी० बरो 'द सस्कृत लैंग्वेज', फेबर ऐंड फेबर, लदन, १९५५, पृष्ठ ५७।

बीच-बीच मे उन भाषाओ के थोडे-से शब्द या प्रत्यय-कृदन्त लगाकर, उन भाषाओ की रचनाओ के नाते माने जाने लगे। और दो भाषाओ मे, जैसे जावानी भाषा मे, काव्य-रचना की एक शैली विकसित हुई, और कुछ भाष्य भी गद्य मे लिखे गए। इस शैली को 'मणि-प्रवाल' कहते थे। इसमे कवि सस्कृत और स्थानीय भाषाओ का सुन्दर कलात्मक सम्मिश्रण प्रस्तुत करते थे। वस्तुत स्थानीय भाषाओ के साथ सस्कृत ऐसी घनिष्ठता से विकसित हुई कि सस्कृत ग्रथ अभी हाल तक, अधिकतर प्रादेशिक लिपियो मे ही, तालपत्रो पर या कागज की पाडुलिपियो मे सुरक्षित रखे जाते थे, या छपते भी थे।

सस्कृत ने अपनी भव्यता मे दो और आयाम जोडे। ईसा-पूर्व प्रथम शती के बाद, बौद्ध धर्म के द्वारा वह मध्येशिया और सुदूर पूर्व तक फैली, और ईसा की दूसरी शताब्दी के बाद वह उस हिदू-सस्कृति का माध्यम बनी जो कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशो मे फैली। सस्कृत-महाकाव्यो, नाटको और कविताओ ने इन देशो को एक लिपि और साहित्य दिया, और नृत्य, नाटक, सगीत, और शिल्प-कलाएँ दी। इस प्रकार, न केवल सस्कृत ने समूचे प्रायद्वीप को एकसूत्रता मे बाँधा, बल्कि उसने समूचे सुदूर पूर्व और दक्षिण-पूर्वी एशिया को एक सास्कृतिक अखडता मे जोड दिया।

अपने इतिहास की लम्बी अवधि मे, सस्कृत ने साहित्य, दर्शन, कला, विज्ञान आदि प्रत्येक क्षेत्र मे बडा साहित्यिक कार्य कर दिखाया। यदि केवल परिमाण को ही ले तो यह महान् साहित्य, जिसका केवल एक अश प्रकाशित हुआ है—चूँकि बहुत-सी पाण्डुलिपियाँ ग्रथालयो मे पडी है और बहुत-सा हिस्सा नष्ट हो चुका है—विश्व-साहित्य के एक विलक्षण भाग का प्रतिनिधित्व करता है। यदि उसकी विविधता पर ध्यान दे तो हमे उसमे मानवी क्रिया-कलापो की प्रत्येक कल्पनीय शाखा के विषय मे रचनाएँ मिलेगी। गुण, मौलिकता और अभिव्यक्ति-कुशलता के लिए उसकी दार्शनिक विचार-धाराओ, कविताओ और नाटको का

नामोल्लेख किया जा सकता है, इनमे से कुछ रचनाएँ, जैसे 'उपनिषद्' और 'गीता' भारत की सास्कृतिक परम्परा का एक मूल्यवान अश है, और वे आज वस्तुत. विश्व-विचार-सम्पदा का भाग बन चुके है। दो सस्कृत-महाकाव्यो ने न केवल प्रादेशिक भाषाओ मे बडा साहित्य निर्मित किया बल्कि उसमे व्यक्त चरित्रो ने राष्ट्रीय आदर्श भी बनाया। कालिदास और शूद्रक की कविता तथा नाटक आज भी इन क्षेत्रो मे भारत की श्रेष्ठतम उपलब्धियाँ मानी जाती है। बोल-चाल की भाषाओ मे साहित्यिक कार्य कुछ विशेष क्षेत्रो मे ही अधिक बढा, जैसे धर्म, गीत और महाकाव्य मे। साहित्यिक समालोचना, तर्क-शास्त्र, अध्यात्म-विद्या, चिकित्सा, कला, विधि, खगोल, गणित इत्यादि विषयो पर अधिकतर ग्रथ सस्कृत मे ही लिखे गए। यदि किसी प्रमुख प्रादेशिक भाषा मे ही किसी लेखक या वक्ता की भाषा का विश्लेषण किया जाय, तो यह पता चलता है कि जहाँ भी वह विचार के उच्चतम स्तर को छूता है, वही उसकी शब्दावली सस्कृतमयी हो उठती है। कितना भी प्रादेशिक साहित्य विकसित हुआ हो और किसी भी लेखक की स्थानिक भाषा मे जो भी महत्ता रही हो, न तो वह साहित्य और न वह लेखक ही सस्कृत की परम्परा की बिलकुल उपेक्षा करके चल सका। सस्कृत की परम्परा से वह निरन्तर स्फूर्ति प्राप्त करता रहा है। इधर सारे देश मे जो आत्मिक जागरण हुआ और उसने नवजीवन की जो चेतना निर्मित की, उसका बहुत-सा श्रेय भारत के भूतकालीन वैभव के नवीन बोध को है। इस चैतन्य का मूल आशय सस्कृत की परम्परा के पुन. भान से सबद्ध है। इसलिए बहुत हद तक, नवीन रचनाओ के पीछे जो भावना रही है वह सस्कृत की ही है, चाहे उनका माध्यम स्थानीय भाषा ही रही हो।

प्राचीन सस्कृत-साहित्य अपनी विविधता और रूप-समृद्धि की दृष्टि से महान् है। यदि ललित साहित्य को ही ले. तो सस्कृत मे महा-काव्य, खड-काव्य और स्फुट कविता का अच्छा विकास हुआ। उसमे जहाँ वीर-काव्य, वर्णनात्मक काव्य और गीतात्मक काव्य मिलता है,

वही विचार-प्रधान, नीतिपरक, ऐतिहासिक और वर्णनात्मक रचनाएँ भी मिलती है। सस्कृत-कविताओ मे छन्द-सौदर्य की विलक्षण विविधता दृष्टिगोचर होती है। गद्य कालो के उत्थान-पतन के कारण भाषा की सगीतमयी सम्भावनाओ का विकास हुआ। इसमे गद्य और पद्य दोनो का मिश्रित चपू रूप भी विकसित हुआ। नाटको मे सस्कृत-कवियो ने कई प्रकार के रूपक दिये, नायक-प्रधान नाटक, सामाजिक प्रकरण, लम्बे नाटक और छोटे नाटक, एकाकी, प्रहसन, स्वगत-भाषण, ऐतिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक और पौराणिक रूपक इत्यादि। बाद के काल मे, सस्कृत-रगमच भी विकसित हुआ और कई गौण प्रकार के नृत्य-नाटक भी उसके साथ-साथ लिखे तथा खेले गए। सबसे ऊपर, रस-सिद्धात जो कि भारतीय सस्कृति का, धर्म की ही भाँति, एक सूत्र था, अपने ध्वनि और औचित्य के सिद्धान्तो के साथ, सस्कृत अलकार-शास्त्र की एक बडी देन थी। इससे बढकर प्रादेशिक भाषाओ मे कोई सिद्धात प्रतिपादित नही किया गया।

जीवित भाषा

इस सबसे यह नही मानना चाहिए कि सस्कृत ने अपने-आपको एक ऊँचे अधिष्ठान पर अवस्थित कर लिया। उसने एक प्राचीन निश्चित मानदड का अनुकरण किया और परपरित साँचो मे ही वह ढलती गई। सस्कृत-साहित्य के लबे इतिहास और उसके समृद्ध तथा विविधतायुक्त विकास का विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि उसमे कितने परिवर्तन घटित हुए और देशी भाषाओ से उसने कौन-से प्रतिप्रभाव ग्रहण किये। उच्चारण और शब्द-रचना मे, शब्द-भडार एव वाक्य-रचना मे, सस्कृत पर उससे निकली हुई प्राकृतो का प्रभाव पडा है, और सस्कृत-परिवार से भिन्न परिवारो की भापाओ का भी असर पडा है। कविता के छन्दो और अलकारो मे, विषय और मूल कल्पनाओ मे, रोमास और वर्णनो मे, मच के नृत्य-नाट्यमय उपरूपको मे जहाँ उसने विभिन्न

प्रादेशिक भाषाओं से बहुत-सा प्रभाव ग्रहण किया, वहाँ प्रादेशिक परम्पराओं और रूपों से उसका मिलन हुआ। संस्कृत ने अपने उदार दृष्टिकोण से अपना सर्वोत्तम अंग दूसरों को दिया और उनसे लिया भी। संस्कृत सदा पंचशील के 'जियो और जीने दो' के आदर्श में विश्वास करती रही। उसने अपने भीतर प्रादेशिक संस्कृतियों के सौंदर्य-तत्त्व आत्मसात् कर लिए। संस्कृत की विशेषता यह है कि उसका विकास भारत के सब हिस्सों में हुआ। अपनी विशेष प्रतिभा से वह वही कार्य चुपचाप करती रही, जो आज, हमारे संविधान के अनुसार राष्ट्रभाषा बनने के लिए हिंदी को करना चाहिए—यानी अपने-आपको विविध प्रदेशों द्वारा विकसित होने देना, और प्रादेशिक भाषाओं में जो मूल्यवान बातें हैं, उन्हें ग्रहण करना।

संस्कृत के लेखक अपने-आपको समकालीन घटनाओं के घनिष्ठ संपर्क में रखते थे, और जो भी नई सामग्री उन्हें मिलती थी, उसका पूरा उपयोग करते थे। आरम्भिक अवस्था में, यूनान और रोम का प्रभाव था, जैसे खगोलविद्या में। इधर के काल-खंड में, मुगल काल में, संस्कृत के लेखकों ने फारसी सीखी, फारसी-संस्कृत के कोश बनाये और फारसी तथा अरबी से संस्कृत में अनुवाद भी किये। संस्कृत वाले कभी भी अलग दुनिया में नहीं रहते थे, परन्तु वे अन्य प्रभाव इस प्रकार से आत्मसात् करते थे कि अपनी विशेषता रखकर भी वे विभिन्न तत्त्वों को अपने भीतर समा लेते थे। यदि परवर्ती इस्लामी संपर्क उन आरंभिक मध्य-पूर्वी संपर्कों के ही पुरस्सरण थे, जो खुसरू नौशेरवान (५३१-५७९ ईस्वी) से शुरू हुए थे और खिलाफत के दिनों में और भी मजबूत बने, जब कि संस्कृत के ओषधि और गणित के ग्रंथ अनूदित होकर पश्चिम में ले जाए गए, तो आधुनिक काल के यूरोपीय संपर्कों को प्राचीन भारत के एथेन्स, अलेक्ज़ेण्ड्रिया और रोम के साथ बौद्धिक सम्पर्क का पुनर्नवीकरण कहा जा सकता है।

आधुनिक काल में भारत और यूरोप का संपर्क दोनों भूखंडों के

लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण रहा है। पश्चिम ने सस्कृत की खोज की, जो कि पुनर्जागरण के समय से यूरोपीय विचार-धारा मे सबसे सार्थक घटना कही जा सकती है। जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है, सस्कृत की यह खोज दो प्रकार से प्रभावशाली सिद्ध हुई। एक ओर जहा आधुनिक शिक्षा-प्राप्त भारतीय अपनी सास्कृतिक परम्परा के मूल्यो को नये सिरे से पहचानने लगे, और पश्चिम के प्राच्यविद्याविदो ने भारत मे साहित्यिक तथा सास्कृतिक पुनर्जागरण निर्मित किया, वहाँ दूसरी ओर पश्चिमी विचार और जीवन की पद्धतियो ने परपरित सस्थाओ और ज्ञान मे परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ की। सस्कृत की खोज आधुनिक तथा रूढिवादी दो पद्धतियो मे बँट गई। इस प्रकार के अध्ययन की प्रथम पद्धति नये अगरेजी स्कूलो, कालिजो और यूनिवर्सिटियो मे तथा दूसरी पद्धति परपरित टोलो, पाठशालाओ तथा कालेजो मे विकसित होती रही। पश्चिम के साहित्य और विचार-धाराओ का प्रभाव शिक्षा एव शासन के द्वारा स्पष्ट होने लगा। उसकी प्रतिक्रिया दोनो प्रकार के सस्कृतज्ञो पर पडी। फलत आधुनिक यूरोपीय प्रभाव के साथ-साथ सस्कृत-साहित्य एक नई अवस्था मे प्रवेश करने लगा।

पहला प्रभाव तो यह हुआ कि सस्कृत मे जो रचनात्मक कार्य तब तक चल रहा था, उसे एक नई प्रेरणा मिली, परन्तु धीरे-धीरे, अग्रेजी, अखिल भारतीय माध्यम का स्थान लेने लगी, जो कि स्थान पहले सस्कृत का था, और सस्कृत सीखने का माध्यम पहले जो प्रादेशिक भाषाएँ थी, उनके बदले मे अग्रेजी माध्यम बनी। सस्कृत इस प्रकार से दैनिक जीवन और मातृभाषा से दूर होती गई, उसका अध्ययन अधिकाधिक पुरातत्त्व की भाँति होने लगा। जब हम इसका तुलनात्मक अध्ययन करेगे कि अगेजी प्रभाव के प्रथम आघात के समय, सस्कृत के पडित किस उत्साह से सस्कृत की पत्रिकाएँ सपादित करते थे, विदेशी ग्रन्थो के अनुवाद करते थे, उपन्यास और कहानियाँ लिखते थे, तथा आज कैसी विवशता और निस्सहायता की भावना उनमे आ गई है, तो इस

अध-पतन का और सस्कृत के धीरे-धीरे एक सजीव अभिव्यजना के माध्यम के नाते गिरते जाने का स्वरूप हमारे सम्मुख स्पष्ट होता जाएगा। सस्कृत के आश्रयदाता भी, जो सस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन देने के लिए बड़े ज़ोरो से तर्क करते थे, सस्कृत मे मौलिक लेखन को उपेक्षा से देखने लगे। सौभाग्य से अब सस्कृत में साहित्य-रचना की ओर फिर ध्यान दिया जाने लगा है, और आधुनिक शिक्षा-प्राप्त सस्कृतज्ञो में भी इस भाषा को अपने विचारो का माध्यम बनाने और उस रूप मे विकसित करने की इच्छा बढती जा रही है।

ब्रिटिश काल के आरम्भ में, संस्कृत शिक्षा बडे ज़ोरो पर थी, और पुराने सस्कृत पडितो की परम्परा तब तक चालू थी। १९ वी शती में, सस्कृत के पडित या उनके नवशिक्षित पुत्र या प्रपौत्र, बराबर संस्कृत मे लिखते रहते थे। उनमे से जो विशेष अच्छा या अधिक लिखने वाला होता, वह शताधिक ग्रंथो की रचना करता। जब साहित्य के प्रचार की सामान्य पद्धति मुद्रण द्वारा होने लगी, और संस्कृत-प्रकाशन का साधन अच्छी तरह विकसित नही हुआ, तब यह सब साहित्य हस्त-लिखित रूप मे अप्रकाशित पडा रहने लगा। आधुनिक सस्कृत-साहित्य का पूरा वर्णन तब तक नही दिया जा सकता, जब तक कि उसकी अधिकतर सामग्री अप्रकाशित हस्तलिखित पांडुलिपियो में और पहुँच के बाहर है। समकालीन संस्कृत-लेखको मे से अनेक ने ऐसी कविताएँ, नाटक और कहानियाँ लिखी है, जिनके सारे देश में जनता के व्यापक उपयोग के लिए प्रकाशित होने की कोई आशा नही। परन्तु प्रचार के इस अभाव से कोई यह न समझ ले कि सस्कृत में रचनाएँ बराबर होती नही रही है। आधुनिक काल मे बहुत-सा आधुनिक साहित्य उस भाषा मे लिखा गया है; और देश की अन्य भाषाओ की रचनाओ की तुलना मे वह कम नही माना जाना चाहिए।

इस बात की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि संस्कृत साहित्य के इतिहास के प्रसिद्ध ग्रथ उसका विवरणयुक्त वर्णन बारहवी शती तक

लाते है, और बाद की शताब्दियो की कुछ फुटकर कृतियो का उल्लेख करके समाप्त हो जाते है। इस दोष का परिहार कम-से-कम एक लेखक* ने किया है, जिसने भारत के विभिन्न प्रदेशो मे आधुनिक सस्कृत-लेखको और उनकी रचनाओ के विषय मे बडी सामग्री एकत्रित की है। सस्कृत-लेखन के कुछ नमूने उन सस्कृत-पत्रो मे प्रकाशित हुए जो अब अस्तप्राय है, और जिनके पुराने अक अब मुश्किल से ही पाए जाते है। प्रस्तुत लेख जैसे सर्वेक्षण और दो ऐसे ही सिहावलोकन, जो प्रस्तुत लेखक ने किये है,‡ भारतीय साहित्यिको और सर्वसाधारण पाठको को यह आभास देने मे उपयोगी होगे कि इस साहित्य का स्वरूप और विस्तार कितना है। इस प्रकार इसमे उनकी दिलचस्पी बढेगी।

पश्चिम से सम्पर्क

सस्कृत साहित्य मे आधुनिक धाराए विशेष रूप से पश्चिमी साहित्य के सपर्क का परिणाम है। अब जिन प्रमुख रूपो मे यह नयी अभिरुचि अभिव्यजित हुई है, वे है सस्कृत-पत्रिकाओ का प्रकाशन, पश्चिमी श्रेष्ठ ग्रथो का अनुवाद, कहानी, छोटी कविता और उपन्यास का विकास, वर्णनात्मक, कथात्मक और छोटे निबन्धो या लम्बे प्रबन्धो के लिए आलोचनात्मक रूप मे तथा वाद-विवाद और उल्लेख के लिए गद्य का विशेष उपयोग, साहित्य-समीक्षा, रसास्वाद और ऐतिहासिक समालोचना की पश्चिमी ढग पर अभिवृद्धि तथा आधुनिक वैज्ञानिक विचारो का प्रकटीकरण। देश के भीतर जो सस्कृतज्ञ प्रादेशिक भाषाओ मे नवीनतम रचनाए पढते है या स्वय अपनी मातृभाषाओ मे लिखते है, वे उन भाषाओ की अधिक महत्त्वपूर्ण पुरानी या नई कृतियो को सस्कृत मे अनूदित करने लगे। इस प्रकार, वे सस्कृत और प्रादेशिक भाषाओ के सम्वन्ध पुन घनिष्ठ

---

*एम० कृष्णमाचारियर, 'हिस्ट्री आफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर', मद्रास १९३७।

‡ 'माडर्न सस्कृत राइटिग्ज' अडयार लाइब्रेरी बुलेटिन, १९५६, सस्कृत लिटरेचर १७००-१९३७, जर्नल आफ दि मद्रास यूनिवर्सिटी, सेण्टेनरी नबर, १९५७।

बनाने लगे। तीसरी बात यह थी कि देश के सार्वजनिक जीवन में जो नये सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलन हो रहे थे उन्होंने संस्कृत के लेखकों पर अपना प्रभाव डाला, और इस प्रकार संस्कृतज्ञों ने नए रूप में जो साहित्य पैदा किया उसने संस्कृत पूरी तरह से जीवित दिखाई दी। 'जीवित' शब्द यहाँ पूरे अर्थ में प्रयुक्त किया गया है, क्योंकि यह संस्कृत समकालीन जीवन और विचारों की अभिव्यंजना का माध्यम बन गई है।

संस्कृत विद्या के परंपरित रूप चल ही रहे थे। प्राचीन पद्धति में अधीत पंडित लम्बी और छोटी कविताएँ, भजन, नाटक, धार्मिक रचनाएँ, भाष्य और शास्त्रों पर या अन्य विशेष प्रकार की टीकाएँ पुरानी शैली में लिखते जा रहे थे। दक्षिण में अभी-अभी तक भट्ट श्री नारायण शास्त्री-जैसे लेखक हुए जिन्होंने ९३ नाटक लिखे, राधामंगलम् नारायण शास्त्री १०८ ग्रन्थों के रचयिता थे और काव्यकण्ठन् गणपति शास्त्री ने विपुल रचना की है। इसी प्रकार, दूसरे लेखक अन्य विद्या-केन्द्रों में हुए। ऐसी रचनाएँ जिनमें रचयिता की विद्वत्ता और कुशलता छन्द-रचना में व्यक्त होती है, (जैसे चित्रबंध काव्यों में,) अभी भी की जाती हैं।* मैसूर के सी० एन० राम शास्त्री ने १९०५ में एक 'सीता-रावण-संवाद-झरी' लिखा, जिसमें रावण जो छंद कहता है, उसका एक अक्षर कम कर देने से सीता का उत्तर उसी छंद में हो जाता है।† प्राचीन ढंग पर काव्य और नाटकों पर असंख्य भाष्य लिखे गए हैं, विशेषतः जो विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रमों में हैं उन पर तो कई पुराने ढंग के पंडितों ‡

---

*उदाहरणार्थ देखिये डॉ० एस० श्रीनिवासदेशिकाचार्य, मैसूर संस्कृत कालेज मैगजीन, १९५१, मार्च-दिसम्बर; मथुरानाथ शर्मा, जयपुर 'जयपुर-वैभव' (१९४७) —चित्रबंध विभाग।

† निरोष्ठ्य-रामावतारस्तव —लेखक: तातिशैलनिवासाचार्य, तंजौर १९०० : तथा डॉ० एस० श्री निवासदेशिकाचार्य, महाराजा संस्कृत कालेज मैगजीन, मैसूर, १९५१, मार्च-दिसम्बर।

‡ उदाहरणार्थ महामहोपाध्याय लक्ष्मण सूरि मद्रास।

ने और बहुत पढे-लिखे अग्रेजी जानने वाले सस्कृतज्ञो ने ‡ भी टीकाएँ लिखी हैं। दर्शन की विविध शाखाओ मे जिन्होने सिद्धात-स्पष्टीकरणादि रचनाएँ की है, उनमे म० म० अनन्तकृष्ण शास्त्री, जयपुर के मधुसूदन शर्मा और इसी प्रकार बनारस, कलकत्ता, मिथिला और केरल के विद्वानो का उल्लेख किया जा सकता है। यहाँ यह सम्भव नही है कि प्राचीन परपरित ढग से जो विशाल परिमाण पर साहित्य आज भी रचा जाता है, उसका वर्णन विस्तार से दिया जा सके।

ब्रिटिश शासको ने सस्कृत के पडितो को, अपनी शासकीय आवश्यकताओ से प्रेरित होकर, न्याय और कानून के सार बनाने के लिए नौकरियाँ दी। साथ ही ब्रिटिश सम्राटो की प्रशस्तियाँ लिखने के लिए पडितो को प्रलोभन दिया गया। विक्टोरिया, एडवर्ड सप्तम और जार्ज पचम के प्रति भी ऐसी रचनाएँ लिखवाई गई। पडितो ने इन विषयो पर उसी ढग से महाकाव्य लिखे, नाटक भी लिखे, जैसे कि इन कवियो के पूर्वजो ने परमार, चालुक्य या विजयनगर-वशो के विषय मे स्तुति-पाठ लिखे होगे। अग्रेजो के प्रति निष्ठा की ऐसी उमडती हुई बाढ को आज हम महत्त्व नही दे सकते, परन्तु यहाँ यह बात अत्यन्त उल्लेखनीय है कि किसी सस्कृत-काव्य या नाटक के लिए एक नया विषय इस प्रकार से प्राप्त हुआ। यो साथ ही, अग्रेजो का या भारत मे उनकी विजय का, इतिहास भी सस्कृत मे लिखा गया। वस्तुत कुछ रचनाएँ तो इतिहास के रूप मे ही थी। विनायक की 'अग्रेज चद्रिका' या अज्ञातनाम लेखक का 'इतिहास-तमोमणि' इतिहास के आरम्भिक उदाहरण हैं, 'नूतनोदतोष्ठ' (कलकत्ता, १८६९) मिस बर्ड की रचना के आधार पर इग्लैंड का वर्णन है, तजौर के रामस्वामी राजा का 'राजाग्ल-महोद्यान' (कुभकोणम्, १८९४) अग्रेजो के बारे मे काव्य है, परन्तु इसमे प्रसिद्ध भारतीयो की जीवनी भी मिलती है। तिरुमल बुक्कपट्टनम् श्रीनिवासाचार्य

‡ उदाहरणार्थ बम्बई में एम० आर० काले और कलकत्ता में एस० आर० रे, प्रस्तुत लेखक की 'आर्यशतक व्याख्या' और 'आनन्दरगचपूव्याख्या' भी उल्लेखनीय हैं।

ने प्रथम विश्व-युद्ध का वर्णन 'आग्ल-जर्मन-युद्ध-विवरण' मे दिया है। सस्कृत की प्राचीन प्रेम-कविता मे डूबे हुए कवि पर एडवर्ड अष्टम का अपनी प्रिया के लिए त्याग का प्रभाव बहुत गहरा पडा होगा, इसका उदाहरण 'यदुवृद्धसौहार्द्र' नामक ए० गोपाल अय्यगार (मद्रास, १९३७) की कविता है।

इतिहास और जीवनी

स्थानीय राजवशो पर ऐतिहासिक काव्य-लेखन की परपरा चल ही रही थी, परन्तु यहाँ उन वर्णनो का क्रम हमे ध्यान मे रखना चाहिए जो नई ऐतिहासिक भावना से लिखे गए थे और जो हमारे इतिहास को ब्रिटिश शासन-काल तक ले आते है। यह नये ऐतिहासिक वर्णन गद्य और पद्य दोनो मे मिलते है और वे समूचे भारतीय इतिहास के क्षेत्र को या उसके विशिष्ट अश को अपना लक्ष्य बनाते है। इतिहास-दीपिका* पाँच अध्यायो मे टीपू सुलतान के साथ मराठा साम्राज्य के युद्धो का वर्णन देती है। 'भारतेतिहास' (स०सा०प०प०† १९४८—४९) भारतीय इतिहास का एक गद्य-लेखा है। एम० एम० टी० गणपति शास्त्री

---

* प्रकाशन-तिथि अज्ञात।

† निम्न सक्षिप्त चिह्न इस सर्वेक्षण में सस्कृत-पत्रिकाओं के लिए प्रयुक्त किये जायेंगे

स० सा० प० प०—'सस्कृत साहित्य परिषद् पत्रिका', कलकत्ता

स० र०—'सस्कृत रत्नाकर', जयपुर, बनारस

स०—'सहृदय', श्रीरगम्

अ० व०—'अमृत वाणी', बेंगलोर

म० व०—'मधुर वाणी', गदग, धारवाड

उ० प०—'उद्यान पत्रिका', तिरुवाय्यूर, तमिलनाड

म० स० का० मै० मैं०—'महाराजा सस्कृत कालेज मैगजीन', मैसूर

मजू०—'मजूषा', कलकत्ता

स० च०—'सस्कृत चद्रिका', कोल्हापुर

ने 'भारतानुवर्णन' नाम से भारत का इतिहास लिखा है, और रामावतार शर्मा ने 'भारतीयम् इतिवृत्तम्' नामक उसी प्रकार का ग्रथ लिखा है। 'भारतेतिवृत्तसार' जयपुर के लक्ष्मीनाथ शास्त्री ‡ की ऐतिहासिक कृति है। 'भारत सग्रह' मे, काव्यकठम् गणपति शास्त्री ने भारतीय इतिहास का सिंहावलोकन* किया है। 'श्रिया काव्य' † के १६ छोटे सर्गों मे, कवि कृष्णकौर ने सिखो का आरम्भिक इतिहास दिया है। श्रीपाद शास्त्री हसूरकर ने 'भारत-नर-रत्नमाला' में ऐतिहासिक वर्णनो की एक क्रमणिका चलाई थी, और हमे 'सिखगुरु चरित्रामृतम्' (इन्दौर, १९३३) दिया था। सहृ० ने चौथे खड मे महमूद गजनी पर एक ऐतिहासिक कविता छापी थी, जिसका शीर्षक था 'गजनीमुहम्मद-चरित्र'। बाद मे उसी पत्रिका मे चद्रगुप्त, अशोक, सयोगिता आदि ऐतिहासिक व्यक्तियो के छोटे गद्य-वर्णन छपे थे। सहृ० मे १९१४ मे अलैक्जेंडर के भारत-आक्रमण का वर्णन भी मिलता है। अपनी 'सस्कृत चद्रिका' (१९०७) मे प्रकाशित 'स्वदेशीय कथा' मे अप्पा शास्त्री ने भारत के इतिहास से सबद्ध तथ्य निरूपित किए और अग्रेजी शासन की अच्छाइयो तथा बुराइयो की चर्चा की। गोविन्द राजानक ने अपने 'श्री' (श्रीनगर से प्रकाशित) नामक पत्र मे उस 'राजतरगिणी' को आधुनिक काल तक पहुँचा दिया, जिसमे उत्तर कल्हण काल मे तत्कालीन समय तक का इतिहास अकित किया गया था।

प्रसिद्ध व्यक्तियो की जो जीवनियाँ प्राचीन साहित्य मे लिखी जाती थी, उनमे तथ्य और कपोल-कल्पना का मिश्रण होता था। महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो का जीवन काव्यमय और प्रशस्तिपूर्ण शैली मे लिखा जाता था, जिसमे वर्णनात्मक अश अधिक होते थे। जो थोडा-बहुत ऐतिहासिक तथ्य-सग्रह रहता था, वह इनके कारण अस्पष्टतर हो जाता था। नई

‡ देखिये पृ० ४०, 'जयपुर वैभव' की भूमिका, जयपुर, १९४७।

* देखिये पृ० ११, उनके 'उमासहस्र' की भूमिका, सिरसी, उत्तर कर्नाटक १९४३।

† लाहौर, १९३५।

जीवनियो मे, ऊँची आलकारिक शैली के बदले सरल वर्णनात्मक गद्य लिखा जाने लगा और लेखक घटनाओ पर अपना ध्यान अधिक केन्द्रित करने लगे। वे चरितनायक के जीवन और काल के विवरणो पर अधिक वल देने लगे। ऐसे जीवन-वृत्त कई प्रकार के व्यक्तित्वो के बारे मे लिखे गए हैं—भूतकालीन ऐतिहासिक व्यक्ति, प्राचीन, मध्ययुगीन और आधुनिक सत, विद्वान्, राजनैतिक नेता और वर्तमान समय के सार्व-जनिक कार्यकर्त्ता। अन्तिम प्रकार के व्यक्तियो का विचार अलग परिच्छेद मे होगा, अब हम दूसरे प्रकार की जीवनियो का विचार करेंगे। जयपुर के अविकादत्त व्यास ने 'शिवराज-विजय' नाम से शिवाजी पर एक ऐतिहासिक गद्य-ग्रथ लिखा। यह ग्रथ 'सस्कृत-चद्रिका' के ७वे और ८वे खडो मे क्रमश. प्रकाशित हुआ। श्रीपाद शास्त्री हसूरकर ने पृथ्वीराज, शिवाजी और राणा प्रतापसिंह पर गद्य मे लिखा। ('भारत-वीर-रत्नमाला', इन्दौर १९२०, १९२२)। सखाराम शास्त्री ने रानी अहल्यावाई पर एक महाकाव्य रचा (सातारा, १९५१)। उसी काव्य-शैली मे जयपुर (उडीसा) के रामनाथ नन्दा ने जयपुर-राज-वशावली (जयपुर, १९३८) लिखी। इससे भी अधिक मनोरजक 'चालुक्य-चरित' (मद्रास, १९३८) है, जिसमे परवस्तु लक्ष्मीनरसिह शास्त्री ने चालुक्य-शिला-लेखो को एक सुसूत्र ऐतिहासिक वश-विवरण के रूप मे एकत्रित और सुगुफित किया है। वी० ए० लतकर शास्त्री ने 'साहूचरित्र' (कोल्हापुर, १९३९) मे कोल्हापुर रियासत के एक हाल के शासक का जीवन-चरित्र गद्य में लिखा है। 'भारत-रत्न' नाम के छोटे वर्णनो के क्रम मे नागपुर के सस्कृत-पत्र 'भवितव्यम्' ने पाठको को भारत की विभिन्न भापाओ और प्रदेशो के प्रमुख व्यक्तियो का परिचय कराया है। कथा-उपन्यास की रचना के लिए ऐतिहासिक घटनाओ का उपयोग भी किया गया, जैसा कि प्रस्तुत लेख मे निर्दिष्ट एक और विभाग से सिद्ध होगा।

गद्य और पद्य-जीवनियो मे देश के विभिन्न विभागो के सतो के

चरित्र अधिक रचे गए है। अलमेलम्मा मैसूर की एक भद्र महिला है, जिन्होने 'बुद्धचरितामृत' (१९२२ मे) रचा। हसूरकर ने 'भारत-साधु-रत्नमाला' नामक एक माला और चलाई थी, जिसमे वल्लभाचार्य और रामदास की गद्य-जीवनियाँ दी गई थी। श्री चैतन्य और उनके बडे समकालीन अद्वैत आचार्य की जीवनी कालीहरदास वसु ने गद्य मे लिखी है (स० सा० प० प०, १९२८-२९ और १९३८-३९ खड)। ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास और मीरा पर श्रीमती क्षमा राव ने कविताएँ लिखी।* सत्यनारायण पर स० सा० प० प० मे 'सत्यानुभव' नाम से एक वर्णनात्मक लेख मिलता है (१९४६ खड)। राजवल्लभ शास्त्री ने शृङ्गेरी के प्रसिद्ध स्वामी नृसिह भारती पर एक महाकाव्य † लिखा है। कामकोटि के शकराचार्य के जीवन और विजययात्राओ का वर्णन तीन ग्रथो‡ मे है। नये धार्मिक नेताओ मे दयानद पर वामनाचार्य का 'दयानद प्रभाव', अखिलानन्द शर्मा के दो ग्रथ और 'दयानन्द-दिग्विजय' (इलाहावाद, १९१०) आदि पुस्तके है। इधर 'आर्योदय काव्य' नाम से एक बृहत् महाकाव्य २१ सर्गों मे गगाप्रसाद उपाध्याय (इलाहावाद, १९५२) ने प्रकाशित किया है। इसमे लेखक ने दयानन्द के आविर्भाव की एक बडी ऐतिहासिक भूमिका दी है तथा हिंदुओ के पतन और पुनरुत्थान, भारत पर विदेशी अधिसत्ता और स्वतन्त्रता-प्राप्ति का वर्णन किया है। श्रीनगर से प्रकाशित होने वाले पत्र 'श्री' मे कुछ कश्मीरी सतो के जीवन-चरित्र छपे। पी० पचापकेश शास्त्री ने रामकृष्ण परमहस की जीवनी गद्य मे लिखी है (मद्रास, १९३७) और वगलौर के के० एस० नागराज ने 'विवेकानद चरित'*। सगीतज्ञ संतो मे, कर्नाटक सगीत के

---

*१९४४, १९५० खड, १९५३ खड।

† मद्रास, १९३६।

‡ उदाहरणार्थ 'श्री चन्द्रशेखर विजयमहारत्नाकर', लेखक पी० उमामहेश्वर शास्त्री, १९३९।

*अ० व०, अलग से भी, १९४७।

दो प्रसिद्ध सगीत-रचनाकारो त्यागराज और मुत्तूस्वामी दीक्षितार पर भी महाकाव्य रचे गए। उनमे इन सगीतज्ञो की जीवनी, काल तथा कृतियो का वर्णन है। प्रथम जीवनी मुन्दरसेन शर्मा (कुम्भकोणम्, १९३७) ने छापी है; और दूसरी अभी प्रकाशित नही हुई है और वह इन पक्तियो के लेखक की रचना है।

आंध्र के वयोवृद्ध सस्कृतज्ञ काशी कृष्णाचार्य ने 'वाल्मीकि' की कथा सरल गद्य मे लिखी है और उसमे अनेक कथा-प्रसगो, उपकथाओ तथा अन्य रोचक साहित्यिक सामग्री का समावेश किया है (गुन्तूर, १९५७)।

हिन्दूधर्म से वाहर के क्षेत्रो मे, त्रिवेन्द्रम के नीलकठ शास्त्री ने ईसा मसीह की जीवन-गाथा 'यीशुचरितम्' नाम से सस्कृत गद्य मे लिखी है; और गदवाल के श्री गुदे राव हरकरे ने 'कुरान' के पाँच अध्यायो (सी०एच०, १ पी०टी०डी०, इस्लामी सस्कृति, हैदरावाद, १९, आई, १९४५) का अनुवाद किया है।

विद्वानो के जीवन और कृतियाँ भी लिखी गई है। चन्द्रभूषण शर्मा ने 'जीवित वृत्तात' नाम से बनारस सस्कृत कालेज के प० वेचन शर्मा की जीवनी लिखी है (वनारस, १८९०)। नारायण शास्त्री खिस्ते ने 'विद्वत्-चरित-पचक' (वनारस, १९२८) लिखा, इस ग्रथ मे चम्पू के रूप मे वनारस के जिन पाँच प्रमुख महामहोपाध्यायो की जीवनी दी गई है, उनके नाम है—सर्व श्री गगाधर शास्त्री मनवल्ली, कैलाशचन्द्र, दामोदर शास्त्री, शिवकुमार शास्त्री और रामकृष्ण (तात्या) शास्त्री। 'सस्कृत चन्द्रिका' में पुराने और नये विद्वानो के सस्कृत-गद्य-चरित्र प्रकाशित हुए है। म० म० यज्ञस्वामी शास्त्री ने 'त्यागराज-विजयम्' नामक ग्रथ मे अपने नाना की जीवनी लिखी है। उनके नाना का नाम म० म० राजू (त्यागराज) शास्त्री था। वे मन्नरगुडी के थे। यह ग्रथ तजौर से १९०४ में प्रकाशित हुआ। क्षमा राव का 'शकराजीवनाख्यान' (वम्बई, १९३९) विदुषी के पिता, प्रसिद्ध-सस्कृत-शोधक विद्वान्

शकर पाडुरग पडित की पद्यवद्ध जीवनी है। 'हरनामामृत काव्य' (वीकानेर, १९५५) विद्याधर शास्त्री-विरचित अपने पितामह का जीवन-वृत्तात है, जिसमे उनके काल के सस्कृत-आन्दोलन का भी यथा प्रसग वर्णन आ गया है। वीरेन्द्र बहादुरसिंह का 'ब्रह्मर्पिविलास' (लखनऊ, १९५५) एक विद्वान् सत के जीवन और त्याग की गाथा है और उसमे यह ज्ञात होता है कि लेखक ने शास्त्रो का अध्ययन भी किया है। दीनानाथ त्रिवेदी ने प० पुरुषोत्तम दास शर्मा की सक्षिप्त जीवनी लिखी है। डॉ० वी० एम० केंकिणी (वम्बई, १९५०) का 'शिवकैवल्य चरित' लेखक के एक पूर्वज की जीवनी पर आधारित है और उसमे पडित-परिवारो की देशान्तर-यात्रा पर रोचक ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। लेविस राइस-जैसे यूरोपीय प्राच्यविद्याविद् की जीवनी भी सस्कृत मे लिखी गई (पद्मराज पडित, वगलौर, १९०५)।

वस्तुत. आत्मकथा को आधुनिक साहित्य की एक विधा मानना चाहिए।* कोराड रामचन्द्र कवि (१८१६-१९००) ने एक 'स्वोदय काव्य' लिखा है, जो अभी अप्रकाशित है। दुर्गानन्द स्वामी ने 'विद्योदय' मे अपने जीवन पर प्रकाश डाला है। हाल मे ही प्रकाशित कृतियो मे 'ईश्वर-दर्शन' या 'तपोवन-चरित्र' (त्रिचूर, १९५०) है, जिसके लेखक मलावार के स्वामी तपोवनम् है, जिनका देहावसान हाल मे ही उनके आश्रम मे हुआ। यह उत्तम गद्य शैली मे लिखा हुआ ग्रथ है।

जिनके शासन-काल मे राज्यो की सर्वांगीण प्रगति हुई उन सुविद्य भारतीय राजाओ मे से कुछ लोगो को नही भुलाया जा सकता। इनमे प्रथम है—मैसूर के महाराजा स्वर्गीय कृष्ण वोडायार, जिनपर कई कविताएँ म० स० का० मं० मैं० में है।† इनमे की कुछ कविताओ मे राज्य के कई आधुनिक सुधारो, जैसे विजली, कावेरी-बाँध, जोग-जल-

---

* वाण और दण्डी के आत्म-वृत्तों को छोडकर।

† १९२५, रालपल्ली अनत कृष्ण शर्मा, नरसिंहाचार्य निर्गेरियागार तथा अन्य।

प्रपात, कोलार की खाने, हुलिकेरि सुरग आदि के वर्णन है। कोचीन के हिज हाइनेस रामवर्मा पर, जो कि वर्तमान महाराजा के चाचा और सुविख्यात सस्कृत-विद्वान् भी थे, 'रामवर्माविजय'* नामक ग्रथ लिखा गया। 'माला'† कोचीन के वर्तमान राजा पर रची गई। ये भी सस्कृत के बहुत अच्छे विद्वान् थे। इन्होने परपरित शैली मे कई काव्य लिखे है। 'जयपुर वैभव'‡ मथुरानाथ कवि शास्त्री की रचना है, जो कि आधुनिक जयपुर का वर्णन है। उसमे राजवशो, सस्कृत के विद्वानो तथा जयपुर मे रहने वाले विद्वानो के परिवारो का वर्णन है।

आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य

सस्कृत-पाठ्य-क्रम का एक अग संस्कृत भाषा और साहित्य का ऐतिहासिक अध्ययन भी है। पुराने ढग की सस्कृत-पाठशालाओ में भी अध्ययन के पाठ्य-क्रम मे सस्कृत को रखा गया। पडितो के दृष्टिकोण मे ऐतिहासिक और आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य लाना और भी आवश्यक हो गया। इस प्रकार, तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के आधुनिक विज्ञान और विशेषत भारोपीय भाषाओ पर सस्कृत मे गद्य-ग्रंथ लिखे गए। सस्कृत-साहित्य के इतिहास भी रचे गए। राजराज वर्मा ने अपने 'लघु-पाणिनीय'‡‡ मे भारतीय भाषा-विज्ञान के सम्बन्ध मे एक परिशिष्ट जोडा। आर० सामा शास्त्री ने म० स० स० म० म० (१९२५-२६) मे 'भाषा-तन्त्र' लिखा, सहृ० (३) मे 'आर्यभाषा-चरित्र' प्रकाशित हुआ और स० सा० प० प० (१९३५) मे द्विजेन्द्रनाथ गुह चौधरी ने 'देवभाषा-देवनागर-अक्षरयो उत्पत्ति' लिखी। आर० एस० वेकटराव शास्त्री ने 'भाषा शास्त्र प्रकाशिनी'†† पुस्तक लिखी, और एस० टी० जी० वरदाचारियर

---

* लेखक-कुन्नन वारियर, प्रकाशन १९३०

† ए० वी० कृष्ण वारियर, त्रिचूर, १९४८

‡ जयपुर, १९४७।

‡‡ दूसरा सस्करण, त्रिचनापल्ली, १९१३

†† मद्रास, १९३८, बाल मनोरमा प्रेस

ने 'भापा-शास्त्र सग्रह'‡ लिखा। इसी प्रकार सस्कृत-साहित्य के विकास के वर्णन सब शाखाओ मे प्रकाशित हुए। आर० श्रीनिवासराघव ने सहृ० (३) मे 'गीर्वाणभापाभ्युदय' लिखा और 'मित्र गोष्ठी' मे गिरिजाप्रसाद शर्मा ने सस्कृत-कवियो पर गद्य-निवध लिखे। म० स० का० मै० मै० मे राजगोपाल चक्रवर्ती ने 'कवि-काव्य-विचार' लिखा तथा उ० प० मे क्रमश 'सस्कृत ग्रथचरित्रम्' छप रहा है। पी० पी० एस० शास्त्री और के० एल० वी० शास्त्री* ने मेक्डोनाल के 'हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर' से वैदिक साहित्य का वृत्तात अनूदित किया और पजाब विश्वविद्यालय के प्रो० हसराज अग्रवाल ने हाल मे ही उसी विषय पर† दो खडो मे एक अपेक्षाकृत वडा ग्रथ लिखा है। द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री का 'सस्कृत-साहित्य विमर्श' (मेरठ, १९५७) सस्कृत साहित्य का सस्कृत भापा मे लिखित एक अन्य इतिहास है। अनेक पडित और शोध-कार्य मे निरत विद्वान् प्राचीन ग्रथो के शुद्ध पाठो के सम्पादन और भाष्य आदि मे जुटे हैं। उन्होने अपनी भूमिकाएँ और समीक्षा आदि अग्रेजी के बजाय सस्कृत मे ही प्रस्तुत की हैं। इस प्रकार इन ग्रथो का उपयोग करने वालो का क्षेत्र विस्तृत होता गया है। जयपुर के मधुसूदन शर्मा-जैसे पडितो ने सस्कृत मे इन्द्र, चातुर्वर्ण्य, अत्रि और यज्ञ††-जैसे विषयो पर शोधपरक निवध प्रस्तुत किये हैं।

सामाजिक और दार्शनिक आन्दोलन

जिस काल-खड का हम पर्यवलोकन कर रहे हैं, वह सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक क्षेत्रो मे नये आन्दोलन का काल था। भारतीय

---

‡ १९३३, चिट्टिगूरू और मद्रास।

* पालघाट, १९२७।

† लुधियाना, १९५१।

†† इद्रविजय १९३०, चातुर्वर्ण्य शिक्षा १९२७, अत्रिख्याति १९२६, यज्ञसरस्वत १९४६, महर्षिकुल वैभव, १९५६।

जनता ज्यो-ज्यो पाश्चात्य जीवन-पद्धति को अधिकाधिक अपनाने लगी, समुद्र-पार की विदेश यात्राएँ ज्यो-ज्यो अधिक सामान्य बनती गई, हिन्दू रूढियो और रीतियो पर एक ओर पश्चिम के लोग और भारतीय सुधारक ज्यो-ज्यो आलोचना करने लगे (उदाहरणार्थ बाल-विवाह, वैधव्य, जाति-भेद, छुआछूत आदि पर), त्यो-त्यो सनातनी हिन्दू रूढ पद्धतियो से चिपटने लगा। आरम्भ मे पडितो ने सुधारको के आन्दोलन का बडे साहसपूर्वक सामना किया और समुद्र-यात्रा, ऋतु-प्राप्ति के पश्चात् विवाह और विधवा-पुनर्विवाह आदि* के विरोध मे बहुत लेख लिखे। सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र मे आर्यसमाज का आन्दोलन था, जो वैदिक धर्म की सच्ची शुद्धि की ओर समाज को पीछे बुलाना चाहता था। उसने सस्कृत के अध्ययन मे बडी सहायता दी, और उसके विस्तार के लिए बहुत-से पाठ्य-ग्रथ तैयार किये। पडितो ने जो सैद्धान्तिक साहित्य रचा, उनमे दयानन्द सरस्वती के विचारो की समीक्षा भी सम्मिलित है। सनातनियो की ओर से स्वतत्रता-पूर्व और स्वातत्र्योत्तर काल में भी सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र मे कानूनी हस्तक्षेप का विरोध बराबर चलता रहा। ऐसी सस्कृत-पत्रिकाओ मे, जिनका सम्पादन रूढि-वादी सम्पादको के हाथो में था, सुधारो का विरोध प्रकाशित होता रहा। इसका उदाहरण १९५१ के स० र० मे शिवनाथ उपाध्याय का

* उदाहरणार्थ 'अब्धि-नौ-यान-मीमासा', काशी, शेष वेंकटाचल शास्त्री, बम्बई, १९०३, दुर्वृत्तधिक्कृति, स० च० में अप्पा शास्त्री, १९०७; 'विवाह-समय-मीमासा-अब्धियान विमर्शो', एन०एस० अनन्तकृष्ण शास्त्री, १९१३; 'बाल-विवाह-हानि-प्रकाश,' रामस्वरूप, इटावा, १९२२, 'ऋतुमती-विवाह-विधि-निषेध प्रमाणानि', मद्रास १९१७, 'परिणय मीमासा,' के० जी० नटेश शास्त्री, श्रीरगम् १९१३, 'वयोनिर्णय', पी० गजपति शास्त्री, कुम्भकोणम् १९१० । सस्कृत परिषद्, श्रीनगर के पत्र 'श्री' में स्वीकृति के युग, मन्दिरप्रवेश आदि पर धारावाहिक लेख निकले। कुछ उदारमतवादी पण्डित भी थे, जो सुधारकों के साथ चलते थे, उदाहरणार्थ काशीचद्र ने 'उद्धारक चद्रिका' लिखी, जिसमें समुद्र-यात्रा से लौटे हुए व्यक्तियों को धर्म के घेरे में ले लेने की बात थी (आर० के० मिशन इस्टीट्यूट आफ कलचर का बुलेटिन, जून १९५६, पृ० १३२)।

एक छोटा-सा नाटक है, जिसमे दो स्त्रियाँ हिंदू कोड बिल पर वाद-विवाद करती है और यह सिद्ध करती है कि इस प्रकार से भारत के प्रत्येक घर मे एक पाकिस्तान पैदा हो जायगा। कुछ सस्कृतज्ञ ऐसे भी थे जो सुधारो का स्वागत करते थे। इस युग मे समाज-विज्ञान या धर्मशास्त्र के क्षेत्र मे दो बडे उल्लेखनीय ग्रथ प्रकाशित हुए डॉ० भगवानदास का 'मानवधर्मसार' और जोधपुर के म० म० विश्वेश्वरनाथ रेऊ का 'आर्य-विधान या विश्वेश्वर-स्मृति'। प्रथम ग्रथ मे, जिसके कि लम्बे और छोटे दो सस्करण है, और जो देश-भक्ति तथा सास्कृतिक परपरा के प्रति अगाध प्रेम से भरे अनुष्टुप छन्दो मे लिखा गया है, लेखक ने अपने व्यापक ज्ञान के आधार पर भारतीय इतिहास, विभिन्न दार्शनिक विचार-धाराओ और ऐहिक तथा पारलौकिक हिंदू दृष्टिकोण का पूरा विश्लेषण करके जाति, स्त्री, मदिर इत्यादि के विषय मे शास्त्राज्ञाओ का सच्चा अर्थ प्रस्तुत किया है। उन्होने हिंदू-धर्म की अन्य धर्मो से तुलना करके हिंदू राज्यो के उत्थान-पतन की मीमासा की है और यह दिखलाया है कि इस सस्कृति का एक दोप 'सघ-शक्ति' का अभाव है। विश्वेश्वरनाथ रेऊ के एक इतने ही बडे ग्रथ 'आधुनिक स्मृति' मे नवीन वैज्ञानिक भूगोल और इतिहास, आधुनिक स्वच्छता-शास्त्र, सतति-निरोध आदि को अपनाया गया है।

बौद्ध और जैन धर्मो से हिन्दुत्व की रक्षा करने के लिए सस्कृत के दार्शनिको ने विरोधी मतवादो के आध्यात्मिक तर्को का पूरा अध्ययन किया और अपनी रचनाओ के द्वारा एक अविच्छिन्न दार्शनिक परम्परा निरन्तर बनाये रखी। बाद मे, दुर्भाग्यवश पण्डित लोग आपसी लडाई मे शक्ति का अपव्यय करने लगे उदाहरणार्थ, अद्वैतवादी द्वैतवादियो से, भौतिकवादी अध्यात्मवादियो से, एकेश्वरवादी अनेकेश्वरवादियो से, आस्तिक नास्तिको से, और आस्तिको मे भी विभिन्न दल आपस मे खूब लडने लगे। जब कि आरम्भिक सस्कृतज्ञ ने अपने विरोधियो को भी अपनी भाषा, साहित्य और मत-धारा की जानकारी कराने को बाध्य करते

थे और अपनी रचनाओ के पृष्ठो में ही वाद-विवाद करते थे, बाद के पडित यह कार्य पूरी तरह से सिद्ध नही कर सके, जबकि हिंदुत्व को पहले इस्लाम से और बाद मे ईसाइयत से चुनौती * मिली, इसलिए इस दिशा मे कोई साहित्य विकसित नही हुआ। इस दृष्टि से भारतीय दार्शनिक साहित्य समय की माँग के साथ-साथ आगे नही बढ पाया। यह भी एक कारण था कि ज्यो-ज्यो सामाजिक परिवर्तन होते जा रहे थे, सस्कृत का पडित उनके साथ निहत्था लडता रहा, और इसका परिणाम यह हुआ कि वह धीरे-धीरे उस युद्ध मे पराजित होता गया। इसी प्रकार पश्चिम की विचार-धारा का सामना न करके, वहाँ के इतिहास और विकासवाद के सिद्धातो को न मानकर, पण्डित-सम्प्रदाय अपना ही नुकसान कर रहा था। कभी वह वैदिक या अन्य ग्रथो के गलत अर्थो का उत्तर देता, कभी विदेशी पश्चिमी प्राच्यविद्याविदो के द्वारा सस्कृत-साहित्य के सम्बन्ध मे फैलाई गई मिथ्या धारणाओ से जूझता। हिंदू धर्म के भीतर भी, जो नई धार्मिक और दार्शनिक मतावलियाँ चल पडी थी, उनकी ओर सस्कृत साहित्य ने पर्याप्त ध्यान नही दिया, क्योकि विरोधियो द्वारा विचार-मथन या साहित्य-सृजन पर्याप्त मात्रा मे नही मिलता। आर्यसमाज के विरोध मे कुछ फुटकर आलोचनाएँ है, जिनका उल्लेख पहले आ चुका है। मद्रास के साधु-धर्म-मडल ने २४ अध्याय वाली नई गीता के विरोध मे एक सस्कृत-पुस्तिका छापी है। उसका नाम है 'नूतन गीता वैचित्र्यविलास'; और लेखक है 'भगवद्गीता दास' (मद्रास, १९१७)।

क्या इस काल मे कुछ ऐसी भी धाराएँ थी जिन पर रूढिवादी

* एकाध अपवाद इधर-उधर नजर आता है; जैसे 'खिष्ट-धर्म-कौमुदी-समालोचना', लेखक व्रजलाल मुखोपाध्याय (कलकत्ता, १८९४,) जो कि डॉ० बैलेण्टाइन के ईसाई-दृष्टिकोण से हिंदुत्व की आलोचना का खडन था; 'शास्त्र-तत्त्व-विनिर्णय', (उज्जैन, १९५१) जिसकी रचना पडित नीलकठ शास्त्री गोरे ने ईसाई धर्म अपनाने से पूर्व की थी और जो जान म्यूर की हिन्दू-धर्म विरोधी 'माता परीक्षा' का उत्तर था।

पण्डितो ने अपने दार्शनिक मतवादो को प्रतिपादित किया ? हाँ, कुछ पण्डितो और विद्वानो ने साहसपूर्वक अपना जो मौलिक दृष्टिकोण व्यक्त किया वह उल्लेखनीय है। तिरुविशानल्लूर के रामसुब्बाशास्त्री नामक पडित ने, जो कि अपनी मौलिक टीकाओ के लिए प्रसिद्ध थे, अपनी मौलिक व्याख्याएँ लिखी। कभी-कभी वे अपने विचारो को बडी विचित्र स्थिति मे ले जाते, जैसा कि ब्रह्मसूत्र और शाकरभाष्य मे अद्वैत को ह्रस्व बनाने के यत्न मे उन्होने किया है।† इधर हाल मे बंगलोर के वाई० सुब्बाराव ने अद्वैत मे अविद्या के नये दृष्टिकोण को स्पष्ट करना आरम्भ किया है, और शकर को अद्वैतानुयायियो से, और बाद मे यह दर्शन जिस प्रकार का निरा तर्क-जाल बन गया, उससे उबारने का यत्न किया है। इसके लिए उन्होने 'मूलविद्यानिरास' (बंगलोर, १९२९) लिखा, जिसमे एक विधायक कारण—चैतन्य की सभावना का खण्डन है, और बाद मे जब सच्चिदानद सरस्वती के नाम से उन्होने सन्यास ले लिया, तब उसके आगे शकर के 'अध्यासभाष्य' पर 'सुगम' नाम से एक नई टीका लिखी (होले नरसीपुर, १९५५)। के० वेंकट-रत्नम् पन्तुलु ने अपनी 'मार्गदायिनी' नामक कृति मे 'अक्षरसाख्य' नाम से एक नया दर्शन स्थापित किया। गत शताब्दी के अन्त मे अप्पाचार्य (मृत्यु १९०१) ने साख्य-योग-समुच्चय या अनुभवाद्वैत नामक एक नया सर्वधर्मसार स्थापित किया था और अपने विचारो के स्पष्टीकरणार्थ कई ग्रथ भी लिखे थे।*

सहिष्णुता की भावना

सस्कृत-परम्परा का एक भाग है, सहिष्णुता की भावना। जहाँ

† गौरीनाथ शास्त्री ने अपने 'शाकरभाष्यगाभीर्य निर्णय-खडन' (वाणी विलास प्रेस) में इस शकर-मीमासा की आलोचना की है और उस मत का समर्थन वेंकटराघव शास्त्री ने अपने 'भाष्य-गाभीर्य निर्णय मडन' (१९१३) में किया है।

* देखिये 'नया कैटेलोगस् कैटेलागोरम', मद्रास विश्वविद्यालय, १, पृष्ठ १९४-५।

संस्कृत ने अपने तर्क और न्याय के ग्रथो द्वारा विभिन्न मतो के विचारो के विकास मे सहायता की, वहाँ वह इस मूल सत्य पर विशेष ध्यान देने से कभी भी नही चूकी कि विभिन्न पन्थो का ध्येय एक ही है। यह उच्चतम विवेक आधुनिक भारतीय विचार-धारा मे विशेष अर्थ और महत्त्व पाने लगा है ; और इस युग मे जिन्होने सस्कृत-भाष्य लिखे है उन पडितो मे यह भावना भी दिखाई देती है। यह विशेष सतोष की बात है। हम यहा कम-से-कम दो ऐसे ग्रथो का उल्लेख करना चाहते है जिनमे यह भावना विशेष रूप से दिखाई देती है पोल्लाहम राम शास्त्री ने 'चतुर्मत सामरस्य' (कुम्भकोणम्, १९४४) लिखा, जिसमें वेदान्त की चार शाखाओ मे समानता देखी गई थी। इसी ढग का एक और महत्त्व-पूर्ण सस्कृत-ग्रथ म० म० लक्ष्मीपुरम् श्री निवासाचार्य का 'दर्शनोदय' है। यह ग्रथ केवल इसी उद्देश्य से लिखा गया था कि संप्रदायवाद कम हो और परस्पर सामजस्य बढ़े।

नए आन्दोलनो में, आर्यसमाज का सस्कृत के पुनरुत्थन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस विचार-धारा के कारण कई सस्कृत-ग्रथ लिखे गए। ऐसे लेखको में अखिलानन्द शर्मा सबसे अधिक लिखने वाले, प्रतिभाशाली कवि और लेखक है।* इस विचार-धारा के और नये लेखको में हरि-द्वार के ब्रह्ममुनि परिव्राजक है, जिन्होने वेदान्त सूत्रो पर एक नया भाष्य लिखा है, जिसका नाम है 'वेदान्त दर्शन' (होशियारपुर, १९५४)। इसमें प्राचीन भाष्यकारो की पद्धति की आलोचना है। रामकृष्ण-विवेकानन्द-आन्दोलन ने अभी तक केवल कुछ सस्कृत के स्तोत्र† निर्मित किये है। यद्यपि जैसा कि हम आगे बतायेंगे, इस आन्दोलन के दोनो सस्थापक कई साहित्यिक कृतियो के विषय बने है ‡। रमण महर्षि और अरविन्द के

---

* देखिये 'नया कैटेलोगस कैटेलागोरम', पृष्ठ १५-१६—उनकी कृतियों के लिए।

† देखिये 'रामकृष्णसहस्रनामस्तोत्र'—एम० रामकृष्ण भट्ट, बैंगलौर, १९५०।

‡ विवेकानन्द का 'सन्यासी का गीत' सस्कृत में नित्यानन्द भारती ने अनूदित किया।

आश्रमो मे सस्कृत की कई प्रसिद्ध रचनाए लिखी गई। काव्यकठम् गणपति शास्त्री, जो बाद मे वसिष्ठ मुनि कहलाए, बहुत अच्छे कवि थे। वे रमण के शिष्य हुए और उन्होने 'रमण-गीता' लिखी। 'सद्-दर्शन' मे रमण के अद्वैत का सुन्दर छदोबद्ध वर्णन उन्होने किया है। इस पर उनके शिष्य टी० वी० कपालि शास्त्री ने टीका लिखी है। वी० जगदीश्वर शास्त्री ने रमण पर काव्य लिखा, जिसका नाम 'रमण-स्तोत्र' (तिरु-अण्णामलै) है। कपालि शास्त्री बाद मे पाडिचेरी आश्रम मे गए और वहा के प्रमुख सस्कृतज्ञ बने। पाडिचेरी से शास्त्री ने 'साधना-साम्राज्य' (१९५२) नामक अरविन्द की योग-साधना के महत्त्व पर पच्चीस छन्द लिखे, और 'प्राह्लिक स्तव' (१९५४) नामक प्रार्थना-सग्रह लिखा। उनक बृहत्तर ग्रथ है, ऋग्वेद सहिता पर अरविन्द भाष्य के अनुसार लिखी 'सिद्धाजना' टीका* । परम्परित सूत्र शैली मे, उसी आश्रम के अम्बालाल पुराणी ने अरविन्द योग को अपने 'पूर्णयोग सूत्राणि'† मे सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया।

दूसरे सस्कृत-लेखको ने अपने-अपने दृष्टिकोण से अन्य दार्शनिक ग्रथ लिखे है। कुछ सामान्य सस्कृत निबध और पुस्तिकाएँ धार्मिक दार्शनिक विषयो पर मिलती है। प्रसिद्ध शोधकर्ता और विद्वान महा-महोपाध्याय रामावतार शर्मा ने 'परमार्थदर्शन भाष्य' लिखा, जिसमे भारतीय दर्शन के छ परपरागत सप्रदायो के अतिरिक्त, एक सातवे 'दर्शन' का निरूपण किया गया था। दर्शन के विश्वविद्यालयीन प्रोफेसरो में अमरावती के ज्वालाप्रसाद ने अपने 'तत्त्व दर्शन'†† मे नई विचार-धारा व्यक्त की है, जो सूत्र शैली मे रची गई है और विशेष सफल नही है। उनका मत है कि भारतीय दर्शन को आधुनिक वैज्ञानिक विचारो के साथ मिलाया जाय। बडौदा के एम० ए० उपाध्याय ने, जो गाँधीजी के

---

* पाडिचेरी, दो खड, १९५०, १९५१।

† पाडिचेरी, १९५५।

†† मूल और टीका, अमरावती, १९५०।

अनुयायी है, अपने 'ईश्वर-स्वरूप'† में एक ऐसी विचार-पद्धति का विवेचन किया है जो जात-पाँत, छुआ-छूत और पुनर्जन्म इत्यादि में सदेह व्यक्त करती है। 'पूर्ण ज्योति' (१९२९) हृषीकेश के स्वामी पूर्णानद का सामान्यत असाम्प्रदायिक दर्शन-ग्रन्थ है, जो आधुनिक ढग से जाति-पाँति से ऊपर रहकर सबके लिए लागू होता है। इसमे धर्म, वैराग्य, भक्ति, योग इत्यादि की मीमासा है। यह गद्य और पद्य-मिश्रित पुस्तक है। डॉ० सपूर्णानद उत्तरप्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमत्री और सस्कृत के बडे ही समर्थक है। वे सस्कृत मे बोलना और लिखना पसद करते है। 'चिद्विलास'‡ उनके एक दार्शनिक निबध का सस्कृत रूपान्तर है। उन्होने अथर्ववेद के व्रत्यखड पर 'श्रुतिप्तमा' नामक एक टीका भी लिखी है। रामकृष्ण मठ, कालडी के स्वामी अगमानद ने हाल मे ही धर्म पर° एक सस्कृत-प्रबन्ध लिखा है, जिसमे राजनीति और अर्थशास्त्र के प्रसग मे धर्म की मीमासा की गई है।

कालेजो के पाठ्य-क्रम मे यूरोपीय दर्शन का अध्ययन, जिसमें पश्चिमी लेखको द्वारा लिखित तर्क-शास्त्र, मनोविज्ञान और नीति-शास्त्र आते है, कुछ लोगो के मन मे यह इच्छा पैदा करने लगा कि सस्कृतज्ञो के क्षेत्रो मे भी पश्चिम के इन विषयो का परिचय या ज्ञान कराया जाए। इस प्रकार के साहित्यिक कार्य के परिणामस्वरूप विगत शताब्दी के मध्य तक बनारस की 'पडित पत्रिका' ने बर्कले के 'प्रिसिपिल्स आफ ह्यूमन नालेज'† और लॉक के 'एसे कन्सर्निग ह्यूमन अडरस्टैडिग'‡ के सस्कृत-अनुवाद छापे, और विट्ठल ने बेकन के 'नोवम आर्गेनम'* का

---

† बडौदा, १९५१

‡ बनारस, १९५०

° कालडी, १९५५

† 'ज्ञानसिद्धान्तचद्रिका', पडित ओ एस, ८, ९, १०

‡ विद्वद्वर-लोकमद-विरचित 'मानवीय-ज्ञान विषयक शास्त्र', पडित ओ एस १०।

* बेकनीय सूत्र-व्याख्यान, बनारस १८५२। इस प्रकार की और रचनाओं के लिए देखें बुलेटिन, आर०के०एम० इस्टिट्यूट आफ कल्चर, जून १९५६, पृष्ठ १३३-४

सस्कृत अनुवाद किया। डॉ० साम शास्त्री ने म० स० का० मै० मै० (१९२९) में आधुनिक पाश्चात्य तर्क और मनोविज्ञान का वर्णन 'पाश्चात्य प्रमाण-तत्त्व' और 'मानस-तत्त्व' के नाम से किया। इस प्रकार का नवीनतम उदाहरण पाश्चात्य-नीति शास्त्र° पर वृन्दावन के विश्वेश्वर सिद्धांत शिरोमणि द्वारा लिखा हुआ प्रबंध है।

आधुनिक विज्ञान

आरम्भिक काल के संस्कृतज्ञो को आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान को अंग्रेजी न जानने वालो तक पहुँचाने की आवश्यकता जान पडी थी। इस कार्य मे सस्कृत-पत्रिकाओ, जैसे अप्पा शास्त्री राशिवडेकर की 'सस्कृत-चन्द्रिका', सहृ० इत्यादि, ने बडा अच्छा कार्य किया। 'विज्ञान-कुसुम' शीर्षक से स० च० ने सस्कृत के वैज्ञानिक लेखन (यथा 'प्राचम् भूगोल विज्ञानम्', 'ज्योतिष् तत्त्वम्' आदि) का ब्योरा दिया है। १८२३ और १८२८ जैसे प्रारम्भिक वर्षो मे इलत्तूर रामस्वामी शास्त्री और योगध्यान मिश्र ने ज्यामिति पर 'क्षेत्र तत्त्व दीपिका' नामक दो पुस्तके लिखी। सहृ० ने लेख छापे, जिनमे कुछ चित्र भी होते थे, और वे भौतिकी, रसायन, खगोल शास्त्र, प्राणिशास्त्र आदि विज्ञानो पर थे (एन० एस० वा० २ फो०) और उनका शीर्षक था 'पाश्चात्य शास्त्र सार'। अप्पा शास्त्री ने खगोल विद्या पर लिखा। मैसूर के सी० वेंकटरामैया ने 'सनातन-भौतिक-विज्ञान' (मैसूर १९३९) नाम से प्राचीन भारतीय लेखको के वैज्ञानिक ज्ञान का सार प्रस्तुत किया। विट्ठल शास्त्री ने 'पचभूत-पदार्थ' (बनारस, १८५९) मे, हिन्दू शास्त्रो मे वर्णित पचतत्त्वो के रसायन-पक्ष पर लिखा। बंगलौर और मैसूर से 'अंशुबोधिनीसार' नाम से भौतिकी पर भारद्वाज और अन्य ऋषियो के नाम से कहे जाने वाले भाष्य छपे। वैज्ञानिक विषयो पर लिखते समय 'मानवप्रजापतिम्' नामक १६० छन्दो की कविता का उल्लेख भी आवश्यक

°नीति-शास्त्र (पाडुलिपि में)।

है (स० सा० प० प०, फरवरी १९४७ फो०)।

इस कविता मे रवीन्द्रकुमार शर्मा ने विज्ञान की अन्तिम पराजय का वर्णन किया है। एक प्रतिभाशाली तरुण भारतीय जर्मनी मे जाता है। विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करके जब वह वापस लौटता है तब एक ऐसी अजीब नारी कारखाने मे निर्मित करना चाहता है जो उसकी आशाओ की पूर्ति करे। इस कार्य मे वह कदम-कदम आगे बढता है, अन्त मे जब वह उसमे प्राण फूंकता है तो सहसा वह अत्यन्त दुखी हो जाता है। 'सस्कृतम्' नामक साप्ताहिक के (२०-३-५६ और १७-४-५६ के) अको मे, वशगोपाल शास्त्री (राजपूताना) ने दो वैज्ञानिक लघु-कथाएँ लिखी है, जो बहुत सुन्दर शैली मे है। उनके नाम है—'चेतनम् क्व अस्ति' और 'शुक्रलोकयात्रा'। इनमे से पहली कहानी मे जीवन के गुह्य रहस्य का आविष्कार पाने मे विज्ञान की पराजय वर्णित है। विद्याधर शास्त्री ने 'डूंगर कालेज पत्रिका' मे, महाराज परीक्षित और कलियुग पर एक छोटा-सा प्रहसन लिखा कि शुकदेव और महाराज परीक्षित की उपस्थिति के कारण जब कलियुग इस ससार मे अवतरित न हो सका तो उसने अपने विजय-अभियान के लिए आधुनिक विज्ञान और राजनीति की सहायता ली। गणित एवं फलित ज्योतिष और आयुर्वेद पर अनेक ग्रथ सस्कृत में प्रकाशित हो रहे हैं। कविराज गणनाथ सेन ने शरीर-रचना पर 'प्रत्यक्ष शरीर' (कलकत्ता, १९१९) और रोग-निदान पर 'सिद्धान्त-निदान' (१९२२), तथा भूदेव मुखर्जी ने हिन्दू रसायन पर 'रस-जलनिधि' (१९२६) की रचना की। मलाबार और तमिलनाड के आयुर्वेद-विशारदो ने भी इस प्रकार के ग्रथ लिखे है, यथा : पी० एस० वारियार, कीटाणु-सिद्धात पर वी० एन० नायर-कृत 'अनुग्रह-मीमासा' (कालीकट, १९३८); तमिल की आयुर्वेद-शैली पर तिरुचि के नटराज शास्त्री लिखित सस्कृत-ग्रथ 'सिद्ध-वैद्य'; स्वास्थ्य और दीर्घायुष्य पर सर्वश्री के० एस० म्हसकर तथा एन० एस० वात्वे कृत 'स्वास्थ्य वृत्त' (बबई, १९५४), तथा आयुर्वेद की समूची पृष्ठभूमि

पर पूना के सी० जी० काशीकर विरचित 'आयुर्वेद पदार्थ विज्ञान' (१९५३)। अर्थशास्त्र, वाणिज्य, कृषि और पशु-पालन आदि विपयो पर पी० एस० सुब्बाराम पत्तर ने अपनी छोटी-सी पुस्तक 'वर्त' (त्रिचूर, १९५४) मे लिखा। पुरातत्त्व के क्षेत्र मे, केदारनाथ शास्त्री ने 'सिन्धु सभ्यता' पर एक ग्रथ लिखा। प० कुलभूपण ने भी इस विपय पर सस्कृत साहित्य परिपद्, श्रीनगर के मुखपत्र 'श्री' (खड ६, अक ३-४) मे एक निवध प्रकाशित किया है।

सस्कृत-पत्रिकाएँ

सस्कृतज्ञो को प्रथम उत्साह ने जब ऊर्जित किया, उस समय सस्कृत मे पत्र-पत्रिकाएँ आरम्भ करने की आवश्यकता उन्हे जान पडी। सस्कृत-पत्रिकाओ का उल्लेख बहुत ही मनोरजक और नवीन बातो का पता देने वाला है। उस समय न केवल अगणित पत्र-पत्रिकाएँ चली, बल्कि उनमे ऐसी विविध सामग्री मिलती है कि सस्कृत मे नवचेतना फूंकने का महत्त्वपूर्ण कार्य इन पत्रिकाओ ने किया ऐसा भी कहा जा सकता है। बनारस के 'पण्डित' के बाद इस दिशा मे अग्रगामित्व का श्रेय 'सस्कृत चन्द्रिका' और कोल्हापुर की 'सुनृतवादिनी' (प्रारम्भ मे साप्ताहिक) को दिया जा सकता है, जिनके साथी अप्पाशास्त्री राशिवडेकर का सक्रिय सम्बन्ध था। बनारस से निकलने वाली पत्रिकाओ मे, जिनमे से कई अब अस्तगत हो चुकी हैं, 'मित्रगोष्ठी', 'वल्लरी', 'सूर्योदय' (भारत धर्म महामण्डल का मुख पत्र) और 'सुप्रभातम्' (काशी विद्वान् मण्डल का पत्र), 'सस्कृत रत्नाकर' (सस्कृत साहित्य सम्मेलन का पत्र) और 'पण्डित पत्रिका' (अखिल भारतीय पण्डित परिपद् का पत्र) का भी उल्लेख आवश्यक है। 'सूक्ति सुधा' और 'विद्या रत्नाकर' नामक दो और पत्र भी बनारस मे प्रकाशित हुए। हृपिकेश भट्टाचार्य ने लाहौर से 'विद्योदय' आरम्भ किया, आर्यसमाज ने 'आर्यसिद्धात' (इलाहाबाद) शुरू किया, और ब्रह्मसमाज ने 'श्रुतप्रकाशिका' (कलकत्ता) प्रकाशित

की। दक्षिण भारत मे जो पत्र-पत्रिकाएँ चली, उनमें सर्वोच्च सम्माननीय स्थान 'सहृदय' (श्रीरगम्) को देना चाहिए, जिसने बडा उच्च स्तर कायम रखा, और जिसके साथ दो बडे लेखक सम्पादन मे सम्मिलित थे—आर० कृष्णमाचारियर और आर०वी० कृष्णमाचारियर। उस पत्रिका का स्थान तिरुवायरु से निकलने वाली 'उद्यान पत्रिका' ने ले लिया, जिसके सम्पादक डी० टी० टाटाचार्य थे। 'मजुभाषिणी' कांचीपुरम् से निकलती थी, 'ब्रह्म विद्या' चिदम्बरम् से और 'विचक्षण' श्रीपेरुम्बटूर से। रामकृष्ण भट्ट बगलौर से 'अमृतवाणी' निकालते थे, जो अब बन्द हो गई है। पर उत्तर कर्नाटक से जो 'मधुर वाणी' निकलती थी, वह अभी चल रही है और उसका स्तर भी अच्छा है। विविध प्रदेशो मे सस्कृत-पत्रिकाएँ ऐसी निकलती थी कि जिनमे प्रादेशिक भाषाओं के परिशिष्ट रहते थे, यथा सस्कृत-कन्नड मे 'काव्य-कल्पद्रुम' (१८९७) बगलौर से, 'द्विभाषिका' बगाल से, 'भारतदिवाकर' गुजरात से, 'मिथिला मोद' बिहार से, 'बहुश्रुत' वर्धा से। कुछ पत्रिकाएँ अग्रेजी और सस्कृत की मिश्रित थी, जैसे 'लोकानादीपिका' मद्रास से, 'सस्कृत जरनल' पुदुकोट्टा से और 'सस्कृत भारती' बर्दवान से। क० मा० मुशी की सस्कृत-विश्व-परिषद् से जो पत्रिका निकलती है, उसमे अग्रेजी और सस्कृत की सामग्री होती है। अगणित कालेजो की पत्रिकाओ मे, जो कि अनेक भाषाओं मे साहित्यिक सामग्रीयुक्त होती है, कई मौलिक सस्कृत-रचनाएँ प्रकाशित होती रहती है। जिन पत्रिकाओ की अखण्ड प्रकाशन-परम्परा रही है, उनमे 'सस्कृत साहित्य परिषद् पत्रिका' कलकत्ता का उल्लेख आवश्यक है। वहाँ से के० सी० चटर्जी 'मजूषा' चलाते थे। विविध केन्द्रो मे सस्कृत कालेजो से सस्कृत-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई. पट्टाभि सस्कृत कालेज ने 'विज्ञान-चिन्तामणि' चलाया, जिसे पुन्नासेरी नीलकठ शर्मा सम्पादित करते थे। त्रिवेन्द्रम् के महाराजा सस्कृत कालेज से कुछ समय तक 'श्री-चित्र' प्रकाशित होता रहा, और मैसूर से अभी भी एक पत्रिका निकलती है। सरस्वती भवन, काशी और बनारस

सस्कृत कालेज एक उच्च कोटि की पत्रिका 'सरस्वती सुषमा' नाम से प्रकाशित करते हैं। सुदूर हैदराबाद (सिंध) मे 'कौमुदी' छपना था। विहार सस्कृत अकादेमी 'सस्कृत सजीवनम्' प्रकाशित करती थी। 'सस्कृत' (साप्ताहिक) और 'सस्कृत साकेत' अयोध्या मे निकलते है। जयपुर से निकलने वाले 'सस्कृत रत्नाकर' के स्थान पर अब 'भारती' निकलता है। शिमला से 'दिव्य ज्योतिष' नामक एक नये पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ है। दरभगा से 'सुर-भारती' प्रकाशित होता है। सस्कृत विद्वत् सभा, बडौदा 'सरस्वती सौरभ' का प्रकाशन करती है। सस्कृत साहित्य परिषद्, श्रीनगर पिछले कुछ वर्षो से एक त्रैमासिक पत्रिका 'श्री' निकाल रही है, जिसमे मुख्यत निबध रहते हैं। साप्ताहिक 'सस्कृत भवितव्यम्' का विशेष उल्लेख करना चाहिए, यह सस्कृत प्रचारिणी सभा, नागपुर का मुखपत्र है। इसमे जो सामग्री प्रकाशित होती है वह उत्तम होती है, और जिस शैली का उपयोग होता है वह भी उत्तम है। कुछ और पत्र-पत्रिकाएं, जो अब वन्द हो गई हैं निम्न हैं— 'प्रत्न काम्र-नदिनी', 'विद्वत्कला', 'सस्कृत भारती,' 'सस्कृतमहामडल' और 'सस्कृत पद्यवाणी' (कलकत्ता), 'सस्कृत भास्कर' (मथुरा), 'सस्कृत कादवरी', 'विद्योदय' (भरतपुर), 'अमृत भारती' (कोचीन), 'अमर भारती' (वनारस), 'अच्युत' (वनारस), 'शारदा' (इलाहाबाद), 'वेंकटेश्वर पत्रिका' (मद्रास), 'उषा' और 'आर्यप्रभा'। 'सस्कृत रत्नाकर' (जयपुर) के १९१४ के एक अक मे सस्कृत-पत्रो के बीच एक मनोरजक नाटकीय सवाद है 'रत्नाकर', 'विज्ञान चिन्तामणि', 'मजु-भाषिणी', 'सहृदय', 'उषा', 'शारदा', 'आर्य प्रभा', और 'विद्योदय' को पात्र बनाकर एक जगह पर मिलाया गया है और उनसे आपस में वार्ता-लाप कराया है।

इन पत्रिकाओ मे छोटी कविताएँ, छोटी कहानियाँ तथा धारावाहिक कहानियाँ और उपन्यास तो प्रकाशित किए ही गए है, साथ ही निबंधो और सपादकीय टिप्पणियो मे समकालीन घटनाओ, सामाजिक प्रश्नो,

नये सुधारो और परिवर्तनो पर भी लिखा गया है। इन सब विषयो पर सरल गद्य मे चर्चा की गई है। उनमे विषय पर अधिक बल है। इन पत्रिकाओ से इन विषयो का अधिक स्पष्टीकरण हो सका है और उनकी चर्चा आगे वढी है। सस्कृत पत्रिकाओ मे कैसे-कैसे विषयो पर चर्चा की गई थी, इसका कुछ अनुमान इन नमूनो से किया जा सकता है : जर्मनी मे शिक्षा, रिक्शा और रिक्शेवाले की दयनीय स्थिति मे सुधार, भारत मे पशु-धन की वृद्धि, सतति-निरोध, भावी अकाल का खतरा, किसान का भाग्य, अब कैसी शिक्षा की आवश्यकता है, परीक्षा-पद्धति के दोष, भारतवासी और यूरोपीय महायुद्ध, अणु-शक्ति के शातिपूर्ण उपयोग, राष्ट्रीयता और अतर्राष्ट्रीयता, हिन्दू-कानून मे सुधार। उनमे छोटे-छोटे समाचार, चुटकले और स्फुट चर्चा भी होती है। सस्कृत के विकास के विषय मे जो प्रश्न है उनके बारे मे भी बहुत-सा स्थान इन पत्रो मे दिया जाता है। इनमे से कुछ ऐसे भी विषय है जिनके बारे मे अब बहुत बार कहा और लिखा जाता है—यथा सस्कृत राष्ट्रभाषा, सस्कृत का सरलीकरण, सस्कृत शिक्षा की पद्धतियाँ, सस्कृत की महत्ता, सस्कृत की वर्तमान दुर्दशा, सस्कृत विश्वविद्यालय इत्यादि। द्राविड आन्दोलन और ईसाई प्रचार की भी चर्चा रहती है। एक सामान्य भाषा मे विभूतियो के बारे मे लिखकर और प्रादेशिक भाषाओ मे महत्त्वपूर्ण देन देकर, इन पत्रिकाओ ने अतर्-प्रदेश-मैत्री-वर्धन मे और देश के ऐक्य-स्थापन मे बडा योगदान किया है।

निवध

पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित लेखो के साथ-साथ, साहित्य-रूप के नाते निवध भी, अलग से, विकसित हुआ। विभिन्न स्कूलो और कालिजो की कक्षाओ के लिए नये गद्य-ग्रथो की आवश्यकता ने इस साहित्य-रूप को आगे वढाया। जिन्होने ऐसे निवन्ध-सग्रह लिखे है, उनमे श्री हसराज अग्रवाल और श्रुतिकान्त शर्मा के नाम उल्लेखनीय है। 'सस्कृत-प्रवध-

प्रदीप' (लुधियाना, १९५५) मे श्री अग्रवाल ने ऐसे आधुनिक विषयो पर निबंध दिये है, जैसे हाल के वैज्ञानिक आविष्कार, कश्मीर का प्रश्न, अन्न-स्थिति, स्वतन्त्रता के चार वर्ष, ससार के प्रमुख देशो के सविधान, सस्कृत का भविष्य, हिन्दू कोड बिल, भारत का भविष्य और सस्कृत शिक्षा की पद्धति। श्री शर्मा ने अपनी पुस्तक लघु निबंध मणि माला (लुधियाना, १९५५) मे कुछ हल्के-फुल्के विषयो पर भी निबंध लिखे है, जैसे हुक्का, घोडे और साइकिल मे वार्तालाप, फुटबाल-मैच, तीसरे दर्जे मे रेल-यात्रा, धर्म-निरपेक्ष राज्य, सयुक्तराष्ट्र, चुनाव और मित्रता, वाक् पटु, निष्प्रयोजन घूमने का आनन्द, पिकनिक, शौक, क्रीडा-वृत्ति इत्यादि। 'प्रबध-पारिजात' नए-पुराने विषयो पर स्फुट लेखको द्वारा लिखे गए निबंधो का सग्रह है। इसका प्रकाशन हाल मे ही (१९५८) चामराजेन्द्र सस्कृत कालेज, बंगलौर ने किया है, इसके निबंधो मे पचशील, बृहत्तर मैसूर, सतति-निरोध, सयुक्त राष्ट्र, रानी लक्ष्मीबाई, तिलक, गाँधी जैसे आधुनिक विषयो पर निबंध सगृहीत है। 'गल्प-कुसुमाजलि' ऐतिहासिक विषयो पर ऐसा ही एक और निबंध-सग्रह है।

पत्र-साहित्य का विकास विशेष नही हुआ है, यद्यपि यहाँ भी अप्पा शास्त्री ही अगुआ थे, जैसा कि उनके कुछ प्रकाशित पत्र सिद्ध करते है।

यात्रा-वर्णन

प्राचीन सस्कृत-साहित्य मे विशेषकर तीर्थ-यात्रा के रूप मे, यात्राओ का उल्लेख है। आधुनिक काल मे भी, इस प्रकार की कुछ रचनाएँ प्रकाशित हुई है। महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री का 'सेतु-यात्रा-वर्णन' यद्यपि परम्परित शैली मे लिखा गया है, फिर भी उसमे हिन्दू आदर्शो का वर्णन है तथा कई समकालीन विषयो और सामाजिक कुरीतियो का भी उल्लेख है। 'त्रिबिल्वदलचम्पू'* मदुरै के एक वकील वी० एस० रामस्वामी शास्त्री की रचना है। उन्होने अपने अखिल भारत-भ्रमण

* मदुरा, १९३७।

और तीर्थ-यात्रा का वृत्तात इसमे दिया है। इसमे केवल पवित्र तीर्थ-स्थानो का ही वर्णन नही, बल्कि आधुनिक मनुष्य का ध्यान आकर्षित करने वाले विश्वविद्यालयो, सार्वजनिक भवनो और प्राचीन ऐतिहासिक स्थलो का भी वर्णन है। सखाराम शास्त्री ने कोकण† मे अपनी यात्राओ का वर्णन १९२४ मे लिखा। 'श्री' नामक पत्र मे अमरनाथ (खड ५, अक ४) और गाँवो-देहातो की यात्रा के विवरण प्रकाशित हुए और 'सरस्वती-यात्रा' नाम से धारावाहिक रूप मे प्रकाशित विवरण मे ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सास्कृतिक महत्त्व के स्थानो पर प्रकाश डाला गया। इसी पत्रिका के खड १०, अक ३, ४ मे 'शिमला वर्णन' भी प्रकाशित हुआ। एस० पी० भट्टाचार्य की 'उत्तराखण्ड यात्रा'‡ मे हिमालय के तीर्थो का वर्णन है। डॉ० बी० छ० छाबरा के 'न्यगतराजनपदशोभा'‡‡ मे हालैड का वर्णन है, जहाँ उन्होने कुछ समय बिताया था। डॉ० कुन्नन राजा, जो तेहरान मे सस्कृत के प्रोफेसर थे, एक कविता मे पर्सिपोलीस का वर्णन देते है ('अडयार लाइब्रेरी बुलेटिन', दिसम्बर १९५३)। इधर एम० रामकृष्ण भट्ट ने, जो कि बगलौर से 'अमृत वाणी' नामक सस्कृत-पत्रिका का सपादन करते थे और जो कुछ समय के लिए पूर्व अफ्रीका गए थे, उस देश के बारे मे लिखा है। उन्होने वहाँ के अपने अनुभव 'सस्कृत भवितव्यम्'* मे प्रकाशित एक लम्बे पत्र मे दिये है।

साहित्य-समीक्षा

अलकार-शास्त्र के रूप मे सस्कृत मे साहित्य-समीक्षा का व्यापक विकास हुआ। अग्रेजी शिक्षा के बाद, विदेशी आलोचना के नियम

---

† 'ओरिएण्टल लिटरेरी डाइजेस्ट', पूना, खण्ड दो, पृ० १६५ देखें।

‡ कलकत्ता, १९४८।

‡‡ अ० व० बगलौर, १९५३

* श्री भट्ट ने उक्त पत्रिका (२६-६-१९५६) में अफ्रीका की एक कथा भी सस्कृत में प्रकाशित की है।

लगाये जाने लगे, कवि के चरित्र-चित्रण, शैली और सदेश-व्यजना आदि का विचार अधिक होने लगा। तब सस्कृत मे भी यह आवश्यकता अनुभव हुई कि पश्चिमी साहित्य मे प्रचलित ढग की लबी समालोचनात्मक निबध-रचना की जाय। सस्कृत की पत्र-पत्रिकाओ मे इस प्रकार के कई लेख प्रकाशित किये गए, परन्तु इस प्रकार की पुस्तक प्रकाशित करने का प्रथम श्रेय श्री आर० कृष्णमाचार्य को दिया जा सकता है, जो 'सहृदय' का सपादन करते थे। उन्होने 'रघुवशविमर्श'* और 'मेघसदेशविमर्श' नाम से दो पुस्तके लिखी। तिरुचिरपल्ली के ए० वी० गोपालाचार्य ने इस प्रकार के साहित्यिक टीका-लेखन मे विशेषता प्राप्त की। उनकी इस प्रकार की रचनाओ मे एक है, 'सदेशद्वय-सरस्वादिनी'—जिसमे मेघ-सदेश और हस-सदेश की तुलनात्मक समीक्षा है। मद्रास सस्कृत अकादेमी विगत तीस वर्षो से सस्कृत-कवि दिवस मनाने के अतिरिक्त सस्कृत-कवियो और नाटककारो की रचनाएं पढने और उनकी आलोचनात्मक समीक्षाएँ करने को प्रोत्साहन देती रही है।†

लघु कथा

सस्कृत मे जो नये परिवर्तन आ रहे थे, वे सर्वाधिक छोटी कहानी मे दृष्टिगत होते हैं। छोटी कहानी सस्कृत के लिए नई नही है, परन्तु जिस रूप मे वह अब सस्कृत मे लिखी जाती है, उस पर पश्चिम का ऋण स्पष्ट है। आधुनिक काल के आरम्भ मे, सस्कृत पत्रिकाओ मे आधुनिक ढग की जो कहानियाँ प्रकाशित होती रही है, उनकी सख्या अब बढ रही है और नागपुर‡ तथा मद्रास मे सस्कृत लघुकथा-

---

* काव्यगुणादर्श सीरीज, श्रीरगम, १९०८, १९१५।

† इस प्रकार के कई निबध 'जर्नल आफ ओरियटल रिसर्च', मद्रास मे प्रकाशित हुए हैं।

‡ नागपुर-प्रतियोगिता की कहानियों मे से आठ का प्रकाशन 'सस्कृत भवितव्यम्' के २४-८-१९५४ के विनोदाक में हुआ है।

स्पर्द्धाएँ भी की गई है। इससे स्पष्ट है कि सस्कृत मे ऐसे अगणित लेखक है जो इस नये रूप मे सम्यक् रचना कर सके है।

आधुनिक कहानी की रचना से पहले लेखको ने अनुभव किया कि सस्कृत के विद्यार्थियो को सरल वर्णनात्मक गद्याशो को पठनार्थ देना आवश्यक है और इस उद्देश्य से बहुत-सा कहानी-साहित्य निर्मित किया गया। ए० वेकट राम शास्त्री ने 'गद्य मे सौ लोकप्रिय कहानिया और लोक-कथाएँ' (मद्रास, १८९८) लिखी, श्वेतारण्यम नारायण याजवन के 'गद्य काव्य' मे गद्य-कहानियाँ और दो कल्पना-प्रधान अश ('सुकुमार वर्मन' और 'महामोद') लिखे और पी० शिवराम शास्त्री ने 'चरित्र रत्नावली'* दो भागो मे लिखी—जिसके विषय महाकाव्यो-पुराणो आदि से लिये गए। गद्य मे एन० नीलकठ पिल्लई (त्रिवेन्द्रम्, १९३६) का 'विश्वामित्र', वेकटराम शास्त्री (उ० प्र० तिरुवाय्यूर, १९३४) का 'परशुराम-चरित', पी० वी० काणे की सस्कृत गद्यवली' †, एम० के० तिरुनारायण अय्यगार (बेंगलोर, १९१०) की गद्य-कहानियाँ, एम० रामकृष्ण भट्ट (बेंगलोर, १९५३) का 'अर्जुन और अन्य वृत्तात' इसी कोटि के उदाहरण है। सरल गद्य मे प्राचीन सस्कृत के श्रेष्ठ ग्रथो को प्रेषित करने का प्रयत्न किया गया। बाण और सुबन्धु की गद्य-कृतियो को सक्षिप्त बनाया गया, उन्हे सरल, छोटी आवृत्तियो मे आर० वी० कृष्णमाचारियर, म० म० वी० वी० मिराशी, वी० वी० शर्मा आदि ने प्रस्तुत किया; दूसरी ओर भास तथा कालिदास आदि सस्कृत के नाटककारो के नाट्य-कथानक गद्य-वर्णनो के रूप मे वी० अनताचार्य, वाई० महालिग शास्त्री, एल० वी० शास्त्री और कैलाशनाथ ने प्रस्तुत किये।

'सहृदय' मे प्रकाशित आरम्भिक कहानियो मे 'साधु-मणि' नामक एक गगा-तटवर्ती गरीब मिठाई बेचने वाले की जो कहानी के० श्रीनिवासन्

* कुम्भकोणम्, १९२२, १९२४।

† मैकमिलन्स।

ने लिखी है, वह बड़ी मार्मिक और उत्तम शैली में है। स० सा० प० प० में प्रकाशित कहानियों में से कुछ उल्लेखनीय हैं भवभूति विद्यारत्न-लिखित 'लीला' (१९२३-२४), तारणिकांत चक्रवर्ती की 'पुष्पांजलि' (१९२४-२५), के० आर० शंकरनारायण शास्त्री की 'ऐंद्रजालिक' (मई १९३२,) 'रसमयी' (१९३३-३४), एक वृद्ध की तरुणी भार्या के विषय में 'भामिन्य मदनातप' (मई १९५५) तथा आर० रंगाचारी की 'आई० सी० एस० जामाता'। इन सबमें पी० वी० वरदराज शर्मा की 'कस्यम् अपराध' स० सा० प० प० (अप्रैल १९३७) टेकनीक की पूर्णता और सूक्ष्म वर्णन-सौंदर्य की दृष्टि से अलग छांटी जा सकती है। इसका कथानक भी दरिद्रता-दैन्य के उस सामाजिक कलंक पर आधारित है, जिसके कारण जन-साधारण पाप की ओर प्रवृत्त होते हैं। स० सा० प० प० (मई, १९३७) में रंगाचार्य ने 'नगर परिपालन सभा' नाम से एक प्रहसन लिखा है, जिसमें एक वृद्धा को म्युनिसिपल कौंसिल के लिए चुना जाता है। स० सा० प० प० के पुराने अंकों में (१९२८-२९) वेणुधर तर्कतीर्थ का एक प्रहसन है। एक यात्रा की कहानी कहते-कहते लेखक स्वप्न में 'यमपुरी-पर्यटन' करता है, परन्तु उसकी यात्रा अधूरी रह जाती है, क्योंकि यमराज यह नहीं निर्णय कर पाते कि उनका अधिकार-क्षेत्र केवल हिंदुओं तक सीमित है, या उसमें म्लेच्छ भी शामिल हैं। उस भारतीय प्रवासी को अपने मृत्यु-लोक में पुनः इसलिए भेजा जाता है कि वह एक पंडित-सभा बुलाकर पहले इस बात का निर्णय करे।*

स० र० (१९०९-१९४८) में 'पश्यनोहर', 'दुःखिनी बाला', 'असम साहस', 'अर्वाचीन सभ्यता', 'निराश प्रणय', 'सरला', 'साक्षी', 'आदर्श दम्पति', 'अयमेव प्रेमपरिपाक' (यह है प्रौढ प्रेम!) 'करुणा', 'वरेप्सु-वटुक-संवाद' (भावी ससुर और ब्रह्मचारी के बीच बातचीत) और 'न्यायाधिकारिणी' आदि कहानियां छपी हैं। स० र० में दो

* 'यमराजविचार' नामक कृति 'विधोदय' में प्रकाशित हुई थी।

कहानियो का उल्लेख किया जा सकता है ; एक १९४५ मे प्रकाशित हुई थी, जिसका आशय था कि आधुनिक चकाचौध और छाया-प्रेम के पीछे भागने से नारी को सुख और शान्ति प्राप्त नही हो सकती; दूसरी कहानी जून १९४७ मे छपी थी, जिसका शीर्षक था 'धन्योऽयम् परीक्षा युग.' । इस कहानी मे परीक्षाओ द्वारा सच्ची ज्ञानोपासना नही हो सकती, यह सिद्ध किया गया था। इनमे से कुछ रचनाए प्रहसनो के रूप मे है। हैदराबाद (सिन्ध) की 'कौमुदी' मे राम द्विवेदी (१९४४-४५) की 'विशाखा' और 'प्रमोद-गृहम्' नामक कहानियाँ और दहेज की कुप्रथा पर विश्वेश्वर दयाल द्वारा लिखित 'यौतक' नामक कहानी प्रकाशित हुई थी। एक चोर बाजार वाले ने एक बिल्ली पर कैसे विजय प्राप्त की, यह के० सी० चटर्जी ने 'मार्जार चरित्र' नामक कहानी (अक्तूबर १९५३) मे लिखा है। श्रीमती क्षमा राव ने १९५३ मे सदा की भाँति अनुष्टुप छद मे अपनी पाँच कहानियाँ प्रकाशित की, ये पहले अंग्रेजी मे लिखी गई थी और बाद मे ढाली गई; उनके विषय समाज-सुधार, बाल-विवाह, अल्पायु मे वैधव्य इत्यादि है। 'कथा मुक्तावली' (बम्बई, १९५४) के शीर्षक से उनकी १५ कहानियो का सग्रह इसमे मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ है। उनकी एक पुरानी पद्य-कथा इसमे गद्य मे प्रकाशित है। उनके 'ग्राम-ज्योतिष्, मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन और सत्याग्रह के दिनो मे गुजरात के गाँव के बारे मे तीन कहानियाँ है। 'सस्कृत' (जून, १९५७) मे 'राहुल' के नाम से भारतीय इतिहास के हूण काल पर एक अत्यत प्रभावपूर्ण रेखाचित्र प्रकाशित हुआ है।

'सर्वजन सस्कृत माला' मे जिसका उद्देश्य सस्कृत मे सरल गद्य की पाठ्य-सामग्री प्रस्तुत करना था, ए० कृष्ण सोमयाजी ने संस्कृत में टाल्स्टाय की कहानी 'कणो लुप्त. गृहम् दहति' (एक चिगारी घर को जला देती है) (गुण्टूर, १९५४) दी है। ईसप की लोक-कथाएँ एक से अधिक सस्कृत-लेखको द्वारा अनूदित है।

उपन्यास

अब हम एक ऐसे साहित्य-रूप पर विचार करेंगे जो निश्चित रूप से आधुनिक कहा जा सकता है, और पाश्चात्य प्रभाव ने जिसे आकार दिया है वह है, उपन्यास। यहां भी हम देखेंगे कि कादम्बरी-जैसे कथानकों में सामाजिक कथानक और वातावरण तक परिवर्तन लाया गया है। यह विधा अनुवादों, रूपान्तरों और मौलिक रचनाओं आदि तीनों रूपों में समृद्ध हुई है। अप्पा शास्त्री ने बंकिमचन्द्र की 'लावण्यमयी' का संस्कृत अनुवाद किया, यह पहले 'संस्कृत चन्द्रिका'* में प्रकाशित हुआ और बाद में एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में प्रकाशित हुआ। इसी प्रसिद्ध बंगाली लेखक का 'कपाल-कुंडला'† हरिचरण ने अनूदित किया। अप्पा शास्त्री की जो अन्य रचनाएं सं० चं० में प्रकाशित हुईं, उनमें 'कृष्णकान्तस्य निर्वाणम्' और नायिका द्वारा आत्मकथात्मक शैली में वर्णित 'इंदिरा' उल्लेख्य हैं। अन्य लेखकों की जो रचनाएं सं० चं० में छपीं, उनमें प्रमुख हैं : नरसिंहाचार्य अणेकर की 'मृत्तिकावृषभकथा' और बालभद्र शर्मा की 'वियोगिनी बाला'। उपेन्द्रनाथ सेन ने 'पल्लिच्छवि', 'मकरंदिका', और 'कुंदमाला' लिखी। हरिदास सिद्धान्त-वागीश ने 'सरला'** नामक उपन्यास लिखा। ए० राजगोपाल चक्रवर्ती का 'शैवालिनी'‡ नामक रूपान्तर है। इसी लेखक ने दो और उपन्यास लिखे— 'कुमुदिनी' और 'विलासकुमारी संगर'। चिंतामणि माधव गोखले ने 'मदनलतिका' (बम्बई, १९११) की रचना की। कई लम्बी कहानियां और रोमांटिक कथाएँ तथा लघु उपन्यास संस्कृत की कई पत्र-पत्रिकाओं

बार्सी १९०७, धारवाड़ १९२०, बनारस १९४७। उनके अन्य गद्य-ग्रन्थों में 'देवी कुमुदन', 'दाम परिणति' तथा 'मातृ-भक्ति' आदि हैं।

† कलकत्ता, १९२६।

** इस लेखक की प्रस्तुत तथा अन्य रचनाओं के लिए देखिए, क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, कृष्णमाचार्य, पृष्ठ ६७३।

‡ मैसोर, १९१७।

क पृष्ठो मे क्रमश. प्रकाशित हुए है : सहृ० (३) मे कल्याणराम शास्त्री की 'कनकलता' छपी। उत्तम गद्य मे लिखा हुआ नब्बे पृष्ठो का यह रोमास शेक्सपीयर के 'ल्यूक्रिसी' पर आधारित है। गोपाल शास्त्री द्वारा लिखित 'अतिरूप' (३); परशुराम शर्मा का 'विजयिनी' (४); नारायण शास्त्री का 'सीमन्तिनी' (७), चिदबर शास्त्री लिखित 'कमलाकुमारी' और 'सती कमला' (९); एव आर० कृष्णमाचारियर जैसे प्रतिभाशाली सम्पादक द्वारा लिखित 'सुशीला' (११) उल्लेखनीय है।

स० सा० प० प० मे निम्न उपन्यास छपे थे रेणुदेवी का 'रजनी' (१९२८-२९), 'राधा', 'दुर्गेशनदिनी' (१९२२-२३) और 'राधारानी' (१९३०-३१) बकिम बाबू की बगाली कृतियो के अनुवाद थे। उसी पत्रिका मे 'दत्ता' नामक उपन्यास छपा (अक्तूबर १९३५)। 'मधुरवाणी' मे उसके सपादक जी० रामाचार्य ने धारावाहिक रूप से 'देवी वासती' नामक कथा प्रकाशित की। म० स० का० मै० मै० मे एम० नरसिहाचारी ने एक वीर रस के कथानक के आधार पर 'कीर्तिसेन' (१९४८-४९) लिखा। के० कृष्णमाचार्य (मद्रास, १९२९) की 'मदारवती' वृहत्कथामजरी की एक कहानी पर आधारित है। श्रीशैल ताताचार्य (मृत्यु १९२५) ने भी बगाली उपन्यासो के अनुवाद के लिए पग उठाया, उनकी दो कृतियाँ थी—'दुर्गेशनन्दिनी' और 'क्षत्रियरमणी'। काव्यकठम् गणपति शास्त्री ने 'पूर्णा'* नामक उपन्यास लिखा। बनारस से 'मित्रगोष्ठी' का सपादन करने वाले विधुशेखर ने 'चद्रप्रभा' नामक रोमास लिखा। मेधाव्रत ने 'कुमुदिनी चद्र' नामक उपन्यास लिखा (येवले, १९२०)। श्री नरसिहाचार्य ने, जिनकी शैली बहुत प्रसन्न, काव्यमयी और प्राजल थी, 'सौदामिनी' नाम से एक उपन्यास लिखा (नवीन कृति, मद्रास, १९३४)। 'सीमा समस्या' (मजू० नवम्बर १९५०) गगोपाध्याय का नया उपन्यास है, जिसमे एक वामपक्षीय तरुण का

* देखिये पृष्ठ ११, उमासहस्र की भूमिका।

चित्रण है। ऐतिहासिक कथानकों पर आधारित लंबी कहानियों में देवेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय की 'बंगवीर प्रतापादित्य' (स० सा० प० प० १९३०-३१), उद्रनाथ बन्द्योपाध्याय की 'गौरचन्द्र' (स० सा० प० प० १९३२-३३), आर० राममूर्ति की चोल इतिहास पर आधारित 'वीर-लब्धम् पारितोषिकम्' (उ० प्र० १९५५) हैं। ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित कहानियों के कुछ उदाहरण हैं 'वीरमनी' (स० र० १९०९), मुस्लिम युग की एक-एक घटना के आधार पर अत्याचार के परिणाम दरसाने वाली 'अत्याचारिण परिणाम' (स० र० १९८२) और 'दानी दिनेश' (स० र० १९४३)। साप्ताहिक 'संस्कृत' में कुछ अच्छी ऐतिहासिक कहानियाँ छपी थीं, 'अजता' (२७-३-५६), 'हीर' (१७-१-५६), 'द्विराश्वमेध याजि' (२७-१२-५५) इत्यादि। ए० राजम्माल, मद्रास की 'चंद्रमौलि' में पुराने ढंग का कथानक है और कहानी के बीच में एक नाटक भी जोड़ा गया है। डी० टी० तातार्चार्य ने वादुवुर दोराई-स्वामी अय्यंगार के तमिल उपन्यास 'मेनका' का संस्कृत अनुवाद किया है, जो उ० प० में क्रमशः छपता है। होशियारपुर के श्री जगदराम शास्त्री ने 'छत्रपाल विजय' नामक गद्य-कथा लिखी है।

छोटी कविताएँ

आधुनिक भारतीय लेखन की एक अन्य विशेषता है छोटी कविता को मिला हुआ नया जीवन। अभिजात संस्कृत में मुक्तक, युग्मक, कलापक, कुलक और शतक की परम्परा रही है। परन्तु पाश्चात्य लिरिक के ढंग पर छोटे-से छन्दों में एक विशिष्ट विचार के विषय में आधुनिक संस्कृत-कवियों ने कविता-संग्रह कम प्रकाशित किये थे, अब वह भी होने लगे हैं। संस्कृत-कवि इन भाव-गीतों में अभिव्यंजना कर रहे हैं। कुछ कवियों ने अपने छोटी कविताओं के संग्रह प्रकाशित किये हैं, परन्तु अधिकांश रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में यत्र-तत्र या हस्तलिखित रूप में दबी

पडी है। इन रचनाओ मे अंग्रेजी साहित्य से अनुवाद और रूपान्तर है। श्री रामाचन्द्राचार्य की 'लघुकाव्यमाला' (मद्रास, १९२४) मे कई अनुवाद है मनुष्य की सात अवस्थाओ के विषय मे 'पुरुष-दशासप्तक' (शेक्सपीयर का 'ऐज यू लाइक इट'), 'सुमनोरथ' (राजर का ए विश'), 'पितृपदेश' (हेमलेट) और 'साधुवाद-मजरी' (ब्राउनिंग का 'आल्ज राइट विद वर्ल्ड')। वाई० महालिगम् शास्त्री के 'किंकणीमाल' (मद्रास, १९३४) मे शेक्सपीयर, वर्डस्वर्थ, शैले और डॉ० जानसन के अनुवाद है, साथ ही कई नई छोटी कविताएँ भी है, जिनमे नए छन्द, जो कि सगीत, लय पर आधारित है, प्रयुक्त किये गए है। उदाहरणार्थ सबसे उल्लेखनीय रचना है 'स्थाणुपरिवेदना' (भगवान् शकर के दु खो पर आधारित)। वी० सुब्रह्मण्य अय्यर की 'पद्यपुष्पाजलि' (मदुरा, १९५१) मे मौलिक रचनाएँ और अग्रेजी के अनुवाद दोनो है, प्रथम रचना मे ऋषियो, कविता, जीवन, प्रकृति और कला, शकुन्तला का स्वगतभाषण, अदम्य भारत इत्यादि विषयो पर कविताएँ है। एम० एम० के० एस० कृष्णमूर्ति शास्त्री के 'प्रकृति विलास' (मदुराई, १९५०) मे प्रकृति के कई वर्णन है। जतीन्द्रनाय भट्टाचार्य की 'काकली' (कलकत्ता, १९३३) मे परम्परित कविताएँ और स्तोत्र है, गाँधी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की दो छोटी प्रशस्तियाँ भी है। प्रोफेसर जी० सी० झा की 'सुषमा' (बम्बई, १९५५) एक छोटी पुस्तिका है, जिसमे व्यग्य, विलापिका, वर्णनात्मक पद्य आदि है। डॉ० व० चन्द्र छाबरा के 'स्वर्णबिन्दु' (१९५१, साई-क्लोस्टाइल) मे कुछ महत्वपूर्ण पद्य है, एक चीटी पर है, दूसरा इस-पर कि सच्चे मित्र जीवन के सर्वोच्च आशीर्वाद है। गाँधी जी पर कविता वैदिक गायत्री छन्द मे लिखी गई है, इसलिए उल्लेखनीय है, साहित्य तथा पुरातत्त्व-उत्खनन पर आधारित सास्कृतिक स्थानो के उल्लेख वाली एक कविता मथुरा पर है। एस० वी० वर्णेकर की 'मन्दोर्मिमल' (पार्दी, १९५६) मे अनेक वर्णनात्मक, विचारात्मक, उपदेशात्मक और देशभक्तिपूर्ण अश है। मथुरानाथ कवि शास्त्री,

जयपुर निवासी ने कोई भी ऐसा आधुनिक या विकास-सम्बन्धी विषय अछूता नहीं छोड़ा है, जिस पर उन्होंने अच्छी कविता न लिखी हो। इन कविताओं का संग्रह उनके बड़े ग्रंथ 'साहित्य वैभव' (बम्बई, १९३०) में मिलता है; इसके प्रथम खण्ड में प्रकृति-विषयक कविताओं के नमूने हैं; बाद में विविध भावों पर रचनाएँ हैं, विचारात्मक 'अन्यापदेश' पद्य हैं और उनके बाद एक खण्ड है, जिसका शीर्षक है—'नवयुगवीथि', जिसमें कवि ने ट्राम, मोटर-कार, रेलवे, जहाज़, विद्युत्, रेडियो, ग्रामोफ़ोन, शल्य-चिकित्सा, क्षयकिरण, छायाचित्र, चित्रपट, विज्ञान की महत्ता, विदेशियों के गुण आदि पर कविता की है। भारतीय सार्वजनिक आन्दोलनों पर भी वे अपने विचार ग्रथित करते हैं।

'मेघ-संदेश' के अगणित अनुकरणों में यहाँ कुछ विचित्र नमूनों का उल्लेख किया जा सकता है। अलका में यक्ष के जीवन को पुनर्कल्पित किया गया है, उसका कार्यालय कैसा होगा, शाप का क्या कारण था इत्यादि। (मेघप्रति संदेशः, एम० रामा शास्त्री, मैसोर, १९२३); इसके बाद कोराड रामचन्द्र कवि ने 'घनवृत्त' (मद्रास, १९५५) लिखा, जोकि कालिदास की कृति का क्षेपक है। 'मेघ संदेश' की व्यंग्य भरी पैरोडियाँ अन्यत्र उल्लिखित हैं।

पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं के कुछ उदाहरण यहाँ यह दिखलाने के लिए दिये जा रहे हैं कि कितने विविध विषयों पर संस्कृत में काव्य-रचना हुई। सहृ० (२) में के० कल्याणी ने 'भारतीविलाप' नामक कविता में एक लेखक के दुःखों का वर्णन किया है कि लेखन, प्रकाशन, समालोचन, पठन और आस्वादन में कितनी कठिनाइयाँ आती हैं। 'भारतीय युद्धसज्जा' (सं० सा० प० प०, अक्तूबर, १९४२) प्राचीन और नवीन युद्ध-पद्धति के बीच पद्यमय संवाद है, यह भारत के गत महायुद्ध में योगदान पर आधारित है। 'चर्म-गोल-क्रीड़ा' पुलिनविहारी दासगुप्त (सं० सा० प० प०, १९२८-२९) की फ़ुटबाल पर एक रचना है। कुक्के सुब्रह्मण्यम् शास्त्री ने (म० सं० का० मै० मै०,

१९२५) में जोग जलप्रपात पर एक कविता लिखी है। अप्पा शर्मा ने 'पिजरबद्ध शुक' (स० च०, १९०४) नामक एक बडी सुन्दर कविता लिखी और 'डेज़र्टेड विलेज' का बहुत अच्छा अनुवाद (स० च० मे, तथा अलग से भी, धारवाड, १९१५) प्रकाशित किया।

कई छोटी-बडी कथात्मक कविताएँ भी प्रकाशित हुई हैं। 'महीपो मनुनीति चोल.' (१९४९) और 'देवबन्दी वरदराज' (१९४८) प्रस्तुत लेखक ने चोल इतिहास और श्रीरगम् मदिर से प्राप्त वृत्तातो के आधार पर लिखे हैं। लेखक की एक अप्रकाशित कविता, 'ना कदाचिद् अनी-दृशम् जगत्' शीर्षक के प्रथम खण्ड मे, पुरुरवा को उर्वशी ने वैदिक काल मे कठोरता से छोड दिया था, इसका वर्णन है और दूसरे खण्ड मे, एक भारतीय राजपुत्र को अग्रेज पत्नी ने खूब लूटकर कैसे छोड दिया, इसका वर्णन है।

सस्कृत भाषा और उसकी महानता पर अनेक छोटी-मोटी कविताएँ पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुई हैं; इस विषय पर प्रभुदत्तशास्त्री ने एक सौ छ श्लोको की एक लवी कविता 'सस्कृत-वाक्-सौदर्यामृतम्' (दिल्ली, १९५७) भी लिखी है।

पुराने खण्डकाव्यो के ढग पर किचित् बडी कविताएँ लिखी गई हैं और नए ढग से उनमे विषय-निरूपण हुआ है। सी० वेंकटरमणैया (बँगलौर, १९४४) के 'काव्य समुदाय' मे हरिश्चन्द्र, नभनेदिष्ठ और विश्वामित्र की वैदिक कथाओ पर नए ढग से लिखा है। 'धरा यशोधरा:' (सातारा, १९५२) डी० एम० कुलकर्णी द्वारा रचित एक कविता है, जिसमे प्राचीन भारत के एक सास्कृतिक केन्द्र, भोज की राजधानी, के वैभव का वर्णन है। विजयानगरम् के वी० वेकटनारायणराय (बनारस, १९०९) ने 'पद्मिनी-चन्द्रसवाद' नामक एक रचना लिखी है, जो कि 'चरित्र' पर है। मेधाश्री नारायण शास्त्री तिरुवाय्पूर की अनेक रचनाओ मे एक 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' (श्रीरगम्, १९२२) भी है। वैचारिक कविता के लिए अन्यापदेश-शतक-जैसी प्राचीन शैली बहुत उपयुक्त माध्यम है

और कई आधुनिक संस्कृतज्ञों ने भी इस तरह के छन्द लिखे हैं। मथुरानाथ शास्त्री के 'अन्यापदेश' का पहले उल्लेख हो चुका है। वाई० महालिंग शास्त्री की 'व्याजोक्ति रत्नावली' (तिरुवाय्यूर, १९३३) इसी कोटि की रचना है। जम्मू के सुखदेव शास्त्री का 'जीतमल चरित' (प्रकाशन, लाहौर) विशेष रूप से उल्लेखनीय है; इसमें छोटे-छोटे आठ सर्गों में कवि ने निर्धन ब्राह्मण बावा जीतू और उसकी पुत्री की दुखद कथा कही है; ये पात्र डोगरा चारण-काव्य में सुविदित हैं। वाई० नागेश शर्मा ने उपगुप्त और वासवदत्ता से सम्बद्ध बौद्ध कथा पर 'नेत्रोन्मीलन' नामक तीन सर्गों का काव्य (बेंगलोर, १९५५) लिखा है और अपना आधार बनाया है—उस हिन्दी गद्य रचना को जो कि इस विषय पर लिखी गई है।

व्यंग-विनोद की कविता

वर्तमान युग में व्यंग-विनोद की कविता को विशेष प्रोत्साहन मिला है। आधुनिकतावादी लेखकों ने परम्परावादियों को अपने व्यंग-बाणों का लक्ष्य बनाया है और पुराण-पंथियों ने भी उसका प्रत्युत्तर उसी प्रकार से दिया है। बहुत-से आधुनिक फैशन और रंग-ढंग उनकी आलोचना के विषय बने हैं। प्रहसनों, स्केचों और व्यंग-रचनाओं के लिए विविध प्रकार के मत और मतभेद, कई पार्टियाँ और नेतागण विषय बने हैं। यह एक ऐसा लेखन-प्रकार है, जिसमें संस्कृत का उत्तम उपयोग किया गया है।

कुछ आधुनिक लेखकों ने हास्य-कविताएँ लिखने के लिए 'मेघसंदेश' का रूप सामने रखा है। ऐसी पैरोडियों के उदाहरण हैं—सी० आर० सहस्रबुद्धे (धारवाड, १९१७) का 'काकदूत'। एम० आर० राजगोपाल अय्यंगार ने 'काकदूत'* नाम से एक काव्य लिखा है, जिसमें जेल का एक चोर सन्देश भेजता है। पूना के के० वी० कृष्णमूर्ति शास्त्री ने

* अन्नामलाईनगर, मिसलेनी, १९४०।

'शुकनदूत'† लिखा है जिसमे जेल मे बन्दी एक चोर अपने एक कुत्ते को अपनी प्रिया के पास सन्देशवाहक के नाते भेजता है। प्याज का स्वाद रोक पाना बहुत कठिन है और सहृ० (८) मे मुद्दु विट्ठलाचार्य सनातनियों को इन वर्जित खाद्य वस्तु के प्रति आकृष्ट करते हैं (पलाडु-प्रार्थना)। जयपुर के कृष्णराम ने इस अमूल्य वस्तु पर 'पलाडु-शतक' नामक पूरा शतक लिख डाला है। झाड़ू के दिव्य कार्य पर 'मार्जनी' नामक प्रशस्ति लिखी गई है और अनन्तलवार ने, जो मेलकोटे श्री वैष्णव मठ मे बाद मे आचार्य बने, झाड़ू के महत्त्व पर * एक पूरा शतक लिख डाला। कवियो ने खटमल और चीटी को भी नही छोडा है के० वी० कृष्णमूर्ति शास्त्री पूना ने एक 'मत्कुणाष्टक' लिखा है (स० र० में प्रकाशित) और खटमल-जैसे पूना मे त्रासदायक हैं वैसे ही बगाल मे भी हैं। फलत पुलिनविहारी दासगुप्त ने स० सा० प० प० (फरवरी, १९२८) मे एक 'मत्कुणाष्टक' लिखा है। खटमल से भी और कष्टदायक मच्छर या 'मशक' को प्राचीन सस्कृत-कविता मे बडा गौरव दिया गया था। समकालीन लेखन मे, आत्रेय (वी० स्वामिनाथ शर्मा) ने कुछ पक्तियाँ उस पर लिखी हैं। † चाय और काफी-पान के आनन्द और उसके व्यसन से हानि पर कई काव्य-पक्तियाँ लिखी गई हैं। सी० आर० सहस्रबुद्धे ने चाय पर एक गीता लिखी है ('चाय-गीता', धारवाड)। आत्रेय ने काफी पर सोलह छन्द लिखे हैं (काफीषोडशिका) ‡ और दो अन्य कविताएं भी बेचारी काफी को बहुत भला-बुरा कहती हैं। ये हैं—एम० वी० सपतकुमार आचार्य की 'काफी-पानीयम्' (स० सा० प० प०, अप्रैल, १९४१) और 'काफी-त्याग-द्वादश मजरिका'।

---

† सरस्वती-सुषमा, बनारस, १९५६।

* 'सम्मार्जनी शतक', मैसोर। सस्कृत-चन्द्रिका, खड ५ मे झाड़ू पर एक अध्याय है (पृ० ७)।

† अन्नामलाईनगर, सिसलेनी, १९४०।

‡ वही

दूसरी कविता में शंकराचार्य के 'भजगोविन्दम्' छन्द और लय को प्रयुक्त किया गया है और उसमें जन-साधारण को काफ़ी पीना छोड़ देने का उपदेश है। इससे उस चाय की प्याली की ओर मुड़ना ताजगी देगा जिसपर करिक्कड के एम० कृष्णन् नम्बूद्रिपाद ने सात छन्दों में एक कविता लिखी है (सं० ३-४-१९५६)। अप्पा शर्मा ने सं० चं० (१९०६) में 'उदरप्रशस्ति' नामक कविता लिखी। डी० टी० तात्याचार्य ने एक मौलिक कविता 'कपीनाम् उपवासः' * में उन लोगों के मन की चंचलता पर व्यंग किया है, जो बड़ी पवित्रता का ढोंग रचते हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'कान्यकुब्जलीलामृत' ३८ छंदों में कान्यकुब्जों का मज़ाक उड़ाती है (सं० चं० खण्ड ६)।

कुछ नये आन्दोलनों पर तथा उनके नेताओं और समर्थकों पर भी व्यंग लिखे गए हैं। दयानंद को छज्जूराम ने 'दयानंदाष्टक' में व्यंग्य का विषय बनाया है। वंकिमचन्द्र चटर्जी का पशुओं की कहानी के रूप में आधुनिक सम्मेलनों पर व्यंग्य, संस्कृत में अनूदित किया गया है। † पुन्नसेरि नीलकंठ शर्मा ने सौ छन्दों में 'सात्त्विक स्वप्न' में राजनैतिक आन्दोलनकर्ता पर व्यंग-प्रहार किया है (एम० ई० १०९७, त्रिचूर): विविध पार्टियों द्वारा विविध नारों और विचार-धाराओं का परिहास एक बाक़ायदा कान्फ्रेन्स के रूप में पेश किया गया है, जिसमें वृषभ, श्वान, मर्कट, शृगाल, शुक इत्यादि भाग लेते हैं; और स्वागत-भाषण, उद्घाटन-भाषण, अध्यक्षीय भाषण इत्यादि होते हैं। 'कांग्रेस गीता' (मद्रास, १९०८) तूफ़ानी सूरत कांग्रेस पर एक व्यंग रचना है। बाबा दीक्षित बटावे ने 'कल्पिता-काली वृत्तान्तादर्श-पुराण' में उन लोगों पर व्यंग्य किया है जिन्होंने पुराने आचार-विचार त्यागकर आधुनिक फैशन अपना लिया है।

* कुम्भकोणम्, १९२५।

† सहृदय एन० एस० २।

नाटक

गभीर नाटको के क्षेत्र मे, पुराने विपयो पर परम्परित ढग से बडी सख्या में नाटक खेले गए है और यहाँ इतना सूचित करना काफी है कि भारत में श्रीनारायण शास्त्री-जैसे लेखक भी हुए है, जिन्होने ९३ नाटक लिखे, और आज तक ऐसे नाटक नियमित रूप से रचे जा रहे है। यहाँ पर ऐसे नाटको का उल्लेख विशेप रूप से करना चाहिए, जिनमे प्राचीन शैली और विपय होने पर भी, रूप, विचार तथा शैली की दृष्टि से कई नई उद्भावनाएँ की गई है। यह स्वाभाविक है कि जब आधुनिक शिक्षा-प्राप्त सस्कृतज्ञ सस्कृत मे नाट्य-रचना करने लगे तो ये नये तत्त्व आये विना नही रह सकते थे।*

क्लासिकल श्रेष्ठ रचनाओ मे से नये विषय या प्राचीन नाट्य-वस्तुओ की नाट्यात्मक पुनर्रचना के प्रयत्न किये गए है। उदाहरणार्थ, मैसोर के जग्गू वकुल भूपण ने अन्तिम प्रकार के नाटक रचे है और दो-तीन अको मे छोटे नाटक रचे है, जिनमे कि 'प्रसन्न कास्यपिया' (मैसर, १९५१) का उल्लेख किया जा सकता है। इसमे दुष्यन्त और शकुन्तला के साथ शिशु भरत कण्व के आश्रम मे जाते है। इसी आकर्षक विपय पर मूरत के जे० टी० पारीख ने एक एकाकी 'छाया शकुन्तला' (सूरत, १९५७) लिखा है। जिस पर 'उत्तररामचरित' का प्रभाव भी अत्यत स्पष्ट है। रूपकात्मक नाटक भी लिखे गए, उदाहरणार्थ 'अधर्म-विपाक' (स० च० खण्ड ५)। सी० वेकटरमणय्या ने एक लबा रूपकप्रधान नाटक 'जीवसजीवनी नाटक' † नाम से लिखा, जिसमे आयुर्वेद का मूल्य वर्णित था।

मद्रास सस्कृत अकेडेमी ने एक अखिल भारतीय नाटक-स्पर्द्धा की, जिसका वहुत अच्छा परिणाम निकला। इस स्पर्द्धा का सम्मान 'प्रति-

---

* एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह घटित हुआ कि प्राकृत का प्रयोग अव नही किया जाता।

† वगलोर, १९४९।

राजसूयम्' नामक नाटक को मिला, जो अभी प्रकाशित हुआ है । यह वाई० महालिंग शास्त्री ने लिखा । दुर्योधन ने अपने चचेरे भाइयो को जगल मे भेजने के बाद जो राजसूय-यज्ञ किया उस पर यह नाटक आधारित है । इसमे और इसी लेखक के अन्य अप्रकाशित 'उद्गात्र-दशानन' आदि नाटको मे नये विचारो की उदभावना है । उनका 'कलि प्रादुर्भाव' ‡ जो हाल मे प्रकाशित हुआ, कलियुग के आगमन के साथ-साथ जो शीघ्र अनीति छा जाती है उसकी सात छोटे अको मे पुरानी, मनोरजक कहानी है । इसी लेखक का 'उभयरूपक' एक सामाजिक सुखान्त नाटक है । तजौर के सुदरेश शर्मा ने विल्हण की कहानी के अनुकरण पर, एक रोमाटिक विषय 'प्रेम-विजय' मे प्रतिपादित किया है । इस नाटक का वे अभिनय भी कर चुके है ।

भारतीय इतिहास की प्रसिद्ध विभूतियो पर नाटको की सख्या से ही यह पता चलता है कि नाट्य-विषयो मे परिवर्तन घटित हुआ । इस वर्ग मे हम म० म० मथुराप्रसाद दीक्षित के मेवाड का राणा प्रतापसिह पर लिखे 'वीर प्रताप नाटक' (लाहौर, १९३७), म० म० याज्ञिक के 'सयोगिता-स्वयवर,' 'छत्रपति साम्राज्य' और 'प्रताप विजय'† नामक तीन नाटक, (जिनमे गीत भी दिये गए है), सुदर्शनपति के 'सिहलविजय'‡ (उडीसा के इतिहास पर आधारित और उडीसा के गीतो सहित), तथा पचानन तर्करत्न के 'अमर मगल' (बनारस, १९३९) को रख सकते है । विजयानद ने 'प्रेममोहिनी-रणधार' नामक एक रूमानी नाटक लिखा (स० च०, १९०४), जिसमे परम्परागत प्रस्तावना का बहिष्कार किया गया है । प्रस्तुत लेखक की कृति 'अनारकली', जो अभी पाण्डुलिपि-रूप

---

‡ 'उदयनपत्रिका' मे क्रमश प्रकाशित और अलग मे मुद्रित, तिरुवेलगाडु, १९५६।

' कुम्भकोणम, १९४३ ।

† अग्रेजी अनुवाद सहित बडौदा से प्रकाशित, १९२९ (छत्रपति-साम्राज्य)

‡ बहरामपुर, १९५१

मे है, जहाँगीर के दासी के साथ प्रसिद्ध रोमास की कथा पर आधारित नाटक है। क्षमा राव की मरणोपरात प्रकाशित कृतियो मे कुछ सामाजिक सुधार के नाटक हैं यथा,'बाल विधवा',* तीन अको मे है। नाटकीय रूप मे कुछ एकदम नये विषय भी प्रस्तुत किये गए है। 'प्रकृति सौदर्य' (येवले, १९३४) आर्य-समाजी लेखक महाव्रत की रचना है। पुन्नसेरि नीलकठ शर्मा की 'विज्ञान चिन्तामणि' पत्रिका मे प्रकाशित रचना 'गैर्वाणविजय' इस विषय का निरूपण करती है कि सस्कृत की साप्रतिक दशा कितनी शोकास्पद है और विभिन्न रियासतो मे महाराजा सस्कृत कालेज खोलने से इस दशा मे कैसा सामयिक सुधार हुआ है। इसमे ब्रह्मा, सरस्वती, ऋषिगण, अग्रेजी, सस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाएँ पात्र बनकर आते है। दिल्ली के प्रभुदत्त शास्त्री ने पाँच अको मे ऐसा ही एक नाटक सस्कृत वाग्-विजय'‡ नाम से सस्कृत और हिन्दी मे प्रकाशित किया है।

रचनात्मक उत्प्रेरणा के नये दौर मे कालिदास, शूद्रक और भवभूति के भक्तो का ध्यान शेक्सपीयर की ओर भी गया। भारतीय भाषाओं मे शेक्सपीयर पर कुछ परीक्षण प्रकाशित हो चुके है, परन्तु उनमे इस महान् नाटककार की कृतियो के सस्कृत-रूपातरो का उल्लेख नही है।† १८७७ मे मद्रास के श्री शैल दीक्षितार ने 'भ्राति-विलास' नाम से 'कामेडी आफ एरर्स' का अनुवाद किया। राजराज वर्मा, त्रिवाकुर ने 'ओथेलो'‡ का रूपातर प्रस्तुत किया। आर० कृष्णमाचार्य ने 'सहृदय' मे प्रकाशित करके बाद मे स्वतत्र पुस्तकाकार 'वासतिक-स्वप्न'* छापा, जो कि 'ए

---

* म०, १९५५।

‡ दिल्ली, १९४२।

† देखिये, 'आर्यन पाथ', नवम्बर और दिसम्बर १९५५, सी० आर० शाह, शेक्सपीयर के नाटक, भारतीय भाषाओं में।

‡ प्रकाशन त्रिवेन्द्रम्।

* कुम्भकोणम्, १८९२।

मिडसमर नाइट्स ड्रीम' का रूपातर है। गदवाल के श्री गुडे राव हरकरे ने 'ए मिडसमर नाइट्स ड्रीम' का और 'हैमलेट' के कुछ अको का अनुवाद किया है। 'ए मिडसमर नाइट्स ड्रीम' का एक अन्य अनुवाद 'श्री' (खड ८, अक ३-४) मे प्रकाशित हुआ। 'एंज यू लाइक इट' अब क्रमश 'यथाभिमतम्' शीर्षक से 'उदयन पत्रिका' मे प्रकाशित हो रहा है। लैंब की 'टेल्स फ्राम शेक्सपीयर' विजयानगरम् के एम० वेकटरमणाचार्य ने सस्कृत मे प्रकाशित की है।† सहृ० ने अपने विविध अको मे शेक्सपीयर के ओथेलो, हैमलेट इत्यादि नाटको की कहानियो को गद्य-रूप मे प्रकाशित किया है। शेक्सपीयर से छोटे अशो और कविताओ के रूपान्तर की चर्चा पहले आ चुकी है। सस्कृत मे अन्य पाश्चात्य नाटक भी प्रकाशित हुए हैं। गोइटे के 'फाउस्ट' का सस्कृतानुवाद 'विश्वमोहन'‡ नाम से पूना के एस० एन० ताडपत्रीकर ने प्रकाशित किया है। डाक्टर सामा शास्त्री ने लेसिंग के 'एमेलिया गॅलेट्टी' को म० स० का० मै० मै०, (७,१९३१) मे अनूदित किया है। टेनीसन की द्वि-अकीय शोकातिका 'दी कप' सस्कृत नाट्य-परम्परा के अनुकूल सी० वेकटरमणय्या के 'कमलाविजयनाटक'* मे ढाली गई है।

पञ्चमी नाटको के इन सस्कृत-अनुवादो के बाद छोटे आकार की नाट्य-रचनाएँ आती हैं, विशेषत वे एकाकी, जिन्होने पश्चिम की शैली से विशेष स्फूर्ति ली। ऐसे नाटक बहुत बडी सख्या मे इस काल-खड मे प्रकाशित किए गए। प्रहसन प्राचीन काल से ही सस्कृत-रग-भूमि पर चले आ रहे हैं। ७वी शती के बाद से ऐसे नाटको के कुछ दो-चार अच्छे नमूने हमे मिलते हैं। यह देखकर आनन्द होता है कि इधर लिखे गए छोटे नाटको मे कई प्रहसन हैं। कालेज के वार्षिक दिवस आदि मौके थोडे समय के लिए सस्कृत मे मनोरजन प्रस्तुत करने के उत्तम

† मद्रास, १९३३।

‡ पूना ओरियेंटलिस्ट, १४।

* मैसोर, १९३८।

अवसर होते ह ; उनकी आवश्यकता से प्रेरित होकर कई ऐसे नाटक लिखे गए। इधर कुछ वर्षो से छोटे सस्कृत-नाटको और नाट्य-सवादो को आकाशवाणी भी बहुत प्रोत्साहन दे रही है।

समकालीन सामाजिक महत्त्व के विविध विषयो का, नये ढग के एकांकियो मे निरूपण मिलता है वी० के० थम्पी के तीन सस्कृत-नाटक† ('प्रतिक्रिया', 'वनज्योत्स्ना', 'धर्मस्य सूक्ष्मा गति') राजपूत ुस्लिम काल के ऐतिहासिक रोमाटिक विषयो पर आधारित हे। सी० वरदराज शर्मा का 'कस्याहम्' (स० सा० प० प०, १९३९) एक वधू के नये घर मे स्वगत-भाषण पर आधारित नाटक है। ए० आर० हेबरे का 'मनोहरम् दिनम्' (स० सा० प० प०, मार्च, १९४१) शाला की एक साधारण घटना पर आधारित रचना है जिसमे छुट्टी के लिए बच्चो की युक्ति-प्रयुक्ति की घटना है। सीता देवी अपने 'अरण्य-रोदन' (मनोरमा, बेरहामपुर, न० ३, १९४९) मे घरेलू झगडो को नाट्य-रूप देती हे। 'अमर्षमहिमा' (अ० वा०, १९५१) मे के० तिरुवेंकटाचार्य ने घर और दफ्तर के साधारण अनुभव को सफल नाट्य-रूप दिया है। एक क्रोधी अफसर अपनी पत्नी से लडकर दफ्तर मे आता है, अपना गुस्सा वह क्लर्क पर उतारता है, क्लर्क से उसकी पत्नी पर और पत्नी से घर की नौकरानी पर यह गुस्सा स्थानान्तरित होता जाता है। 'वणिक्सुता' (म०, अगस्त १९५५) मे एक विचित्र विषय पर सुरेन्द्र-मोहन पचतीर्थ ने लिखा है। यहाँ एक धनी तरुणी विधवा का प्रणया-राधन हिन्दू और बौद्ध धर्माभिमानी दोनो करते हे, जिनमे प्रथम विजयी होता है। श्रीमती क्षमा राव के 'कटुविपाक' (म०, दिसम्बर १९५५) मे सत्याग्रह के दिनो की उस सामान्य करुण घटना का चित्रण है जिसमे कोई लडका या लडकी आन्दोलन मे घर पर माता-पिता का दिल तोड-कर कूद पडता था, या पुलिस की हिसा मे अपनी जीवनाहुति देता या देती थी। बाद की एक करुण स्थिति मे, जिससे कि देश गजरा, 'महा

† त्रिवेंद्रम, १९२४।

श्मशान' नामक एक एकाकी कुशलतापूर्वक और सशक्त ढग मे लिखा गया। यह दुखान्तिका तीन छोटे दृश्यो मे है, और वह 'कौमुदी' (हैदराबाद, सिन्ध, सितम्बर १९४४) मे प्रकाशित हुई थी। इसमे विभाजन के समय के कलकत्ता की उन सडको का वर्णन है, जिसमे लाशे फैली हुई थी, ५०० बस्ती वाले गाव मे ५ बचे, और एक मुस्लिम दर्जी परिवार के सामने यह सकट था कि या तो वह अकाल से मर जाय या काले बाजार मे पाए गए चावलो से बनी उस कॉजी को पिए, जिसकी एक घूंट पीने से उसकी एकमात्र बच्ची लडकी मर जाती है।

गत शताब्दी के अन्तिम भाग मे लिखे गए इलत्तूर सुन्दरराज कवि के 'स्नुपाविजय' * के रूप मे एक ऐसा एकाकी नाटक हमे मिलता है जिसका विषय सामाजिक, पारिवारिक होते हुए भी उसके भीतर परिहास की सूक्ष्म छटा थी। ऐसे नाटक सस्कृत मे प्रचलित हो गए है। इस शताब्दी मे स्पष्ट रूप से प्रहसनात्मक तो कई नाट्य-कृतियाँ है। पुराने लेखको मे, जो अभी भी जीवित है और प्रहसन लिखते है, एस० के० रामनाथ शास्त्री है। 'दोला-पचीलक प्रहसन' के अतिरिक्त, उन्होने 'मणिमजूपा' के नाम से अत्यन्त मनोरजक और चमत्कारिक सामग्री दडी के 'दशकुमारचरित' के अपहारवर्मन की कथा से ली। मद्रास के के० एल० वी० शास्त्री ने तीन प्रहसन लिखे 'लीलाविलास,' † 'चामुण्डा' ‡ और 'निपुणिका'। पहले मे माता-पिता अपनी लडकी को दो अलग-अलग वरो को देना चाहते है, उनमे से एक तरुण पडित है, दूसरा शास्त्री और बिगडा हुआ लडका है। लडकी का भाई चाहता है कि उसके एक सहपाठी के साथ वह विवाह करे, यह लडका लडकी

---

* प्रस्तुत लेखक द्वारा स्वतत्र टीका सहित सपादित ऐनल्स आफ ओरिएन्टल रिसर्च, यूनिवर्सिटी आफ मद्रास ७, १९४२-४३ में प्रकाशित।

** स० म० प० प० मे क्रमश प्रकाशित।

† पालघाट, १९३५।

‡ मद्रास।

को कुछ चोरो से बचाता है, और इस प्रकार समस्या सुलझ जाती है—इसी लडके के साथ लडकी का विवाह हो जाता है। 'चामुण्डा' मे भी लेखक ने आजकल के एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक विषय को लिया है गावो मे आधुनिक सुधारो के प्रति प्रारम्भिक विरोध और धीरे-धीरे उन सुधारो से मिलनेवाले फायदो के कारण उस विरोध के कम होने का वर्णन है। इसीमे एक तरुण विधवा, जो लन्दन से लौटकर डॉक्टर हो जाती है, विरोधी गाँववालो का सामना करती है जो उसका अपमान करने पर तुले है, जबकि एक विरोधी व्यक्ति की पत्नी को दी गई चिकित्सा-सहायता, तथा डाक्टरी का सेवा-भाव और त्याग इन विरोधियो का सहसा हृदय-परिवर्तन कर देते है। वाई० महालिगम् शास्त्री ने दो प्रहसन लिखे है, एक 'कौडिन्य प्रहसन'* जिसमे यह लोकप्रिय कथा है कि एक कजूस को उससे भी सवाया धूर्त मिलता है, जो प्रतिदिन दूसरे के घर मे खाता है; और दूसरा 'शृगार नारदीय' † जिसका विषय है—एक पौराणिक कथा के आधार पर यौन-परिवर्तन। 'पल्लिशाला' प्रहसन मे (म० स० का० मै० मै०, मार्च-जून, १९४२), सस्कृत की श्लेष तथा वक्रोक्ति की शक्ति का पूर्ण उपयोग करते हुए, एक साहसी माता का वर्णन है जो उस शाला के अध्यापक को ठीक कर देती है, जिसने उसके बच्चे को मारा है। एक स्त्री का गहने के लिए अतिलोभ और उसका दु खपूर्ण अत सुरेन्द्रमोहन के 'काचनमाला' (म०, फरवरी १९५५) का मुख्य कथा-सूत्र है। जीव न्यायतीर्थ ने अपने 'पुरुषरमणीय' (कलकत्ता, १९४८) नामक प्रहसन के शीर्षक से एक बिखरी हुई रचना दी है, परन्तु इसकी क्षतिपूर्ति उन्होने 'क्षुत-क्षेम' मे (म०, नवम्बर १९५६) की है। एक कजूस आदमी काले बाजार मे अपार धनराशि जमा करके परलोक मे भी सफल होता है और चित्रगुप्त को भी अपनी

* प्रकाशित, मद्रास, १९३०।

† उ० प्र० में क्रमश॰ प्रकाशित, १९५६। देखें, 'स्त्री-नारद' गद्य में अ० वा०, १९४४, लेखक : श्री एस० दक्षिणामूर्ति।

नौकरी मे रखकर मरण के देवता यमराज पर विजय और पुनर्जीवन प्राप्त करता है। दो अको के एक अन्य नाटक 'चडताडव' (कलकत्ता) मे, जिसे कि उन्होने प्रहसन की सज्ञा दी है, श्री जीव ने स्तालिन, हिटलर, मुसोलिनी तथा अन्य अधार्मिक एव वैषम्यपूर्ण तत्त्वो का अकन किया है और दिखाया है कि वे किस प्रकार धर्म एव अध्यात्म के देश भारत मे प्रवेश कर पाने मे असफल (?) रहे। एस० एन० खोत ने छद्म-ज्योतिषी पर 'माला भविष्यम्' और छद्म-वैद्य पर 'लाला वैद्यम' नामक प्रहसन लिखे जो नागपुर मे खेले जाकर प्रशसित हुए। श्री खोत ने 'अणुवावतार' और 'हा हन्त शारदे' नामक दो अन्य सामाजिक व्यग्य-पूर्ण प्रहसन भी लिखे है।

'आलस्य-कर्मीयम्' (बेकारी) नामक बहुत सुन्दर ढग से लिखे नाटक मे, जो कि 'श्रीचित्र' † मे प्रकाशित हुआ, आलवाये के के० आर० नायर ने गरीब, बेकार सस्कृत विद्वान् की दुर्दशा का वर्णन किया है जो कि युद्ध-काल मे रगरूट बनकर अपना नाम भरती कराना चाहता है कि सहसा पन्द्रह रुपये मासिक की, एक अध्यापक की नौकरी उसे मिलती है, जो कि एक उपेक्षित सस्कृत कालेज के एक उपवासी प्राचार्य द्वारा दी जाती है, इसमे सस्कृत भाषा और साहित्य को रूपक के ढग पर प्रस्तुत किया गया है। कवि नायक है, भावना उसकी अधीर पत्नी है, 'गीर्वाणी' माता है, और घर मे दैन्य के कारण सतति-निरोध द्वारा सतानो की सख्या दो तक सीमित की गई है काव्य पुत्र है, अभिरुचि पुत्री। वटुकनाथ शर्मा अपने 'पाडित्य-ताडवित' (वल्लरी, १९५३) मे विभिन्न शाखाओ और दलो के पडित जो शोर मचाते है और मिथ्या अहकार दरसाते है, उसका दम्भ-स्फोट करते है। मधुसूदन काव्यतीर्थ ने ऐसा ही एक व्यग पडितो पर 'विद्योदय' मे 'पडित चरित प्रहसन' नाम से प्रकाशित किया था। 'प्रतापरुद्रीय-विडबना,' प्रस्तुत लेखक की एक अप्रकाशित रचना है, जिसमे पैरोडी के रूप मे परवर्ती सस्कृत

† महाराजा सस्कृत कालेज, त्रिवेंद्रम में १९४७, व १९४३ में प्रकाशित।

कविता की अतिशयोक्तियो की असभाव्यता का चार अको के हास्यपूर्ण कथानक मे विवेचन किया गया है। प्रस्तुत लेखक का 'विमुक्ति' नामक दूसरा अप्रकाशित प्रहसन है, जिसमे एक पूरा दार्शनिक रूपक गुम्फित है। प्रचीन 'भाण' रूप मे 'मर्कट मर्दलिका' वाई० महालिग शास्त्री ने लिखा है (म०, सितम्बर-नवम्बर, १९५१)। नारियो के नये फैशन, उनके क्लब, नये परिधान, ताश-टेनिश आदि नये खेल, सिनेमा आदि के उल्लेखो ने समकालीन सामाजिक आधार देकर परम्परित भाण को भी इतना मनोरजक बनाया जा सकता है, यह सुन्दरेश शर्मा के 'शृगार-शेखरभाण' * मे प्रमाणित है।

छोटे एकाकी नाटक और नाट्य-रूप मे प्रस्तुत घटनाएँ आल इडिया रेडियो के लिए विशेष रूप से इधर लिखी गई है; प्रस्तुत लेखक ने इस प्रकार की, भागवत पर आधारित सगीत 'रासलीला' †, और 'कुमार-सम्भव' मे कालिदास के सन्देश का एक नया अर्थ देनेवाली नाटिका 'काम शुद्धि' ‡ लिखी है। 'सस्कृत साहित्येतिहास' मे प्रसिद्ध विज्जिका, विकटनितवा और अवन्तिसुन्दरी नामक तीन लेखिकाओ के जीवन पर आधारित प्रसग नाट्य रूप में आल इण्डिया रेडियो पर प्रस्तुत किए गए थे।*

प्रादेशिक भाषाओ से अनुवाद और रूपांतर

आरम्भिक वृत्तान्त मे, जैसा उल्लेख किया गया है, सस्कृत ने सदा लोकप्रिय भाषाओ और उनके साहित्यो से बडा घनिष्ठ सम्पर्क रखा था। आधुनिक काल में, भारतीय साहित्य के आलोचनात्मक और ऐतिहासिक अध्ययन से कई सस्कृतज्ञो को प्रेरणा मिली कि वे अपने प्रादेशिक

* कुम्भकोणन्, १९३८।

† अ० वा० और अलग से भी, १९४५।

‡ अ० वा० और अलग से भी, १९४६।

* मद्रास, १९५६।

साहित्यो के उत्तम अशो को सस्कृत मे प्रस्तुत करे। यह अनुवाद इन भापाओ के प्राचीन तथा आधुनिक साहित्याशो मे है। विविध भापाओ से अनूदित कहानियो और उपन्यासो का उल्लेख हो चुका है। अब हम यह देखेंगे कि उन भापाओ मे से कोन-कौन छोटी और लम्बी कविताए तथा अन्य साहित्यिक अश अनूदित हुए है। सस्कृत मे भारतीय भापाओ से अनुवाद का प्राचीनतम उदाहरण तमिळ से मिलेगा। प्रसिद्ध श्रीवैष्णव दार्शनिक वेदान्त देशिक के कदमो पर कदम रखकर, कुछ आधुनिक दक्षिण भारतीय सस्कृतज्ञो ने अळवारो के धार्मिक स्तोत्रो के अनुवाद किये है, आन्ध्र के मेदेपल्ली वेकटरमणाचार्य (गीर्वाणगनगोपसहस्र), मैसूर के टी० नरसिह अयगार उर्फ 'कल्की' (सहस्रगाथारत्नावली)* और काची के पी० बी० अनगरगाचारियर † आदि ने इस सारे स्तोत्र सग्रह के कुछ अशो को सस्कृत मे निबद्ध किया है। प्रसिद्ध 'तिरुक्कुरळ' के दो सस्कृत अनुवाद मिलते है। अप्पा वाजपेयिन के सस्कृत सस्करण का नाम है 'सुनीति कुसुममाला', ‡ और उसके साथ लेखक की सस्कृत टीका भी है, और एक और अच्छा तथा आधुनिक सस्करण सुगठित अनुष्टुप मे है, जिसका नाम 'सूक्ति रत्नाकर' हे और जो शकर सुब्रह्मण्य शास्त्री द्वारा रचा गया और क्रमश सहृ० (१३) मे छपा है। उसी पत्रिका मे कबन की तमिळ रामायण का 'रसग्रहण' (१५) छपा है और तमिळ सत पट्टिनतार (१३) का परिचय भी छपा हे। सस्कृत कालेज, त्रिवेंद्रम के एस० नीलकठ शास्त्री ने तमिल की 'कम्ब रामायण' का सस्कृत मे अनुवाद किया है और इसके कुछ अशो का प्रकाशन 'श्रीरामचरित्रम' के नाम से किया है। कडय्यकुडी के सुब्रह्मण्य शास्त्री ने तमिळ के नीति-प्रधान अभिजात 'नलाडियर' को अपनी चतुष्पदी मे अनूदित किया हे। नेम्मारा (केरल राज्य) के गो०

* बैंगलोर १९३० ।

† काजीवरम् १९४७, १९५१, १९५३, १९५६ ।

‡ कुम्भकोणम्, १९२७ ।

नारायण नायर ने तमिळ महाकाव्य 'शिलप्पधिकारम्' को छः सर्गो के संस्कृत-काव्य मे अनूदित किया है, जिसका नाम 'कण्णकीकोवलम्' * है।

वी० वेंकटराम शास्त्री के 'कथाशतक' ‡ की कहानियाँ मूल देशी भाषाओ से ली गई है। शेष सूरि ने संस्कृत की चार हजार कहावते जमा की (म० स० का० मै० मै०, १९४९), जिनमे से अधिकतर तमिळनाड और अन्य दक्षिण भारतीय प्रदेशो मे से है। गद्य-पद्य मे प्रसिद्ध तमिळ साहित्यिको के छोटे वर्णन भी प्रकाशित हुए है, उदाहरणार्थ: के० एस० नागराजन (बेंगलोर) ने वैष्णव रहस्यवादी कवयित्री आण्डाळ पर (अ० वा०, १९४७) लिखा। वाई० महालिग शास्त्री ने 'द्राविडार्य-सुभाषित-सप्तति' मे तमिळ की विदुषी अव्वै (तिरुवलगाडु, १९५२) के मूल्यवान पद्यो मे से चुनी हुई रचनाएँ जमा की है। तमिळ लोक-गीतो और प्रसिद्ध धार्मिक गीतो की धुने संस्कृत मे दक्षिण भारत के विद्वान् संगीत रचनाकारो और कवियो ने ग्रथित की: नौका-गीत, झूले के गीत, तिरुप्पुह, कुम्मी, कोलाट्टम इत्यादि। इनमे से कई मौखिक परपरा मे सुरक्षित है, और कुछ पाडुलिपियो मे। कडय्यकुडि के सुब्रह्मण्य शास्त्री की प्रकाशित रचनाओ मे से एक मे कई लोक-गीतो की धुनो का उपयोग किया गया है। नरसिंह संस्कृत कालेज, चिट्टिगुडूर के एस० टी० जी० वरदाचारियार ने संस्कृत मे तेलुगु के प्रसिद्ध शतक-काव्यो को पद्यबद्ध किया: वेमनाशतक, सुमतिशतक, दाशरथीशतक, कृष्णशतक और भास्करशतक और कलहस्तिस्वरशतक*। डॉ० जी० वी० सीतापति ने स्फुट तेलुगु पद्यो को संस्कृतबद्ध किया, जिनमे क्षेत्रज्ञ के कुछ तेलुगु पद है, जो भरतनाट्य मे अभिनय के लिए प्रयुक्त किये जाते है और गुरजाड अप्पाराव की 'पूर्णम्मा' नामक एक तेलुगु कविता भी है। आंध्र वीमेंस संस्कृत कालेज, राजामुंद्री के वाई० मल्लिकार्जुन राव ने

* सैलम, १९५५।

‡ मैसूर, १८९८।

* चिट्टिगुडूर और मद्रास, १९५४ और १९५५।

तेलुगु रोमास 'कलापूर्णोदय' का सस्कृत गद्य-रूपान्तर प्रस्तुत किया है। के० यज्ञनारायण दीक्षित ने अल्लसाणि पेद्दन्ना के 'मनुचरित्र' के रूपान्तर का प्रथम खड प्रकाशित कर दिया है।

मलयालम मे, केरल के तीन प्रधान आधुनिक कवि उल्लूर परमेश्वर, ऐयर, वल्लत्तोल नारायण मेनन और कुमारन् आशान के अनुवाद डा० वी० रामण नम्बूतिरी‡ और एन० गोपाल पिल्लई ने किये हैं। मलयालम से सस्कृत मे अन्य पद्यानुवादो मे उल्लेखनीय हैं—'चन्द्रिका' (हरिप्पाद, १९५५), 'केशवीयम्' तथा 'नलिनी' काव्य। महाराष्ट्र मे एम० आर० तेलग नामक स्वर्गीय गुणी विद्वान ने, जिसकी सब रचनाएँ हस्तलिखित रूप मे हैं, ज्ञानेश्वर की एक छोटी कविता का अनुवाद सस्कृत मे प्रकाशित किया है (एम० आर०, मई १९४७)। सातारा के सखाराम शास्त्री भागवत और पूना के एम० पी० ओक ने 'ज्ञानेश्वरी' का सस्कृत मे अनुवाद किया है। पडित ओक का कार्य न्यायाधीश ए० वी० खासनीस ने आगे बढाया। डी० टी० साकोरीकर का 'गीर्वाण-केकावली' (भोर, १९४६) मोरोपन्त की 'केकावली' का सस्कृत रूप है। एन० सी० केलकर के प्रसिद्ध मराठी उपन्यास 'बलिदान' का सस्कृत अनुवाद लटकर शास्त्री ने किया (कोल्हापुर, १९४०)। बगाली सस्कृतज्ञो ने दक्षिण भारतीय बधुओ के ढग पर सुसगत कार्य किया है। बगाली महाकाव्य 'मेघनादवध' सस्कृत में प्रकाशित हुआ (स० सा० प० प० १९३३–३४, नित्यगोपाल विद्याविनोद)। भास्करानन्दस्वामिन ने सस्कृत मे चैतन्य की जीवनी पर 'चैतन्यचरित्रामृत सस्कृत अनुवाद' (स० सा० प० प०, १९५४, खड १ अलग मे प्रकाशित, १९५६–५७) लिखा है। बकिमचन्द्र और शरच्चन्द्र के अनुवादो का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कई कविताएँ और छोटी गद्य-कृतियाँ भी फटिकलाल दास ने सस्कृत मे अनूदित की उर्वशी, स्पर्शमणि,

‡ महाकवि हृदय, त्रिवेन्द्रम्, १९६५, 'केरलभाषाविवर्त', त्रिवेन्द्रम, १९४८।
* 'सीताविचारलहरी', त्रिवेन्द्रम्, १९४०।

अभिसारिका, असारदानम्, निष्फल उपहार, राष्ट्रं न प्रतिबुध्यताम्, मस्तक-विक्रय, तुच्छ क्षति, स्वर्ण-मृग ये सब रचनाएँ मजूषा (१९५४-५५) मे प्रकाशित हुई, और 'प्रतिनिधि' (स० सा०प० प०, अक्तूबर १९५५) तथा 'पूजार्थिनी,' धीरेन्द्रनाथ द्वारा अनूदित (स० सा० प० प०, अक्तूबर १९५८) हुई। एस० पार्थसारथी ने ठाकुर के 'कचदेवयानी' का सस्कृत-रूपान्तर मद्रास सस्कृत कालेज मे १९२४-२५ मे रगमच पर अभिनीत किया। हिन्दी कविता को सस्कृत मे उतारने का कार्य जयपुर के मथुरानाथ शास्त्री ने बडे विस्तृत ढग पर किया। वे 'जयपुरवैभव',* 'साहित्य-वैभव'†, और 'गीतिवीथी'‡ नामक ग्रथो मे कई छन्द और गीत-रूप ब्रजभाषा और हिन्दी और उर्दू से सस्कृत मे लाये। उनका उद्देश्य सस्कृत-पण्डितो को प्रादेशिक छन्दो के सौदर्य से परिचित कराना था; उन्होने 'बिहारी-सतसई' का भी सस्कृत मे अनुवाद किया। होशियारपुर के जगद्राम शास्त्री ने अपनी 'सगीत रामायण' मे आजकल प्रचलित हिन्दी लोकधुनो का समावेश किया है। सस्कृत मासिक 'सूर्योदय' मे प्रसिद्ध हिन्दी-निबन्धो के सस्कृत रूपान्तर मिलते हैं। विपुलानन्द ने तुलसीदास के एक विनय-पद का अनुवाद (अ० वा०, १९५०) किया है और मैसूर के के० तिरुवेकटाचार्य ने हस्तलिखित रूप मे तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का सस्कृत-रूपान्तर तैयार किया है। 'सस्कृतम्' (३-८-५६) मे बम्बई की गुजराती रहस्यवादी कवयित्री निर्मला उपनाम 'श्यामा' पर लेख है और इसी पत्रिका के दिसबर (१९५७) अक मे राहुल साकृत्यायन की 'निशा' का अनुवाद है, जिसमे ६००० ई० पू० मे वोल्गा के उत्तरी तट पर आदिम भारोपीय जीवन की एक कथा कही गई है।

आधुनिक सस्कृत की समृद्धि मे विभिन्न भाषाओ और साहित्यो के

* जयपुर, १९४७।

† जयपुर, १९३०।

‡ बम्बई।

अनुवादो ने वडा योग दिया है। अग्रेजी कविता मे अनुवाद का उल्लेख पहले किया जा चुका है। उमर खैयाम की रुबाइयात की ओर सस्कृत-लेखक भी स्वाभाविक रूप से आकर्षित हुए हैं हरिचरण ने, जिन्होंने 'कपाल कुण्डला' का सस्कृत अनुवाद किया था और विजयनगरम् के आदि माटल नारायणदास ने उमर खैयाम का सस्कृत अनुवाद किया है, उनके वाद गिरिधर शर्मा ने ('अमर-सूक्ति-सुधाकर'),। प्रोफेसर एम० आर० राजगोपाल आय्यगार ने* तीसरा, और पी० वी० कृष्णन नायर ने उमर खैयाम का चौथा अनुवाद 'मदिरोत्सव' ‡ नाम मे किया। उमर खैयाम का सवसे हाल में जो अनुवाद हुआ, वह है सदाशिव डागे का 'भावचपक' (ववई, १९५६)। मध्यपूर्व के साहित्य के अनुवादो में 'अलीवावा और चालीस चोर' कहानी का सस्कृत अनुवाद जी०के० मोडक ने किया और 'अलादीन और उसका जादुई चिराग' (सह० ४) और 'गुलिस्ताँ' के दो अनुवाद, 'प्रसून वाटिका' रामस्वामी ने म० मा० प०प० (१९२३-२४) मे और 'पुष्पोद्यान' दो भागो मे आर० वी० गोखले† ने प्रकाशित किया। 'आवेस्ता' को भी जो कि 'ऋग्वेद' की सस्कृत के निकटतम है, अनुवाद के लिए लिया गया, विशुद्ध सस्कृतज्ञो द्वारा नही वल्कि पारसियो द्वारा, पुराने अनुवाद 'कलेक्टेड सस्कृत राइटिंग आफ दि पारसीज' नामक सीरीज मे प्रकाशित हुए और आधुनिक पारसी लेखको मे भाषाशास्त्रज्ञ डॉक्टर आई० जे० एस० तारापोरवाला ने मजूषा के पृष्ठो मे 'आवेस्ता' की प्रार्थना के सस्कृत-अनुवाद के कुछ नमूने दिए है, और प्रसिद्ध गुजराती कवि ए० एफ० खवरदार ने कई प्रार्थनाओ के सस्कृत-रूप अपने 'न्यू लाइट आन दि गाथाज आफ होली

। झालरापटन, १९२९।

* मद्रास, १९४०।

‡ त्रिचूर, १९४५।

† लागमेन्स १९३८।

। वेलगाव, १९३५।

जरथुस्त्र' (बम्बई, १९५१) मे दिए है। बौद्ध पालि साहित्य से, म० म० विधुशेखर भट्टाचार्य का 'मिलिन्दपन्ह' का (स० सा० प० प०, दिसम्बर १९३६), मजूषा मे 'धम्मपद' का क्रमश (सितम्बर, १९५२) सस्कृत-अनुवाद प्रकाशित हुआ। प्राचीन ईसाई स्रोतो के और यूनानी मुहावरो और सस्कृत समानार्थी कहावतो के सस्कृत अनुवाद आर० आत्वान एस० जे० और के० सी० चटर्जी ने प्रकाशित किये (मजूषा १९५१ और १९५३)। जापानी साहित्य से कुछ अनुवाद 'मित्रगोष्ठी' मे प्रकाशित किये गए।

सस्कृत के लेखको ने अपने उन बधुओ की ओर भी ध्यान दिया है जिन्होने अग्रेजी माध्यम के द्वारा अपने साहित्यिक गुणो को व्यक्त किया। 'अहो बलीयस्त भवितव्यताय' पी० शकर सुब्रह्मण्य शास्त्री ने एक मनोरजक दार्शनिक कहानी के सस्कृत-अनुवाद (सहृ० १२) के रूप मे प्रस्तुत की है जो मूल अग्रेजी मे बी० आर० राजम् अय्यर के 'रैम्बल्स इन दि वेदान्त' नाम से थी। वी० वी० श्रीनिवास अय्यगर मद्रास मे अव्यावसायिक रगमच के सस्थापको मे से एक थे; उन्होने अग्रेजी मे कई मनोरजक नाटिकाएँ लिखी, जिनमे से एक का सस्कृत रूपान्तर 'दामु कुटुम्बक' नाम से उ० प० (खड ४) मे प्रकाशित हुआ। 'उमादर्श' नामक सी० वेकटरामैया (बेंगलोर, १९३७) की कविता 'उमाज मिरर' नामक के० ए० कृष्णस्वामी अय्यर की अग्रेजी कविता का अनुवाद है। प्रसिद्ध भारताग्ल लेखक के० एस० वेकटरमणी के 'ए डे विथ शम्भू' (बच्चो के लिए उपदेशात्मक रचना) का सस्कृत अनुवाद वाई० महालिग शास्त्री ने 'शम्भुचार्योपदेश' ‡ नाम से किया है। श्री अरविन्द के काव्यो मे से कुछ रचनाओ का सस्कृत मे अनुवाद टी० वी० कपाली शास्त्री ने 'कविताजलि' (मद्रास, १९४६) नाम से किया।

‡ मद्रास, १९३१।

राष्ट्रीय आन्दोलन

नया आन्दोलन वस्तुत एक नव-जागरण और भारत की आत्मा की एक नई खोज था। आधुनिक शिक्षा और आलोचनात्मक दृष्टि के विकास के साथ-साथ, भारतीय इतिहास अधिक गहराई से पढ़ा जाने लगा, भारतीय परम्परा के महत्त्व का नया अनुभव सामने आया। सस्कृतज्ञ प्राचीन भारत के वैभव की ओर उत्साह से मुड़े और नव जागरण के नये प्रयत्न की ओर प्रोत्साहित हुए। भारतीय सस्कृति के उन्नततर आध्यात्मिक मूल्य और आधुनिक सभ्यता का भौतिक स्वरूप नई शक्तियो और रूपो का विकास, पश्चिम का दासत्वभरा मर्कटानुकरण इन सबसे एक प्रतिक्रिया पैदा हुई और भारतीय आत्मा की पुन प्रतिष्ठा की भावना उसमे से जागी। राष्ट्रीयता और स्वतत्रता-आन्दोलन का जन्म हुआ और सार्वजनिक आन्दोलनो के नेताओ के एक समूह का उदय हुआ। इनकी देश-भक्ति, त्याग, वक्तृत्व-शक्ति और अभियानो ने बुद्धिजीवियो और जनसाधारण को एक साथ झकझोर दिया। सस्कृतज्ञ भी राजनैतिक आन्दोलनो से प्रभावित हुए और इस युग के सस्कृत-लेखक मे नवयुग का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। वस्तुत इस नई भावना से अनुप्राणित साहित्य ही समकालीन सस्कृत का सबसे बडा भाग है।

इस वर्ग मे सबसे पहले वे कविताएँ है जिनमे उच्छ्वसित ढग से स्वप्निल लेखक भारत की महत्ता तथा पतन की चर्चा करता है, और भावी पुनर्निर्माण के स्वप्न देखता है। 'तदातीतम् एव' (वह सब बीत गया) भारत की प्राचीन श्रेष्ठता की स्मृति दिलाने वाली विलापिका है, जो अन्नदाचरण तर्कचूडामणि (स० च०, स० ५) ने लिखी है। 'भारती मनोरथ' मे एम० के० ताताचार्य, (पी० डब्ल्यू० डी०, मद्रास) ने समुद्र के किनारे अपनी एक तद्रा का वर्णन किया है, जिसमे वे इस देश की ऊँची सस्कृति और आधुनिक काल मे उसके पतन के चित्र देखते है। एम० टी० जी० वरदाचारियर के

* प्रथम विश्वयुद्ध के समय प्रकाशित।

'सुषुप्ति वृत्त'† मे भी तीन सर्गों में एक स्वप्न है, जिसमे पहले प्राचीन गौरव की तुलना मे अँधेरा चित्र दिया गया है, बाद मे क्षितिज पर महात्मा गाँधी की आकृति आती हुई दिखाई गई है, जो अँधेरा दूर करती है। पच्चीस मन्दाक्रान्ता छन्दो मे एम० वी० सुब्रह्मण्य अय्यर (स० सा० प० प०, १९२५-२६) ने 'भारत-वधू-विपाद' मे भारतीय परम्परा के ह्रास के प्रति शोक व्यक्त किया है। 'भारत-भाग्य-विपर्यय'‡ के० एस० कृष्णमूर्ति शास्त्री की एक बडी लबी कविता है, जिसका विपय भी यही है। 'भारत गीता' (मद्दू० १) मे भारतमाता पर आर्याएँ लिखी हैं। किसी भी सस्कृत-पत्रिका का शायद ही कोई ऐसा अक निकलता हो जिसमे भारतमाता पर कविता प्रकाशित न हुई हो। टी० वी० कपाली शास्त्री ने अपने 'भारती-स्तव'* मे परम देवी माता के ही दर्शन भारतमाता के रूप मे किये हैं। लक्ष्मी अम्माल देवी की 'भारती गीता' मे तीन सर्गों में, भारत की प्रतिष्ठा और पतन का वर्णन है और भारतमाता के पुत्रो को उसके सर्वांगीण पुनर्जागरण के लिए कटिबद्ध होने का आवाहन है। 'शारदा प्रमाद'† मोचेर्ल रामकृष्ण की रचना है, जिसमे भारतीय सस्कृति के अनुयायियो की दुर्दशा वर्णित है। पुरी के म० म० दामोदर शास्त्री ने भारत की महानता पर 'भारत गौरव' नामक एक कविता की रचना की है।

आधुनिक घटनाओ का प्रभाव

इसके वाद राष्ट्रीय आन्दोलन से सवधित नेताओ के विपय में साहित्य आता है। 'सस्कृत चन्द्रिका' के वाद से सभी पत्रिकाओ मे नेताओ की जीत और उपलब्धियो के विपय मे कविताएँ और वर्णन

---

† चिद्रिुड्र-मद्रास, १९३७।

‡ म० वा० मे क्रमश प्रकाशित।

* अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी, १९४६।

† नेल्लोर, १९४६।

प्रकाशित होते रहे हैं। सं० चं० के पाँचवें खंड में 'टिळकावतार' पर ३७ छन्दों की एक कविता है। सहृ० में गोखले का गद्य-वर्णन है, उनकी मृत्यु पर एक विलापिका (९, १०) है, और सरोजिनी नायडू पर एक कविता है। हाल के लोकमान्य टिळक-उत्सव के अवसर पर एम० एस० अणे, के० डब्ल्यू० चितळे, वासुदेव शास्त्री वागेवाडिकर तथा 'मधुरवाणी' के संपादक पंडारिनाथाचार्य गलागलि ने चार टिळक-जीवनियाँ संस्कृत में लिखी हैं। बंगलौर के श्री नागराजन ने 'भारतीय देशभक्त चरित्रम्'‡ नाम से एक जीवनी-माला लिखी, जिसमें टिळक, एंड्र्यूज़, विवेकानंद*, राधाकृष्णन् आदि की जीवनियाँ हैं। कुरुक्षेत्र के पंडित भिक्षराम ने गद्य में मालवीय, राजेन्द्रप्रसाद, पटेल और नेहरू की जीवनयाँ लिखी हैं। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्रज्ञ आशुतोष मुखर्जी पर कालिपाद ने 'संस्कृत पद्यवाणी' पत्रिका में 'आशुतोष अवदान' लिखा। वी० सूर्यनारायण शास्त्री ने आंध्र के संपादक, देशभक्त और वयोवृद्ध नागेश्वर राव की एक छोटी-सी जीवनी 'जीवित चरित्र' लिखी है। लक्ष्मी नारायण शणभोग के 'राष्ट्रसभापतिगौरव' † में सभी कांग्रेसाध्यक्षों का वर्णन है, सुभाष बोस पर एक विशेष कविता है, और कांग्रेस के १९३५ के स्वर्ण-जयन्ती अधिवेशन की स्मृति का विशेष उल्लेख है। सं० र० (नवम्बर, १९४८) में एक विशेष कविता नेहरू पर है; और हाल में ही नागपुर के एस० वी० वर्णेकर ने नेहरू पर 'जवाहर तरंगिणी' नाम से सौ श्लोक लिखे हैं।

फिर भी, महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व में, राजनैतिक कार्य के साथ भारत के महात्माओं के आदर्श और व्यवहार का ऐसा मिश्रण हुआ था कि संस्कृत के लेखकों का सबसे अधिक ध्यान उनकी ओर ही आकर्षित हुआ, और उन पर नई गीताएँ और महाकाव्य रचे गए, जैसे किसी

‡ बैंगलोर, १९५२।

* अलग से प्रकाशित, बैंगलोर, १९४७।

† बम्बई, १९३८।

आधुनिक राम या बुद्ध पर लिखे गए हों। सत्याग्रह की कथा, जो आधुनिक भारत में एक गाथा की भाँति पढ़ी जाती है, कई काव्यों का विषय बनी। क्षमा राव की 'सत्याग्रह गीता'* और 'उत्तर सत्याग्रह गीता' † प्रसादपूर्ण महाकाव्य-शैली में लिखी गई हैं। सी० पांडुरंग शास्त्री की 'सत्याग्रह-कथा' (म० वा०), जाझर (रोहतक) के सत्यदेव वशिष्ट का 'सत्याग्रह नीति काव्य', और पूना के ताडपत्रीकर द्वारा गाँधी-विचार का सार, जिसमें भगवद्गीता की पर्याप्त प्रतिध्वनियाँ मिलती हैं (गीता गाँधी जी का प्रिय ग्रंथ था) इसके उदाहरण हैं। प्राचीन महा-काव्य शैली में, स्वामी भगवदाचार्य ने अपने महाकाव्य के तीन खंड लिखे हैं: 'भारत पारिजात', 'पारिजातापहार' और 'पारिजात सौरभ'‡। दरभंगा के साधुशरण मिश्र ने 'श्रीमद् गाँधी चरित्र' (पांडुलिपि) नामक महाकाव्य बीस सर्गों में लिखा है। 'गांधी दर्शन' की टीकाओं में डी० एस० शर्मा का 'गांधी सूत्र'* उल्लेखनीय है। इसमें लेखक ने प्राचीन सूत्र शैली को प्रयुक्त किया है। इसमे गांधीजी के सूत्र गांधीजी की रचनाओं और भाषाओं में से अंग्रेजी टीकायुक्त संकलन के रूप में जमा किए गए हैं। गाँधी जी और उनके उपदेशों पर छोटी कविताएँ कई पत्र-पत्रिकाओं में तथा काव्य-संग्रहों में बिखरी हुई हैं। उदाहरणार्थ अ० वा० (१९४५) में एस० कृष्णभट्ट की 'गांधी-सप्ताह' और डॉ० छावड़ा की 'स्वर्णबिंदु', जिसमें प्रयुक्त वैदिक छंद से यह सुझाया गया है कि महात्मा गाँधी भारतीय ऋषियों की परम्परा में थे। गाँधी जी के विचारों का जो निरूपण सबसे हाल में हुआ है, वह है 'गाँधी सूक्ति मुक्तावली'। इसके लेखक सी० डी० देशमुख ने विभिन्न छन्दों में, गाँधी जी की सौ चुनी हुई सूक्तियों का रूपान्तर किया है।

---

* पेरिस, १९३२।

† बम्बई, १९४९।

‡ द्वितीय पूर्ण संस्करण, अहमदाबाद, १९५१।

* मद्रास, १९३८, १९४६।

उन कहानियों का उल्लेख पहले किया जा चुका है जो स्वतन्त्रता के आन्दोलन पर आधारित हैं। प्रस्तुत लेखक का 'सोम-हस्तगत' एक कथा-काव्य है, जो कुछ शराबी ब्रिटिश सिपाहियों की कुदृष्टि से एक गरीब हिन्दू स्त्री को बचाने में रेलवे के पाइन्टसमैन की वीर-मृत्यु की सत्यकथा पर आधारित है। उस आन्दोलन पर एक पूरा नाटक 'भारत मंगलम्' (स० सा० प० प०, १९५१) छपा है, जिसमें जनता के संकल्प या इच्छा-शक्ति का 'गण-शक्ति' नाम से वर्णन है। उसका एक ओर चंडीमाता और दूसरी ओर भगवद्गीता पात्र बनकर समर्थन करती हैं। इसमें मातृ-मुक्ति का उद्देश्य निरूपित किया गया है। १८५८ के आन्दोलन का जो शताब्दी-समारोह हाल में हुआ था, उसके अवसर पर इस प्रथम भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के प्रति कई रचनाएं संस्कृत में लिखी गईं, यथा वासुदेव शास्त्री वागेवाडिकर ने गद्य में 'क्रान्ति-युद्ध' लिखा, और 'मधुरवाणी' (मई १९५८) में उस संग्राम के नायकों पर 'क्रान्ति-वीराणाम् अद्भुतकथा' नामक रचना प्रकाशित हुई।

पत्र-पत्रिकाओं में राजनीतिक स्थिति और राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों से सम्बद्ध अनेक लेख भी प्रकाशित होते रहे हैं। स० च० में 'वैदेशिक वाणिज्य भारतदेशीय धर्मश्च' लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें सादे राष्ट्रीय जीवन और स्वदेशी वस्तुओं के प्रसंग में उन पाश्चात्य उत्पादकों की निन्दा की गई थी, जो कि भारत में तेल-साबुन की भरमार किए दे रहे थे। 'श्री' (खंड १०, अंक ३,४) में एक कविता 'खादी' पर है।

स० र० में रियासती राजाओं से जनसाधारण और किसानों की स्थिति सुधारने की प्रार्थना की गई है (१९३९) और जनता को अपनी सत्ता देने की बात है (अक्तूबर १९४७)। स० र० में एक कविता 'देश-दशा' (१९४२) छपी है, जिसमें देश के सर्वांगीण विकास के लिए क्या किया जा सकता है यह लिखा गया है। विनोबा भावे का नवीनतम

*म० वा० १९४७ अलग से भी प्रकाशित।

भूदान आन्दोलन भी भारती (१९५३) में 'भूदान-चतुः श्लोकी-गीता' नामक कविता का विषय है।

'गांधी सूत्र' की तरह 'ग्रामिज्म' ग्रंथ के लेखक राम राय ने 'राष्ट्रस्मृति' † नाम से कुछ छोटी गद्य-सूक्तियाँ दी हैं, जो प्रत्येक देश-भक्त को प्रतिज्ञा की भाँति याद रखनी चाहिएँ।

स्वतन्त्रता-आन्दोलनों के अभियानों और सभाओं में संगीत की आवश्यकता थी और स्वयंसेवकों और जनसाधारण के उत्साहवर्धन के लिए कई राष्ट्रीयतापूर्ण गीत लिखे गए। ऐसे राष्ट्रीय गीतों की बड़ी बाढ़ आई। इसमें संस्कृत का भी अपना योग है। 'भारत भजन' ‡ में दक्षिण भारत के एक प्रसिद्ध संगीत रचनाकार मयूरम् विश्वनाथ शास्त्री ने संस्कृत के एक लोकप्रिय रूप को अपनाया। कई प्रचलित हिन्दुस्तानी तथा कर्नाटक संगीत-पद्धतियों का भी इनमें समावेश किया गया ताकि वे दूर-दूर तक गाए जा सकें। मथुरानाथ शर्मा के 'साहित्य वैभव' में कई 'देश-गीत' हैं।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति का संस्कृत कविता में स्वागत किया गया। देवकीनन्दन शर्मा का 'स्वतन्त्र भारत' (सं० र०, अगस्त १९४७ में प्रकाशित), प्रस्तुत लेखक की रचना 'स्वराज्य केतु' 'हिन्दू' में प्रथम स्वातन्त्र्य-दिवस-उत्सव के समय प्रकाशित, कुन्नन राजा की 'भारत-प्रशस्ति' (अड्यार लायब्रेरी बुलेटिन, फरवरी १९५० में प्रकाशित) और बंगलोर के एम० रामकृष्ण भट्ट की 'स्वातन्त्र्य ज्योतिष' उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। पं० प्रभुदत्त शास्त्री ने राष्ट्रध्वज और चरखा पर कविताएँ लिखी हैं।

महात्मा जी के शोकपूर्ण अवसान के बाद कई विलापिकाएँ और लम्बी कविताएँ लिखी गईं। प्रस्तुत लेखक की 'महात्मा'*, अमरचन्द्र की

† अहमदाबाद १९५०।

‡ मद्रास, १९४८।

* 'वेदान्त केसरी', मद्रास, १९४८, अलग से भी।

'महात्मा' (सं० सा० प० प०, फ़रवरी १९४८), सुधाकर की 'हा विश्ववंद्य गांधी' (सं० र०, फ़रवरी १९४८), के० एल० वी० शास्त्री की 'महात्मा विजय'†, जी० सी० झाला की 'श्रद्धांजलि'‡, वी० नारायण नायर की 'महात्मा निर्वाण'*, बद्रीनाथ झा की 'शोक श्लोकाष्टक' आदि रचनाओं में देश-भर में फैले हुए विषाद और राष्ट्र-पिता की मृत्यु से जनता की हानि का वर्णन है। इन सब कविताओं में, संक्षेप या विस्तार से, गाँधीजी जो आदर्श हमारे लिए छोड़ गए हैं उनका वर्णन है।

डॉ० सी० कुन्नन् राजा के कारण स्वतंत्र भारत का संविधान संस्कृत में अनूदित किया गया। डॉ० कुन्नन् राजा ने विधान के कुछ अंशों का प्रारूप 'भारत राष्ट्र-संगठन'†† नाम से प्रस्तुत किया। इस दिशा में दूसरा प्रयत्न (शासकीय समिति ने जब यह कार्य उठाया उससे पहले) बेजवाड़ा के वकील जी० कृष्णमूर्ति ने किया। उन्होंने ८-१-१९४९ तक विधान-सभा द्वारा स्वीकृत धाराओं का अनुवाद संस्कृत में किया।

स्वातंत्र्योत्तर काल की राजनैतिक घटनाएँ, विशेषतः कश्मीर की नाटकीय घटनाएँ, जिनका अन्त शेख अब्दुला की गिरफ़्तारी में हुआ, एन० भीमभट्ट ने 'कश्मीर-सन्धान-समुद्यम्'‡ में वर्णित की हैं।

स्वतन्त्र भारत की कई समस्याएँ संस्कृत-पत्रिकाओं में विवेचित हैं। कांग्रेस सरकार के दोष, भ्रष्टाचार, काला बाजार और दूसरी बुराइयाँ, स्वदेशी विद्याओं और संस्कृत के प्रोत्साहन का अभाव आदि पर 'संस्कृत भवितव्यम्' (२१-८-१९५४) में पी० करमलकर शास्त्री ने 'स्वतंत्र्याभास' नामक कविता में शोक व्यक्त किया है। संस्कृत और उसकी सद्यःस्थिति

---

† पालघाट, १९४९।

‡ 'वन्दे मातरम्' और उनका 'सुषमा' नामक संग्रह, १९५५।

* त्रिचूर, १९५४; लेखक की टीका सहित।

† दरभंगा, १९५३।

†† अडयार लाइब्रेरी, १९४८।

‡ अ० वा० बैंगलोर, ११-१२, १९५२-५३।

एक वह चर्चित विषय है। 'विज्ञान-चिंतामणि' मे प्रकाशित एक नाटक का उल्लेख पहले किया जा चुका है, जिसमे सस्कृत का भविष्य एक ओर अग्रेजी और दूसरी ओर प्रादेशिक भाषाओ को पात्र रूप मे रखकर किया गया है। उसीके समान अन्य रचनाएँ भी लिखी गई हैं, उदाहरणार्थ प्रभुदत्त शास्त्री ने सस्कृत हिन्दी-मिश्रित-शैली मे 'सस्कृत वाग्विजय' नामक पचाक नाटक (दिल्ली, १९४२) लिखा। काशी कृष्णम्माचार्य की 'भारती-सप्तक-त्रय' और उससे पुराने आर० वी० कृष्णमाचारियर की 'वाणी-विलाप' (कुम्भकोणम्, १९२६) सस्कृत-विद्या की दुखद दशा पर कविताएँ हैं। पत्र-पत्रिकाओ मे इस प्रकार की अगणित कविताएँ छपी हैं।

सस्कृत-जगत् की आखे अब उत्सुकता से साहित्य अकादेमी और उसकी सस्कृत-परामर्शदात्री-समिति की प्रेरणा से निर्मित सस्कृत कमीशन† की ओर केन्द्रित हुई है।

इस सर्वेक्षण से यह स्पष्ट लक्षित होगा कि सस्कृत न तो सोई है और न वह प्राचीन विचार-बन्धो को ही पुन. दुहरा रही है। परिवर्तन के युग में स्थित्यन्तर मे सस्कृतज्ञ भी अपना हाथ बँटाना चाहते हैं और चारो ओर घटित घटनाओ के प्रति अपने मन की प्रतिक्रियाएँ और आकाक्षाएँ व्यक्त कर रहे हैं।

संस्कृत का भविष्य

सस्कृतज्ञ वडे शौर्य और धैर्य से अपनी भाषा को जीवित बनाये रखने का यत्न कर रहे है, और उसे केवल पुरातन विद्या और अतीत की कला-कृतियो का प्राचीन भाडार ही बनाये रखना नही चाहते। वे अब यह अनुभव करने लगे हैं कि निरी प्राच्य-विद्या के शोध पर विलियम जोन्स और मैक्समूलर के कथनो की उद्धरणी या प्राचीन की स्तुति गाने

† इस कमीशन की रिपोर्ट अब प्रकाशित हो गई है और सरकार उसकी सिफ़ारिशों पर विचार कर रही है।

मात्र मे काम नही चल सकता और न उस प्रकार उस भाषा का एक जीवित भाषा का स्तर दिया जा सकता है। उसकी पूर्वप्रतिष्ठा कायम रखने के लिए समकालीनो द्वारा उस भाषा का उपयोग और उसमे मौलिक रचना ही एक-मात्र उपाय है । पडितो के साथ-साथ अंग्रेजी पढा-लिखा शिक्षित संस्कृतज्ञ भी अब मुक्त रूप मे सस्कृत मे लिखने और बोलने लगा है। विश्वविद्यालयो मे भी सस्कृत के माध्यम द्वारा परीक्षा मे उत्तर दिये जाने लगे है और स्नातकोत्तर शोध-प्रबन्ध भी लिखे जाने लगे हैं। अब नियमित रूप मे सस्कृत-परिषदे होने लग गई है। सस्कृत कठिन भाषा है, इस तर्क के खडन मे सस्कृत को सरल बनाने के प्रयत्न और उसे सुधारने के यत्न भी किये जा रहे है। सस्कृत अध्यापन के इस पक्ष को लेकर अनेक पुस्तक-पुस्तिकाए सस्कृत मे प्रकाशित हुई है। गत जन-गणना मे बहुत अधिक लोगो ने अपनी मातृ-भाषा सस्कृत लिखवाई है। अपने अन्य कार्यों के बीच भूतपूर्व वित्त मत्री महोदय-जैसे व्यस्त सार्वजनिक कार्यकर्ता भी सस्कृत मे मौलिक रचना की शक्ति का अभ्यास बढाते जाते है।

सस्कृत मे इस नई आत्मा की कुछ मुख्य विशेषताए है—पाश्चात्य साहित्य के विचारो और रूपो का प्रभाव, प्रादेशिक साहित्यो के साथ घनिष्ठ सम्बन्धो का पुनर्नवीकरण, समकालीन भारत का सस्कृत-साहित्य मे प्रतिबिम्ब, और आज देश को जिन विचारो और आदर्शों ने अनु-प्राणित किया है, उनका प्रसार। इस विस्तार मे कुछ ऐसी भी बाते आ गई है जिनका महत्त्व बतलाना बहुत आवश्यक है। अन्य भारतीय भाषाओ की भाँति सस्कृत को अग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओ से कुछ शब्दो को आत्मसात् कर लेना चाहिए, परन्तु सस्कृत-जैसी भाषा मे वैज्ञानिक साहित्य की परम्परा है और उसमे शब्द-निर्माण की अपेक्षाकृत अधिक सुविधा है, अत सस्कृत के नये लेखक अधिक सशक्त, प्राजल और मधुर शब्दावली एव शैली निर्मित कर सकते है । हिन्दी-हिन्दी उत्तर भारतीय सस्कृत पत्रिकाओ मे जैसे अन्य प्रयोग किये जाते है,

यथा सरकारस्य, कार्ड, बिलम् इत्यादि, वे न किये जायँ तो अच्छा होगा। सस्कृत में भी बडे अच्छे नये पर्यायवाची शब्द निर्मित हो सकते है, जैसे कुछ सस्कृत-पत्रिकाओ और निबन्धो मे प्रयुक्त होते है, यथा कृष्णआपण (ब्लैक मार्केट), उच्च शिक्षण (हायर एजुकेशन), अनावृतपत्र (ओपेन लेटर), विलीनीकरण (मर्जर) आदि। प्रादेशिक भाषाओ में संस्कृत तत्सम और तद्भव शब्दो के अर्थ देश के विभिन्न भागो मे विभिन्न रूप लेते रहे है। उनके प्रयोग को एक स्थिर रूप देना होगा। विशेषत. भारत मे स्थानो के नाम और स्वयं 'इडिया' शब्द सस्कृत मे उसी गलत और विकृत रूप मे प्रयुक्त नही होने चाहिए जैसा कि अग्रेजो ने प्रयुक्त किया था। यूरोप मे, काटिनेट के लोग एक भी स्थल का नाम उस तरह नही लिखते-बोलते जैसे कि उसे अग्रेजी मे लिखा और बोला जाता है। अग्रेजी के गलत रूपो को आधार मानकर उनको सस्कृत रूपो में ढालना ऐसी शब्द-विकृति पैदा करना है, जिसका निवारण किया जा सकता है।

अपनी मातृभाषाओ के प्रभाव वश, कई उत्तर भारतीय सस्कृतज्ञ अनुष्टुप छन्द की शुद्ध लय का निर्वाह नही कर पाते; वल्कि प्रामाणिक लिख जाते है और छन्द की यति को तोडने वाला सयुक्त व्यजन लिख जाते है। इस प्रकार, इस नियम का पालन नही होता कि सम चरण के अन्त मे ही लघु गुरुत्व प्राप्त कर सकता है, या कि वह अगले शब्द के लिए सन्धि-विरहित रखा जाय। सस्कृत मे अधिकाधिक रचना द्वारा ही इन बातो के लिए उचित श्रुति पाई जा सकती है। ऐसे युग में जब कि सस्कृत शिक्षा व्यापक या गहरी नही है, साहित्यिक कार्य की वृद्धि से भी ऐसे व्याकरण-दोष आ जाते है, परन्तु आश्चर्य तो यह है कि अधिकतर लेखक शुद्ध लिखते है। एक सरल सीधी गद्य-शैली का विकास बहुत लाभदायक होगा, परन्तु मुहावरो, शैली और रचना मे अग्रेजियत की बू कम होनी चाहिए और वह शैली सस्कृत भाषा की परम्परा के अनुकूल होनी चाहिए। बाण-पूर्व युग मे, पुराने भाष्यो में, आरम्भिक

नाटक और लोक-गाथा-साहित्य में बड़ी सुन्दर शब्दावली और प्रसाद-युक्त शैली है, जिसे हम पुनः प्रयोग में ला सकते हैं। साहित्यिक शिल्प और विधाओं में छोटी कविता, लघुकथा, दीर्घ कथा, नाटिका, बड़े नाटक, निबन्ध-प्रबन्ध आदि-जैसी पुरातन साहित्य में भरपूर प्रातिनिधिक रचनाएँ हैं, जिनका पुनः उपयोग किया जा सकता है।

नाटक में पश्चिमी नाटक के ढंग पर अंकों का दृश्यों में विभाजन कोई महत्त्वपूर्ण शोध नहीं है। वे सब बातें हमें अपना लेनी चाहिए जो संस्कृत-नाटक के ढाँचे में अच्छी तरह जम सकती हों। संस्कृत-नाटक की शब्द-बहुलता को कम करके नया रूप देना, उसके चरित्रों को अधिक मांसल और सशक्त बनाना, तथा कथानक को अधिक कार्ययुक्त बनाना ज़रूरी है; फिर भी यह ध्यान में रखना चाहिए कि संस्कृत-नाटक जब उन्नति पर था, तब उसकी अपनी अपूर्व शैली और सिद्धान्त थे। आज जब पश्चिम में ट्रैजेडी का पुराना रूप बदल गया है और इलियट-जैसे आलोचक नाटक का उद्देश्य भरत और आनन्दवर्धन के ढंग पर निरूपित करने लगे हैं, तब संस्कृत-लेखकों को चाहिए कि पश्चिम के घिसे-पिटे नमूनों का अनुकरण करने से पहले थोड़ा रुकें और आत्म-निरीक्षण करें। कलात्मक मूल्यों के तत्त्वों को समोकर उनका एक सांगस्वरूप स्थिर करना चाहिए। कालिदास ने जो आदर्श सामने रखा था कि 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' और शक्तिभद्र ने जो कहा था कि 'गुणाः पूजास्थानं' न कि वह स्थान जहाँ से कोई वस्तु आती है; उन्हीं का अनुकरण करते हुए हमें इसके लिए यत्नशील होना चाहिए कि संस्कृत पुनः एक रचनात्मक भाषा के नाते जीवित और जागृत हो, तथा उसके लम्बे इतिहास में नई-नई उपलब्धियाँ भी जुड़ें।

सिंधी

लां० ह० अजवाणी

भाषा

सिंधी भाषा, जैसा कि डॉक्टर ट्रम्प ने अपने 'व्याकरण' (१८७२) में कहा है, "विशुद्ध संस्कृत से निकली हुई भाषा है और उत्तर भारत की किसी भी अन्य देशी भाषा की अपेक्षा विदेशी तत्त्वों से अधिक मुक्त है। पुराने प्राकृत वैयाकरणों के चाहे जो कारण रहे हों, कि वे आधुनिक सिंधी को अपभ्रंश से निकली हुई मानते थे और प्राकृत उपभाषाओं में सबसे निचला स्थान उसे देते थे, परन्तु आज हम सिंधी की उसकी प्राकृत उपभाषा-भगिनियों के साथ तुलना करते हैं तो व्याकरण की दृष्टि से हमें उसे प्रथम स्थान देना होगा।" (भूमिका, पृष्ठ १)। विद्वान् डाक्टर ट्रम्प से भी पहले, कैप्टेन जार्ज स्टेक ने सिंधी व्याकरण लिखा है, और उन्होंने इस प्रवृत्ति को बुरा कहा है कि सिंधी भाषा को केवल सगतरों के लिए उचित भाषा समझा जाए। उन्होंने लिखा है कि "भाषा वैज्ञानिक के लिए सिंधी किसी भी अन्य भारतीय उपभाषा से अधिक मनोरंजक अध्ययन का विषय है। सर्वनामों और कारकों के बिना शब्दों को प्रत्यय चिन्ह लगाना, कर्मणी प्रयोग का नियमित रूप, भावी प्रयोग की अधिकता, कारणात्मक क्रियाओं का पुनर्द्वित्व और अन्य ऐसी बातें, जो कि सिंधी सीखने वाला विद्यार्थी धीरे-धीरे विशेष रूप से जानेगा, अन्य भारतीय भाषाओं में सिंधी की विशेष सुन्दरता प्रकट करते हैं।"

(भेरूमल मेहरचन्द के 'सिंधी भाषा पर सिंधी प्रबन्ध' (१९५६) में पृष्ठ ७७ पर उद्धृत)। जो सिंधी लिपि आजकल प्रयुक्त होती है, वह ब्रिटिश शासकों ने १०० वर्ष पूर्व निर्मित की थी, और उसके अरबी लिपि होने के कारण यह बात छिप जाती है कि सिंधी संस्कृत से निकली है और अन्य प्राकृतों में सबसे पुरानी है। अब्दुल करीम संडेलो नामक एक मुस्लिम प्रोफ़ेसर ने हाल में प्रकाशित एक पुस्तक में सिंधी शब्दों की व्युत्पत्ति ('तहकीक लुगात सिंधी', १९५५) में यह सिद्ध किया है कि अधिकतर सिंधी शब्द संस्कृत से निकले हैं। साथ ही यह भी जानना चाहिए कि सिंधी भाषा की शब्दावली मिश्रित है और उसमें हज़ारों शब्द फारसी-अरबी-स्रोत वाले हैं, कुछ द्राविड़ और अन्य आर्यपूर्व शब्द भी हैं। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने जहाँ पहले भारतीय प्रदेश में हमला किया (७१२ ई०), वह सिंध था और इस हमले के पहले भी यूनान और ईरान, सीथिया और अफ़गानिस्तान की टोलियाँ बराबर इस प्रदेश पर आक्रमण करती रहीं। इस प्रकार, सिंध के रक्त में कई जातियों और राष्ट्रिकों का रक्त मिश्रित है। सिंधियों को छुआछूत या विदेशयात्रा-निषेध-जैसे धार्मिक बंधनों का कभी भी पता नहीं रहा। सिंधी व्यापारियों ने सदियों तक रेगिस्तान और समुद्र पार करके ऐसे दूर-दराज़ की जगहों में अपने-आपको स्थापित किया जहाँ कोई दूसरा भारतीय शायद ही कभी पाया जाता हो। यह स्वाभाविक है कि उनकी भाषा कई विदेशी स्रोतों से प्राप्त उपहारों से समृद्ध होती गई।

यह सुविदित है कि सिंधियों के इतिहास के आरम्भ-काल से सिंधी एक सुसंस्कृत जाति रही है और यह आशा की जाती है कि शायद सिंधी भाषा के साहित्य में उस सभ्यता का कुछ लेखा हो। सिंध के इतिहास और उसकी सभ्यताओं का एक विशेष रूप मोहनजोदड़ो या 'मुर्दों के टीले' की पुनरावृत्ति है। सभ्यता की कई सतहों के नीचे दबे हुए ये टीले पाये गए हैं। न पत्थर, न संगमरमर, न कविता, न चित्र-कला—

किसी भी रूप में इस महान् सभ्यता के वैभव का कोई चिन्ह अब बचा नहीं था, तभी सहसा एक राखाल दास बैनर्जी ने कई शतकों के बाद कुछ उत्खनन किया और उस लुप्त भूतकाल के कुछ अवशेष पाए। सिन्धु नदी का प्रवाह और किनारे हमेशा अदलते-बदलते रहे हैं, और इसी कारण सिंधी-प्रदेश में रेगिस्तान छा गया।

कविता : शाह और उनके अनुवर्ती

इसलिए यह कोई विचित्र बात नहीं है कि सिंधी साहित्य का पहला बड़ा नाम पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में मिलता है। अरबों के राज्य के दिनों में कुछ छुट-पुट कविता मिलती है, और 'दोदो चनेसर' नामक कहानियाँ और पद्य में पहेलियाँ, जैसे कि मामुई भविष्य-वाणियाँ आदि गाँवों में प्राचीन काल से चली आती थीं, परन्तु प्रथम सिंधी कविता जो लिखित रूप में मिलती है, वह काज़ी काज़न (पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में) के पद्यों में पाई जाती है। यह दोहा रूप में है और इसमें सिंधी कविता का वह विशेष स्वर मिलता है जो बार-बार दोहराया गया है कि 'प्रिय के दर्शन के बिना' (अनन्त की साधना के बिना) बाह्य गुण, जैसे विद्वत्ता या पवित्रता इत्यादि व्यर्थ हैं। ये सब तो उन राक्षसों की तरह हैं जो किसी भी समय हमें पाताल या नरक-लोक में खींचकर ले जायँगे। काज़ी काज़न ने जोगी या योगी का बार-बार शुक्रिया अदा किया है, जिसने उनको मानसिक आलस्य से जागृत किया। और इस प्रकार सिंधी कविता के सबसे महत्त्वपूर्ण गुण का प्रमाण मिलता जाता है—हिन्दू दर्शन और मुस्लिम विश्वासों की दो धाराओं का संगम, इसीमें से विशेषतः जिसे सूफी कविता कहते हैं, वह उमड़ पड़ी।

काज़ी काज़न की कविता में अभिव्यक्त यह प्रेरणा उस महान् आध्यात्मिक जागृति या आन्दोलन का परिणाम है, जिसके कारण कबीर और चैतन्य, नानक और तुकाराम-जैसी ईश्वर-प्रेमोन्मत्त आत्माएँ पैदा हुईं। सिंध में यह आन्दोलन भिट के शाह अब्दुल लतीफ (१६८९-

१७५२) के रूप में अधिक आगे बढ़ा। इनका 'रिसालो' या काव्य-ग्रन्थ दुनिया के महान् ग्रन्थों में से एक है और सिंधी जनता की मूल्यवान साहित्यिक परम्परा का अंग है। शाह अब्दुल लतीफ़ के पूर्ववर्त्ती कई कवि थे, जिनमें मुख्य थे—उनके पिता के प्रपितामह, बुलरी के शाह अब्दुल करीम (१५३८-१६२३)। इनकी दार्शनिक कविता 'रिसालो' में उनके प्रसिद्ध वंशज ने संग्रहीत की है।

शाह अब्दुल लतीफ़ को केवल 'शाह' की संज्ञा दी जाती है, वे प्रकृति के कवि, गद्यकार और रहस्यवादी सब एक साथ थे। उनके बहुत-से 'सुर' या संगीतमय अध्याय पाठक के सम्मुख सिंध और वहाँ की जनता को समुपस्थित करते हैं—महान् सिंध नदी और उसके मछुआरे, अनति-दूर रेगिस्तान और ऊँट वाले, राजा के महल की बुर्जियाँ और पनघट, बगीचे में शहज़ादी और फ़ारस की खाड़ी की ओर वापस जाने वाला मोती बेचने वाला व्यापारी, करघे पर काम करने वाले बुनकर और अपने चक्के पर काम करने वाला कुम्हार, वर्षा से सुखी किसान और लड़ाई में कूद पड़ने वाला वीर इत्यादि का वर्णन इस कविता में है। इन दृश्यों के आस-पास सिंधी वीर-गाथाओं की नायिकाओं की कहानियाँ इस महाकवि ने बुनी हैं। ये कहानियाँ बहुत उदात्त और करुण हैं। शाह के सस्सुई और मारुई, सुहिणी और नूरी, लीला और मूमल आदि चरित्र उन्हें उस महाकवि के निकट ले जाते हैं, जिसके बारे में यह कहा गया है कि उसकी रचनाओं में नायिकाएँ ही हैं, नायक नहीं; शाह की हर कहानी में एक गहरा आध्यात्मिक अर्थ भी छिपा है। शाह के रेगिस्तानी संगीत से एक प्रकार का अलौकिक स्वप्न हमारे सामने उपस्थित होता है, जिसमें सारी स्थूलता मिट जाती है। प्रेमी, प्रेमिका और प्रेम यह त्रयी ही केवल नहीं है, तीनों के मेल से एक ऐसी मूर्ति निर्मित होती है, जो कि बची रहती है, जब कि अनेक परिवर्तन होते जाते हैं। शाह के सरल शब्दों ने कुछ विदेशियों को भरमाया है और वे समझते हैं कि वे एक साधारण कवि हैं। परन्तु जो सिंधी अधिक अच्छी तरह जानते हैं, वे

कह सकते हैं कि वे महाकवियो और मर्मियो की उस कोटि मे आते है, जिसमे तुलसीदास और सूरदास, रूमी और हाफिज है। सिंधी लोग शाह को उस अखड कोप की तरह मानते हैं, जिससे वे निरन्तर प्रेरणा और आनन्द ग्रहण करते रहे हैं।

शाह के साथ-साथ दो और अमर सिंधी कवियो के नाम लिये जाते है,और ये तीनो मिलकर एक ऐसा नक्षत्र-समूह बनता है, जिससे अधिक आलोक सिंधी साहित्याकाश मे अभी तक किसी ने नही पाया। सचल (१७३९-१८२६) जिनका उपनाम 'सरमस्त' था और सामी (१७४३-१८५०), जिनका नाम उनके गुरु (स्वामी) पर रखा गया, ऐसे दो अन्य कवि है, जिनकी किसी भी सिंधी कवि से तुलना नही की जा सकती। सचल का दिमाग इकसुरिया था और उनकी विशेषता उनके गीतो मे है। उन्होने कोई कहानी नही कही है, कोई दृश्य हमारे सामने उपस्थित नही किया है, वे तो अपनी प्रेयसी की उपस्थिति से इतने प्रेमोन्मत्त थे कि और कोई भौतिक बात सोच ही नही सकते थे। उनके लिए व्रत, उत्सव, कर्म-काण्ड का कोई अर्थ नही था। जिसने परम सुन्दर की एक झलक खिडकी मे पा ली, उसे प्रार्थना और अध्ययन की क्या आवश्यकता! सचल की 'काफियाँ' बहुत मधुर, ओजस्वी, अलौकिक आनन्द के रस भरी हुई है, वे आज भी सब वर्गो के सिंधियो द्वारा गाई जाती है। सामी के 'सलोक' अपार शान्ति से और अविद्या (अज्ञान या माया) को दूर करने वाली वेदाती प्रेरणा से भरे हुए है, उनमे आत्मा के प्रकाश को पाने की छपटाहट है। शाह, सचल और सामी मे मुख्यत सामान्य बात है . आत्मा की परमात्मा के लिए टोह, किरण की सूर्य की ओर वापस यात्रा, बुद्‌बुद् का फूटना तथा बिन्दु और सिन्धु की एकाकारिता।

शाह, सचल और सामी के ग्रन्थो ने सिधी कविता का जो रूप निश्चित किया वह आज तक नही बदला है। सिंधी कविता सूफियानी है, वह सम्प्रदायवाद से मुक्त है, अनेक मे एक की उपस्थिति की चेतना

से वह ऊर्जित है। सिंधी कवि के लिए ईश्वर का पिता होना और सब मनुष्यों का भाई-भाई होना कोई मानी नहीं रखता उसका विश्वास है कि मैं, तुम और वह केवल एक हैं। यदि 'अ' ने 'ब' को मारा तो वह वस्तुतः अपने-आपको मार रहा है। किसी भी तरह का पक्षपात मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति में उसे लगाने वाला माना जाता है। शाह सचल और सामी के अनुयायियों में सबसे प्रसिद्ध कवि 'बेदिल' (१८१४-१८७३) ने लिखा है "मेरा (असल) नाम बेदिल सिर्फ कहाना या मन का छलावा है, मेरी एकमात्र इच्छा प्रियतम से मिलने की है।" उसे कर्मकाण्ड या औचित्य की चिन्ता नहीं है, उसे किसी तरह का भय या लज्जा भी नहीं है। सिंधी कविता की सूफी प्रवृत्ति और सर्वमत-समभाव का एक परिणाम यह हुआ कि यह कविता कट्टरपन, जातीयता या सकीर्ण सम्प्रदायवाद से मुक्त रही सूफी 'ला कफी' है (बिना किसी पन्थ या सम्प्रदाय का है)। रोहल (मृत्यु १७८२), और दलपत (मृत्यु १८४१) एक मुस्लिम और दूसरा हिन्दू, दोनों ने पन्थ और मतवाद से स्वतन्त्रता प्रकट की है। रोहल सब पन्थों को छोड़कर एक राह पकडना जानता है, जिसका नाम 'राह प्रीअ जी' (प्रियतम का रास्ता) है, वह उन हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को कोसता है, जिन्होंने कि तीसरा 'वैर का धर्म' प्रचारित किया है। दलपत सहज भाव से पूछता है, "यदि काबा परमात्मा का घर है, तो बुतखाने को क्यों छोड़ते हो?" वह इस बात पर शोक करता है कि दुनिया के लोग मजहब और फिरकों में बँटे हैं। सिंध में कभी-कभी धर्मों के मिश्रण से ऐसा भी हुआ है कि मुसलमान कवि अपने-आपको गोपी और ईश्वर को कृष्ण कहकर कविता लिखते हैं। सूफी कवियों की इस निरन्तर धारा ने शान्ति और आत्मा के प्रकाश की सिंधियों की प्यास को बनाया है। ऊपर जो छ नाम दिए गए हैं वे इन कवियों में सबसे अधिक संस्मरणीय हैं, उनके अलावा हैं हमल लगारी, मुराद, दर्यासान, बेकस (बेदिल का पुत्र) और जीवनसिंह। इनमें से कइयों ने सिराइकी

बोली मे कविता लिखी है, जिसमे सीमा के लोगो की भाषा की सहजता और मधुरता मिलती है।

यह मानना होगा कि सिंध की अधिकाश उत्तम सूफी कविता ब्रिटिश-पूर्व दिनो की है और उसकी विषय-वस्तु तथा कला पक्ष (दोहा रूप) हिन्दी, पजाबी और अन्य उत्तर भारतीय भाषाओ से मिलते-जुलते हैं। ये सबध सामान्यतः १८४३ मे अग्रेजो के आने के बाद कुछ विगड गए। फारसी दरबारी भाषा नही रही। पढे-लिखे लोग साधारण बोल-चाल और उत्तम रचना के लिए अपनी भाषा की ओर मुडे तथा इस तरह सिंधी मे कसीदा, गजल, मसनवी, रूबाइयाँ, मुसद्दस, मुखम्मस इत्यादि लिखे जाने लगे। अग्रेजो की विजय के पहले कोई-कोई सिधी कवि कभी-कभी फारसी कवियो के ढग पर सिधी मे मर्सिये या कसीदे लिखता था, जैसे साबित अली शाह(१७४०-१८१०)। परन्तु खलीफा गुल मोहम्मद (१८०९-१८५६) जब तक अपना दीवान या गजलो का खण्ड सिंधी मे नही लाए तब तक फारसी-छन्द-शास्त्र, पुराने दोहे और श्लोक रूपो पर हावी होते रहे। गुल को कोई बडा कवि नही कहा जा सकता, परन्तु उनके आदर्श ने सिधी कवियो को फारसी छन्द शास्त्र और फारसी कल्पना-चित्रो की ओर मोडा, यहाँ तक कि सिधी कविता फारसी मुहावरे और अन्तर्कथाओ से बोझिल हो गई। वही बुलबुल और गुलाब, वही काटे और गुल, वही शमा और परवाना, वही लाल शराब और साकी, वही झरने और सुगन्धित बगीचे, वही आहू-जैसी आँखे और सरो-जैसे ऊचे कद और यूसुफ-जुलेखा, लैला-मजनूँ, शीरी-फरहाद इत्यादि कथाएँ। सिधी भाषा को इस तरह फारसी छन्द-रूपो मे ढालना या बदलना, सिधी भाषा और साहित्य के लिए कहाँ तक उपयोगी हुआ, यह सन्देह की बात है। गुल के बाद जो १०० वर्ष बीते, उनमे एक भी ऐसा कवि नही पैदा हुआ, जिसकी गजल रूबाइयात, कसीदा या मुसद्दस इस स्तर की हो, जिसकी तुलना सिधी के मोरियो (१८७६) और लालू (१८९०)-जैसे अप्रसिद्ध कवियो की

काफी, वैत, वाई ग्रौर सुर से की जा सके। इन कवियो ने ससुई-पुन्हू, राय-ड्याच, मारुई, कामसेन-कामरूप इत्यादि के बारे मे गाया है। यह उल्लेखनीय है कि प्रमुख सिंधी कवि (उदाहरणार्थ बेदिल), जिन्होने सिधी मे फारसी ढग की कविता लिखने की कोशिश की, ग्राज उन पद्याशो के लिए नही पढे जाते, उन्हे तो सिधी काफियो या शुद्ध गीतो के लिए याद किया जाता है। सागी (१८५१-१९२४), खाकी' (लीला-रामसिह), मिर्जा कलीच वेग (१८५३-१९२९), हैदरबख्श जतोई ('हारी हकदार' नेता), शमसुद्दीन बुलबुल (जिनकी गजल की किताब १८९१ मे छपी), ग्रौर लेखराज ग्रजीज़ (ग्रधिकतर ग्रनुकरणात्मक कवि) कुछ ऐसे नाम है जोकि विगत १०० वर्षो की फारसी ढग की सिधी कविता का लेखा लेते समय सामने ग्राते है। परन्तु इनमे से कोई भी कवि ऐसा नही है, जिसे महान् या लोकप्रिय कवि कहा जाय। वैसे तो सिधी म गजलो, कसीदो इत्यादि के दीवान या सग्रह प्रकाशित करनेवाले सैकडो है, उदाहरणार्थ, कासिम, फाजिल, वासिफ, काजिम ग्रौर ग्रन्य, परन्तु उनकी कविताएँ सिर्फ पद्य की कसरत है, और कुछ नही। मिर्जा कलीच वेग का 'उमर खैयाम की रूबाइयात' का ग्रनुवाद, मसरूर की मुसद्दस के रूप मे महान् रचना, अवोजो का उर्दू कवि हाली के ग्रादर्श पर मुसद्दस, ग्रौर जतोई का सिंध नदी के प्रति प्रसिद्ध सम्बोधन, ये कुछ थोडी कविताएँ है जो कि फारसी के ढग पर है ग्रौर शायद ग्रधिक स्थायी रूप से याद की जायंगी। इधर पाकिस्तान मे ग्रौर भारत मे फारसी ढग पर हँसी ग्रौर तज की हल्की कविता लिखने की ओर कवियो का रुझान रहा है। शेख ग्रय्याज ('बागी' के लेखक) पाकिस्तान मे ग्रौर परसराम जिया भारत मे इस तरह की कविता लिखते है। मगर लेखराज ग्रजीज का नवीन प्रकाशन 'ग्राबशार' (झरना) जिस तरह बेग्रसर साबित हुग्रा, उससे यह सिद्ध होता है कि फारसी कविता के कृत्रिम ग्रौर ग्रालकारिक ग्रनुकरण का सिन्धी मन पर ग्रच्छा असर या प्रभाव नही पडेगा।

समकालीन कविता

समकालीन सिंधी कविता मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण धारा करीब ३० वर्ष पूर्व शुरू हुई जब कि मोहनजोदडो की खोज और सक्खर बाँध के निर्माण के बाद नया सिंध स्थापित हुआ। सिंधी साहित्य सोसायटी और सिंधी मुस्लिम अदबी सोसायटी-जैसी साहित्यिक और सास्कृतिक सस्थाएँ स्थापित हुई और विश्वविद्यालयो के पाठ्य-क्रम मे सिंधी पढाई जाने लगी। फारसी अनुकरण के जगल से सिंधी कविता को मुक्त करके घरेलू बोलचाल की स्वाभाविक सिंधी भाषा की ओर मोडने का श्रेय एक गरीब स्कूल मास्टर किशनचन्द बेवस (मृत्यु १९४७) को है, जिन्होने गरीबो की गाथा गाई, प्रकृति के सौदर्य का वर्णन किया और बच्चो के लिए सरल गीत लिखे। उनकी पुस्तको के नाम 'शीरी शैर', 'गगाजूँ लहरूँ' इत्यादि है। चाहे बेवस मे कला-पक्ष की विशेषताएँ बहुत उच्च न हो और उन्होने सिंधी परम्परित छन्द को फारसी छन्द-रूपो के साथ मिला दिया हो, फिर भी उनकी रचना सदा ताजी, मौलिक और विशेषता-पूर्ण है। उनकी बडी उपलब्धि यह है कि उन्होने कवियो का एक दल स्थापित किया, जिसमे हरिदिलगीर ('कोड' या 'सीप' के लेखक), हूदराज दुखायल ('सगीत फूल' के लेखक), राम पजवाणी, गोविंद भाटिया और अन्य थे। इन्होंने अपने गुरु की कविताओ को एक लोकप्रिय सस्करण के रूप मे प्रस्तुत किया, (इस प्रकाशन की भूमिका लिखने का सौभाग्य प्रस्तुत पक्तियो के लेखक को मिला है)। इन शिष्यो ने गुरु की उदार परम्परा को आगे बढाया।

समकालीन सिंधी कविता का दूसरा बडा गुण यह है कि नवीन आन्दोलन मे विद्यार्थी, अध्यापक और प्रोफेसर सब भाग ले रहे है। एन० बी० थधाणी ने 'भगवत् गीता' का (१९२३ मे) सिंधी पद्य मे अनुवाद किया। पद्य तो फारसी बहर पर है, किन्तु भाषा सस्कृत धर्म-ग्रन्थो से ली है। ऐसे ही गीता के कुछ स्मरणीय अनुवाद मेघराज कलवाणी, मूलचन्द लाला और चैनराय बूलचन्द ने किये है और अन्तिम

उल्लेख्य अनुवाद मुक्तछन्द मे टी० एल० वासवाणी का है। हैदरबख्श जतोई ने इकबाल के ढग पर 'शिकवा' लिखा, जिससे कि सनातनियो मे बडा तूफान उठ खडा हुआ, मगर उनकी 'दरियाये-सिन्ध को खिताब' (जिसका उल्लेख पहले हो चुका है) और 'आजादी-ए-कौम' (१०४७) नामक कृतियाँ साहित्य की स्थायी निधि बनी रहेगी। जब बहुत-सी गजले लोग भूल जायँगे तब भी वे किताबे याद की जायँगी। जतोई ने गुल और सागी की धारा के अनुयायी के नाते साहित्य मे आरम्भ किया, किन्तु राजनीति और साहित्य दोनो क्षेत्रो मे वे क्रान्तिकारी बन गए। नई सिंधी कविता मे बेबस के बाद दूसरा नाम उन्हीका आता है। नये युग के दूसरे कवि, जिनका नाम उल्लेखनीय है, डेवनदास आजाद है जिन्होंने आर्नल्ड के 'लाइट आफ एशिया' का 'पूरब सदेश' (१९३७) नाम से अनुवाद किया। सिंधी कविता-प्रेमियो मे यह अनुवाद बहुत लोकप्रिय है।

सिंधी कविता की नई धारा न तो शाह, सचल और सामी के परम्परित पद्य का अनुकरण करने की है और न सूफी परम्परा वाली है, वह फारसी छन्द-शास्त्र और कल्पना-चित्रो से विवश होकर या पडिताऊ ढग से चिपटे रहने की भी नही है, बल्कि मुक्त-छन्द का ऐसा रास्ता,वस्तुत यूरोपीय साहित्य के आधार पर, ग्रहण करने की है। वह लेखक जिसने इस नई धारा को शुरू किया, सिंधी सस्कृति के इतिहास मे सबसे बडा लेखक है। दयाराम गिदूमल (१८५७-१९२७) विद्वान् सत थे, उन्होंने करीब ३० वर्ष पूर्व अपनी दार्शनिक कविता का बडा ग्रथ 'मन-जा-चाबूक' (मन के चाबुक) प्रकाशित किया—इन कविताओ के मुक्त छद और आशय ने विचारवान और उदीयमान सिंधी तरुणो की रुचि मे क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित कर दिया। सिंधी मे मुक्त छन्द को लोकप्रिय बनाने का दूसरा प्रयत्न कई प्रकार के लेखको ने कई तरह से छन्दो और गद्य-काव्यो का प्रयोग करके किया। इन अनुवादको मे मघाराम मलकाणी, लालचन्द अमरडिनोमल, अर्जन हसराणी और

हरीराम मारीवाला (जिनके 'फल्ल चूंड' या टैगोर के 'फ्रूट गेदरिंग' का अनुवाद गत वर्ष प्रकाशित हुआ) हैं। दूसरे भारतीय कवियो के अनुवादो (उदाहरणार्थ, दयो मशारमाणी कृत नजरुल इस्लाम का अनुवाद) ने भी मुक्त छन्द की प्रवृत्ति को आगे बढाया। दो सच्चे कवि इस मुक्त छन्द की धारा से पैदा हुए—नारायण श्याम, 'माक-जा-फुडा' (ओस-कण) के आंशिक लेखक और सिंधी मे सानेट के लेखक , और अय्याज, जो कि बहुमुखी प्रतिभा वाले लेखक है और इस समय जीवित सिंधी कवियो मे सबसे अधिक प्रसिद्ध है। दूसरे नाम है—अचल और राही, गोरधन महबूबाणी और खियलदास फानी, 'गुमनाम' (बलदेव गाजरिया), मोती प्रकाश, अर्जन शाद (हिंदुस्तान मे) और वाई० के० शेख, बशीर मोरियाणी, बुर-द-सिंधी, अबुल करीम गदाई (पाकिस्तान मे)। समकालीन सिंधी कविता मे दो बडी प्रभावशाली कविताओ मे एक अय्याज ने लिखी है, वह शाह के प्रति सम्बोधित है, जिससे कि वर्ड्सवर्थ की कविता 'मिल्टन! तुम यदि आज जीवित होते' की याद हो आती है, दूसरी, खियलदास फानी की 'ओ मेरे वतन! मेरे वतन', नामक अविस्मरणीय रचना है। भारत के विभाजन के समय उसे अपने वतन को छोडने के लिए बाध्य होना पडा, उन भावनाओ की अभिव्यजना इस कविता मे दी गई है। टी० एल० वासवाणी के सिंधी मुक्त-छन्द मे दूर-दूर तक पहुँचने वाले उपदेशो ने सिंधी मन को फारसी छन्द-शास्त्र और कल्पना-चित्रो की दासता से मुक्त किया है। तोलाराम बालाणी नामक एक लेखक ने अपने पद्य और गद्य से बडी आशाएँ पैदा की थी, परन्तु उनकी अकाल-मृत्यु हो गई।

नाटक

अन्य देशो मे कविता और नाटक अधिकतर साथ-साथ चलते है। सिंध मे कविता बहुत आगे बढ गई और नाटक पिछडे रहे। सिंधी लोक-नृत्य (भगत) ने भी कोई नाटक नही निर्मित किया। केवल दो

नाटक-क्लब अब तक सिध मे चलते रहे, एक 'डी० जे० सिध कालेज अमेच्योर ड्रामेटिक सोसाइटी' जो कि उन्नीसवी शताब्दी के अन्त मे शुरू हुई और दूसरा, 'रवीन्द्रनाथ लिटरेरी एण्ड ड्रामेटिक क्लब', जो १९२० के करीब शुरू हुआ। पहली नाटक-मडली ने शेक्सपीयर के नाटको के अनुवाद (जिनमे से मिर्जा कलीच बेग का 'शाह इलिया' या 'किंग लीअर' सबसे अच्छा था) और कुछ चुने हुए नाटक खेले, जिनमे से सेवासिह अजवाणी का 'कनिष्ठ' (१९०२),जो कि शेरेडन के 'पिजारो' पर आधारित था, बहुत अच्छा था। कुछ नाटक रामायण और महा-भारत से लिये गए (उदाहरणार्थ लीलारामसिह का 'द्रौपदी', 'रामायण', और 'हरिश्चन्द्र')। आर० एल० डी० सी० का सबसे सफल नाटक था 'उमर-मारुई', यह नाटक लालचन्द अमरडिनोमल ने लिखा था, इसकी कहानी और कविता के अश शाह से लिये गए थे। इस क्लब की सच्ची 'खोज' थे, के० एस० दरयानी, जिन्होने 'मुल्क-जा-मुदव्वर' (इब्सन के 'पिलर्स आफ सोसाइटी') और 'बुख-जो-शिकार' (भूख के शिकार) लिखा। मघाराम मलकाणी ने कई सामाजिक नाटक लिखे और एकाकी लेखन उन्हीसे शुरू हुआ (पाँच छोटे नाटक)। वे ही आज के जीवित लेखको में सबसे महत्त्वपूर्ण नाटककार है। शिकारपुरी ड्रामेटिक क्लब ने सिधी मे 'गामटू' (प्रिटेन्डर्स) नामक कई नाटक जेठानन्द नागराणी द्वारा लिखित दिए, परन्तु उरसाणी के 'बदनसीब थरी' (अभागा थरी) की ही तरह ये नाटक प्रहसनो से अधिक कुछ नही है।

शान्त अध्ययन-गृह मे जिन नाटको का आनन्द उठाया जा सकता है, ऐसे साहित्यिक नाटको मे निस्सन्देह दो सर्वोत्तम है, मिर्जा कलीच बेग का 'खुर्शीद', जो कि एक शानदार नाटक है। उसके गीत बहुत सुन्दर है और यह १८७० मे लिखा गया। दूसरा है, लीलाराम फेरवाणी का 'हित रात' (१९३६), शाह की 'सुर लीला चनेसर' से यह कहानी ली गई और उसमें थोडा-सा परिवर्तन किया गया है। दयाराम गिदूमल के 'सत्त सहेल्यूँ' मे सवाद और कौडामल चदनमल कृत 'रतनावली'

(१८८८) का अनुवाद, जिज्ञासु पाठको के लिए ही महत्त्वपूर्ण है। राम पजवाणी का 'मूमल राणो' एक उत्तम नाटक है। पढने मे और मच के लिए वह खासा अच्छा है पर कल्याण आडवाणी के 'शाकुन्तल' के अनुवाद के बारे मे यह बात नही कही जा सकती।

गद्य

गत १०० वर्षों मे सिधी गद्य ने वडी प्रगति की है। पहले 'जाम भम्वो जमीदार' की देहाती कहानियाँ मिलती है (१८५३)—(गुलाम हुसैन द्वारा लिखित) और सादी के 'गुलिस्ताँ' की नकल पाई जाती है, जैसे कि केवलराम सलामतराय की 'सूखरी' और गुलमालाओ मे, 'अरेबियन नाइट्स' या अलिफ लैला के मनोरजन के व्यग-चित्र आ अखुद लुत्फल्लाह के 'गुल कन्द' (१८८२) मे मिलते है। सिधी गद्य इस प्रकार अनवादो से समृद्ध होता गया। १८५७-१९०७ की पहली आधी शती अनुवाद का युग है, इस युग को कई व्याकरण-शास्त्रियों और कोशकारो ने सहायता दी, जैसे अग्रेजी मे ट्रम्प, शर्ट, स्टेक और ग्रियर्सन। उधाराम थाँवरदास (व्याकरण) और झमटमल नारुमल (वैतपती कोष) के ग्रन्थ सिधी मे है। इस काल के अनुवादको मे दो बड़े नाम है, एक तो मिर्जा कलीच बेग, जिन्होने अपनी महान् विश्व-कोश-जैसी रचना का आरम्भ बेकन के 'एसेज' ('मिकालात अल हिकमत' इसका नाम था) के अनुवाद से १८७७ से शुरू किया। इसके बाद 'चचनामा' का अग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ और गजाली के 'किमिआई-इसादत'-जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थो का सिंधी मे अनुवाद प्रकाशित हुआ। कौडोमल चदनमल (१८४४-१९१६) ने पहले स्त्रियो की शिक्षा के विषय मे एक पुस्तिका 'पक्को पह' (१८७२) प्रकाशित की, फिर बच्चो के लिए कई किताबो के अनुवाद किये, जैसे 'कोलम्बस का इतिहास', 'आर्य नारी चरितर', और (बकिम की) 'राधारानी'। एक अनुवाद, जो सबसे अधिक लोकप्रिय हुआ था, जानसन के 'रासेलास' का था। यह अनुवाद

नवलराय और उधाराम (१८७०) ने किया था, इस अनुवाद की प्रेरणा से और अनुवाद आगे होने लगे, जैसे कि स्काट का 'टनिम्मैन' नवलराय के भाई हीरानन्द ने प्रस्तुत किया। एक और अनुवादक, जो कि अनुवादक से अधिक मौलिक लेखक थे, दयाराम गिदूमल (याग दर्शन, जप साहिब, गीता-जो-सार इत्यादि) थे। जिन लोगों ने पाठ्य-ग्रन्थों का अनुवाद किया (नन्दीराम, नारायण जगन्नाथ, बूलचन्द कोडुमल इत्यादि) उनमें वह नाम जो आज तक मिर्जा कलीच बेग और कौडोमल चदनमल के साथ ही चला आ रहा है, बूलचन्द कोडुमल का है। उन्होंने 'इगलैंड के इतिहास' का तर्जुमा उत्तम गद्य-शैली में किया। वासुमल जैरामदास ने तुलसीदास की रामायण का और मिसिर जेंकिंगन ने महाभारत के अंकों का अनुवाद करने का महत्त्वाकाक्षापूर्ण प्रयत्न किया।

सिंधी साहित्य के सिंहावलोकन में चार व्यक्तियों का उल्लेख चार स्तम्भों की तरह करना चाहिए, जिनपर सिंधी गद्य की इमारत खड़ी है। इनमें से तीन नाम पहले ही आ चुके हैं, वे थे मिर्जा कलीच बेग, कौडोमल चदनमल और दयाराम गिदूमल—चौथे का नाम अभी नही दिया गया। वे थे, परमानन्द मेवाराम, जो कि अपने निबन्धों और नैतिक रचनाओं के लिए सिंधी के एडीसन माने जाते हैं। मिर्जा साहिब (१८५३-१९२९) अनुवादक थे और कई क्षेत्रों में अग्रणी और मौलिक लेखक भी थे। उनका 'जीनत' (१८९०) सिंधी भाषा का पहला मौलिक उपन्यास है। प्रीतमदास के 'अजीब भेट' (१८९२) के साथ-साथ इस उपन्यास को यह श्रेय है कि उपन्यासों में चरित्र-निर्माण और सिंधी जीवन की झाँकी इसमें दी गई है। शाह की रचनाओं का 'शब्द-क्रम' इनका, विद्वत्ता और समालोचना की दृष्टि से, सिंधी में पहला बड़ा काम था। इन्होंने करीब ३०० किताबें ज्योतिष, खेती, प्राणि-शास्त्र और स्त्रियों के विषय में लिखी। कौडोमल चदनमल की सिंधी साहित्य की बड़ी देन उनका 'समीजा-श्लोक' का १८८५ में सम्पादित पाठशुद्ध

सस्करण है। सारे उपदेश शुद्ध सिंधी मे दिये गए है। दयाराम गिदूमल के गद्य ने मिर्जा साहब के उमर-खैयाम के अनुवाद और कौडोमल के 'सामि-जा-श्लोक' की भूमिकाएँ प्रस्तुत की। सिंधी गद्य की ये सर्वोच्च उडाने थी क्योकि इनकी भाषा ओजस्वी और उदात्त है। परमानन्द मेवाराम ने सिंध की साहित्यिक पत्रिका 'जोत' के सम्पादन-काल मे, जो कि उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम वर्ष से बीसवी शताब्दी के मध्य तक चलती रही, सिंधी-भाषी जनता को जो दो बहुत अच्छे निबन्ध-सग्रह दिए, उनमे से पहला 'गुल फुल्ल' और दूसरा 'विचार' नामक सग्रह था (जो कि प्रस्तुत लेखक द्वारा डी० जे० सिंध कालेज मिस्लेनी मे से चुना गया था)। परमानन्द मेवाराम का 'इमिटेशन आफ क्राइस्ट' का अनुवाद (क्राइस्ट-जी-पैरवी) गद्य की एक उत्तम पुस्तक है और उनकी सिंधी भाषा की डिक्शनरी (१९१०) अभी भी सर्वोत्तम है। परमानन्द मेवाराम दूसरे उत्तम निबन्धकार को भी प्रकाश मे लाए, जिनका नाम वाधुमल गगाराम था। उन्होने सामाजिक विषयो पर निबन्ध लिखे है।

१९०७-५७ के पचास साल सिंधी गद्य मे तेज विकास के वर्ष है, विशेषत अन्तिम १० वर्ष। इन पचास वर्षो मे १९०७-२७ के २० वर्ष तैयारी के वर्ष कहे जाने चाहिए और बाद के ३० वर्ष पूर्ति के या सम-कालीन सिंधी साहित्य-युग के वर्ष माने जाते है। ये वर्ष नए सिंध के उत्थान के साथ-साथ चलते है। तैयारी के वर्षो मे सिंधी गद्य के तीन शैलीकारो के नाम सामने आते है, ये तीनो फारसी, इस्लाम और सूफी मत के विद्वान् थे और सिंध के प्रेमी थे। निरमलदास फतेहचन्द ने 'आईना' (पत्रिका) मे अपनी रचनाओ, और 'सरोजनी' और 'दलूराई जी नगरी' नामक कहानियो द्वारा कई विद्वान् मुसलमानो को अपने फ़ारसी, अरबी और इस्लाम के ज्ञान से चकित कर दिया। सिंधी के वे उच्चकोटि के लेखक है और उनको समझने के लिए डिक्शनरी की सहायता जरूरी है। उनके पुत्र सोभराज अपने पिता के हल्के पूरक है। हरू सदारगाणी (खादिम) और दयो मशारमाणी-जैसे हिन्दू विद्वानो ने

इन्ही निर्मलदास की परम्परा को आगे बढाया। फतेह मोहम्मद मेवहाणी वैद्य और विद्वान् थे, 'आफताब-इ-अदब' (साहित्य का सूर्य), अबुलफ़जल और फैजी' और 'सीरत-ए-नवी' नामक ग्रन्थो के वे लेखक हैं, मुस्लिम आलोचनात्मक विद्वत्परम्परा के वे अग्रणी हैं। १९३१ मे मुस्लिम अदवी सोसाइटी कायम हुई, जिससे यह परम्परा आगे बढी। जोयो और नवी-वख्श वलूच, उसमान असारी और दीन मोहम्मद वफाई-जैसे विद्वानो का मुस्लिम अदवी वोर्ड वना और यह काम आगे बढा। फतेह मोहम्मद सेवहाणी हिन्दू-मुस्लिम-एकता के वडे ईमानदार कार्यकर्ता थे। साहित्य और सस्कृति के क्षेत्र मे उनका काम महत्त्वपूर्ण है। उनका गद्य प्रवाहपूर्ण और मार्मिक है।

सिंधी गद्य के इतिहास मे इससे भी वडा नाम जोकि सिर्फ मिर्जा कलीच वेग से महानता मे कम है, होतचन्द गुरवक्शाणी का है, जिनका शाह का सस्करण (१९२४) यद्यपि अधूरा है, फिर भी वाद के सव लेखको के लिए एक आदर्श उपस्थित करता है। आगा सूफी का सस्करण 'सचल सरमस्त' वीसवी शती के चौथे दशक मे, दाउदपोटा का सस्करण 'शाह अब्दुलकरीम' (१९३७), मुस्लिम अदव सोसाइटी का सस्करण 'गुल' (१९३३), शाहवाणी का सस्करण 'शाह' (१९५०), मुसवी का सस्करण, 'वेदिल' का (१९५४), नागराणी का सस्करण 'सामी' (१९५६), ये मव गुरुवक्शाणी के महान् कार्य की पूर्ति करने वाले ग्रथ हैं। हरेक मे गद्य-भूमिका गुरवक्शाणी के ढग की है। गुरुवक्शाणी का गद्य, जो कि 'नूरजहाँ और शाह' की भूमिका (मुकद्दमाए लतीफी) और 'लवारी-जा-लाल' मे है, फारसी मुहावरो से वोझल होने पर भी सिंधी लेखको के लिए एक आदर्श है।

समकालीन गद्य

समकालीन सिंधी गद्य तीन वडे लेखको के प्रवाह से वढा, तीस साल पहले, जव कि, ऊपर जिन चार वडे लेखको का उल्लेख है, वे सव

अपना कार्य पूरा कर चुके थे (मिर्ज़ा की मृत्यु १९२९ में हुई, दयाराम की १९२७ में और कौडोमल की १९१६ में)—सिंधी गद्य को हमारे युग में क़ायम रखने, प्रतिष्ठित करने और लोकप्रिय बनाने का सारा श्रेय जेठमल परसराम (मृत्यु १९४८), भेरूमल मेहेरचन्द (मृत्यु १९५०) और लालचन्द अमरडिनोमल (मृत्यु १९५४) को है। जेठमल परसराम थियाँसफ़ी, सूफ़ी मत और हिन्दू-मुसलमान एकता के आजीवन प्रचारक रहे। शेक्सपीयर के सानेटों में भी उन्हें सूफ़ी-धर्म दिखाई दिया! वे सिंधी के सबसे बड़े व सबसे पहले सिंधी पत्रों में लेख लिखने वाले और शाह के रहस्य के भाष्यकार थे (देखिये 'शाह की कहानियाँ')। उनके उत्साह से सिंध अपने रहस्यवादियों, सन्तों और सूफ़ियों के प्रति अधिक जागरूक हुआ। उनके व्यक्तित्व का एक दूसरा मज़ेदार पहलू भी था, जो उन्होंने अज्ञात नाम से, 'चमरापोश की कहानियाँ' लिखकर व्यक्त किया, इन कहानियों में अमीरों के लोभ और लालच का मज़ाक उड़ाया गया है। सिंधी साहित्य में जेठमल पहले सोशलिस्ट थे, और भेरूमल मेहेरचन्द सिंधी के व्याकरणकार और इतिहासकार थे। उनकी आलोचनात्मक दृष्टि बहुत सही थी, उनमें कार्य करने की विपुल शक्ति थी और यात्रा का प्रेम था। उन्होंने 'जोहर नज़म' नाम से सिंधी कविता का पहला संग्रह सम्पादित किया, शाह की यात्रा पर लिखा, 'आनन्द-सुन्द्रिका' नामक उपन्यास लिखा, कई पुस्तकों के अनुवाद किये, जिनमें जासूसी कहानियाँ भी हैं, और अपने जीवन की खोजों और अन्वेषणों को 'सिंधी व्याकरण', 'सिंधी भाषा का इतिहास' (१९४१) और 'सिंध के हिन्दुओं का इतिहास' (१९४७) जैसे अधिकारपूर्ण ग्रंथों में समाहित किया। भेरूमल मेहेरचंद की शैली में कोई विशेषता नहीं थी, वे सहज भाव से लिखते थे, उनकी रचनाओं का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कई तरुण लेखकों पर प्रभाव पड़ा। उदाहरणार्थ सिंधी गद्य का महान् श्रेष्ठ ग्रंथ, 'सैरे-कोहिस्तान' (कोहिस्तान की सैर १९४२) जो अल्ला बचायो ने लिखा, वह भेरूमल मेहेरचंद के 'सिंध-जो-सैलानी' का परिणाम है।

और चेतन मारीवाला जैसे ऐतिहासिक विषयो पर लिखने वाले (नारीगी मजमून, सिंध-जो-इतिहास), मोहम्मद सिद्दीक मेमण और नफ… बदवी-जैसे सिंधी कविता या साहित्य का इतिहास लिखने वाले … सचल' और 'सामी' पर पुस्तक लिखने वाले कल्याण आडवाणी-जग जीवनी और समालोचना के लेखक, और महात्मा गाधी नेहरू इत्यादि की जीवनियाँ लिखने वाले लेखको ने भेरूमल मेहेरचन्द और … से भी कुछ सीखा है। भेरूमल मेहेरचन्द के पुत्र प्रिभदास ने 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' के अनुवाद (सालिक-जो-सफर) में अपने पिता की … को अच्छी तरह पकडा है।

लालचन्द अमरडिनोमल भारत और पाकिस्तान में सिंधी साहित्य के सबसे बडे बुजुर्ग माने जाते हैं। १९५४ मे उनकी मृत्यु पर सब सिंधियो को बहुत शोक हुआ। सिंध और सिंधी साहित्य के वे अविश्रान्त प्रेमी थे। उन्होने अपना साहित्य-कार्य हजरत मोहम्मद की जीवनी से शुरू किया। फिर शाह की आलोचना, हुर डाकुओ की कहानी, और नई योजना पर 'चौथ-जो-चण्ड्' (चौथ का चन्द्रमा) नामक एक साहसपूर्ण उपन्यास लिखा। १९१४ मे सिंधी साहित्य सोसाइटी, सरनानन्द हासोमल के साथ-साथ स्थापित करके सिंधी पाठको की रुचि को उन्होने बदल दिया। जब उन्होने लिखना शुरू किया था, तब सिंधी लोग या तो यूरोपीय साहित्य से या बगाली साहित्य से प्रभावित थे और सिंधी मे 'गुलबकावली' (१८८९) और 'मुमताज दमसाज' के ढग की पुरानी कहानिया या 'चन्द्र-कान्ता' -जैसे उपन्यास, जिनमे तहखानी और जादूई-ऐयारी तिलस्मी बातें अधिक होती थी, प्रचलित थे। उन्होने जनता की रुचि को परिष्कृत किया और सिंधी घरेलू विषयो पर घरेलू भाषा में लिखी कहानियाँ पढने लगे। निस्सन्देह वे इस क्षेत्र के अग्रणी थे। उनका उदाहरण विभिन्न लेखको ने अनुसरित किया, जैसे, आसानन्द मामतोरा (उथल-पुथल कर देने वाले परिच्छेदो के एक रोमाटिक उपन्यास 'शायर' के लेखक), शेवक भोजराज, (आत्मकथा-सम्बन्धी उपन्यासों 'आशीर्वाद' और 'दादा

श्याम' के लेखक), नारायण भम्भानी (सामाजिक उपन्यासो 'विधवा' आदि के लेखक), राम पजवाणी ('पद्मा', 'कैदी' और कलात्मक प्रकृति और भाव-चैतन्ययुक्त मनुष्यो के कुछ रेखा-चित्रो के लेखक) और मघाराम मलकाणी (जिन्होने लालचन्द अमरडिनोमल के 'सदा गुलाब' से टैगोर-शैली के लेखन की कला सीखा)। उनका प्रभाव नारायणदास मलकाणा ('अनारदाणा' के लेखक) और तीरथ वसन्त ('चिणगूं' के लेखक और जेठमल परमराम के साथी)-जैसे निवन्धकारो पर भी है।

लालचन्द अमरडिनोमल का नाम समकालीन सिधी साहित्य के अन्तिम २० वर्षो को इस दशक से जोडता है। यह दशक सिधी गद्य के इतिहास मे कई दृष्टियो से वहुत महत्त्वपूर्ण है। १९४७ मे भारत का विभाजन हुआ, ऐसा लगा कि सिधी साहित्य का अव कठावरोध हो गया, हिन्दू शरणार्थी वन गए, सिध के मुस्लिमो मे शरणार्थी आ गए। परन्तु एक वडी आश्चर्यजनक वात हुई कि तरुण लोग, जिन्हे लिखने का कोई अनुभव नही था ' ' निकालने लगे। उन्होने साहित्यिक सस्थाएँ वनाई और अपनी भाषा और साहित्य के प्रति उनमे आश्चर्यजनक उत्साह पाया गया। सिध मे और 'हिन्दुस्तान' मे साहित्य की रचना गत १० वर्षो मे वहुत ही विपुल है। सिध मे सिधी भाषा और साहित्य की शोध का आन्दोलन चल पडा, जिसका कि उत्तम स्मारक साहित्यिक पत्रिका 'मेहरान' है। भारत मे सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक उपन्यासो एव कहानियो का प्रचलन है। ये कहानियाँ और उपन्यास पत्र-पत्रिकाओ मे छपती है, जिनकी सख्या वहुत वढ गई है। एक सिधी साप्ताहिक पत्रिका 'हिदवासी' भारत मे है, जिसके पढने वालो की सख्या हजारो मे है।

इस दशक की साहित्यिक हलचलो की एक विशेषता है—स्त्रियो का लेखन-कार्य। भारत-विभाजन के पहले, सारे साहित्यिक क्षेत्र मे एक सिधी महिला साहित्यिक के नाते प्रसिद्ध थी . गुली सदारगाणी, जिन्होने टैगोर के 'गोरा' का अनुवाद किया था और एक उपन्यास 'इत्तहाद' लिखा था, जिसकी वडी आलोचना हुई थी (क्योकि उसमे यह दिखाया गया है कि

एक हिन्दू लडकी मुसलमान के साथ शादी करनी है)। अब तो स्त्रिया साहित्य के क्षेत्र मे बहुत आगे बढ गई है। इस समय सिंधी पत्रिकाओ मे सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्यिक एक स्त्री ही है पोपटी हीरानन्दाणी, और एक-दो सफल उपन्यासकारो मे है सुन्दरी उत्तमचन्दाणी, जो कि 'कोशान' (कहानियो) की लेखिका है। 'किरन्दर देवारियूं' (गिरती दीवारे) नामक एक सामाजिक उपन्यास भी उन्होने लिखा है जिसमे मनोवैज्ञानिक ढग से सिंधी जीवन का ज्ञान और सहज भाषा-शैली इतनी अच्छी है कि वे अकेले गोविन्द माल्ही को छोडकर अन्य सब सिंधी गद्य-कथा-लेखको से श्रेष्ठ मानी जाएँगी। गोविन्द माल्ही इस समय सिंधी साहित्य के सबसे सशक्त व्यक्तित्व है। उनका 'पखियडा वल्लर खाँ विछुड्या' (झुण्ड से बिछडे हुए पक्षी) सिंधी शरणार्थियो पर एक सप्राण रचना है, परन्तु उनके उपन्यासो की सूची 'आँसू' से 'लोक आहे बोक' (१८५७) तक ग्रन्थो की एक बडी सूची है। कहानी-लेखको मे आनन्द गोलाणी कदाचित् सबसे अच्छे है, यद्यपि उनसे कम अच्छे और भी दर्जनो मिल जाएँगे, जैसे मुगन आहूजा, कीरत बाबानी, उत्तम, बिहारी, छाबरिआ, चावला इत्यादि। इस दशक के दूसरे प्रसिद्ध लेखको मे राम पजवाणी 'आहे-न-आहे' के लेखक है, जिसमे ऐसे कलाकार की कहानी दी गई है जो कि ईश्वर पर विश्वास करता है। मघाराम मलकाणी नाटककार, निबन्धकार और साहित्यिक इतिहासकार है। वे 'अदबी उसूल' नामक एक-मात्र सिंधी आलोचना सिद्धात-ग्रन्थ के लेखक है।

१९४७-५७ के दशक मे लिखे गए साहित्य की दो बडी विशेषताए है सिंध, उसकी भाषा और साहित्य (विशेषकर शाह) के प्रति प्रत्येक लेखक का अत्यत अनुराग, और मनुष्य एव वस्तुओ के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण मे दिग्दर्शित प्रगतिशीलता। कुछ समय तक—स्वाभाविक रूप मे तरुण लेखको मे—'यौन-प्रधान लेखन' की अस्वास्थ्यकर प्रवृत्ति भी दिखाई दी थी, पर अब इस प्रवृत्ति को निन्दनीय समझा जाने

लगा है। आज के सिन्धी लेखको मे अपने प्रति और अपनी जाति तथा भाषा के प्रति वडी आस्था है और यह भविष्य के लिए एक शुभ लक्षण है।

सिंधी मे वाल-साहित्य अभी-अभी लिखा जाने लगा है। सरल कहानियाँ और वच्चो के लिए कविताएँ प्राथमिक कक्षाओ के उपयोग के लिए वनी पाठ्य-पुस्तको के लिए लिखी गई। वच्चो के लिए लिखने वालो मे सवसे अधिक रचनाएँ कौडोमल चदनमल की लेखनी से निकली है। भेरूमल मेहेरचन्द के लिखे कुछ बालोपयोगी पद्यो को कक्षा से वाहर भी लोकप्रियता मिली। विशेषत 'बूढे राजा काल' शीर्षक एक अंग्रेजी कविता का अनुवाद। सिंधी मे बच्चो के साहित्य के पहले प्रसिद्ध लेखक थे, परमानन्द मेवाराम, जिनकी 'जोत' नामक कृति मे वालको के लिए मनोरजक और शिक्षाप्रद सामग्री भरपूर है। 'दिल वहार' शीर्षक से उनकी वच्चो की कुछ कहानियाँ सग्रहीत है। प्रथम महायुद्ध के आसपास टैगोर के 'क्रीसेण्ट मून' (बालचद्र) और 'पोस्ट आफिस' (डाकघर)-जैसे ग्रंथ और वकिमचंद्र की कहानियाँ अंग्रेजी मे प्रकाशित हुई थी। उनके सरल सिधी गद्य और पद्य मे कई अनुवाद और रूपातर प्रकाशित हुए, जिनसे बालको को वडा आनन्द मिला।

सिधी मे वच्चो के लिए ही विशेष रूप से लिखी गई पहली लेख-माला और कविताएँ 'बालकन-जी-वारी' नामक अखिल भारतीय वाल-सस्था ने और उसके 'दादा' (शेवक भोजराज) ने रची। इस सस्था ने गत तीन दशाब्दियो से अच्छे वाल-साहित्य को प्रकाशित करने की अपनी परपरा कायम रखी है। इसमे से कई रचनाएँ स्वय बच्चो द्वारा लिखी हुई है। वालकन-जी-बारी न होती तो शिशु-गीत और बच्चो की लोक-कथाएँ आज सिंधी मे न होती। वीसवी सदी की तीसरी दशाब्दी के अत मे, रेवाचद थधाणी नाम के वकील ने सिंधी मे अर्थ-हीन तुकबदियाँ लिखने का वडा साहसपूर्ण यत्न किया। उदाहरणार्थ,

'भगत भभोर जो, वावो ग्राहे चोर जो' (भभोर मे [illegible] चोर का वाप है) । लेकिन ग्रव ये सव तुकवंदियाँ मिलती [illegible]। वच्चो के लिए विशेष रूप से एक सिंधी साहित्य-विभाग [illegible] फतहचद (मगतराम वासवाणी) नामक एक राजस्व ग्रधिकारी [illegible] चाहिए, जो अपने भाई मेलाराम के नाम मे सुन्दर साहित्य [illegible] थ। फतहचद के प्राथमिक कार्यो ने कई ग्रनुकरण [illegible] ग्राकर्षित किया । उच्च वाल-कविता सिंधी म [illegible] (किशनचन्द खत्री) ग्रौर उनके शिष्य दुखायल' न [illegible]। उनके [illegible] सिंध के देहातो मे गाये जाते हे ग्रौर वे ग्रव जन-जन [illegible] है। चौथे ग्रौर पाँचवे दशक मे सिंधी के कई प्रसिद्ध लेखक वच्चो के लिए किताबे लिखने की ग्रोर मुडे, जिनमे सवमे मेहनती थे लालचन्द अमरडिनोमल ।

सिंधी मे तकनीकी या गभीर वैज्ञानिक ग्रथ नही के वरावर है। सिंधी के केवल एक लेखक ने ऐसे ग्रन्थ लिखने का यत्न किया है। उनका नाम मिर्जा कलीच वेग हे, ग्रौर उनकी रचनाएँ भी मुख्यत अनुवाद है। हरीसिंह ग्रौर पोकरदास-जैसे प्रकाशको ने साहस किया ग्रौर गम्भीर ग्रन्थ छापे, विशेषत चिकित्सा ग्रौर कारखानो के वारे मे। ये उर्दू से ग्रनूदित थे, लेकिन इनका साहित्यिक मूल्य वहुत कम है। सिंधी मे सरकारी प्रकाशन (खेती, अर्थशास्त्र, उद्योग इत्यादि पर) सदा की भाँति काठ-से कोरे ग्रौर नीरस हे। सिंधी कोशो के प्रथम लेखक यूरोपीय विद्वान् थे—यथा स्टक, ट्रप ग्रौर शर्ट, ग्रौर उनके वाद कई शब्द-सूचियो ओर छोटे-मोटे कोशो के लेखक आये, जैसे नारूमल और दूलामल वूलचन्द। ग्रव तक सिंधी मे सवमे ग्राधिकारिक कोश वहुमुखी प्रतिभाशाली लेखक परमानन्द मेवाराम द्वारा सम्पादित है। परन्तु वह भी ५० साल पहले प्रकाशित हुग्रा था और उसका पुनर्शोधन ग्रावश्यक हे।

सिंधी पर चुने हुए संदर्भ-ग्रंथ

शाह लतीफ—लीलाराम वातणमल

सिंध ऐंड इट्स सूफीज—जेठमल परसराम; थियोसाफिकल पब्लिशिंग हाउस, अडयार, मद्रास; १९२४

शाह अब्दुल लतीफ आफ़ भिट—एच० टी० सोर्ले, आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४०

डेज़र्ट वायसेज़—टी० एल० वासवाणी, गणेश ऐंड को०, मद्रास

लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया—जी० ए० ग्रियर्सन, खंड ८, भाग १, पृष्ठ १-२३१

हिन्दी

सच्चिदानन्द वात्स्यायन

ऐतिहासिक पृष्ठिका

हिन्दी परम्परा से विद्रोह की भाषा रही है। प्रारम्भिक काल से ही हिन्दी-रचना का एक बहुत बडा अंश न्यूनाधिक संगठित वर्गों द्वारा किसी-न-किसी प्रवृत्ति के विरोध की अभिव्यक्ति रहा है। यह विरोध का स्वर सदैव प्रगति का स्वर रहा हो, ऐसा नहीं है, कभी-कभी यह स्वर परिवर्तन के विरोध का, प्रतिक्रिया का, जीर्ण परम्परा अथवा पुराने विशेषाधिकारो की रक्षा की भावना से प्रेरित संकीर्णता का स्वर भी रहा। किन्तु विरोध भाव उसमे सदैव रहा, अर्थात लेखक सदैव किसी-न-किसी रूप मे एक आन्दोलनकारी, उपदेशक, सन्देशवाहक या प्रचारक रहा है, उसका लक्ष्य चाहे धर्म, दर्शन, आस्तिकवाद रहा हो, चाहे आक्रान्ता, आततायी और मूर्ति-भंजक म्लेच्छ, चाहे वैरागी, सन्यासी और गृहस्थ, चाहे प्रकृति अथवा काम-शास्त्र अथवा स्वयं साहित्य ही।

निस्सन्देह इस प्रवृत्ति के ऐतिहासिक कारण रहे। हिन्दी उस प्रदेश की भाषा रही जो आरम्भ से ही भारतीय इतिहास की लीला-भूमि रहा और जिसमे निरन्तर साम्राज्यो और राज-वंशों के भाग्यो का निर्णय होता रहा। संस्कृत के, जो कि उच्चतर अभिजात वर्ग के शिष्ट आदान-प्रदान और कला-विलासो की भाषा थी, विपरीत प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओ से जन-साधारण के अन्तर्जीवन को अभिव्यक्ति देने का उत्तरा-

धिकार पाकर हिंदी अपना दायित्व-क्षेत्र निरन्तर बढाती गई। बौद्ध विचार-धारा के प्रभाव से कर्मकाण्ड और जात-पॉत के विरोध से आरम्भ करके शीघ्र ही उसे तन्त्रवाद से सम्बद्ध उन जटिल प्रभावो का विरोध करना पडा जो जन-साधारण को अगर वैराग्य की ओर नही तो कम-से-कम साधारण गृहस्थ-जीवन के उत्तरदायित्व के निषेध की ओर ले जा रहे थे। विदेशी आक्रमणकारियो के अत्याचार और इस्लाम की वृद्धि ने विद्रोह के स्वभाव मे एक नया परिवर्तन उत्पन्न किया। अपने सन्देशवाहको की क्रूरता और असहिष्णुता के बावजूद सामाजिक दृष्टि से इस्लाम समता और सामाजिक रूढियो से मुक्ति की प्रेरणा देता था। उसके प्रतिकार में हिन्दी एक सघटित प्रतिक्रिया की भाषा बनी। सघर्ष के रूप ने प्रतिक्रिया के रूप को निश्चित किया। एक धर्म-विश्वासो के मामले मे पूरी स्वतन्त्रता के साथ कर्मकाण्ड के कडे बन्धनो का आग्रह करता था, दूसरा एक विश्वास अथवा धर्म-बीज पर कट्टर आग्रह के साथ कर्म की यथेष्ट स्वतन्त्रता देता था। मध्यकालीन हिन्दी एक ऐसे समाज की भाषा रही जो व्यूह रचकर, अपने अनुशासन को और कडा करके, आत्म-रक्षा करना चाहता था। इस्लाम के क्रमिक विस्तार और मुस्लिम शासन-सत्ता के दृढतर सगठन के साथ-साथ हिन्दी क्रमशः अधिकाधिक एक उत्पीडित जाति की भाषा होती गई। उत्पीडित जाति की भाषा होने की यह स्वरूप-कल्पना और भावना अनन्तर ब्रितानी शासन काल मे और बढती गई। अग्रेजी राज्य की भेद-नीति के और उर्दू को दिये जाने वाले सरक्षण के प्रभाव ने इस सूक्ष्म विरोध-भाव को और तीव्र किया। उर्दू का प्रोत्साहन एक भाषा के नाते उसके गुणो और उसकी विशेषताओ का प्रोत्साहन नही था वरन् एक सरक्षित, कृपा-पात्र जाति की भाषा का प्रोत्साहन था। इतना ही नही, उर्दू के इस रूप अथवा पद की भ्रान्त धारणा अग्रेजी शासको द्वारा न केवल बढावा पाती थी, बल्कि बहुत दूर तक उन्हीके द्वारा उत्पन्न की गई थी। उन्नीसवी शती के अनेक सुधारवादी आन्दोलनो, और उनके समानान्तर साम्प्रदायिक

भावनाओं की वृद्धि ने हिन्दी की इस प्रवृत्ति को और बढ़ाया, यद्यपि साम्प्रदायिक प्रभाव उतना महत्त्वपूर्ण नहीं था जितना कि राष्ट्रीयता के व्यापक विकास का प्रभाव। हिन्दी सहज ही राष्ट्रीय भावना की सबसे महत्त्वपूर्ण (और जन-संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक प्रबल) वाहिका बन गई।* यह कहा जा सकता है कि इस काल का पुनरुत्थानवाद भी वास्तव में संस्कृति की एक नई और अधिक लौकिक कल्पना का परिणाम था और उसकी तत्कालीन अभिव्यक्ति, धार्मिक सुधारवादी आन्दोलन में हुई। सन् १८७५ में संस्थापित आर्य समाज निस्सन्देह एक धार्मिक पुनरुत्थानवादी आन्दोलन था, जिसमें तीव्र शुद्धिवादी आग्रह भी था, किन्तु इस बात के बढ़ते हुए ज्ञान ने, कि संस्कृति एक समूची जाति की परम्परा, समष्टिगत अनुभव और रचनात्मक प्रवृत्तियों का नाम है, समाज के एकीकरण में अधिक महत्त्व का काम किया।

अपने इतिहास के अधिकतर भाग में हिंदी की जो विशेष अवस्थिति रही उसने एक-दूसरे विरोधाभास को जन्म दिया। 'मध्य देश' की भाषा होने के नाते हिन्दी भाषा आरम्भ से हिन्दू दर्शन की मुख्य धारा की वाहिका रही और इसलिए उसकी परम्परा और प्रवृत्ति सर्वदा व्यक्तिवादी रही है, किंतु हिंदी-साहित्य का कृतित्व मुख्यतया व्यक्ति का कृतित्व नहीं रहा। अर्थात् उसके इतिहास में प्रमुख स्थान अलग-अलग महान् साहित्यिक प्रतिभाओं का न रहकर वैचारिक आन्दोलनों अथवा संवेदना के रूप-परिवर्तनों का रहा है। हिन्दी-साहित्य (उल्लेखनीय अपवादों के रहते हुए भी) व्यक्तिगत कृतित्व की अपेक्षा प्रवृत्तियों का साहित्य रहा है। लेखक व्यक्ति की महत्ता का विचार तो विशेषरूप से उन्नीसवीं शती से ही आरम्भ हुआ, जब से पश्चिम की यह धारणा

* इस कथन का उद्देश्य बंगाल की देन की अवज्ञा करना नहीं है। बंगाल में जो पुनर्जागरण हुआ, हिन्दी ने उसका प्रभाव सीधा भी और अनुवादों द्वारा भी ग्रहण किया। किन्तु बंगाल की प्रादेशिक सीमा और हिन्दी की संख्या-शक्ति दोनों का प्रभाव बहुत गहरा था।

प्रचार पाने लगी कि कलाकार एक विशिष्ट, अद्वितीय और स्वतन्त्र व्यक्ति है। कलाकार के कृतित्व की परिकल्पना मे होने वाला यह परिवर्तन इतना मौलिक है कि इसे 'कलाकार का स्वातन्त्र्य-लाभ' भी कहा जा सकता है। वर्तमान शती के तीसरे दशक मे मार्क्सीय आलोचना ने कलाकार के पद का नया निरूपण करने का प्रयत्न किया—पहले साधारण स्थापनाओ द्वारा, और फिर उसे दल के नियमो और आदेशो द्वारा अनुशासन में लाने का यत्न करके—किंतु इस प्रयत्न को केवल आशिक सफलता मिली । इसकी चर्चा यथास्थान होगी। यहाँ इतना कहना पर्याप्त है कि यह धारणा केवल उन्नीसवी शती से प्रचलित और स्वीकृत होने लगी कि साहित्यिक रचना, अनिवार्यतया व्यक्ति लेखक के विशिष्ट चरित्र और प्रतिभा को प्रतिबिम्बित करती है और उसका वैसा करना उचित है । इसी बात को दूसरे शब्दो मे इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिन्दी मे शैली का महत्त्व साहित्यिक मूल्यो मे एक नई चीज है। यह बात कदाचित् सभी भारतीय भाषाओ मे सच होगी, किंतु अन्य भाषाओ की चर्चा यहाँ प्रासगिक नही है।

हिन्दी की समकालीन प्रवृत्तियो के अध्ययन मे इन बातो को ध्यान मे रखना आवश्यक है। किसी साहित्य की परम्परागत अवस्थिति और प्रवृत्ति को तथा किसी विशेष सन्दर्भ मे अपने ध्येय और कार्य के बारे मे समकालीन लेखक की धारणाओ को, ध्यान मे रखे विना किसी क्षेत्र मे प्रभाव रखने वाली विशेप शक्तियो को पहचानना अथवा विभिन्न साहित्यकारो के कृतित्व का मूल्याकन सदैव जोखम का काम होता है—ऐसे व्यक्ति के लिए और भी अधिक जो स्वय उस क्षेत्र मे क्रियाशील हो—किंतु साहित्य-रचना सर्वत्र अनिवार्यतया अधिकाधिक सचेतन और सोद्देश्य कला होती जा रही है और इसलिए लेखक को निरन्तर समकालीन रचना का मूल्याकन करना पड़ता है। देश-काल की दूरी ही अनासक्ति और निरपेक्षता देती है । लेकिन सघर्ष को निकट से देखना भी अपने ढग की स्फूर्तिप्रद अनुभूति होती है।

भाषा

आधुनिक सन्दर्भ में हिन्दी-साहित्य का अर्थ प्रायः समग्रतया खड़ी बोली का साहित्य है, यद्यपि प्रतिष्ठित साहित्यिक माध्यम के रूप में खड़ी बोली का इतिहास एक शती से अधिक पुराना नहीं है और कविता की मुख्य धारा की वाहिका के रूप में तो खड़ी बोली की प्रतिष्ठा बीसवीं शती में ही हुई। उस समय तक परम्परागत काव्य-भाषा ब्रज-भाषा थी, यद्यपि अवधी, मैथिली और अन्य जन व मातृ-भाषाओं में भी कविता लिखी जाती थी। हिन्दी-क्षेत्र के सीमा-निरूपण के बारे में विद्वानों में सदैव मतभेद रहा है और नई राजनीतिक परिस्थितियों तथा प्रादेशिक भाषाओं में नये आत्मगौरव की भावना ने परिस्थिति को और भी उलझा दिया है। भाषा-शास्त्र के अध्ययन ने भी समस्या की जटिलता बढ़ाने में ही योग दिया है, क्योंकि उसकी खोज ने ऐसा नया साक्ष्य उपस्थित किया है जो हिन्दी के परम्परागत अथवा ऐतिहासिक पद का समर्थन नहीं करता है। यहाँ पर हिन्दी के क्षेत्र की परम्परागत रूप-रेखा दे देना ही यथेष्ट होगा, क्योंकि हिन्दी के अपने इतिहासकार अब भी निरपवाद रूप से इसी को मानते हैं और अध्येता को हिन्दी में जो सामग्री मिलेगी वह इसी को पुष्ट करने वाली होगी।

पारम्परिक परिभाषा में हिन्दी उस भाषा के प्रामाणिक रूप का नाम है जो पंजाब की पश्चिमी सीमा से लेकर बिहार की पूर्वी सीमा तक और नेपाल की सीमा से लेकर मध्य प्रदेश तक के क्षेत्र में बोली जाती है। अन्य भाषा-क्षेत्रों की तरह इस क्षेत्र का अपना पृथक कोई नाम नहीं है और इसे केवल 'मध्य देश' की अभिधा दी जाती है। अन्य भाषाओं से हिन्दी इस बात में भी भिन्न है कि उसके अन्तर्गत आने वाली बोलियाँ और मातृ-भाषाएँ सब प्रत्यक्ष रूप से एक ही उद्गम से निकली हुई नहीं जान पड़तीं और किसी-किसी का दूसरी भाषा की प्रतिवेशी बोली से अधिक निकट सम्बन्ध जान पड़ता है। एक तरह से यह भी कहा जा सकता है कि प्रामाणिक हिन्दी के रूप में खड़ी बोली

का अभ्युदय होने तक हिन्दी किसी एकरूप भाषा का नही, बल्कि एक परम्परा का नाम था—एक सघटनशील केन्द्रोन्मुखी प्रवृत्ति का, जो सारे प्रदेश के रचनात्मक अथवा उपदेशात्मक साहित्यिक उद्योग को एक प्रामाणिक एकरूपता की ओर ले जाती थी और प्रदेश के भीतर विभिन्न बोलियो के क्षेत्रो के आपसी सम्पर्क का साधन उपस्थित करती थी। केन्द्रोन्मुखता की यह परम्परा ही हिन्दी का सम्बन्ध आठवी शती की अपभ्रंश भाषा से जोडती है और हिन्दी के इतिहासकार को यह अधिकार देती है कि वह उसके साहित्य का आरम्भ बौद्ध सिद्धो के दोहो और गीतो से करे। निस्सन्देह आठवी शती मे कई अलग-अलग अपभ्रंश भाषाएँ प्रचलित थी, लेकिन यह मान लेने के पर्याप्त कारण है कि सारे उत्तर भारत मे प्रचलित साहित्यिक अपभ्रंश भाषा का एक प्रामाणिक रूप था। और यह तो निर्विवाद है कि अपभ्रंश की साहित्यिक परम्परा उत्तर भारत की किसी दूसरी भाषा की अपेक्षा हिन्दी मे ही अधिक सुरक्षित रही। मध्यकाल के भक्ति-आन्दोलनो का दाय भी हिन्दी और उसकी बोलियो मे ही सबसे अधिक सुरक्षित है। सन्त कवियो की उपदेशात्मक, रहस्यमयी या भाव-विभोर बानियाँ भी मुख्यतया ब्रजभाषा और अवधी मे ही सुरक्षित है, यद्यपि विभिन्न कवियो के जन्म अथवा प्रवास के क्षेत्र के अलग-अलग प्रभाव इन भाषाओ ने ग्रहण किये। सूरदास, तुलसीदास, कबीर और दादूदयाल तो हिन्दी-क्षेत्र के थे ही, किन्तु पूर्व, पश्चिमोत्तर और दक्षिण के भक्त कवियो का काव्य भी हिन्दी को प्राप्त हुआ और हिन्दी माध्यम से पुन अपने-अपने प्रदेश मे गया।

यहाँ इस जटिल और विवादास्पद विषय की अधिक चर्चा की आवश्यकता नही है। इस समय इतना स्मरण रखना पर्याप्त है कि हिन्दी आज निर्विवाद रूप से लगभग १५ करोड जनता की भाषा है और उसका क्षेत्र भारतीय सघ की भूमि का लगभग आधा भाग है।

आधुनिक काल आरम्भ

हिन्दी की केन्द्रोन्मुखी परम्परा को ध्यान मे स्मरण ही यह बात समझ मे आ सकती है कि खडी बोली को मुख्य साहित्यिक भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित कर देने वाले शक्तिशाली आन्दोलन का आरम्भ बनारस मे कैसे हुआ, जो कि आज भी भोजपुरी बोली का गढ है, और कैसे इस आन्दोलन को अवधी प्रदेश मे सक्रिय सहायता मिली। बल्कि खडी बोली का अपना प्रदेश इस दृष्टि से पीछे ही रहा और उसकी उदासीनता ब्रज प्रदेश की उदासीनता से कुछ ही कम थी, यद्यपि ब्रज का ब्रजभाषा के प्रति मोह सहज और स्वाभाविक था और यह भाषा उस समय काव्य की प्रतिष्ठित भाषा थी।

खडी बोली हिन्दी के अपने प्रदेश में विकास पर एक और बात का गहरा प्रभाव पडा। वह बात यह थी कि उसी क्षेत्र पर ही नही बल्कि उसी परम्परा पर उर्दू का भी दावा था। उर्दू को सरकारी सरक्षण मिलने पर भी हिन्दी क्रमश अधिक उन्नति क्यो करती गई, उसका कारण उसकी सस्कृति का विस्तृत लौकिक आधार ही था, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। उर्दू, जो कि दरबारो से सम्बद्ध अत्यन्त सस्कारी शहरी भाषा थी, अपनी इन्ही विशेषताओ के कारण अपेक्षया दुर्बल भी थी। उसमे वह लचकीलापन और प्रत्युत्पन्न प्रतिभा नही थी जो कि देश-व्यापी हलचल के साथ चल सकने के लिए आवश्यक थी। हिन्दी में परिमार्जन और भाषा के सुनिश्चित प्रतिमानो की कमी रहते हुए भी उसमे यथेष्ट लचकीलापन और जीविष्णुता थी, यद्यपि उसकी प्रारम्भिक साहित्यिक रचनाएँ आज अत्यन्त अटपटी और ऊबड-खाबड जान पड सकती है। उन्नीसवी शती के उत्तरार्द्ध के हिन्दी लेखक सस्कृत के अतिरिक्त उर्दू-फारसी का ज्ञान प्रदर्शित करना मानो आवश्यक समझते थे, अथवा अवचेतन भाव से वे इस प्रकार मानो उस

---

* सन् १८३७ में फारसी के स्थान पर 'फारसी लिखित उर्दू' सरकारी भाषा घोषित कर दी गई थी।

बात की ही सफाई देते थे कि जान-बूझकर एक कम परिमार्जित यद्यपि अधिक सन्तोषप्रद माध्यम चुनने पर भी वे साहित्यकार होने के लिए अपात्र नही हैं। यह प्रवृत्ति वर्तमान शती के तीसरे दशक तक लक्षित होती रही, जब तक कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०-१८८३) से लेकर महावीरप्रसाद द्विवेदी (१८६८-१९३८) तक हिन्दी लेखको की परम्परा के अविराम उद्योग से साहित्यिक भाषा का एक प्रतिमान स्थिर नही हो गया। और जब प्रेमचन्द (१८८०-१९३६) ने, जो कि उर्दू के उपन्यासकार के रूप मे प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध हो चुके थे, चुप-चाप हिन्दी का वरण कर लिया तब मानो भाषाओ के बीच अन्तिम रूप से निबटारा हो गया। दोनो भाषाओ के बीच वाद-विवाद और संघर्ष इसके बाद भी होता रहा और अधिक कटु रूप लेता रहा तो उसका कारण साहित्यिक नही, शुद्ध राजनीतिक था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के रचनात्मक साहित्य को आज कदाचित् बहुत उच्चकोटि का नही समझा जायगा, और महावीरप्रसाद द्विवेदी की रचनाओ का स्थान तो इससे भी कुछ नीचा ही होगा, किन्तु देश के सास्कृतिक पुनरुत्थान पर भारतेन्दु का प्रभाव गहरा और दूर-व्यापी था और उनकी बहुमुखी प्रतिभा, अतिक्रान्त उदारता और निर्भीक तेजस्विता ने प्रभाव को और गहरा कर दिया है। और द्विवेदी जी की एक सम्पादक के रूप मे निस्पृह कर्मठता और उत्साह ने उन्हे आधुनिक हिन्दी-गद्य के निर्माता के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया है। भारतेन्दु और उनके समवर्तियो के कृतित्व मात्रा मे यथेष्ट और वस्तु की दृष्टि मे वैविध्यपूर्ण थे। कला की दृष्टि से वे सर्वथा दोष-रहित न भी रहे हो, पर उनका प्रभाव व्यापक और उनकी प्रेरणा स्फूर्तिदायिनी थी। इस केन्द्रीय मण्डल का प्रभाव क्रमश फैलता गया और भाषा-सम्बन्धी विद्रोह ने शीघ्र एक सामाजिक, सास्कृतिक जन-अन्दोलन का रूप ले लिया। अग्रेजी साहित्य से परिचय का प्रभाव भी इन लेखको द्वारा अपनाये गये साहित्यक रूपो पर पड़ा। काव्य, नाटक, प्रहसन, व्यग्य

और विवादात्मक, आलोचनात्मक तथा हास्यमूलक निबन्धों के अतिरिक्त ललित गद्य भी लेखक अपनाने लगे और क्रमशः कहानी और उपन्यास। भारतेन्दु के समय से उन्नीसवीं शती के अन्त तक अंग्रेजी का प्रभाव प्रायः बंगला के माध्यम से ग्रहण किया जाता रहा, क्योंकि कलकत्ता तत्कालीन ब्रिटिश राजधानी और अंग्रेजी शिक्षा का केन्द्र था।* बीसवीं शती के आरम्भ में यह प्रभाव हिन्दी द्वारा सीधा-सीधा ग्रहण किया जाने लगा और दूसरे यूरोपीय प्रभाव भी (अंग्रेज़ी के माध्यम से) प्रकट हुए। इसमें रूसी उपन्यास-साहित्य और कुछ कम मात्रा में फ्रांसीसी उपन्यास-साहित्य और काव्य का प्रभाव उल्लेखनीय है। हिन्दी के अथवा बंगला से अनूदित कल्पना-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यासों ने ऐयारी-तिलिस्मी की कहानियों और हल्की-फुल्की प्रेम-गाथाओं का स्थान ले लिया, जो कि उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक साहित्यिक मनोरंजन का मुख्य साधन थीं। हिन्दी-लेखक अंग्रेज़ी के विक्टोरियन युग के साहित्यकारों की रचनाओं से भली भांति परिचित हो गया; काव्य के क्षेत्र में रोमांटिक कवियों से उसका अन्तरंग परिचय हुआ, किन्तु पोप, ड्राइडन, मिल्टन-गोल्डस्मिथ आदि कवियों और प्रबन्धकारों से भी वह अपरिचित न रहा। ह्यूगो और ड्यूमा की रचनाओं से भी

---

* पहला अंग्रेज़ी कालेज कलकत्ता में सन् १८३० में स्थापित हुआ। कलकत्ता बुक सोसायटी की स्थापना १८५७ में हो चुकी थी; आगरा में ऐसी ही एक संस्था १८३३ में बनी। बाइबल का अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद १८३२ में हुआ। पहली हिन्दी पत्रिका कलकत्ता से सन् १८२६ में प्रकाशित हुई। सन् १८२९ में एक और पत्र हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी और फ़ारसी में निकलने लगा। राजा राममोहन राय, द्वारिकानाथ ठाकुर इत्यादि इसके मालिक थे। लगभग इसी समय राजा राममोहन राय ने पहले अंग्रेजी विद्यालय की स्थापना की। सन् १८८४ में अंग्रेजी का ज्ञान सरकारी नौकरी के लिए अनिवार्य हो गया।

हिन्दी के क्षेत्र में पहली पत्रिका सन् १८४४ में बनारस से निकली; इसके सम्पादक बंगाली थे और इसकी भाषा फ़ारसी-मिश्रित थी। बनारस से १८५० में और आगरा से १८५३ में अन्य हिन्दी पत्र निकले।

उसका परिचय हुआ और न्यूनाधिक मात्रा मे मोलियेर, बालजाक, फ्लायबेर, मोपासा और जोला की रचनाओ से भी। तोल्स्तोय, तुर्गेन्येव, चेखोव परिचित नाम होने लगे।

किन्तु वास्तव मे हिन्दी ने आधुनिक काल मे प्रवेश पहले महायुद्ध के वाद ही किया और समकालीन प्रवृत्तियो का विवेचन तो इसके और एक पीढी वाद से भी माना जा सकता है। अन्य देशो मे इस काल के साहित्यालोचको ने 'सम्भ्रान्ति युग' और 'चिन्ता के युग' की चर्चा की है, हिन्दी मे यह दोनो समवर्ती और लगभग पर्यायवाची हुए। इतना ही नही, दोनो महायुद्धो के वीच के काल को हिन्दी के सन्दर्भ मे एक और भी नाम दिया जा सकता हे—यदि इससे भ्रम उत्पन्न होने की आशका न होती—कुण्ठा का युग। वास्तव मे ये तीनो नाम एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व की उस खोज के तीन अलग-अलग और अनिवार्य पक्षो के नाम थे जो कि जाने-अनजाने इस काल के साहित्य की, और उसकी कटुता और उडान, झल्लाहट और तन्मयता की मूल प्रेरणा रही। भारतीय परम्परा मे युग सदैव कृतिकार से अधिक महत्त्व रखता रहा है और परिणामत' साहित्य की प्रवृति व्यक्ति-चरित्र के निर्माण की अपेक्षा उसके साँचो (टाइप) के निर्माण की ओर अधिक रही है। काव्य मे भी व्यक्ति की सवेदना की अपेक्षा रूढ अभिप्रायो और कल्पना का महत्त्व अधिक होता रहा है। एक व्यक्ति के रूप मे आत्म-साक्षात्कार होने के साथ-साथ हिन्दी लेखक ने अनुभव किया कि कृतिकार के रूप मे उसका सम्बन्ध व्यक्ति-चरित्र से ही होना चाहिए। यह अनुभव सहज ही प्राप्त हुआ हो या विना मानसिक द्वन्द्व के स्वीकार कर लिया गया हो ऐसा नही हे, आत्म-साक्षात्कार और आत्म-स्वीकृति दोनो ही क्रियाए कष्टकर रहीं। किन्तु इसके वाद के साहित्य मे जो परिपक्वता और सन्तुलन लक्षित हुआ वह सूचित करता है कि नई परिस्थिति को लेखक ने कैसी शीघ्रता से और कितनी दूर तक आत्मसात् कर लिया।

छायावाद और प्रगतिवाद

दोनों महायुद्धों के बीच के काल में यद्यपि परम्परागत शैली में साहित्य लिखा जाता रहा और इस बात का प्रयत्न होता रहा कि परम्परागत रूपान्तरों और शिल्प को छोड़े बिना नये विचार और संवेदना से समझौता किया जा सके, तथापि इस काल की विशेषता दो साहित्यिक आन्दोलनों में प्रकट हुई जिनमें से एक का क्षेत्र मुख्यतया काव्य का था, किन्तु दूसरे का अधिक व्यापक। परम्परागत रूपाकारों की मर्यादा न उलाँघते हुए नई संवेदना का ग्रहण करने में मैथिलीशरण गुप्त (१८८६—) के काव्य को असाधारण सफलता मिली। उनकी फुटकर कविताओं पर छायावाद का प्रभाव न लक्षित होता हो ऐसा नहीं है, तथापि उनका काव्य इस धारा के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता और उनके ५० वर्ष का काव्य-कृतित्व नये को अग्राह्य न करती हुई परम्परा के निर्वाह का ही उदाहरण है। भाषा की दृष्टि से वह प्रतिमानों की प्रतिष्ठा के उस आन्दोलन के, जिसके नियामक महावीर-प्रसाद द्विवेदी थे, मुख्य उदाहर्त्ता हुए; और प्रामाणिक हिन्दी के व्यापक स्वीकार में उनके कृति-साहित्य का योग अद्वितीय है।

नये साहित्यिक आन्दोलनों में काव्य का आन्दोलन व्यक्तिगत संवेदना और सौंदर्य-चेतना का अन्दोलन था और उसके मूल में पूर्ववर्ती साहित्य की इतिवृत्ति या उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति के विरुद्ध व्यक्ति का विद्रोह था। छः शताब्दी पहले के भक्ति-आन्दोलनों की भाँति यह नया आंदोलन छायावाद की रूढ़ि के बन्धनों के विरुद्ध हृदय की पुकार थी। कवि ने यह पाया था कि ऐसा भी कुछ है जो उसका एकान्त अपना है और उसकी अभिव्यक्ति के लिए वह छटपटा रहा था। अभिव्यक्ति के जो साधन—भाषा, काव्य, रूप, छन्द, शिल्प और तत्सम्बन्धी वर्जनाओं का समूह—उसे उपलब्ध थे, उनकी असमर्थता और अपर्याप्तता उसके लिए असहनीय थी। आवश्यकता की भट्टी में उसने नये साधनों का निर्माण किया। 'निराला' (सूर्यकांत त्रिपाठी, १८९६–) और सुमित्रानन्दन पन्त

(१९००–) इस आन्दोलन के आधार-स्तम्भ थे और दोनो ने उच्च कोटि का काव्य रचा। जयशकर प्रसाद (१८८९-१९३७) और महादेवी वर्मा (१९०७–) का काव्य भी हिन्दी के गौरव की वस्तु है, किन्तु इन दोनो को उसी अर्थ मे प्रवर्त्तक नही माना जा सकता और न उनमे उसी कोटि की मौलिकता और अथवा रचनाशीलता है। पन्त और निराला की सूक्ष्म शब्द-चेतना, स्वरो का उपगोग और भापा-सगीत का गहरा बोध, और प्रकृति के प्रति उनका सहज स्फूर्त भाव उन्हे न केवल अपने पूर्व-वर्तियो और दूसरी शैली के समवर्तियो से अलग करता है बल्कि नये छायावादी कवियो से भी। छायवादी आन्दोलनो को रोमाटिक आन्दोलन कहा गया है और कदाचित् यह नाम किसी भी दूसरे विदेशी नाम से अधिक उपयुक्त हे। इसमे भी सन्देह नही कि अग्रेजी रोमाटिक कवियो का विशेपतया पन्त पर वहुत प्रभाव पडा। किन्तु इस प्रकार की तुलनाओ मे जोखम भी हो सकता है। हिन्दी के छायावादी आदोलनो को अग्रेजी के रोमाटिक आदोलनो का प्रतिरूप माम लेना कितना भ्रातिपूर्ण होगा यह इसीसे प्रकट होता है कि रोमाटिकवाद का उतना ही गहरा प्रभाव इसी काल के दूसरे और विरोधी आदोलन प्रगतिवाद पर भी था। छायावाद मे रोमाटिकवाद का प्रकृति-प्रेम और विस्मय भाव तो था किंतु सौदर्य की घातकता का और कालरूपी नर-नारियो का वह प्रभाव नही जो कि पाश्चात्य रोमाटिकवाद की विशेषता है, इसके अतिरिक्त छायावाद के मूल मे आस्तिकता की एक गहरी अन्तर्धारा भी प्रवाहित हो रही थी। प्रगतिवाद भी एक भारतीय प्रगतिवाद था, जिसमे प्रतिलोम रोमाटिक-वाद भी निहित था जिसमे प्रकृति की विरूपता, निर्ममत्व और अनैतिकता पर जोर था, किंतु साथ ही उनके प्रति सहानुभूति का आग्रह भी, जो अब तक काव्य के उपेक्षित रहे थे—समाज के दलित और उत्पीडित वर्ग या अग। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि छायावाद पूर्ववर्ती रोमाटिकवाद और वेदातवाद का समन्वय था; प्रगतिवाद परवर्ती रोमाटिकवाद और मार्क्सीय द्वद्ववाद का सगम।

छायावाद के प्रेरणा-स्रोत को ध्यान में रखते हुए यह स्वाभाविक माना जा सकता है कि इसके सौंदर्यवादी कवियों में उत्पीड़ित साधारण जनता के कष्टों का उतना तीखा बोध नहीं है। किंतु यह भी ध्यान में रखना होगा कि प्रगतिवादी पक्ष के अनेक लेखकों ने मानव जाति के अपमान और उत्पीड़न के जो लोमहर्षक वर्णन किये उनमें मूलतः उसी प्रकार की अस्वस्थ मनोवैज्ञानिक भावना का पर्याप्त अंश था जो कि पश्चिम के उत्तरकालीन रोमांटिकवादी (डिकेडेंट) में लक्षित होता था। मार्क्सवाद की क्रमशः लम्बी होती हुई जो छाया पश्चिमी रोमांटिक-वाद पर पड़ी थी, और जिसके कारण (उदाहरणतया) वर्डस्वर्थ और शैली, बायरन और स्विनवर्न सभी के रोमांटिक होते हुए भी प्रथम दोनों और अंतिम दोनों में एक मौलिक अंतर आ गया था, उसका या उसी ढंग का प्रभाव हिन्दी में भी लक्षित हुआ। यों तो उन्नीसवीं शती के अंतिम वर्षों से ही हिन्दी लेखक मानव जाति और उसके उद्योग को एक नये प्रकाश में, अनेक स्तरों पर मुक्ति के लौकिक आन्दोलन के संदर्भ में, देखने लगे थे। आर्थिक-सामाजिक स्तर का आंदोलन इन्हीं स्तरों में से एक था, और लेखक की दृष्टि की लौकिकता स्वयं मुक्ति का एक पहलू थी। किन्तु प्रगतिवाद का उद्दिष्ट इस प्रकार की व्यापक, उदार, प्रगति-शील दृष्टि (जिसका उत्तम उराहरण प्रेमचन्द हैं) नहीं था, यद्यपि अपने प्रारम्भिक दिनों में प्रगतिवादी आन्दोलन ऐसी प्रवृत्तियों का सह-योग चाहता रहा। एक बहुमुखी और किसी हद तक दिग्विमूढ़ आंदोलन से, जिसका उद्देश्य लेखक की सामाजिक सहानुभूतियों का क्षेत्र विस्तृत करना था, आरम्भ करके प्रगतिवादी आन्दोलन क्रमशः एक कट्टर सिद्धांत-वाद कम्युनिस्ट आन्दोलन बनता गया और एक-एक करके उदार प्रगति-शील परम्परा के उन लेखकों का तिरस्कार एवं बहिष्कार करता गया जिन्होंने आरम्भ में उसका समर्थन किया था। ज्यों-ज्यों प्रगतिवाद एक रूढ़ कम्युनिस्ट संगठन बनता गया, त्यों-त्यों लेखक अधिक स्पष्टतया अनुशासित और अभिप्रेरित होता गया और उसमें रोमांटिकवाद का

स्पर्श निषिद्ध माना जाने लगा। किंतु अपनी असहिष्णुता द्वारा अपने को विफल कर लेने के पूर्व भी उसके योग्यतम प्रतिपादको मे सादवादी (पर-पीडन मे रस लेने वाली) प्रकृति का आभास मिलता था। यशपाल १९०४–) और नागार्जुन (१९११–), जो दोनो समर्थ और शक्ति-शाली लेखक है और जिनमें से प्रथम समकालीन हिन्दी आख्यान-साहित्य के सबसे अधिक कुशल शिल्पियो मे से एक है, यदा-कदा इस ढग की चीजे लिखते रहे है। 'अचल' (रामेश्वर शुक्ल, १९१५—) और नरेश मेहता (१९२४–) भी इसके अच्छे उदाहरण है, यद्यपि इनका साहित्यिक पद यशपाल अथवा नागार्जुन के तुल्य नही है।* प्रगतिवाद के अनेक भाषाव्यापी प्रभाव को देखते हुए यदि हिन्दी से बाहर के उदाहरण देना क्षम्य हो तो कृष्णचन्द्र और ख्वाजा अहमद अब्बास का उदाहरण भी दिया जा सकता है। दोनो ही पटु और लोकप्रिय शिल्पकार है, और दोनो मे मानव-व्यक्ति की अप्रतिष्ठा में रस लेने की प्रवृति बहुधा पाई जाती है।

इस भ्रात धारणा के कारण कि प्रगतिशील लेखक वही हो सकता है जिसका सम्बन्ध सघर्ष-रत किसान अथवा मजदूर से हो, प्रगतिवाद ने फिर साचे-ढली परिस्थितियो मे साचे-ढले-चरित्रो को देखना आरम्भ किया। इस प्रकार जिस शोचनीय परिस्थिति से प्रेमचन्द ने अभी-अभी हिन्दी-उपन्यास को उबारा था वही परिस्थिति फिर उत्पन्न हो गई। अधिक-

* 'उग्र' (पाडेय बेचन शर्मा) की उन कहानियों में, जो पहले सत्याग्रह-आन्दोलन के समय प्रकाशित हुई थी, सामाजिक आक्रोश और परिवर्तन की माग कम नही थी, किन्तु उन कहानियों के मूल में सादवादी भावना का कितना प्रभाव था यह 'उग्र' की रचनाओं की परिणति में लक्षित होता है। 'उग्र' अपनी इस ह्रासोन्मुखी रोमाटिक प्रवृति को किसी राजनैतिक विचार-धारा से पुष्ट नही कर सके और उस प्रेरणा के चुक जाने पर उनकी रचनाशीलता समाप्त हो गई, किन्तु जिन्होंने राजनैतिक सिद्धान्त-वाद का आसरा लिया उनको राजनीति के कारण इस प्रवृति को अनदेखा करना आलोचक की भूल होगी। —लेखक

तर लेखक क्योंकि मध्यवर्गीय शहरी थे, (और वह भी उद्योग-प्रधान शहरों के नहीं) इसलिए प्राय: उन्हें उन व्यक्तियों की मानसिक प्रवृत्तियों और सामाजिक परिपाटियों का कोई अभाव या ज्ञान नहीं होता था जिनका चित्रण करने के लिए वे अपने को वाध्य मानते थे। फलत: यथार्थवाद का आभास देने वाली रचनाओं की भरमार होने लगी; इनका समर्थन और संगठित रूप से प्रशंसा करने वाले दलगत आलोचक भी प्रकट हुए, जिनका दुराग्रह आज आश्चर्य का विषय हो गया है। यह भी उतने ही आश्चर्य का विषय है कि इन लेखकों ने प्रेमचन्द के साहित्य की ओर इतना कम ध्यान दिया, यद्यपि प्रेमचन्द को वे हिन्दी का गोर्की और अपना नेता और गुरु घोषित करते थे। प्रेमचन्द हिन्दी के पहले आख्यान-लेखक थे जिनकी रचनाओं को आधुनिक अर्थ में उपन्यास कहा जा सकता है, और उन्होंने वहुत सोच-समझकर अपने उपन्यासों का क्षेत्र चुना। उनके अधिकतर पात्र समाज के उन अंगों से लिये गए थे जिनसे उनका घनिष्ठ परिचय था—अर्थात् किसानों के वर्ग से अथवा निचले मध्य-वर्ग से। कभी-कभी ही उन्होंने ह्रासशील सामान्तवादी अभिजात वर्ग के व्यक्तियों का या नवोदित वुद्धिजीवी का चित्रण करने का प्रयत्न किया; उनके ऐसे चरित्र उतने सफल या विश्वासोत्पादक नहीं हो सके। कृषक वर्ग के जीवन का चित्रण उन्होंने वहुत सच्चाई और सहानुभूति के साथ किया। उनके उपन्यासों में सर्वदा एक स्पष्ट और सुगठित घटना-चक्र होता है और उसके द्वारा चरित्रों का व्यक्तित्व विशिष्ट होकर उभरता आता है। आरम्भ के सुधारवादी काल में उनके ग्राम-समाज के चित्रण में भावुकता की झलक रहती थी, किन्तु क्रमश: उनमें एक परिपक्व तटस्थता आती गई और इससे उनकी रचनाएं अधिक प्रभावशाली हो गईं। आरम्भ के काल्पनिक समझौते को छोड़कर उन्होंने सामाजिक संघर्षों के नक्शे को पहचानकर दृढ़तापूर्वक उसका चित्रण किया (गांधी-युग के उपन्यास की एक विशेषता थी आश्रम-समाजों की परिकल्पना—आश्रम सेवा और वलि-

दान द्वारा सघर्षों के निराकरण के प्रतीक थे)। रचना-शिल्प की दृष्टि से हिन्दी-उपन्यास प्रेमचन्द से कही आगे बढ गए है, किन्तु विस्तृत मानवीय सहानुभूति की दृष्टि मे परवर्ती उपन्यासकार प्रेमचन्द को नही पा सके है। प्रगतिवादियो ने सुधारवादी राष्ट्रीयता से बढकर सामाजिक सघर्षों के यथातथ्य चित्रण तक प्रेमचन्द की यात्रा का यह अर्थ लिया कि उन्होंने वर्ग-युद्ध के सिद्धान्तो को पूरी तरह मान लिया है, और हिन्दी-उपन्यास को प्रेमचन्द की जो वास्तविक देन थी—प्रामाणिक व्यक्ति-चरित्रो का चित्रण—उसे सम्पूर्ण रूप से अनदेखा कर दिया।

किन्तु प्रगतिवादी आन्दोलन का एक रचनात्मक पक्ष भी था। उसने लेखक की सहानुभूतियो के क्षेत्र को कुछ बढाया और उसकी सघर्षशीलता ने अपेक्षया स्वतन्त्र लेखको को आत्म-निरीक्षण की प्रेरणा दी और आत्म-सन्तोष अथवा वस्तु-स्थिति के प्रति सहज स्वीकार-भाव को दूर किया। छायावाद ने भाषा को जो नया लचकीलापन, अर्थ-गौरव और गहराई दी थी, उसे प्रगतिवाद से मिली हुई नई परीक्षणशीलता और प्रखरता ने पुष्ट किया और इससे परवर्ती साहित्य का रूप और स्वाद बदल गए। प्रगतिवाद ने लोक-जीवन के अध्ययन को और लोक-साहित्य तथा प्रादेशिक सस्कृतियो को भी प्रोत्साहन दिया। लोक-जीवन के प्रति इस नई उन्मुखता के मूल मे भी दो भिन्न प्रकार की प्रेरणाए थी। एक प क्ष का आग्रह लोक अथवा जन पर अधिक था इस पक्ष की दृष्टि आधुनिक थी, किन्तु उसका आग्रह मुख्यतया राजनीतिक था। दूसरा पक्ष सस्कृति पर बल देता था, इसकी दृष्टि अतीतोन्मुखी थी (यद्यपि उस-में सस्कृति की अनेकोन्मुखता और विविधता की स्वीकृति अधिक थी)। प्रगतिवादी आन्दोलन कुछ ऐसे वर्गो या क्षेत्रो से भी नये लेखको को प्रकाश में लाया जिनसे साधारणतया लेखक को सामने आने में अधिक देर लगती अथवा अधिक कठिनाई होती। छायावाद और प्रगतिवाद दोनो आन्दोलनों का विकास किसी हद तक बलात्कृष्ट था, क्योकि दोनो में ही थोडे-से वर्षों के व्यास मे ऐसी अनेक शक्तियो का घनीभूत प्रभाव

संचित हो गया था जिन्हें अन्यत्र पीढ़ियों का समय लग जाता। इसी संकुलता का यह परिणाम है कि यद्यपि साहित्यिक आन्दोलन के रूप में छायावाद और प्रगतिवाद दोनों ही जीर्ण हो गए हैं; तथापि दोनों रीतियों का काव्य अभी तक लिखा जा रहा है; जैसे कि परम्परागत पद्धति का काव्य इन दोनों वादों के युग में भी लिखा जाता रहा और अब भी लिखा जा रहा है। मैथिलीशरण गुप्त की श्रेष्ठ रचनाओं का काल भी छायावाद और प्रगतिवाद का ही काल है: उन्होंने परम्परागत नैतिक मर्यादाओं और रूढ़ काव्य-शिल्प का निर्वाह करते हुए भी आधुनिक मानववादी विचारों को ग्रहण और आत्मसात् करके असाधारण प्रतिभा दिखलाई। माखनलाल चतुर्वेदी (१८८८–) और 'नवीन' (बालकृष्ण शर्मा, १८९७—) दोनों रोमांटिक राष्ट्रीयवादी हैं और दोनों में रहस्यवादी शब्दावली का व्यवहार करने की प्रवृत्ति है। 'दिनकर' (रामधारी सिंह, १९०८—) भी रोमांटिक राष्ट्रीयतावादी हैं, किन्तु उन्होंने पौराणिक वस्तु का आधुनिक सन्दर्भ में उपभोग भी किया है और मुहावरेदार बोल-चाली भाषा में उपदेशात्मक अथवा उद्बोधन-काव्य भी लिखा है। भाषा के व्यवहार की दृष्टि से इन कवियों की छायावादी कवियों से और आधुनिक कवियों से तुलना बहुत रोचक है। 'नवीन' सिद्धान्ततः शुद्धिवादी हैं और मानते हैं कि हिन्दी के शब्द-भण्डार में संस्कृत-व्युत्पन्न शब्दों को छोड़कर दूसरे शब्द नहीं होने चाहिएँ, किन्तु व्यवहार में वह किसी शब्द को उपयोगी पाने पर उसके कुल-शील-संस्कार के अन्वेषण की चिन्ता नहीं करते हैं। इसके प्रतिकूल अन्य दोनों कवियों में ऐसा कोई पूर्वग्रह नहीं है और वे काम दे जाने वाले किसी भी शब्द को ग्रहण करने को तैयार हैं। किन्तु छायावाद के कवियों में शब्द-संकेत की जो सूक्ष्म भावना है वह इन तीनों कवियों में नहीं है; न ही उसमें उस प्रकार का ध्वनि-विचार अथवा शब्द-ध्वनियों का वैसा सोद्देश्य और सार-गर्भ उपयोग है जो नई कविता का लक्ष्य है।

बालकृष्ण राव (१९११—) की प्रारम्भिक रचनाओ का छायावाद से निकट सम्बन्ध था, किन्तु पाश्चात्य साहित्य के उनके अध्ययन ने उन्हे छायावादी प्रवृत्तियो के साथ एकात्म नही होने दिया। उन्होने चतुर्दशपदी (सानेट) के कुछ आकर्पक प्रयोग किये है। उनकी भाषा सरल और वाक्य-रचना साधारण बोल-चाल के निकट होती है। उनका काव्य-विषय प्राय हल्का होता है, किन्तु उनका रूप-बोध उनके काव्य को आनन्ददायक बना देता है।

'सुमन' (शिवमगल सिह, १९१६—) के काव्य मे एक सहज उत्फुल्लता और मस्ती है, जो उनकी रोमाटिक प्रवृत्तियो की द्योतक है; किन्तु साथ ही प्रगतिवादी सिद्धान्त के प्रति उनकी निष्ठा प्रकट और मुखर है। यह सिद्धान्तवादी जामा उनकी चुलबुली मानवोन्मुखता पर फबता नही, और उनकी लम्बी कविताओ का वक्तव्य चेष्टित जान पडता है। एक सहज विनोदशीलता भी उनके काव्य के स्वभाव मे ही न होती तो उनकी लम्बी कविताए निरा वाग्जाल हो जाती। किन्तु उनकी गीतात्मक रचनाओ की स्निग्धता, भोलापन और सख्य भाव उनकी एक बहुत आकर्पक विशेपता है।

ऐसे और भी अनेक लेखक, विशेपतया कवि है जिन्हें स्पष्ट रूप से उपरिलिखित दोनो वादो में से किसी के अन्तर्गत नही रखा जा सकता, किन्तु जिनकी प्रवृत्ति साधारणतया रोमाटिक है, भले ही उसमें वेदान्त-वाद का या अन्य कोई पुट हो। 'बच्चन' (हरिवश राय, १९०७—) स्वच्छन्दतावाद के लोकप्रिय कवि है। उनके काव्य मे काल-रूप नारी और पुरुप, प्रलय के पूर्व-सकेत, मृत्यु-चिन्ता, रात्रि-पूजा आदि रोमाटिक प्रवृत्ति के अनेक उपकरण मिलते है, उनकी भापा साफ-सुथरी, मुहावरेदार और लोक-व्यवहार के निकट है, यद्यपि कभी-कभी अनुप्रास का मोह उन्हें स्खलित कर देता है। समकालीन काव्य-भाषा पर 'बच्चन' का कितना प्रभाव पडा यह कहना कठिन है, किन्तु इसमे सन्देह नही कि छायावाद-काल के पाठक की इस धारणा को बदलने मे उनकी रचनाओ

ने सबसे अधिक काम किया कि काव्य की भाषा अनिवार्यतया लोक-व्यवहार की भाषा से अलग कुछ होती है। नरेन्द्र शर्मा (१९१६–) अपनी सूक्ष्म संवेदना के कारण दोनों वादों में कभी इधर और कभी उधर झुकते रहे हैं और शिल्प की दृष्टि से भी उनकी कविता बीच-बीच में परम्परागत पद्धतियों से दूर हटती रही है, किन्तु क्रमशः अन्तर्वस्तु की दृष्टि से उनका काव्य वेदान्तवादी और भारतीय संस्कृतिपरक हो गया है और वहिरूप की दृष्टि से उन्होंने छन्द, तुक आदि के बन्धन को अन्तिम रूप से स्वीकार कर लिया जान पड़ता है। भगवतीचरण वर्मा (१९०३—) का काव्य रोमांटिक प्रतीकों और संकेतों से पूर्ण है, किन्तु साथ ही उसके विचार-पक्ष में एक ठोस व्यवहारिकता भी है। उनकी कहानियों और उपन्यासों में वहुधा जो खंडनात्मक उपहास-वृत्ति पाई जाती है वही कभी-कभी उनके काव्य में भी प्रकट होती है। उनकी इस ढंग की रचनाएं तात्कालिक प्रभाव तो रखती हैं, लेकिन अभी तक उनमें उस कोटि का व्यंग्य अथवा गहराई नहीं है जो काव्य के क्षेत्र में उसे स्थायी प्रतिष्ठा दे सके। छन्द की दृष्टि से अन्य कवियों की भांति भगवतीचरण वर्मा भी न केवल आग्रहपूर्वक शास्त्रीय पद्धति का पालन करते हैं वरन् उससे बाहर काव्य के अस्तित्व की सम्भावना ही अस्वीकार करते हैं।

गिरिजाकुमार माथुर (१९१७—) भी मूलतया रोमांटिक प्रवृत्ति के गीतिकार हैं—अथवा कम-से-कम उनका उत्तम काव्य उसी प्रवृत्ति का है—किन्तु उन्होंने रूप और शिल्प की दृष्टि से कई प्रयोग भी किये हैं। अब जिसे 'नई कविता' कहा जाने लगा है उसके रूप और मुहावरे के विकास में गिरिजाकुमार माथुर का निश्चित योग रहा है। किंतु अपने अमरीका-प्रवास से लौटकर उन्होंने जो कविताएं लिखी हैं उनसे कुछ ऐसा जान पड़ता है कि वह प्रयोग की एक बँधी लीक में पड़ गए हैं और उस लीक को अति की सीमा तक ले जा रहे हैं। फलतः उनके

इधर के लेखन मे सवेदना अथवा अनुभूति के नये स्तरो की अपेक्षा एक अतिरंजित शैली-वैचित्र्य ही प्रतिबिम्बित होता है।

दोनो महायुद्धो के अन्तराल के कवियो में सियारामशरण गुप्त पर विदेशी प्रभाव कदाचित् सबसे कम पडा है—इस काल के मुख्य कवियो मे कदाचित् वही एक ऐसे भी रहे जिनके शिक्षण मे अग्रेजी का कोई योग नही रहा। उनकी रचनाओ मे सूक्ष्म अनुभूति और निर्मम चितन के साथ-साथ एक शात और सतुलित घरेलूपन है। भारतीय भूमि का धैर्य, सहिष्णुता और उर्वरता मानो उनके काव्य मे प्रतिबिम्बित हो उठी है। सुभद्राकुमारी चौहान (१९०४–१९४८) की ओज-भरी राष्ट्रीय कविताएँ और गृहस्थ जीवन की सहज, सरल, स्नेहभरी, अतरग झाँकियाँ उन्हे इस काल के कवियो मे एक अद्वितीय स्थान देती है। ऐसी ही सहज आत्मीयता होमवती (१९०४–१९५१) की कहानियो मे मिलती है, उनकी कविताओ मे भी यह गुण तो है लेकिन अपनी भावना के प्रति वह तटस्थता नही है जो उसे महत्ता प्रदान करती। सुभद्राकुमारी चौहान की भारतीयता उनके काव्य की ओजस्विता मे प्रकट हुई तो होमवती की भारतीयता उनकी कहानियो की व्यग्यात्मकता मे।

जैनेन्द्रकुमार (१९०५—) एक और लेखक है जिन्हे समकालीन हिन्दी-साहित्य के साधारण प्रवाह मे नही रखा जा सकता। उनके उपन्यास और कहानियाँ आलोच्य काल की सबसे अधिक अभिप्राय-भरी रचनाओ मे गिनी जा सकती है। यद्यपि उनकी भाषा बहुधा अपनी चेष्टित सरलता और अतिवैशिष्ट्य के कारण दूषित हो जाती है और उनकी परवर्ती रचनाएँ हेतुवाद और निरी शब्द-क्रीडा के स्तर तक उतर आती है, तथापि उन्होने कई स्मरणीय व्यक्ति-चरित्रो का निर्माण और सुस्पष्ट अकन किया है जो उनकी गम्भीर अन्तर्दृष्टि, मानवीय भावनाओ मे उनकी पैठ और उसे प्रयुक्त करने की उनकी क्षमता, तथा चरित्रो की कर्म-प्रेरणाओ के घात-प्रतिघात के निर्मम विश्लेषण की साक्षी है। गाधी-दर्शन के अकर्म विरोध के सिद्धात को

उन्होंने रचनात्मक अभिव्यक्ति दी और उसे उसकी तर्क-संगत चरम सीमा तक ले जाकर उसका चित्रण किया जहाँ वह पाप के प्रति अविरोध और दुःख के स्वीकार का रूप ले लेती है। उनका लघु उपन्यास 'त्याग पत्र' एक प्रबल कृति है। उनकी अनेक कहानियाँ भी आख्यान-कला के उत्कृष्ट उदाहरण होने के साथ-साथ एक मौलिक, पैनी और उत्तेजना तथा स्फूर्ति प्रदान करने वाली बुद्धि का संकेत करती हैं। उनके उत्तम निबन्धों में भी यह ज्ञान लक्षित होता है, किन्तु कहीं-कहीं स्तर निरी वाक्-चातुरी तक गिर जाता है।

उपर्युक्त दो काव्य-आन्दोलनों की मूल प्रेरणा क्रमशः पश्चिमी रोमांटिकवाद* और मार्क्सवाद थी, किन्तु पश्चिम में वैज्ञानिक चिन्तन की साधारण प्रवृत्ति का प्रभाव भी हिन्दी गद्य पर और विशेष रूप से आख्यान-साहित्य पर पड़ा। पुराणों के सम्बन्ध में नई ऐतिहासिक दृष्टि के प्रभाव से नये प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यास सामने आये। पौराणिक नायक को ऐसे घटना-चक्र द्वारा आवेष्टित कर देने-भर के, जो पाठक के विश्वास पर अधिक जोर न डाले, प्रयत्न को छोड़कर ऐतिहासिक उपन्यासकार अब एक ऐतिहासिक काल के पुनः संगठन की ओर उन्मुख हुआ। किसी काल की सामाजिक परिस्थिति और उसके लोक-जीवन का ऐतिहासिक चित्रण ही उपन्यासकार का उद्देश्य हो गया। भगवतशरण उपाध्याय (१९१०—) ने एक गल्प-माला में

* पश्चिम का रोमांटिकवाद स्वयं बहुत दूर तक पूर्वीय प्रभावों का परिणाम था, जो पूर्वीय साहित्यों के अनुवाद और अध्ययन के माध्यम से क्रमशः पश्चिम में और विशेष रूप से तत्कालीन तीनों प्रमुख साहित्यों में पहुँचे—अंग्रेजी, फ्रांसीसी और जर्मन साहित्यों में। ये प्रभाव 'अलिफ लैला' से लेकर 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' और 'कामसूत्र' से लेकर 'गीता-उपनिषदों' तक सभी प्रकार के ग्रंथों के अनुवादों से आए थे। भारतीय प्रभाव किस प्रकार पाश्चात्य संवेदना में से छनकर अंग्रेजी, फ्रांसीसी और अन्य यूरोपीय साहित्यों में प्रकट हुए और वहां से लौटकर फिर भारतीय काव्य-रचना पर रोपे गए, इसकी चर्चा लेखक ने अन्यत्र की है।

वैदिक काल से लेकर मध्य युग तक भारतीय समाज के विकास का चित्रण किया। राहुल साकृत्यायन (१८९५—) ने प्राचीन गण-राज्यो के समाज और जीवन का पुनर्निर्माण करने का यत्न किया और रागेय राघव (१९२२—) ने मोए-जो-दडो के नागरिक राज्य का जीवन प्रतिचित्रित किया। इस प्रकार के चित्रण कभी-कभी लेखक के ज्ञान और पाडित्य के बावजूद अनैतिहासिक हो जाते रहे, क्योकि लेखक जहाँ एक ओर वर्णित काल अथवा समाज के बहिरग और जीवन-विधियो के प्रति अत्यन्त सतर्क था और तत्कालीन वेश-भषा, खाद्य-सामग्री, रीति-कर्म आदि की विशेषताओ का सजग निर्वाह करता था, वहाँ दूसरी ओर वह उसके अन्तरग पर आधुनिकता का आरोप कर देता था—आज की मनोवृत्तियाँ, सामाजिक सघर्ष और प्रवृत्तियाँ सुदूर अतीत पर आरोपित हो जाती थी। यह नही कि उपन्यासकार जान-बूझकर इतिहास को एक मिथ्या रूप देना चाहता था; केवल उसका वैचारिक आग्रह और समाज-विकास के किसी विशेप सिद्धात को उदाहृत करने का उत्साह उसे अनैति-हासिकता की ओर वहा ले जाता था। राहुल साकृत्यायन द्वारा सचेतन वर्ग-सघर्प का अथवा यशपाल द्वारा नारी-आन्दोलन का आरोप उदा-हरण के रूप मे दिया जा सकता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी (१९०७—) की 'वाणभट्ट की आत्म-कथा' सम्पूर्ण युगसत्य और ऐतिहासिक निर्वाह के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत की जा सकती है। कादम्बरीकार की कल्पित आत्म-कथा के माध्यम से एक समकालीन समाज का पुनर्निर्माण करते हुए लेखक ने न केवल बहिरग का पूरा निर्वाह किया है वरन् तत्कालीन सामाजिक मान्यताओ और सवेदना के प्रति भी पूरी सचाई वरती है। अपरकालीन समाज को मूर्त्त करने मे लेखक ने जिस विद्वत्ता और निष्ठा का परिचय दिया है केवल उसीके कारण नही, बल्कि हिन्दी मे एक ऐसी शैली और पद्धति की रचना के कारण भी जिसमे वाणभट्ट की गर्वीली, गरिष्ठ और अत्यलकृत सस्कृत का पूरा आस्वाद पाया जा सकता है, 'बाणभट्ट की आत्मकथा' समकालीन हिन्दी-

साहित्य में एक अद्वितीय स्थान रखेगी। वह एक ऐतिहासिक युग-चित्र ही नहीं, एक श्रेष्ठ उपन्यास भी है। विद्वान् लेखक, आचार्य और आलोचक के इस प्रथम और अभी तक एकमात्र उपन्यास को उसके गौरव के अनुकूल मान्यता अभी तक नहीं मिली है। वृन्दावनलाल वर्मा (१८८८—) के उपन्यासों का काल सामन्तवाद के ह्रास का काल है। उनके अनेक उपन्यास लोकप्रिय भी हुए हैं और सम्मानित भी, किन्तु बहुधा उनका रूप-शिल्प अधूरा और त्रुटिपूर्ण हुआ है और कभी-कभी उपन्यास गाथा अथवा ऐतिहासिक वृत्तान्त के निकट आ जाते हैं। रूप-विधान की इस कमी का कारण कभी-कभी कथावस्तु से लगाव भी होता है, जैसा कि 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' में लक्ष्य है। लघु उपन्यास 'मुसाहिबजू' उनकी उत्तम रचना कही जा सकती है।

फ्रायड और उसके परवर्ती मनस्तत्त्वविदों का प्रभाव हिन्दी पर पड़ना स्वाभाविक ही था। यह विशेष रूप से हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में प्रकट हुआ, यद्यपि हिन्दी-आलोचना पर भी उसके प्रभाव कुछ तो प्रत्यक्ष और कुछ समकालीन पाश्चात्य उपन्यास-साहित्य के उदाहरण से पड़े। ये प्रभाव भारतीय साहित्य में केवल हिन्दी तक ही सीमित नहीं रहे और इसलिए हिन्दी-साहित्य के विवरण में उसका पृथक् विश्लेषण करना आवश्यक नहीं है। यों ऐसे उपन्यास हिन्दी में अधिक नहीं हुए हैं जिन्हें सीधा मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास कहा जा सके। कदाचित् इलाचंद्र जोशी (१९०२—)इस कोटि के एक-मात्र उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं। उन्होंने ऐसे अनेक चरित्रों का वर्णन किया जिनका व्यक्तित्व न्यूनाधिक मात्रा में विघटित है और जो विषाद, कुंठा और हताशा के बोझीले वातावरण में अपनी समस्या के आस-पास चक्कर काटते हैं। इन अनेक उपन्यासों का प्रभाव और अधिक हो सकता था, किन्तु इस कारण न हुआ कि उनमें वर्णित घटनाओं के असम्भव न होते हुए भी उनके पात्रों की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं में अतिरंजना की उतनी मात्रा थी, जो उन्हें स्वीकार करना कठिन बना दे। लेखक की प्रिय

आत्म-कथा-मूलक शैली के कारण पात्रो मे एक प्रकार की एकरूपता रही। आत्म-कथा के रूप मे वृत्तान्त कहने वाला व्यक्ति भी प्राय. प्रतिकूल स्वभाव का एक कुठित अथवा निरुद्देश्य व्यक्ति होता, जो एक के वाद एक नई और किसी हद तक आश्चर्यमयी घटना मे पडता चलता और इस प्रकार वृत्तान्त को एक सूत्र अथवा अनुक्रम दे देता। इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासो मे चरित्र का विकास बहुत कम होता है, विश्लेषण द्वारा उसका क्रमिक उद्घाटन ही उनका विषय होता है। 'सन्यासी', जो कि उनके प्रारम्भिक उपन्यासो मे से है, कदाचित् उनकी सर्वोत्तम कृति है, वाद के उपन्यासो मे आवृत्ति और वृत्तात्मकता अधिक है।

इस काल की एक विशेषता उसके कृतिकारो की अनेकोन्मुखी प्रवृत्ति थी। अधिकतर लेखक कविता और आख्यान दोनो लिखते रहे और वहुधा आलोचनात्मक गद्य भी। उदाहरणतया भगवतीचरण वर्मा ने उपन्यास और नाटक भी लिखे है; सियारामशरण गुप्त ने उपन्यास, नाटक और कहानी के अतिरिक्त निवन्ध भी; 'बच्चन', नरेंद्र शर्मा और सुभद्राकुमारी चौहान ने कहानियाँ, माखनलाल चतुर्वेदी और 'दिनकर' ने निवन्ध इत्यादि। किन्तु उनकी कविता परम्परागत पद्धति का निर्वाह करती रही। वह छद शास्त्र की अनुगता, तुक-ताल और अलकारो से युक्त रही और उसका रूप मुख्यतया गेय अथवा श्रव्य रहा। सियारामशरण गुप्त ही इसके उल्लेखनीय अपवाद रहे। इस प्रकार 'निराला' और 'पन्त' के वाद आधुनिक प्रवृत्ति अभिव्यक्ति की प्रतीक्षा ही करती रही। यो तो काव्य की नई आवश्यकता का अनुभव दूसरे महायुद्ध से पहले ही होने लगा था और यत्र-तत्र कुछ कवियो ने उसके अनुरूप प्रयोग भी किये थे, किन्तु परम्परागत पद्धतियो के विरुद्ध एक समवेत स्वर सन् १९४३ मे 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ प्रकट हुआ। पक्षधर आलोचना मे वहुधा इससे पहले के प्रयोगो का उल्लेख किया जाता है, किंतु ऐसे पूर्व-सकेतो के रहते हुए भी उनकी विरलता के कारण एक व्यापक प्रवृत्ति का आरभ वहाँ से नही माना जा सकता।

वास्तव में प्रगतिवादी सम्प्रदाय के कवियों में से कुछ को काव्य की अथवा अभिव्यक्ति की समस्याओं का भी बोध था, किंतु अपने मुख्य (आर्थिक) आग्रह के कारण वे उधर को ही झुक गए और अभिव्यक्ति की समस्याएँ उनके निकट नगण्य नहीं तो गौण अवश्य हो गईं। परवर्ती अथवा अन्य कवियों के साहसपूर्वक इन समस्याओं का सामना करने, और आरंभ में अटपटे किंतु क्रमशः स्पष्टतर उत्तर पाने के बाद ही प्रगतिवादी सम्प्रदाय के कवि उनके प्रयोगों को उपयोग में लाये। इसीलिए इन प्रयोगों के आन्दोलन को परिवर्ती मानना ही युक्तिसंगत है। यों उसकी पूर्व-पीठिका में 'निराला' और पंत के अतिरिक्त श्रीधर पाठक (१८७६-१९२८) और शिवाधार पाण्डेय के नाम भी लिये जा सकते हैं।

मानववाद और व्यक्तित्व की खोज

दोनों महायुद्धों के अन्तराल में एक गम्भीर परिवर्तन भी हो रहा था यद्यपि वह उतना लक्ष्य नहीं था। यह न तो छायावाद की भाँति सम्पूर्णतया अन्तर्वस्तु अथवा संवेदना पर आधारित था, न प्रगतिवाद की भाँति वाह्य वस्तु-सम्वन्धों पर। इसका उद्देश्य मानव के प्रति एक नई दृष्टि प्राप्त करना था। उसके मूल में मानव की अद्वितीय सम्पूर्णता और मानव व्यष्टि की अखण्डता का गहरा बोध था। यह साहित्यिक चेतना का एक नया स्तर, संवेदना का एक नया आयाम था। यह भी कहना अनुचित न होगा कि उपर्युक्त दोनों साहित्यिक आन्दोलन इसी ज्वार के ऊपरी स्तर की तरंगें थीं। छायावाद जिस प्रकार अपने पूर्ववर्ती युग के नीरस उपदेशवाद और नैतिक शुद्धिवाद की प्रतिक्रिया थी, प्रगतिवाद उसी प्रकार छायावाद के भाव-संकुल और रूप-कल्पना की प्रतिक्रिया-सा प्रकट हुआ; किन्तु ये तीनों प्रवृत्तियाँ परिवर्तन की उस गहरी अन्तर्धारा की ऊपरी हिलोरें थीं, जिसे व्यक्तित्व की खोज का नाम दिया जा सकता है।

परिवर्तन के इस विस्तीर्ण प्रवाह को एक साहित्यिक आन्दोलन के, अथवा समूचे भारत के भी सन्दर्भ मे ठीक-ठीक नही समझा जा सकता। न ही उसे केवल विदेशो से आयातित राजनीतिक विचार-धाराओ के सन्दर्भ मे समझा जा सकता है। वह वास्तव मे समूचे पश्चिम के आघात की प्रतिक्रिया है। व्यक्तित्व की खोज के मूल मे पश्चिम के प्रति एक उचित और सन्तोषप्रद मनोभाव की स्थापना की, और उसके साथ पूर्व की एक आध्यात्मिक तृप्तिप्रद और सारपूर्ण मूर्ति की प्रतिष्ठा की समस्या थी। अर्थात् व्यक्तित्व की खोज वास्तव मे पश्चिम को सही-सही निरूपित करने और उसके मुकुर मे अपने सामूहिक प्रतिबिम्ब को देखने और पहचानने की समस्या थी। निम्न स्तर पर वह आत्म-रक्षा के किसी सहज मन्त्र की, जीवित रहने के उपाय की खोज थी, उच्चतम स्तर पर वह एक कठिन आत्म-परीक्षण, आध्यात्मिक चिन्तन, तपस्या और सभी मूल्यो के पुनर्मूल्याकन की समस्या थी। और इस समस्या के सम्मुख सभी प्रकार की प्रतिक्रियाएँ देखने को मिली एक ओर प्राचीन परम्पराओ और शास्त्र-सम्मत मूल्यो के सम्पूर्ण खण्डन से लेकर आधुनिक परिस्थिति मे आत्म-सतोष की परिधि से होते हुए एक कट्टर मतग्राही धार्मिक एव सास्कृतिक पुनरुत्थानवाद तक सभी स्तरो के आग्रह व्यक्त हुए—ठीक उसी प्रकार जैसे कि भारत के सामाजिक-राजनैतिक चिन्तन मे उद्योगवाद और औद्योगिक समृद्धि के प्रति उत्साह से लेकर पश्चिम के भौतिकवाद के प्रति घोर वितृष्णा तक सभी तरह की प्रतिक्रियाएँ लक्षित हुई। विशाल मध्य-देश की सवेदना की वाहिका के रूप मे हिन्दी ने इन सभी प्रभावो को प्रतिबिम्बित किया।

इस लेख की परिधि मे इस विशाल सघर्ष और आन्दोलन का ववेचन न तो सम्भव है और न आवश्यक ही। और कदाचित् इस बात का उल्लेख भी प्रासगिक न होगा कि इस सघर्ष के परिणाम मे 'पूर्व का एक भारतीय कल्पना-चित्र बन खडा हुआ, जो पश्चिमी अध्येता को उतना ही भ्रान्त और मनोरजक जान पडेगा जितना हमे 'प्राच्य' का

पश्चिमी कल्पना-चित्र जान पडता है। साहित्यिक प्रवृत्तियो के विवेचन मे उल्लेखनीय बात इतनी है कि इस सघर्ष के अन्तिम वैज्ञानिक पिरणति तक पहुँचने और एक व्यापक सश्लिष्ट दृष्टि के उपलब्ध होने तक के समय मे एक के पीछे एक कई आदर्श अथवा प्रतीक-पुरुषो की परिकल्पना हुई। उपदेशवादी, रोमाटिक और प्रगतिवादी तीनो युगो के अपने-अपने प्रतीक-पुरुष अथवा नायक रहे। छायावाद का प्रतीक-पुरुष उत्कट देश-भक्त और परम्परागत आध्यात्मिक मूल्यो का रक्षक था, प्रगतिवाद का प्रतीक-पुरुष पार्टी आर्गेनाइजर, आन्दोलनकारी कामरेड था अथवा युयुत्सु किसान-मजदूर। स्वदेश-भक्ति की प्रवृत्ति अनिवार्यतया वेदान्त की ओर हो जाती थी, क्योकि वेदान्त पश्चिम के भौतिकवाद के निषेध का पर्याय हो जाता था। वही इस काल मे लिखी गई अनेक हिमालय-वन्दनाओ का, और देश-भक्ति की भावना के साथ रहस्यवादी शब्दावली के उस गुम्फन का रहस्य है जो माखनलाल चतुर्वेदी अथवा 'नवीन' के काव्य मे पाया जाता है।

प्रतीक-पुरुष की निष्क्रान्ति

समकालीन सन्दर्भ मे इस संघर्ष का केवल ऐतिहासिक महत्त्व रह गया है। आज भारत आधी शताब्दी या एक पीढी पहले की अपेक्षा संसार से कही अधिक सम्पृक्त हो गया है और पूर्व-पश्चिम का विरोध आज उतना तीखा या मौलिक नही रहा है। आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त स्वीकार और आत्मसात् कर लिया गया है और यह कहना कठिन है कि तरुण भारतीय लेखक और पश्चिमी लेखक की संवेदना मे कोई आधार-भूत अन्तर है। अतएव हिन्दी मे यह स्वाभाविक ही है कि छायावाद और प्रगतिवाद की नायक-पूजा का स्थान एक वैज्ञानिक मानववाद ले ले। समकालीन प्रवृत्ति नायकवाद के विरुद्ध नही तो उसके प्रति उदासीन अवश्य है। लेखक अब मानव के निर्माण का प्रयत्न छोडकर उसके परिचय और अनुसंधान से ही सन्तुष्ट है; क्योकि वह उसकी गम्भीर

महत्ता को स्वीकार करता है। समकालीन हिन्दी-लेखन की दृष्टि साधारण मनुष्य की ओर है। वह उसकी साधारणता को, और उसके राग-विराग, उसकी आशा-आकाक्षा, उसके सुख-दु ख, उसकी भूख-प्यास, उसके भय, त्रास, आनन्द और दुश्चिन्ताओ की साधारणता को स्वीकार करता है। वह साधारणता और अद्वितीयता मे कोई विरोध नही देखता। मानव साधारण है, साथ-ही-साथ प्रत्येक मानव व्यष्टि अद्वितीय है सम-कालीन लेखक इसी प्रतिज्ञा से मानव का अनुसन्धान और आस्था की खोज आरम्भ करता है। यह आस्था की खोज, उसकी अनिवार्यता का संकेत भी समकालीन लेखन का, और विशेषतया नई कविता का एक लक्षण है। रोमाटिक कवियो के निराशावाद, अथवा प्रगतिवादियो के भविष्यत् स्वर्ण-युग के प्रति चेष्टित आशावाद, दोनो के स्थान मे मानव के प्रति आस्था की एक नई दृष्टि प्रकट हुई है जो मानव की त्रुटियो और मर्यादाओ को स्वीकार करती है। वर्गानुशासन, व्यापक सत्तावाद, राजकीय निर्देशन और संरक्षण के विरुद्ध जो प्रबल भावना आज लक्षित होती है उसके मूल मे यह ज्ञान है कि अपनी साधारणता के कारण भाव को अपने बुनियादी मूल्यो की साधना से फुसलाया और बहकाया जा सकता है और अपनी बहुमूल्य निधि—अपने व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने की स्वतन्त्रता—को खो देने की दुर्बलता और उसके जोखम—नया काव्य इन सभी को मानवीय अवस्थिति के रूप मे स्वीकार करता है। इसी विशेषता के कारण सतही आलोचक नई कविता पर अनास्था का आरोप लगाते हैं। वास्तव मे नये कवि मे मूल्यो के प्रति एक नई और गम्भीरतर आस्था है और उसके साथ उन मूल्यो और प्रतिमानो की वास्तविकता और सात्विकता का बोध है। कुछ वर्ष पहले के लेखक ने अपने को जिस नैतिक खँडहर के बीच खडा हुआ पाया था उसके पुनर्निर्माण की तात्कालिकता का बोध नये कवि को है। मूल्यो के मूल स्रोत के बारे मे आज जितना आग्रह है उतना पहले कभी नही था। इतना अवश्य है कि मानव के बाहर मूल्यो के किसी आधिदैविक स्रोत

का आग्रह आज नही है। और मानवीय मूल्यों का उद्भव भी साधारण मानव से है, किसी काल्पनिक आदर्श अथवा प्रतीक-पुरुष से नही।

प्रयोगवाद : नई कविता

व्यक्तित्व की खोज के नये आधुनिक मानवतावादी आन्दोलन को प्रयोगवाद का नाम कुछ-कुछ वैसे ही व्यग्यात्मक भाव से दिया गया था जिससे छायावाद को वह नाम दिया गया था। निस्सन्देह नई प्रवृत्ति के पहले सकलित प्रकाशन 'तार सप्तक' की भूमिका मे जिज्ञासा और अन्वेषण की प्रवृत्ति पर जोर देते हुए 'प्रयोग' शब्द का व्यवहार किया गया था, इसी सूक्ष्म डोरे से यह नया नाम आन्दोलन के साथ बाँध दिया गया। नये आन्दोलन की प्रगतिशीलता केवल भाषा अथवा शिल्प के नये प्रयोगो तक सीमित हो ऐसा नही है। नैतिक जिज्ञासा, नये मूल्यो और प्रतिमानो की खोज, तथा उन आधारो और स्रोतो का अन्वेषण जहाँ से मूल्य उत्पन्न होते है, उसकी मूल प्रवृत्ति है। स्वय इस प्रवृत्ति के कवि अपनी कविता को 'नई कविता' की अभिधा देना पसन्द करते है, यह नाम उसकी प्रवृत्तियो की विवेचना करते समय 'अज्ञेय'* द्वारा सुझाया गया था।

जैसा सभी साहित्यिक आन्दोलनो मे सर्वत्र होता रहा है और होता है, नई कविता के आन्दोलन के साथ भी ऐसे लोग सम्पृक्त है जो उसे हल्का अथवा उसके प्रभाव को दुर्बल करते है। नये रूप-शिल्प की खोज की आड में बहुत-सी अधकचरी, भोडी, रूपाकार-विहीन रचनाएँ नई कविता होने का दावा करने लगी है, निरा नयापन अथवा वैचित्र्य मौलिकता का, और अनघडपन प्रतिभा का दावा करने लगे है। और भी दुखद बात यह है कि साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओ के सम्पादक,—जिनमे (इने-गिने अपवादो को छोडकर) सामूहिक रूप से दृष्टि अथवा साहित्यिक परख का आधिक्य कभी नही रहा और जिन्होने साहित्यिक

---

* सच्चिदानन्द वात्स्यायन का उपनाम।

पत्रकारिता के प्रारम्भिक दिनो को छोडकर अपने विश्वासो को कार्या-न्वित करने का विशेष नैतिक साहस भी नही दिखाया,—अब कोई रचनात्मक प्रभाव नही रखते है। पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित रचनाओ का चयन विवेकपूर्ण नही होता। कही अमुक एक अथवा अमुक दूसरे प्रकार की रचनाओ का सम्पूर्ण बहिष्कार है तो कही सभी प्रकार की रचनाओ का उतना ही विवेकहीन स्वीकार। साहित्यिक पत्रिकाओ के सम्पादन मे इतना स्वैराचार और पूर्वग्रह कभी नही देखा गया जितना आज लक्ष्य होता है। समीक्षको ने भी अपने कर्त्तव्य का निर्वाह नही किया है। देशी और विदेशी आलोचना-शास्त्र के अनुवाद अथवा अनु-करण के द्वारा आलोचना-सिद्धान्त का निरूपण और हिन्दी की ग्रथ-वृद्धि अवश्य हुई है, पर समकालीन साहित्य के प्रति समीक्षा के उत्तर-दायित्व के प्रति बहुत कम समीक्षक सजग रहे है। भारत की अपनी परम्परा को देखते हुए, जहाँ सहानुभूतिपूर्ण व्याख्या और विशदी-कारण पर अधिक बल दिया जाता था और मूल्याकन पर कम—साहित्यिक महत्त्व का निर्णय पाठको की पीढियो पर छोड दिया जाता था—यह बात और भी विचित्र मालूम होती है कि आज का समीक्षक सबसे पहले मूल्यो का निर्णायक बनना चाहता है, और उसके बाद कुछ नही। जहाँ लेखक और पाठक के बीच की दूरी यो ही आधुनिक जीवन के विशेषीकरण के कारण बढती जाती है वहाँ समीक्षक उसे पाटने अथवा दोनो के बीच सेतु बनाने के अपने सनातन दायित्व की ओर भी उपेक्षा करता रहा है। कहा जा सकता है कि सहयोग की कमी के बावजूद, बल्कि किसी हद तक उसीसे प्रेरणा पाकर सम-कालीन लेखक पहले की अपेक्षा अधिक प्रबुद्ध और निष्ठावान् कलाकार तथा शिल्पी हो गया है। पूर्ववर्ती साहित्य के अध्ययन और आन्तरिक नुशासन के महत्त्व को वह और अधिक स्वीकार करता है।

सभी नई कविता को प्रयोगवादी, अथवा सभी प्रयोगशील कविता को नई कविता मान लेने से भ्रान्ति हो सकती है, क्योकि वास्तव में

नई साहित्यिक सवेदना का क्षेत्र भी राजनीतिक विचारो के कारण बँट गया है। नई सवेदना की दृष्टि से जिन कृतिकारो के नाम एक साथ लिये जाते, राजनीतिक मताग्रहो के आधार पर विवेचन करते समय उन्हे अलग-अलग और किसी हद तक परस्पर विरोधी वर्गों मे बाँटना पडता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि प्रगतिवादी सम्प्रदाय के कुछ कवियो ने नई कविता के अनेक प्रयोगो को अपनाया अथवा उनसे लाभ उठाया, और यह स्वाभाविक भी था कि जनता के लिए लिखने का दावा करने वाले कवि क्रमश ऐसे प्रयोगो को अपनाते चले जो दूसरो द्वारा किये गए थे और जो प्रारम्भ में एक शिक्षित अथवा दीक्षित समाज तक सीमित रहे भी हो तो क्रमशः सर्वमान्य हो गए। किंतु नई सवेदना के निर्माण मे भी कुछ ऐसे व्यक्तियो का साथ रहा जो साधारणतया नई कविता के आदोलन मे नही गिने जाते अथवा जो साधारणतया किसी दूसरे सम्प्रदाय मे गणित होते हैं। शमशेर बहादुर सिह (१९११—) और भवानीप्रसाद मिश्र (१९१४—) का नाम इस कोटि के कवियो मे लिया जा सकता है (दोनो 'दूसरे सप्तक' मे सकलित हुए)। दोनो ही अपने-अपने ढग से अद्वितीय हे। शमशेर बहादुर सिह की कविता मे उर्दू की रगत के साथ-साथ उसका परिमार्जन भी है और सवेदना की सूक्ष्मता के साथ भावो की सघनता और सकुलता भी। उनकी चित्रकल्पी प्रतिभा ने उन्हे जापानी कविता की ओर भी आकृष्ट किया है। किंतु उनकी कठोर अनुशासित और मितभाषी भाव-सकुलता ही उनके जन-साधारण का कवि होने मे बाधक होती है। उनकी काव्य-प्रतिभा असन्दिग्ध है, लेकिन वह जनता के नही, कवियो के कवि है। भवानीप्रसाद मिश्र भाषा और भाव-व्यजना की दृष्टि से जन-साधारण के अधिक निकट जा सके हैं। उनकी भाषा न केवल शब्द-चयन और वाक्य-रचना की दृष्टि से लोक-भाषा के निकट है वरन् उसका मुहावरा और उसके स्वरो का उतार-चढाव भी साधारण बोल-चाल का है। 'बच्चन' रूढ छद-शास्त्र के बधनो को मानते हुए जिस

पथ पर चले थे, भवानीप्रसाद मिश्र ने उसी पथ पर चलते हुए छद और ताल के नये बोध का निर्वाह किया है और इस प्रकार समकालीन प्रवृत्ति को आगे बढाया है।

नई कविता के सामने मूल्यो का प्रश्न मुख्य रूप से रहा है, किन्तु रचनात्मक गद्य में नई मानवतावादी प्रवृत्ति अनेक रूपो में प्रकट हुई है। निस्सन्देह जिस उभयचारिता का उल्लेख पहले किया गया वह नये लेखको मे भी पाई जाती है और ऐसे बहुत कम है जिन्होने अपने को केवल एक साहित्य-रूप तक सीमित रखा हो। कवियो में से अनेक ने कविता के और साहित्यिक मूल्यो के सम्बन्ध मे आलोचनात्मक गद्य लिखा है और कुछ ने अपनी जिज्ञासा का क्षेत्र रचना की प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओ तक फैलाया है। धर्मवीर भारती (१९२६—) एक तरुण और प्रतिभाशाली कवि है, जिन्होने उपन्यास और नाटक के क्षेत्र मे भी प्रवेश किया है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (१९२६–), रघुवीर-सहाय (१९२९—), 'मदन वात्स्यायन', कुँवर नारायण, जगदीश गुप्त, विजयदेव नारायण साही, हरि व्यास (१९२३–), प्रयागनारायण त्रिपाठी (१९१९—) आदि अनेक तरुण साहित्यकारो के नाम लिये जा सकते है, जो हिन्दी के कृति-साहित्य के भावी उत्कर्ष की आशा बधाते है।

प्रगतिवाद के उत्थान काल मे ही एक और आन्दोलन भी प्रकट हुआ, जो कि नई कविता की साधारण धारा से अलग होते हुए भी मूलत. प्रगतिशील था—बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि ऐसे आन्दोलनो में सबसे अधिक मताग्रह था। इसका प्रभाव मुख्यत प्रादेशिक रहा और बिहार के बाहर कदाचित् ही कोई इसकी ओर आकृष्ट हुआ हो। इस आन्दोलन के प्रेरणा-स्रोत एजरा पाउण्ड और ई० ई० कमिंग्स प्रभृति अग्रेजी कवि थे। अपने तीन प्रवर्त्तको के नामो के (नलिन विलोचन शर्मा, केसरी, नरेश,) आद्याक्षरो के आधार पर इसे 'नकेनवाद' कहा गया; स्वय प्रवर्त्तको ने अनन्तर इसे 'प्रपद्यवाद' का नाम दिया है। जैसा कि इस नाम से भी ध्वनित होता है यह आन्दोलन मुख्यतः

काव्य-रूप से सम्बन्ध रखता है, और उसमें कोई विशिष्ट सामाजिक अथवा विषय-वस्तु-सम्बन्धी आग्रह नही है। प्रपद्यवाद के प्रतीक रोचक भी है और हिन्दी-काव्य के समकालीन शिल्प-विकास के अध्ययन मे उपादेय भी, किन्तु उसे अभी तक कोई बहुत बडी उपलब्धि हुई है यह मानना कठिन है।

प्रामाणिकता की खोज ने प्रादेशिक अथवा आचलिक उपन्यास-कहानियो को बल दिया। इसीकी ओर इसके साथ-साथ एक अधिक व्यापक मानवीय सहानुभूति की प्रेरणा से गद्य और पद्य मे देहाती और लोक-जीवन के कई भावपूर्ण चित्र रचे गए। नगरो की जीवनियाँ लिखी गई। निस्सन्देह कविता मे 'गाँवो की ओर' जाने की प्रवृत्ति के कारणो का विवेचन करते समय नयेपन का आकर्षण और नये काव्य-रूप अथवा ताल के प्रति कुतूहल को भी उचित स्थान देना होगा और जनता के लिए जनता की भाषा मे लिखने के वैचारिक आग्रह को भी। कविता के क्षेत्र मे यहाँ पर शम्भूनाथ सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री (१९१९—), केदारनाथ सिंह, आदि के नाम लिये जा सकते है, यद्यपि लोक-गीतो की धुनो का आकर्षण औरो ने भी अनुभव किया। 'रेणु' (फणीश्वरनाथ, १९२१–), मार्कण्डेय (१९३१–), केशवप्रसाद मिश्र, मनोहर श्याम जोशी, शिवप्रसाद सिह प्रभृति तरुण गद्य-लेखको ने विभिन्न अचलो के जीवन-चित्र, कहानी अथवा उपन्यास मे प्रस्तुत किये है। 'रेणु' का 'मैला आँचल' नये प्रादेशिक अथवा आचलिक उपन्यासो मे विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रादेशिक उपन्यास के क्षेत्र मे 'रुद्र' (१९११–) की 'बहती गगा' मे काशी नगरी की परम्परागत जीवन-पद्धति को मूर्त किया गया है। नागार्जुन और अमृतलाल नागर की देन भी उल्लेखनीय है। अमृत-लाल नागर के उपन्यास विशिष्ट प्रदेश के जीवन का नही, किसी विशिष्ट समाज या वर्ग के जीवन का ही चित्रण करते है। लेकिन क्षेत्र को जान-बूझकर इस प्रकार मर्यादित करना प्रामाणिकता के आग्रह का ही परि-

णाम है। उनका शिष्ट और संयत हास्य उनके चित्रण की प्रामाणिकता को पुष्ट करता है और उसे अधिक व्यापक आकर्षण देता है। गीति-नाट्य और सगीत-रूपक लिखने की प्रवृत्ति भी इधर लक्षित हुई है। निस्सन्देह ऐसी रचनाओ को रेडियो से भी विशेष प्रेरणा मिली, किन्तु वही इन रचनाओ का मूल कारण रहा हो ऐसा नही माना जा सकता। रेडियो के लिए विशेष रूप से अनेक नाटक और एकाकी लिखे गए, लेकिन इनका स्तर भारत मे रेडियो-प्रसारण के साधारण स्तर से ऊँचा कदाचित् ही उठता है। जो नाटक विशेष रूप से रेडियो के लिए नही लिखे गए उनमे कोई-कोई अच्छे है, किन्तु एक जीवित रग-परम्परा और रगमंच के साथ लेखक के सक्रिय सम्बन्ध की अनुपस्थिति नाटक के विकास मे बाधक रही है। उपेन्द्रनाथ अश्क (१९१०–), रामकुमार वर्मा (१९०५–), लक्ष्मीनारायण मिश्र (१९०३–), जगदीशचन्द्र माथुर (१९१६–) और भारत भूषण अग्रवाल (१९१९–) की नाटक रचनाएँ उल्लेखनीय है।

जिस काल की विवेचना यहाँ की गई है उसमे अनेक गीतकार भी हुए जिनमे से कुछ की रचनाएँ अपने ढग की अच्छी रचनाएँ है और लोकप्रिय भी हुई है। किन्तु एक तो गतानुगतिक रचना अच्छी होकर भी नई प्रवृत्तियो के विवेचन मे स्थान नही रखती (जब तक कि गतानुगतिकता स्वय नई प्रवृत्ति न मान ली जाय) और दूसरे समकालीन प्रवृत्ति गीत और कविता को पर्यायवाची मानने की नही है। विश्व का कोई भी साहित्य आज अपने गीतकारो को अपने कवियो मे नही गिनता है। यदि यह पूर्वग्रह है तो इतना व्यापक कि उसे प्रवृत्ति मानना चाहिए, दूसरे लेखक को उससे इन्कार भी नही है।

समकालीन साहित्य का विवेचन कृति साहित्य के विवेचन तक ही सीमित रह सकता है। समकालीन आलोचना की आलोचना दोहरे जोखम का काम है, क्योकि उसमे पूर्वग्रह द्विगुणित हो जाता है। फिर भी जहाँ तक आलोचना की नई प्रवृत्तियाँ रचनात्मक अथवा प्रासगिक है उनका उल्लेख यहाँ हो गया है।

समकालीन साहित्य-प्रवृत्तियो की कोई भी रूपरेखा विवाद से परे या पूर्वग्रह से सम्पूर्णतया मुक्त नही हो सकती। तटस्थता के लिए देश की नही तो काल की यथेष्ट दूरी अपेक्षित होती है।

प्रस्तुत रूपरेखा हिन्दी-साहित्य से परिचित पाठक को फिर से अपनी मान्यताओ की परीक्षा करने की और अपरिचित पाठक को उसका रसास्वादन करने की प्रेरणा दे सके तो लेखक के लिए इतना यथेष्ट है। लेखक के पूर्वग्रहो की जगह पाठक निस्सन्देह अपना पूर्वग्रह बैठा लेगा, इसका न्याय तो भविष्य ही कर सकता है।

हिन्दी पर चुने हुए सदर्भ-ग्रथ

इंडो-आर्यन ऐंड हिन्दी—डा० एस० के० चटर्जी, गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी

मार्डर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान—जी० ए० ग्रियर्सन, कलकत्ता, १८८९

हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर—ई० ग्रीव्ज

हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर—एफ० ई० के, हेरिटेज आफ इडिया सीरीज

हिन्दी लिटरेचर—आर० द्विवेदी, बनारस, १९५३

लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इडिया—जी० ए० ग्रियर्सन, खंड ९, भाग १, पृष्ठ १-६०५।

अंग्रेज़ी

(भारतीयो द्वारा लिखित साहित्य)

के० आर० श्रीनिवास आयगर

सामान्य परिचय

भारत में ब्रिटिश प्रभाव के कारण और जो भी चीज हुई हो, अंग्रेजी में बहुत-सा महत्वपूर्ण लेखन शुरू हुआ, जिसे कि सुविधा के लिए 'इण्डो-इंग्लिश' साहित्य कहा जाता है। परन्तु यह वस्तुत द्विमुख साहित्य है। पहले तो वह साहित्य है जो भारत में रहनेवाले अंग्रेजों ने लिखा— या बहुत कम ऐसा भी हुआ है कि भारत की ओर आकर्षित हुए अंग्रेजो ने रोमांटिक दूरी से भारत के बारे में लिखा है। इन सब लेखको ने भारत को अपने लेखन का विषय बनाया। चौसर के समय से अंग्रेज लेखक नि सन्देह अपनी रचनाओं में भारत का कही-कही अस्पष्ट उल्लेख करते रहे है। परन्तु 'एंग्लो-इंडियन साहित्य' अर्थात् वह साहित्य, जो कि भारतीय विषयो पर भारतीय दृष्टि से प्रेरित होकर अंग्रेजो द्वारा रचा गया, सर विलियम जोन्स के साथ शुरू होता है, १८वी शती के अन्त में। दो समृद्ध संस्कृतियो के परस्पर-प्रभाव से नई निर्मिति अनिवार्य थी, परन्तु वस्तुत 'एंग्लो-इंडियन' लोगो ने ऐसे मौके का फायदा नही उठाया। जोन्स और लेडेन, सर अलफ्रेड लियाल और सर एड्विन अरनोल्ड ने शुरुआत तो बडी अच्छी की, मगर यह प्रारम्भ ही मानो उसका अन्त भी था। ये अच्छे इरादे वाले लोग थे, फिर भी 'एंग्लो-इंडियन' लोगो में

जातीय श्रेष्ठता की भावना ग्रथि के रूप मे थी, और इस कारण इन दोनो सस्कृतियो का सच्चा सश्लेषण कभी नही हो सका। इसमे श्रद्धा और दिलचस्पी दोनो का अभाव था, साधारण 'एग्लो इडियन' लेखक (मिस्टर० ई० एफ० ओटेन को उद्धृत करूँ तो) 'निरर्थकता और उद्देश्यहीनता की चट्टानो और जगलो मे' खो गया था। फॉर्स्टर का 'पैसेज टु इडिया'-जैसे श्रेष्ठ ग्रथ और (इसी क्रम मे बिलकुल विपरीत छोर पर) निकल्स का 'वर्डिक्ट ऑन इडिया'-जैसी भयानक पुस्तक अग्रेजी साहित्य मे केवल सयोग के रूप मे है, वे 'एग्लो-इडियन' साहित्य के उत्कृष्ट या निकृष्ट नमूने नही है। भारत मे स्वतत्रता के आगमन के पश्चात् 'एग्लो-इडियन' साहित्य ने उसकी विशेष स्थिति स्वाभाविक रूप से खो दी, यद्यपि अभी भी अग्रेजो (और अमरीकियो) द्वारा किताबे लिखी जा रही है, जिनमे कम या अधिक मात्रा मे पहचानी जा सकने वाली भारतीय पार्श्व-भूमि होती है।

दूसरी तरफ वह साहित्य है जो भारतीयो ने अग्रेजी मे लिखा है, और इसे 'इण्डो-एग्लियन' साहित्य कहना अनुचित न होगा। यद्यपि मिस्टर जार्ज सैम्पसन ने टैगोर, मनमोहन घोष और श्री अरविन्द-जैसे भारतीय लेखको को अपने अग्रेजी साहित्य के 'सक्षिप्त कैम्ब्रिज इतिहास' मे शामिल किया है और 'एग्लो-इडियन' साहित्य-विभाग मे उनकी रचनाओ पर अपने विचार भी दिए है; फिर भी वे अग्रेज जो कि भारतीय विषयो पर लिखते है, और वह भारतीय जो अग्रेजी को अपनी कलात्मक अभिव्यजना का माध्यम मानते है: दोनो मे हमे अन्तर करना ही होगा। १८८३ मे कलकत्ता मे एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक था 'इडो-एग्लियन साहित्य', इसमे देशी विद्यार्थियो की रचनाओ के नमूने थे। इधर हाल मे, विशेषत. विगत २५ वर्षों मे 'इडो-ऐग्लियन' शब्द बहुत-कुछ चल गया। इसका कोई जातीय या धार्मिक अर्थ नही है। यह केवल वर्णनात्मक शब्द है और यह विशेषण लेखक तथा साहित्य दोनो के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। इसमे

कोई आश्चर्य नहीं कि यह शब्द अब आम हो गया है।

प्रस्तुत लेखक की पी० ई० एन० द्वारा प्रकाशित 'इंडो-ऐंग्लियन साहित्य' पुस्तक की भूमिका में स्वर्गीय डॉ० सी० आर० रेड्डी ने घोषित किया था :

'इंडो-ऐंग्लियन' साहित्य भारतीय साहित्य से मूलत भिन्न नही है। वह उसका भाग है, वह उसी गौरव का आधुनिक पहलू है जो कि उसे वेदो से मिलता है ; उसका सौम्य प्रकाश सामने और इतिहास की ऊची-नीची अवस्थाओ मे से कभी कम और कभी अधिक चमक के साथ फैलाता आता रहता है। टैगोर, इकबाल और अरविन्द घोष के आधुनिक समय तक यह प्रकाश चला आ रहा है, वह फैलता ही जाता है और हमारी मानव-जाति की विस्तृत होती जाने वाली भवितव्यता का वह संकेत है।"

अब, भारतीय साहित्य भी, आधुनिक अवस्था में, एक शताब्दी से कुछ ही अधिक आयु वाला है। १७ वी और १८ वी शताब्दी मे इस विस्तृत महाद्वीप में, जो कि एक समय विद्या, कला और संस्कृति का घर था, शायद ही कोई सुव्यवस्थित शिक्षा प्रचलित थी, जिसका कि उल्लेख किया जा सके। उस समय कोई गम्भीर प्रयत्न भी नही हुआ—शायद परिस्थितियो वश ही कि जो थोड़े-बहुत परम्परित ज्ञान के बढते हुए केन्द्र थे, उनमे और अशिक्षित लाखो लोगो के बीच मे बढ़ती हुई खाई पाटी जा सके। अकथनीय शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आलस्य, भारतीय जनता को ग्रसे हुए था। भारतीय संस्कृति का प्रभाव राष्ट्रीय दासता की तप्त मरुभूमि मे मानो खो गया था

ब्रिटिश प्रभाव ने समय के पूरे होने पर हमे तीन आवश्यक प्रेरणाएँ दी। श्री अरविन्द के शब्दो में "प्रसुप्त बौद्धिक और आलोचनात्मक शक्ति उसने पुनर्जीवित की; जीवन को उसने फिर से बसाया और नये सृजन की इच्छा जाग्रत की; पुनर्जाग्रत भारतीय आत्मा को नवीन परिस्थितियो और आदर्शो के सामने उसने रख दिया, और उन्हे समझने, अपनाने

और जीतने की आवश्यकता के प्रति चेतन बनाया।" नये विचार और नये साहित्य की यदि जड़े जमानी थी और उन्हे फलना-फूलना था, तो विचार और उद्देश्य का नया वातावरण भी निर्मित करना आवश्यक था। यह वही परिचित भारतीय भूमि हो सकती थी, परन्तु आधुनिक उपकरण और समृद्ध खाद का स्वागत भी बहुत आवश्यक था। राजा राममोहन राय, एक द्रष्टा, महापुरुष थे। उनमे बडी प्रतिभा और शक्ति थी। उन्होने नये सशक्त भारत का स्पष्ट स्वप्न देखा और उसे पूर्ण करने के लिए तुरन्त भरसक प्रयत्न भी उन्होने किये। ईसाई मिशनरियो ने सारे देश मे छापेखाने शुरू कर दिए थे और भारत की प्रादेशिक भाषाओ मे 'बाइबल' के सस्ते सस्करण प्रकाशित किये थे। प्राच्य-विद्यावादियो ने भारतीय विद्वत्ता को एक नया मोड दिया, कई प्राचीन ग्रथो का विस्मृति के गर्भ से उद्धार किया और ससार के लिए उन्हे सुलभ बनाया। उस समय तक अंग्रेजी के पक्षधर और देशी शिक्षा के मानने वाले बडे अर्से तक शाब्दिक लडाई लडते रहे, परन्तु सुधारक अन्तत जीत गए। राममोहन और उनके साथियो का क्रातिकारी उत्साह, मिशनरियो का शिक्षा का प्रयत्न, और १८३५ मे सरकार द्वारा मेकाले की अंग्रेजी के माध्यम से आधुनिक शिक्षा की योजना की मान्यता ने कम-से-कम एक सदी के लिए भारतीय शिक्षा और संस्कृति का एक साँचा निश्चित कर दिया।

धीरे-धीरे, किन्तु निश्चयात्मक गति से, ऐसे स्कूल और कालेज, जो कि अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा देते थे, सख्या मे बढते गए और उनकी प्रतिष्ठा भी बढती गई, और एक-दो पीढियो के अन्दर भारतीयो की बहुत बडी सख्या, यूरोपीय (और विशेषत अंग्रेजी) साहित्य और संस्कृति की विविध समृद्धि से परिचित होने लगी। बहुत-से तरुण, जिन्हे इस गतिशील शिक्षा का वरदान नई शालाओ द्वारा मिला, यह दिल से चाहते थे कि भारत को फिर से दुनिया के सास्कृतिक नक्शे मे प्रतिष्ठित किया जाय। उनकी आकाक्षाएँ थी कि इस मौन देश को फिर

से मुखर किया जाय। इसका स्वाभाविक अर्थ यह था कि उन्हे या तो अग्रेजी मे या अपनी मातृभाषा मे लिखना चाहिए था। उन्हे अग्रेजी मे इसलिए लिखना आवश्यक था कि अपने अग्रेज स्वामियो का ध्यान वे इस प्रकार आकर्षित कर सकते थे और विभिन्न भाषा-क्षेत्रो के देशवासियो तक पहुँच सकते थे; तथा वे अपनी मातृभाषा मे इसलिए लिखना चाहते थे कि उसके बिना वे अपनी आत्म-तृप्ति नही पा सकते थे, और जनसाधारण को शिक्षित करने की आशा नही रखते थे। और चाहे उन्होने अंग्रेजी मे लिखा या अपनी मातृ-भाषाओ मे, आदर्श ग्रहण किया अग्रेजी साहित्य से। आधुनिक यूरोपीय साहित्य मे यही एक-मात्र आदर्श उनके सामने था। पश्चिमी प्रभाव का आघात लगते ही यहाँ की धरती गोडी गई थी, अंग्रेजी साहित्य ने मानो इस क्षेत्र को और उपजाऊ बनाया, धीरे-धीरे आधुनिक भारतीय साहित्य जन्म लेने लगा। आधुनिक बंगला, हिन्दी, मराठी, तेलुगु, तमिल, और गुजराती साहित्य की भाँति 'इडो-ऐंग्लियन' साहित्य भी एक भारतीय साहित्य ही है, जिसकी अपनी उज्ज्वल परम्परा है, और जो समृद्ध जीवन और शक्ति के चिह्न अभी भी प्रदर्शित करता है।

'इडो-ऐंग्लियन साहित्य' की कहानी पॉच अ-समान हिस्सो मे बॉटी जा सकती है :—

१८२०-१८७० आरभ—महान् अग्रदूतो का युग,

१८७०-१९०० : आत्मा का पुनर्जागरण—धार्मिक और साहित्यिक जागृति का युग,

१९००-१९२० : राजनैतिक जागृति का युग—'वन्देमातरम्' और होमरूल का युग,

१९२०–४७ : गाँधीवादी क्राति का युग—आधुनिक 'वीरता' का युग,

१९४७— : स्वतंत्रता का युग।

यह एक सुविधाजनक विभाजन है, इसे न तो अन्तिम मानना चाहिए, और न ही इसमे का एक भाग दूसरे भाग से बिलकुल अलग है।

१८२०-१८७०

जैसी कि आशा की जा सकती है, भारतीयो का अंग्रेजी मे प्रथम लेखन गद्य मे था और राममोहन राय पहले इण्डो-ऐंग्लियन लेखक थे। राममोहन राय सचमुच अग्रदूत थे। उनका व्यक्तित्व महान् था, हमारे राष्ट्रीय जीवन के कई अंगो मे उन्होंने सोद्देश्य सुधार आरम्भ किया और जो कुछ उन्होंने किया वह एक निर्माता का कार्य था। यह उनका सौभाग्य था कि उन्होंने बहुत-सी जमीन साफ की और आने वाले नये भारत की नीव डाली। और बातो के अलावा वे अग्रेजी गद्य के अधिकारी लेखक भी थे। उनका आकर्षक और शक्तिशाली व्यक्तित्व 'प्रिसेप्ट्स आफ जीसस' (१८२०)—जैसी पुस्तको में और अगणित अन्य पुस्तिकाओ और ट्रैक्टो मे व्यक्त हुआ।

यदि राममोहन राय आत्मविश्वासी और अधिकारयुक्त सहजता से अंग्रेजी लिखने वाले पहले भारतीय थे, तो हेनरी डेरोजिओ प्रथम इण्डो-ऐंग्लियन कवि थे। इनका जन्म १८०७ मे हुआ। जीवन कुछ उखडा-सा रहा, और हैजे से वे १८३० मे मर गए। उन्होंने अपने पीछे काफी-अंग्रेजी कविता लिख छोडी, जिसमे 'दि फकीर आफ जघीरा' नामक एक लम्बा कथा-काव्य भी है। अर्ध-भारतीय, अर्ध-पुर्तगाली डेरोजिओ अपने भावो मे पूर्णतया भारतीय थे और भारत का राष्ट्रीय वीर-कवि बनने की इच्छा रखते थे। कविता के क्षेत्र मे उनकी उपलब्धि उल्लेखनीय है। जो-कुछ उन्होंने लिखा है, उसमे बडी सम्भावनाएँ छिपी हुई थी। दूसरे अग्रदूत काशीप्रसाद घोष 'शायर और दूसरी कविताएँ' (१८३०) के निर्माता थे, परन्तु उनकी कृतियो मे बहुत कम वास्तविक काव्य-गुण हैं।

बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के विश्वविद्यालय १८५७ म स्थापित

हुए। एक नई पीढी जाग उठी जो कि मिल्टन की महान् कविता की तुतलाहट और वर्क के गर्जनायुक्त भाषणो की पुनरावृत्ति अपने गद्य और पद्य मे करने लगी, और इण्डो-ऐंग्लियन लेखक को ऐसा लगा कि उसके पढने वालो और रसिको की सख्या वढ रही है। अग्रेजी पत्रकारिता ने कई तरुणो को आकर्पित किया, परन्तु कविता के अपने अलग रसिक थे। इनमे माइकेल मधुसूदन दत्त का स्थान बहुत उच्च है। वे एक भारतीय ईसाई थे, और इनके भाग्य-नक्षत्र भी काफी अनिश्चित थे। वे प्रथमत वगाली साहित्य मे लिखते रहे, परन्तु वाद मे उन्होने अग्रेजी अखवार का सम्पादन किया और अग्रेजी मे एक लम्वी कविता लिखी जिसका शीर्पक था 'दि कैप्टिव लेडी' (१८४९)। इसमे पृथ्वीराज और रानी सयोगिता की कहानी सजीव ढग से कही गई है।

१८७०-१९००

यह थे अग्रदूत, परन्तु केवल अनुकरण करने वाले, ऐसे लेखक (जिन्होने व्यर्थ ही भारतीय विचार या भावना का विवाह अग्रेजी रूप-शिल्प के साथ करना चाहा,) कई थे। अग्रेजी रोमाटिक—१९वी शताव्दी के आरम्भिक काल के कवि और उपन्यासकार—उन्हे भयानक रूप से आकर्पित करते थे, परन्तु इडो-ऐंग्लियन प्रयोग अधिकतर विलकुल ही निकम्मे थे। साथ-ही-साथ युग की आत्मा कई अलौकिक स्त्री-पुरुपो के रूप मे व्यक्त हुई, जिन्होने वार-वार यह सिद्ध किया कि वे अग्रेजी के माध्यम द्वारा वडी सफल आत्माभिव्यजना कर सकते थे। उन्नीसवी शताव्दी के अतिम तीन दशको मे एक ऐसे ही आध्यात्मिक पुनर्जागरण का वसन्त भारत मे आया। रामकृष्ण परमहस ने भारत की आँखे खोल दी, जो कि कुछ समय के लिए पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध से मानो अधी हो गई थी। इन आँखो ने आत्मा के व्योम का वैभव देखा। विवेकानद अपने स्वामी का सदेश सभ्य ससार के कोन-कोन तक ले गए, वेदान्त के भाष्य और मिशनरी प्रचार के उद्देश्य से उन्होने अग्रेजी भाषा

का प्रयोग किया। ब्रह्म समाज, आर्य समाज और प्रार्थना-समाज-आदोलन के कई प्रचारको ने अग्रेजी भाषा का बडा अधिकारपूर्ण और प्रवाह्पूर्ण उपयोग किया।

आरु दत्त और तोरु दत्त के रूप मे इडो-ऐग्लियन कविता के इतिहास की सफलता का सच्चा सार्थक अध्याय सम्पूर्ण होता है—परन्तु इस सफलता के साथ-साथ शोक भी मिश्रित था। आरु १८७४ मे और तोरु १८७७ मे स्वर्गवासी हो गई, तब उनकी आयु क्रमश २० और २१ थी। डेरोजिओ की तरह आरु और तोरु भी 'ऐसी कीर्ति की अधिकारिणी थी जो कि अपूर्त ही रह गई।' ये कवयित्रियाँ महान् सम्भावनाएँ लिये हुए थी और उनकी उपलब्धि भी कम नही है। रोमाटिक स्कूल के फ्रेच भाव-गीतो का अग्रेजी अनुवाद, उन्होने १८७६ मे प्रकाशित किया, उसका शीर्षक है 'ए शीफ ग्लीन्ड इन फ्रेच फील्ड'। जब आरु अपने प्रसिद्ध 'मॉर्निंग सेरेनेड' नामक कविता-सग्रह की नई रचनाएँ लिख रही थी तब उसे देखकर एडमड गॉस 'आश्चर्य और आनन्द से भर उठे', थे। तोरु की मूल प्रेरणा उनके पीछे-पीछे थी और वस्तुत केवल उनका नाम ही मुख्य पृष्ठ पर छपा था। १८८२ मे उनका 'एन्शेण्ट बेलैड्स एड लीजेड आफ हिन्दुस्तान' नामक सग्रह उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ और उससे यह और भी सिद्ध हुआ कि एक विदेशी माध्यम से काव्योद्गार व्यक्त करने की उनकी शक्ति कितनी सहज थी और उन्हे अग्रेजी पर कैसा अद्भुत अधिकार प्राप्त था। सावित्री और सीता, ध्रुव और प्रह्लाद की कहानियाँ ही इन कविताओ मे पुन नई ताजगी और आकर्षण के साथ कही गई है। तोरु दत्त की कविता के प्रथम प्रकाशन को आज ८० साल बीत चुके है, फिर भी यह निश्चित है, जैसा मिस्टर एच०ए० एल० फिशर ने कहा है कि उनकी कविता, 'अग्रेजी कवियो की महान् परम्परा मे गिनी जायगी।'

आरु और तोरु दत्त से विपरीत रमेशचन्द्र का जीवन लम्बा और सम्मानपूर्ण था। 'ए हिस्ट्री आफ सिविलाइजेशन इन ऐन्शेण्ट इडिया'

(१८९०), 'इकानामिक हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इडिया' (१९०२) और 'इडिया इन दि विक्टोरियन एज' (१९०४)–जैसे ग्रथो के अलावा उन्होने रामायण और महाभारत के अग्रेजी पद्यानुवाद प्रकाशित किये, उनके दो बगाली उपन्यास भी अग्रेजी मे छपे है, जिनके नाम है, 'दि लेक आफ पाम्ज' और 'दि स्लेव-गर्ल आफ आगरा'। रमेशचन्द्र के रामायण और महाभारत सक्षिप्तिकरण के महान् उदाहरण है, क्योकि उन्होने मूल रामायण के २,४००० श्लोको को और महाभारत के २,००,००० श्लोको को अग्रेजी के दो चरणो के ४,००० पद्यो मे उतारा है। और यह कार्य भद्दे ढग से मूल महाकाव्यो को सक्षिप्त करके नही सिद्ध किया, बल्कि कई मूल घटनाओ को छोडकर और कई मूल वर्णनो को कम करके और जहाँ आवश्यक था वहाँ गद्य मे सूत्रबद्ध सुझाकर किया गया। रमेशचन्द्र के कार्य के लिए यह कहना पर्याप्त प्रशसा होगी कि समय की कसौटी पर ये ग्रथ सफल साबित हुए है और अब भी अग्रेजो को हमारे साहित्य का, हमारे राष्ट्रीय महाकाव्यो का सर्वोत्तम परिचय इन ग्रथो से ही मिलता है। अग्रेजी के अन्य लेखको मे रामकृष्ण पिल्लई ('टेल्ज आफ इड' १८९५), 'बेहराम जी मालाबारी' (दि इडियन म्यूज इन इग्लिश गार्ब', १८७६, और 'दि इडियन आई ऑन इगलिश लाइफ', १८९३) और नागेश विश्वनाथ पै ('स्ट्रे स्केचेज इन चकमकपोर', १८९४ और 'दि एंजल आफ मिसफोरचुन', १९०४) थे। पै इन तीनो मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण लेखक थे, थियोफ्रेस्टस की तरह उन्होने कई व्यक्ति-चित्र खीचे है और वर्णनात्मक कविता भी लिखी है। दोनो तरह के लेखन मे अग्रेजी माध्यम का निर्वाह करके उन्होने भारतीय वातावरण पूरी तरह व्यक्त किया है और इससे उनके लेखन मे एक विशेषता और चमत्कार उत्पन्न हुआ है। रामकृष्ण पिल्लई ने भी दो उपन्यास लिखे . 'पद्मिनी'(१९०३) और 'दि डास आफ डेथ' (१९१२)। यह दोनो ही साधारण कोटि के है।

१९००-१९२०

अब हम दो महान् लेखको की ओर मुडते है, टैगोर और श्री अरविन्द। ये दोनो ऐसी महान् शक्तियाँ थी कि इन्होने एक ही क्षेत्र मे कार्य नही किया, वरन् अनेक क्षेत्रो मे अपनी प्रतिभा व्यक्त की। इन दोनो व्यक्तित्वो ने करीब साठ वर्ष तक अपना प्रभाव दिखलाया, उन्नीसवी और बीसवी शताब्दी के बीच मे ये लेखक पुल की तरह थे। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना से राजनैतिक मोर्चे पर बहुत-कुछ हलचल शुरू हो गई थी। इस सदी के प्रथम दशक मे राष्ट्रीय आन्दोलन का एक ज्वलन्त सोद्देश्यता और प्रयोजन प्राप्त हुआ। 'वन्दे मातरम्' भारत की जागरूक राष्ट्रीयता का मत्र बन गया और पहले बगाल और बाद मे सारे भारत के लोगो ने कर्मक्षेत्र की पुकार का उत्तर देना शुरू किया, जब कि एक विदेशी सत्ता ने उन्हे जेल मे डाल दिया। रातो-रात साहित्यिक कर्मवीर बन गए और कर्मवीर साहित्यिक। श्री अरविन्द को अलीपुर जेल की कोठरी मे 'नारायण दर्शन' हुए, और टिळक ने माडले जेल मे 'गीता-रहस्य' लिखा। बीसवी शताब्दी के पहले दो दशको मे 'वन्दे मातरम्' और 'होमरूल'-आन्दोलन ऐसे थे कि उनसे बडी हल-चल और वीरोचित वेदना जाग उठी। इस काल का साहित्य—और इसमे इडो-ऐंग्लियन साहित्य भी कम नही है—जनता के परिश्रम और सहनशक्ति, पराजय और सफलता का पूरा प्रतिबिम्ब है।

यद्यपि यह सच है कि टैगोर का स्थान—और काफी बडा स्थान—बगाली साहित्य मे है, फिर भी परिस्थितियो ने उन्हे मजबूर किया (जैसा कि कई और लेखको को भी) कि वे द्विभाषिक बने, और इस तरह इडो-ऐंग्लियन साहित्य मे भी उन्होने एक चिरन्तन स्थान ग्रहण कर लिया। अपनी कविता और नाटको के अग्रेज़ी अनुवाद उन्होने किये, इसके अलावा उन्होने अग्रेज़ी मे 'दि चाइल्ड' लिखा। यह सब तरह के स्त्री-पुरुषो के सन्तोष-मन्दिर की काल्पनिक तीर्थ-यात्रा का वर्णन है, इसमे मानो इब्सन की किस्म के नाटक को उन्होने पुनर्जीवित किया

है। उनकी गद्य-कृतियाँ भी—विशेषत 'साधना,' 'नेशनैलिज्म,' 'परसनैलेटी,' 'दि रिलिजन आफ मैन' (१९३०) मूलत अग्रेजी मे, अन्तर्राष्ट्रीय पाठको के लिए लिखी गई थी। चाहे जिन मापदण्डो को काम मे लाइये, टैगोर की प्रमुख उपलब्धियो की ओर ध्यान आकर्षित होता ही है। वे केवल बगाल के नही, अपितु भारत और सारे विश्व के है। कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, दार्शनिक, शिक्षा-शास्त्री और उज्ज्वल मानवतावाद के मसीहा के नाते जागृत भारत के इस महान् राष्ट्र-कवि के विभिन्न पहलू ऐसे बडे व्यक्तित्वो मे समाए हुए है, जिन्हे कि रवीन्द्रनाथ कहा जाता है और जो इन सबसे ऊपर और कुछ अधिक है। "हमारे दरवाजे पर उसने दस्तक दी और उसकी सब रुकावटे जैसे टूट गई। हमारा दरवाजा एकदम खुल गया।"

अरविन्द घोष और उनके बडे भाई मनमोहन की शिक्षा इगलैड मे हुई और वही उन्होने यश की मालाएँ ग्रहण की। आस्कर वाइल्ड, मनमोहन की कविताओ से इस तरह प्रभावित हुए कि उन्होने 'पाल माल गजट' मे लिखा "मिस्टर घोष किसी-न-किसी दिन हमारे साहित्य मे बड़ा नाम प्राप्त करेगे।" 'लव साग्स ऐड एलेजी' (१८९८) और उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित 'साग्स आफ लव ऐड डेथ' (१९१६) मे मनमोहन का सबसे स्थायी कृतित्व है। 'इम्मार्टल ईव' और 'ऑर-फिक मिस्ट्रीज' नामक दो लम्बी कविताएँ सच्चे करुण रस और विशुद्ध काव्य की भव्यता से आप्लावित है। दु ख उनके जीवन मे था, मगर उससे वे एकदम कड़ुवे नही हुए, बाह्यत वे गहरी उदासी मे डूबे हुए थे। मनमोहन अन्त तक "उस महान् लय को पकडे रहे, जिसकी, गर्जना आनन्दमयी होती है।"

मनमोहन के भाई अरविन्द की शिक्षा 'सेण्ट पाल,' लदन से शुरू होकर कैम्ब्रिज मे समाप्त हुई। वे आई० सी० एस० की परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए फिर भी सौभाग्य से वे उसके बधनो से मुक्त हो गए। कुछ समय तक वे बडौदा कालेज मे पढाते रहे और जल्दी ही राजनीति की

ओर आकर्षित हुए। साथ-ही-साथ वे योग का अभ्यास भी कर रहे थे। १९०७-१९०९ तक राजनीति मे प्रमुख भाग लेने के बाद वे पाडिचेरी मे अध्ययन और मनन के लिए चले गए, और तब से दिसम्बर १९५० मे अपनी मृत्यु तक वे वही रहे। उन्हे कई भाषाओ का ज्ञान था—ग्रीक और लैटिन, अंग्रेजी और फ्रेंच, जर्मन और इटालवी, सस्कृत और बगाली—कई ज्ञान और विज्ञानो के वे स्वामी थे। समय आने पर वे एक 'महापुरुष,' 'महायोगी' और अनन्त के तीर्थयात्री बन गए। उनके आस-पास पाडिचेरी मे साधको का एक दल जमा हुआ और जो आश्रम उन्होने स्थापित किया था, वहाँ उनके देहावसान के उपरान्त, एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र विकसित हो गया है।

केवल कवि और जीवन तथा साहित्य के आलोचक के नाते श्री अरविन्द हमारे समय के महान् चिन्तको मे एक है। उनकी कविता के दो बडे खण्डो-'कलेक्टेड पोएम्स ऐंड प्लेज' (१९४२) मे १८९० मे लगाकर नवीनतम प्रयोगो तक उनकी कविता के नमूने है। अनुवादक और वर्णनात्मक कवि के नाते, छन्द और शब्दो के कारीगर के नाते, गीत-कवि और नाट्य-कवि के नाते, एक प्रयोगकर्त्ता और अन्वेषक के नाते, और सबसे बढकर एक भविष्यवक्ता कवि के नाते श्री अरविन्द का काव्य कृतित्व अतुलनीय है। 'उर्वशी' और 'लव ऐंड डेथ' दिव्य मुखर पद्य-गाथाएँ है, जब कि 'बाजी प्रभु' प्रथम कोटि का वीर-काव्य है, 'परसियस, दि डिलीवरर' मुक्त छन्द मे एक नाटक है, और उसका प्रभाव आत्मशुद्धिकारी है। 'दि रोज ऑफ गाड' और 'थॉट दि पैरॅक्लीट' उत्तम रहस्यवादी कविता के नमूने है। श्री अरविन्द ने पुराने परिमाणात्मक छन्दो को सफलतापूर्वक अपने उद्देश्य के लिए ढाला और 'आहना' और 'इल्योन' नामक कविताओ मे बहु-निन्दित 'हेक्सामीटर', छन्द को प्रयुक्त करके उन्होने नई लयात्मकता को जन्म दिया।

श्री अरविन्द गद्य के बडे शैलीकार तो थे ही और बहुत कुछ सर टामस ब्राउन और डी क्विन्सी की परम्परा मे लिखते थे, किन्तु

आवश्यकता पड़ने पर वे बहुत सादा और सहज स्वाभाविक गद्य भी लिखते थे। 'दि लाइफ डिवाइन,' 'एसेज ग्रान दि गीता.' 'दि सिनथेसिस ग्राफ योग,' 'दि सोशल साइकल,' 'दि आइडियल आफ ह्यूमन यूनिटी' 'दि फ्यूचर पोएट्री' (जो मूलत. १९१४ से १९२१ तक 'ग्रार्य' पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी ग्रौर उसके बाद अब पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई है) आदि ग्रथो मे जो विचार उन्होने व्यक्त किये है, उनमे एक ऐसी अखडता है, जिसमे कि एक शोधक की लगन ग्रौर कवि की उत्साही कल्पना-शक्ति तथा एक चिन्तक का रचनात्मक दृष्टिकोण व्यक्त होता है। उनके छोटे गद्य-ग्रंथो मे 'दि मदर.' 'हेराक्लिटस' ग्रौर 'दि रेनेसाँ इन इडिया' प्रसिद्ध है।

अरविन्द की भाँति सरोजिनी नायडू ने भी कविता से शुरू किया परन्तु बाद मे राजनीति ने उन्हे खीच लिया ग्रौर गांधी-युग मे उन्होने एक महत्त्व-पूर्ण कार्य पूरा किया। उनका पहला कविता-संग्रह 'दि गोल्डेन थ्रेशहोल्ड' (१९०५), उन्हे एक प्रसिद्ध कवयित्री के नाते प्रतिष्ठित करता है। १९०६ मे जब वे एक वक्ता के नाते प्रसिद्ध हुई, तब गोखले ने कहा था·

"आपके भाषण उच्चकोटि के बौद्धिक ग्रानंद से अधिक थे। वे एक सम्पूर्ण कला की वस्तु थे। उन्हे सुनकर हम सबको उस समय लगता था कि हम एक उच्च भाव-लोक मे पहुँच गए है।"

बहुत कालान्तर के बाद 'दि बर्ड आफ टाइम' (१९१२) ग्रौर दि ब्रोकेन विग' (१९१७) नामक उनके दो ग्रौर कविता-संग्रह प्रकाशित हुए। कवयित्री के नाते सरोजिनी नायडू का छन्द पर ग्रधिकार इतना उत्तम था कि 'पद्म पर आसीन बुद्ध के प्रति' और 'वृन्दावन का बसी वाला'-जैसे निर्दोष भाव-गीत वे लिख सकी। उनके 'काल-पक्षी' की तरह सरोजिनी ने भी ग्रपनी कविता मे बहुत बड़ा क्षेत्र व्याप्त किया है, यद्यपि उनका विशेष क्षेत्र परिचित वस्तुग्रो के सौदर्य का अकन है। बाद के ग्रन्थो मे सचेष्ट रूप से करुणा की टेक अधिक सुनाई देती है· सयमित चित्रोपमता है गहरा संगीत ग्रौर अधिक परिपक्व 'बुद्धि की प्रार्थना'

है, और यद्यपि उनका काव्यासव एक-सा रहा है, फिर भी बाद की कविताओ मे 'दि गोल्डेन थ्रेशहोल्ड' से अधिक प्रौढावस्था के दर्शन होते है। उनके अन्तिम कविता-सग्रह मे, 'दि टेम्पल ए पिलग्रिमेज आफ लव' नामक तीन लम्बी गीत-सरणियाँ है, प्रत्येक मे आठ कविताएँ है, और मिस्टर जॉन गॉस्वर्थ ने इनकी तुलना श्रीमती ब्राउनिग के 'सानेट्स फ्राम दि पोर्चुगीज' से की है। यद्यपि सरोजिनी नायडू ने एक बार कहा था कि 'स्त्री की बुद्धि राजनीति के उच्च विवरणो को पकड नही सकती,' फिर भी उन्होने भारत माता की अन्त तक सेवा की क्योकि गाधी-युग मे, उनके लिए राजनीति एक प्रकार का प्रेम था, और राज-द्रोह एक प्रकार की कविता।

१९२०-१९४७

प्रथम महायुद्ध के अन्त तक भारत ने अपने आप को एक नए युग की देहली पर पाया, जिसमे विलक्षण सम्भावनाएँ भरी थी। दृश्य अब बदल गया था, नाटक के पात्र भी बदल गए थे। अब फीरोजशाह मेहता नही थे, गोखले और टिळक नही थे, विपिन पाल की साग्निक वाणी मौन हो गई थी और सुरेन्द्रनाथ के भाषणो का पहले वाला जादू कम हो गया था, श्री अरविंद पाडिचेरी मे बद थे। नए दृश्य, नए अभिनेता नए रूप सामने आए। इडो-ऐग्लियन पत्रकारिता अधिक चटपटी और तीखी हो गई, हमारे वक्ताओ के भाषण सक्षिप्त और ओजस्वी बनने लगे, हमारे गद्य-लेखक मैकाले के ढग को छोडकर अधिक स्वाभाविक रूप से लिखने लगे, जिसमे सौम्य अभिव्यजना अधिक थी। गाधीजी के नेतृत्व के फलस्वरूप अग्रेजी शिक्षा की चकाचौध कुछ कम हुई, फिर भी १९१७ मे अग्रेजी के जो ६१,००० कालेज-विद्यार्थी थे, वे १० वर्ष बाद ८४,००० हो गए। गाधीजी स्वय अपने अग्रेजी पत्रो पर अवलम्बित थे—पहले 'यग इडिया' और बाद मे 'हरिजन'–इन्ही के द्वारा वे अपने विचार, कार्यक्रम, प्रार्थना-भाषण और नारे प्रसारित करते थे। दूसरे

नेता—मुख्यन सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, लाजपतराय, टी० प्रकाशम्, पट्टाभि सीतारमैया—भी अपने-अपने दैनिक या साप्ताहिक अंग्रेजी पत्र चलाते थे और उनके द्वारा राष्ट्रीय दृष्टिकोण को व्यक्त करते थे, इनमे से किसीमे व्यक्तिगत आग्रह अधिक था तो किसी मे कम। कालेज के प्रोफेसर भी अपनी व्यजना के लिए अंग्रेजी पर ही निर्भर रहते थे, चाहे उनकी कृति गद्य-शोधग्रथ के रूप मे हो या अधिकतर कविता-सग्रह के रूप मे। प्रादेशिक भाषाओ मे साहित्य बढ रहा था, परन्तु भारतीयो का अंग्रेजी मे लिखना कम नही हुआ था, उसमे कम शक्ति नही थी और उतनी ही विविधता भी व्यक्त हो रही थी। १९२० और १९३० के दशको मे ब्रिटिश या यूरोपीय साहित्यिक दृश्य मे अभि-रुचि की जो क्रान्ति हुई, उसीकी प्रतिगूंज सुदूर भारत मे उठ रही थी और रूढि तथा विद्रोह, परम्परा और प्रयोग के बीच का सघर्ष यहाँ भी उसी तरह चल रहा था, जैसे कि अन्यत्र, और उसके परिणाम भी उतने ही अनिश्चित थे।

१९२० मे जो इडो-ऐंग्लियन लेखक विशेष प्रसिद्ध हुए, उनमे के० एम० वेंकटरमणी अपने विचारो मे सबसे अधिक स्फूर्तिदायक और प्रतिभा मे बहुमुखी थे। उनकी पहली पुस्तक 'पेपर बोट्स' (१९२१) दक्षिण भारत के जीवन की कुछ झाँकी देती है। इन झाँकियो मे एक कवि और परिहास-लेखक का कलात्मक स्पर्श दिखाई देता है। 'आन दि सैंड-ड्यून्स' (१९२३) गद्य-काव्य की पुस्तक थी। इसमे सवेदनशील मानवता पर सभ्यता ने जो प्रहार किया, उसके विषय मे शोक व्यक्त किया गया है और कभी-कभी यह दुख घोर चीत्कार का रूप ग्रहण करता है। 'मुरुगन, दि टिलर' (१९२७) नामक पुस्तक के प्रथम प्रकाशन के बाद मद्रास के पढे-लिखे लोगो में जैसे एक आँधी आ गई। गाँव के जीवन के स्पष्ट चित्र, शहराती जीवन मे विशेष रूप से व्यक्त विचार और कर्म की आग का व्यग्यपूर्ण वर्णन, चरित्रो का गहरा अध्ययन, काव्यमयता और परिहास, आदर्शवाद और यथार्थवाद का मिश्रण आदि

गुणो से यह सक्रान्ति-कालीन भारत का प्रथम कोटि का श्रेष्ठ उपन्यास बन गया। 'मुरुगन' के बाद बच्चो की एक किताब उन्होने लिखी जिसका नाम 'ए डे विद शम्भु' था। बाद मे एक सामयिक पुस्तिका 'दि नेक्स्ट रग' नाम से लिखी। वेकट रमणी का दूसरा उपन्यास 'कदन दि पट्रिग्राट' (१९३२), गाधीजी के सन् १९३०-३१ के राष्ट्रीय आदोलन से प्रभावित था, इसमे राजनीति को भी उसी तरह आदर्शीकृत किया गया था, जैसे कि 'मुरुगन' मे ग्रामीण अर्थशास्त्र को। दोनो मे इतना ही अतर है कि दोनो परस्पर पूरक है। मद्रास के दूसरे लेखक शकर राम ने, दो कहानी-सग्रह लिखे ('चिल्ड्रेन ऑफ दि कावेरी' और 'क्रीचर्स आल') ओर बाद मे एक मर्मस्पर्शी उपन्यास प्रकाशित किया, जिसका नाम 'लव आफ डस्ट' (१९३८) है। इसमे एक किसान का धरती के प्रति आकर्षण वर्णित है। उपन्यास-लेखक के नाते शकर राम मानवीय जीवन के अध्यात्मिक विघटन के उन मनोवेगो का बहुत अच्छा चित्रण करते है जहाँ अश्रु और हास्य के बीच की सीमा-रेखा बहुत झीनी होती है।

ऊपर के सब लेखको से अधिक लिखने वाले मुल्कराज आनद भारतीय समाज के शोपितो और दलितो मे उलझे है। उनके चार उपन्यासो 'टू लीव्ज ऐंड ए बड,' 'दि कुली,' 'दि अनटचेबल,'और 'दि विलेज' (१९३९) मे निम्न वर्गों का चित्रण केवल प्रोत्साहनपरक न होकर सहानुभूतिपूर्ण है, उन्हे मनुष्य मात्र की तरह आदर दिया गया है। भगी, किसान, बागान के मजदूर, शहर के कुली, सिपाही सबके चित्र उनके उपन्यासो मे बडे सजीव ढग से उभरे है—ये दुखी ओर भूखे मनुष्य है, जो अध-विश्वास और खण्डित व्यक्तित्व से पीडित है। उनके कुण्ठित उद्देश्यो के बावजूद उनका चित्रण बहुत ही स्पष्ट हुआ है। इसी प्रकार निरतर सतोप देने वाले दूसरे कलाकार है, आर० के० नारायण, जिनके उपन्यासो और कहानी-सग्रहो मे से कुछ ये है 'बैचलर आफ आर्ट्स,' 'दि डार्क रूम' (१९३८), और 'दि इग्लिश टीचर' (१९४५)। दक्षिण भारत के शिष्ट समाज की विचित्रताओ का वर्णन

करने मे वे बहुत सफल है। नारायण का विशेष लक्ष्य मध्यवित्त से भरा भारतीय है, उनके उपन्यासो और कहानियो मे उसका वर्णन उसके खंडित व्यक्तित्व, आत्मवंचना और मूर्खता आदि के साथ किया जाता है। राजा राव के 'कंठपुर' की तरह ही, नारायण का नया उपन्यास 'वेटिंग फार दि महात्मा,' इस बात का अध्ययन है कि गांधीवादी क्रान्ति की भारतीय जनसाधारण पर कैसी प्रतिक्रिया हुई। ये राजनैतिक प्रचार की पुस्तके नही है, बल्कि गद्य की कला-कृतियाँ है।

इस युग के नए उपन्यासकारो मे विशेष उल्लेखनीय है—हुमायून कबिर ('मेन ऐंड रिवर्स,' १९४५), डी० एफ़ कराका (देयर ले दि सिटी,' १९४१), कुमार गुरु ('लाइफ्स शैडो,' १९३८) अहमद अली ('ट्वाइलाइट इन देहली,' १९४०), ए० एस० पी० अय्यर (बाला-दित्य' १९३०) और के० नागराजन ('अथावर हाउस)।

कवियो का पुनः विचार करे : प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के बीच जो २० वर्ष बीते, उनमे इंडो-ऐंग्लियन कवियो ने बहुत-सी रचनाएँ लिखी। हरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने आध्यात्मिक विचारो और भावनाओं की रंग-बिरंगी विचित्रताओ से भरी कई चमकीली चीजे लिखीं। कई प्रोफेसरो ने लिखा—पी० शेषाद्रि जी० के० चेट्टूर, वी० एन० भूषण, हुमायुँन कबिर उमा महेश्वर, एन० वी० थडानी—ये पण्डितर परम्परा का निर्वाह करते रहे और सिद्ध करते रहे कि इंडो-ऐंग्लियन कविता की उपयोगिता और विविधता कितनी है। गोआ के कवि पे-जोसेफ फुर्टेडो आरमेंडो मेनेजेस, मैनुएल सी० रोड्रिग्स—इन्होंने निर्वासितो की कविता को नई गहराई दी। एस० आर० डोंगरकेरी ने रूढ़ि की वीणा को चतुरता से बजाया और हमे दि आइवरी टावर' नामक पुस्तक दी: और फ्रेडून कबराजी के 'ए माइनर जार्जियन्स स्वान सांग' मे कई सुन्दर और ओजस्वी अंश है।

विद्रोही और नए कवि भी प्रचुर मात्रा मे आगे आये। शाहिद सुहरावर्दी के 'एसेज इन वर्स' (१९३७) मे ४० कविताएँ प्रखर विप्लव-

कारिणी करुणा से भरी हैं, इनमे हमारी पतनोन्मुख सभ्यता का बढता हुआ बुखार और अनिश्चित हृदय-स्पन्दन चित्रित हैं। यद्यपि मजरी एस० ईश्वरन् और पी० आर० कैकिणी ने तीसरे दशक के आरम्भ मे अपना काव्य-कृतित्व, शुरू मे आदर्शवादी और रूढिवादी के नाते आरम्भ किया, परन्तु व्यक्तिगत और बाह्य सघर्षो के कारण वे अधिकाधिक वाम पक्ष की ओर झुकते गए। ईश्वरन् के 'केटगट्स' और 'ब्रीफ औरिसान्स, (१९४१) तीव्र अतिवाद के उदाहरण हैं। स्वप्न-भग के कारण उनकी कविता मे भयानक तेजी पैदा हुई है, फिर भी कभी-कभी उनमे मधुर गीतमयता पाई जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के परिवर्तन के साथ-साथ कैकणी, जिनकी पहली दो किताबे 'गीताजलि' के ढग की थी, अब रक्त और युद्ध की कविता लिखने लगे। अन्य 'आधुनिकतावादियो' मे उल्लेखनीय हैं: बी० राजन ('मानसून', १९४५), कृष्ण शुगल् ('द नाइट इज़ हेवी' १९४३), निस्सिम इजेकील ('ए टाइम टु चेज' और 'सिक्स्टी पोएम्स'), शुभो टैगोर, सुधीन्द्रनाथ दत्त, सीरिल मोडक, नीलिमा देवी, जे० विजयतुग, पी० लाल, ए० के० रामनुजन, तथा आर० एल० बार्थोलोम्यू। आदि के० सेट नामक एक रोचक कवि ने सच्ची भावना और भव्यता के साथ मुक्त छद मे कविता लिखी है ('द लाइट एबव द क्लाउड्स), और सत गुरदयाल मल्लिक ने अपने जीवन के ६२वें वर्ष मे परमतत्व की परमानुभूति का सस्पर्श पाकर अपनी कविता ('हाउड आफ द हार्ट') मे अपनी आत्मा की अनथक खोज का दैनदिन विवरण दिया और प्रभु के प्रति परम भक्ति-भावना के साथ उनकी महिमा का गुणगान किया।

कविता के अतिरिक्त अन्य साहित्य-रूपो मे भी इडो-ऐंग्लियनो ने रचना की। नाटककार तो थोडे ही हुए, क्योकि उनके नाटको के रगमच पर खेले जाने की सभावना वहुत कम थी, लेकिन जिन लेखको ने यह सिद्ध किया कि भारतीयो द्वारा अग्रेजी मे नाट्यरचना भी सभव है, उनमे से कुछ के नाम इस प्रकार हैं वी० वी०

श्रीनिवास आयगर ('ड्रामेटिक डाइवर्टाइजमेंट्स'), ए० एस० पी० ऐयर ('सीताज च्वायस' और 'स्लेव आफ आइडियाज'), फैजी रहमीन ('डाटर आफ इड'), भारती साराभाई ('द वेल आफ द पीपुल' और और 'टू वीमेन'), मृणालिनी साराभाई ('कैप्टिव स्वायल'), जे० एम० लोबो-प्रभु ('एप्स इन द पार्लर' और 'द फेमिली केज'), पुरुषोत्तम त्रीकमदास ('सॉस फार द गूज'), टी० पी० कैलाशम ('कर्ण', 'फुलफिलमेंट' और 'द बर्डेन'), तथा हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ('फाइव प्लेज)। हास्यात्मक निबध, हलके-फुलके रेखाचित्र, जान्सन के 'मन के मुक्त विहार' के-से और मानटेन के 'मुखरित चिन्तन' के-से निबध भी हाल मे भारतीयो द्वारा अग्रेजी मे लिखे गए है। इनमे से श्रेष्ठतम है · एस० वी० वी० के 'सोप बबुल्स', 'मोर सोप बबुल्स' और 'चैफ ऐड ग्रेन', आर० बगरुस्वामी का 'माई लार्ड कुकुडूँ कूँ', ईश्वर दत्त का 'ऐंड आल दैट', एन० जी० जोग का 'ओनियन्स ऐड ओपीनियन्स', आर० के नारायण, चेलापति राव, शान्ता रगाचारी और एम० कृष्णन के छोटे स्फुट निबध; और वाक (खासा सुब्बाराव) का कालम 'साइडलाइट्स', पोटन जोसेफ का कालम 'ओवर ए कप आफ टी' और विदनेश्वर (एन० रघुनाथ ऐयर) का कालम 'सोटो बोस'। समर्थ साहित्यालोचन भी हुआ, यथा एन० के सिद्धान्त ('द हीरोइक एज आफ इडिया'), अमरनाथ झा, अमिय चक्रवर्ती, सी० नारायण मेनन (शेक्सपियर पर आलोचना), हुमायूँन कबिर ('पोएट्री, मोनाड्स ऐड सोसायटी'), बी० के० गोकाक ('द पोएटिक एप्रोच टु लैंग्वेज'), एम० एम० भट्टाचार्जी, एस० सी० सेन गुप्त (शेक्सपीरियन कामेडी), सी० डी० नरसिहैय्या और के० स्वामीनाथन के द्वारा। श्री अरविन्दो द्वारा लिखित साहित्यिक आलोचना ('द फ्यूचर पोएट्री') और आनद कुमार-स्वामी की कला-समीक्षा ('हिस्ट्री आफ इडियन ऐड इडोनेशियन आर्ट', 'द डास आफ शिव', और 'ऐन इट्रोडक्शन टु इडियन आर्ट') एक अन्य ही श्रेणी मे आती है। सर होमी मोदी ('फीरोज शाह महेता'), सर

रूस्तम मसानी ('दादाभाई नौरोजी', १९३९), वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री ('माई मास्टर गोखले', १९४६), पी० सी० रे ('लाइफ एंड टाइम्स आफ सी० आर० दास') , जदुनाथ सरकार ('शिवाजी'), डी० वी० तमहानकर ('लोकमान्य तिलक फादर आफ इंडियन अनरेस्ट एंड मेकर आफ माडर्न इंडिया'), राम गोपाल ('लोकमान्य तिलक'), फ्रैंक मोरेस ('जवाहरलाल नेहरू'), और आर० आर० दिवाकर ('महायोगी') ने अच्छे जीवन-चरित्र लिखे है। आत्मकथा-लेखकों में महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू का प्रमुख स्थान है। नीरद सी० चौधरी की पुस्तक 'आटोबायोग्राफी आफ ऐन अननोन इंडियन' भी बहुपठित और बहुचर्चित रही है। इस पुस्तक की अपनी सीमाएँ है—यह बोझीली, उदास और गमगीन है, लेकिन इसमे पांडित्य की गरिमा और साहसपूर्ण ईमानदारी का श्रेष्ठ गुण भी है। जिन अन्य भारतीय लेखको ने इन कठिन, किन्तु बाह्यत सरल विधा मे अपने-अपने ढग से दक्षता प्राप्त की है, उनमे से कुछ है कृष्णा हठीसिंह ('विथ नो रीग्रेट्स'), भारतन कुमारप्पा ('माई स्टूडेंट डेज इन अमेरिका'), राजेंद्र प्रसाद, चिमनलाल सीतलवाड ('रीकलेक्शन्स ऐंड रीफ्लेक्शस'), के० ईश्वर दत्त ('द स्ट्रीट आफ डक'), के० एम० मुंशी ('आई फालो द महात्मा' और 'द एंड आफ ऐन एरा'), परमहंस योगानद, कृष्णलाल श्रीधराणी ('माई इंडिया, माई अमेरिका'), पी० ई० दस्तूर ('अमेरिकन डेज'), उन्नी नायर ('माई मदर'), और स्वर्गीय एम० एन० राय। इतिहास और दर्शन के क्षेत्रो मे, एम० जी० रानाडे, आर० सी दत्त, तिलक, जदुनाथ सरकार, ब्रजेन्द्रनाथ सील, पी० टी० श्रीनिवास आयगर, बैरिस्टर सावरकर, आर० सी० मजूमदार, एम० एन० राय, आर० डी० रानाडे, एस० राधाकृष्णन और पी० एन० श्रीनिवासचारी जैसे वयोवृद्ध लेखको तथा पी० टी० राजु, एन० गोपाल और एम० एन० श्रीनिवास जैसे तरुण लेखको ने कार्य किया है। पत्रकार, न्यायाधीश, वक्ता, राजनीति एव अर्थ शास्त्र के लेखक अगणित है, और इनमे से जो श्रेष्ठ है, यथा:

फ्रैंक मोरेस और चेलापति राव जैसे पत्रकार, आशुतोष मुकर्जी और सुब्रह्मण्य अय्यर जैसे न्यायाधीश, श्रीनिवास शास्त्री और सी०आर० रेड्डी जैसे वक्ता एम० रूथनास्वामी और के० एम० पणिक्कर जैसे प्रचारक, सी० राजगोपालाचार्य जैसे तर्कशास्त्री और डा० लक्ष्मणस्वामी मुदालियार जैसे शिक्षाशास्त्री—वे अपने-अपने क्षेत्र मे सर्वोत्तम अंग्रेज अथवा अमरीकी गद्य-शैलीकारो की तुलना मे किसी भी प्रकार कम सिद्ध न होगे।

उपर्युक्त गद्य-लेखको मे तीन या चार अलग से दिखाई देते है क्योकि उनका व्यक्तित्व विशिष्ट और सप्राण है। उनके विचारो की कोटि भिन्न है और उनकी शैली विलक्षण औचित्यपूर्ण है। गाधीजी की आत्म-कथा, 'दि स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरीमेंट्स विथ ट्रूथ' वस्तुत. महादेव देसाई का अग्रेजी मे किया हुआ अनुवाद है। इस शिष्य ने अपने गुरु की शैली का इस तरह अनुकरण किया है कि वह अभूतपूर्व है। गाधीजी ने जो कुछ लिखा, उस पर और विशेषत. इस पुस्तक के हर पृष्ठ पर गम्भीरता और सौदर्यमय शान्ति चमकती है। गाधीजी के गद्य मे कही भी कोई तीखापन नही है और विकृति भी नही है : सब-कुछ स्पष्टत. नियोजित है, विचित्र ढंग की सादगी उनके लेखक का प्रधान गुण है, उसकी आत्मनिर्भरता बाइबल की तरह है उसमे कही भी कोई अस्पष्टता या हेर-फेर नही है। ताजे पानी की तरह साफ, स्वच्छ और स्वस्थ उनकी शैली आदर्श, सरल और निर्दोष है।

पडित जवाहरलाल नेहरू की 'आटोबायोग्राफी और डिसकवरी आफ इंडिया' अग्रेजी गद्य के दूसरे महान् लेखक की कृतियां हैं। उनका अग्रेजी साहित्य का अध्ययन बहुत व्यापक और गहरा है यूरोप के साहित्य और विचारो के प्रवाहो से वे सुपरिचित है भारत की या एशिया की परम्पराओ मे जो-कुछ भी सप्राण है, उससे वे प्रेरणा लेते है। नेहरू का अग्रेजी-लेखन स्वाभाविकता, सहजता, सूक्ष्म सवेदनशीलता और तटस्थ सकेतमयता से भरा है। उनके लेखन के बारे मे यह कहा जा सकता है कि "शैली ही व्यक्तित्व है।" चाहे वे बोले या लिखे, उनका

सम्पूर्ण व्यक्तित्व—उनकी संस्कृति, शक्ति, मानवता—आईने की तरह साफ झलकती है, और ऐसे व्यक्तियो के प्रति सहज प्रशंसा और प्रेम के भावो का उदय होता है ।

प्रोफेसर राधाकृष्णन् गद्य के दूसरे अधिकारी लेखक हैं । उनकी श्रेष्ठ कृति 'हिस्ट्री आफ इंडियन फिलासफी' दो खण्डो मे है । अंग्रेजी मे भारतीय दार्शनिक लेखन का आदर्श उन्होने प्रस्थापित किया है । अपने स्पष्टीकरण मे आकर्षक, विभिन्न दार्शनिक शाखाओ को स्पष्ट करने में विवेकयुक्त, तर्कमय आग्रही प्रो० राधाकृष्णन् ने भारतीय दर्शन को एक सजीव और सप्राण परम्परा का गुण प्रदान किया । उनकी बाद की कृतियाँ—विशेषत 'ऐन आइडियलिस्ट व्यू आफ लाइफ' —उनके रचनात्मक दर्शन को स्पष्ट व्यक्त करती हैं । उनकी गद्य-शैली हर मानी मे समुचित, रगीन, समृद्ध, वक्रतापूर्ण, पश्चिम और पूर्व के साहित्यो से चुने हुए उद्धरणो से भरी हुई—ऐसी है कि वह बडा प्रभाव डालती है । भाषण देने मे जैसे अजस्र, उसी प्रकार मे लेखन मे प्रोफेसर राधाकृष्णन् कुशल है, उनमे एक पण्डित, द्रष्टा, और व्यावहारिक मनुष्य का बडा अद्भुत सगम हुआ है, और इसी कारण उनकी अंग्रेजी गद्य-शैली को भी शक्ति और सौंदर्य प्राप्त हुआ है ।

एक और लेखक का उल्लेख करना चाहिए । श्री सी० राज-गोपालाचारी को अधिकतर बडे अच्छे तर्क-शास्त्री के नाते जाना जाता है, पर यह उनके व्यक्तित्व का पूरा वर्णन नही । निस्सन्देह उन्होने अपनी अभिव्यजना मे बडा सयम प्राप्त किया है, परन्तु उनके व्यक्तित्व के भी भावनाशील और आध्यात्मिक पहलू हैं, जो कि उनके लेखन मे प्रतिबिम्बित हैं । राजाजी का गद्य गांधीजी की भाँति बाह्यत वर्णहीन नही है, और न उतना समृद्ध, प्रेरणादायक एव जीवन के प्रकाश मे आलोकित है, जितना कि नेहरू का । वाक्यो का प्रवाह सतुलित है, लगता है कि एक प्रमेय गणित के बाद दूसरा प्रमेय गणित आता जाता है और पूरा भाष्य इस प्रकार प्रभावशाली बनता जाता है । फिर भी

शात सतह के नीचे गहरे सकेतो के प्रवाह छिपे रहते है । महाभारत और रामायण के उनके नए रूपान्तर आधुनिक बौद्धिक परिभाषा देने के साथ ही व्यास और वाल्मीकि का सार प्रस्तुत करते है ।

स्वतन्त्रता के बाद

१९४५ मे दूसरा महायुद्ध समाप्त हुआ, परन्तु भारतवासी विजय का आनन्द नही मना सके, क्योकि वातावरण मे निराशा व्याप्त थी । गाधी-जिन्ना वार्ता असफल हो गई थी, आजाद हिन्द फौज के नेताओ पर चलने वाले मुकदमे और भूलाभाई देसाई की शानदार वकालत ने उस समय भारत की स्थिति को और भी उलझा दिया था । २ सितम्बर, १९४६ को (जापान के पतन के ठीक एक वर्ष बाद) अन्तरिम सरकार की स्थापना हुई, जो कि हमारे इतिहास मे महान् दिवस था, परन्तु आनन्द के साथ दु ख भी मिला हुआ था, क्योकि मुस्लिम लीग रूठकर अलग हो गई थी । कलकत्ता, नोआखाली, बिहार और पजाब मे साम्प्रदायिक दगे उठ खडे हुए और इतिहास के पाठ को, सामान्य समझदारी या विवेक को, महात्मा गांधी की अन्तर्दृष्टि और चेतावनियो को ठुकराकर, काग्रेस के नेताओ ने देश के विभाजन को कबूल कर लिया । जो दुखद घटनाएँ चारो ओर बढ रही थी, उनके कारण मानो गहरी निराशा से यह निर्णय लिया गया । १५ अगस्त, १९४७ को स्वतन्त्र भारत और पाकिस्तान का जन्म हुआ ।

आजादी आ गई थी, मगर यह ठीक से वह आजादी नही थी, जिसका कि सपना बीते कल के लेखको ने देखा था या जिसके बारे मे उन्होने गीत रचे थे या जिसकी देशभक्तो की पीढियो ने कल्पना की थी और जिसके लिए उद्यम किया था । यह एक तरह की लाछित स्वतन्त्रता थी तथा अत्यन्त भयानक साम्प्रदायिक दगो और अविश्वसनीय वहशियत तथा बर्बरता की घडी मे जन्मी हुई थी । करोडो लोगो ने सीमाएँ पार की, घर टूटे, जिन्दगियाँ तहस-नहस हो गई, मानवीय

मूल्य पैरो तले रौंदे गए, फिर भी यह एक महान् चमत्कार है कि भारत जीवित रहा। ३० जनवरी, १९४८ को जो अमानवीय शोकपूर्ण घटना घटित हुई, उसमे से भी, दैवी चमत्कार कहे कि भारत जीवित रहा। भारतीय साहित्य १९४६-४८ के इन आघातो मे पूरी तरह मुक्त नही हुआ है कत्ल किये हुए निरीह लोग, महात्माजी की शहादत और इन घटनाओ के बाद अपमान, दुःख, घोर निराशा आदि आते गए, और जो लेखक इन सबमे से जीवित रहे, उन्हे इस सारे अनुभव को कला के माध्यम से व्यक्त करना अत्यन्त कठिन जान पडता है।

महीने बीतते गए, वर्षो पर वर्ष उसी एकरस नियमितता से बीतते गए, मन्त्रिमण्डल बदले, नई राजनैतिक पार्टियाँ आई, कण्ट्रोल और डि-कण्ट्रोल आँखमिचौनी खेलते रहे, देश योजनाओ के साथ खेलता रहा। रचनात्मक लेखक को यह लगा कि हल्के-गहरे व्यग, परिहास, सुखान्त नाटक, प्रहसन, खडन, मेलोड्रामा आदि के लिए तो पर्याप्त सामग्री उसके पास है, परन्तु सम्पूर्ति के महाकाव्य, अथवा प्रशसा के भाव-गीतो के लिए सामग्री कहाँ है? सब ओर एक तरफ से, प्रयत्नो मे पीलापन, मृत्यु का निरतर ह्रास दिखाई दे रहा है, देश के लोगो में एक नई तरह का स्वार्थ-पोषण और अपना ही महत्त्व बढाना बढ रहा है, जिसका कि शखनाद है, 'चलो दिल्ली'। आत्म वचना ने विस्तृत राष्ट्रीय रूप ग्रहण कर लिया है। यद्यपि पडित नेहरू देश और विदेश के आदर और प्रशसा के उचित पात्र है, फिर भी अवसरवाद और साहसिकता की शक्तियो के सामने वे भी मानो शक्तिहीन हो गए है। ये अवसरवादी और अतिसाहसिक शक्तियाँ स्वतन्त्रता के साथ मानो खुलकर खेल रही है। विश्वविद्यालय, जो कि देश को उचित मार्ग-दर्शन कराते, मानो सबसे बुरे अपराधी बन गए है, इनके ऊपर ऐसे छोटे दिलो के लोग हावी हो गए है, जिनकी दृष्टि मे स्वतन्त्र चिन्तन या रचनात्मक मूल्यो का कोई महत्त्व नही है।

दूसरी ओर पचवर्षीय योजनाओ की प्रगति के साथ-साथ ऐसे भी

प्रयत्न हो रहे हैं कि जनता की रचनात्मक शक्तियों को एक दिशा में प्रवाहित किया जाय। साहित्य अकादेमी कुछ ही वर्ष पूर्व स्थापित हुई, वह निरंतरतापूर्वक 'जनता की अभिरुचि को विकसित करने और साहित्य-भावना बढ़ाने का प्रयत्न कर रही है।" 'बुक-ट्रस्ट' स्थापित हो गए हैं, पत्रकारिता को नई स्वतंत्रता और जिम्मेदारी मिल रही है। यह सब होने पर भी न अकादेमियाँ, न ट्रस्ट, न चार्टर कोई भी उत्तम साहित्य के निर्माण का आश्वासन नहीं दे सकता। सच्ची साहित्यिक कृति तो ऐसी होती है, मानो एक व्यक्ति अनेक व्यक्तियों से बोल रहा हो। वह भाव-स्पन्दनों का विनिमय है, हमारे विजड़ित व्यक्तित्वों का पिघलना है, जिससे कि एक आत्मा दूसरी आत्मा से सम्बन्ध स्थापित कर सके और विविध मन साथ-साथ बह सकें। साहित्य के गुण अन्ततः व्यक्तिगत लेखक के गुणों पर निर्भर करते हैं। जितने अधिक व्यक्तियों में (जैसा कि प्रोफ़ेसर राधाकृष्णन् ने कहा था) 'अपने मन में अकेले होने का साहस होगा' जितने अधिक लेखक राजनीति, राजाश्रय या प्रचार के दबाव से, या कोरे नवीनता के आकर्षण से या निरी रूप-शिल्प की कसरत आदि से बच सकेंगे, और उनका मुक़ाबला करने की ताक़त अपने में विकसित कर सकेंगे, उतनी ही मात्रा में वे अपने अमृतपूर्ण स्वप्नों को चिरन्तन कला में व्यंजित करने में सफल हो सकेंगे।

स्वतन्त्रता के युग की एक महान् घटना श्री अरविन्द की 'सावित्री: ए लीजेंड एंड ए सिम्बल' का १९५०-५१ में प्रकाशन है। गत शताब्दी के अन्तिम चरण में आरम्भ होकर, 'उर्वशी' और 'लव एंड डेथ' की तरह 'सावित्री' भी पचास वर्षों में लिखी गई। उसमें अनेक बार संशोधन हुए, कभी काम रुक गया, कभी फिर से शुरू हुआ, नई-नई प्रेरणाओं की अग्नि ने उसमें विलक्षण चमत्कार उत्पन्न किया। अपने अन्तिम रूप में यह मुक्त छन्द का महाकाव्य तीन खण्डों में है, जिसके कि १२ अध्याय या ४८ सर्ग हैं। कुल मिलाकर २४,००० पंक्तियाँ इस महा-काव्य में हैं। महाभारत की सावित्री-सत्यवान की कथा इसका आधार

है। मगर श्री अरविन्द ने उसे एक रहस्यवादी रग और उदात्तता प्रदान की है, और कदाचित् भावी साहित्यिक इतिहासकार 'पैरेडाइज लास्ट' के बाद इसे अग्रेजी का सबसे बडा महाकाव्य कहेंगे। 'दि फ्यूचर पोयट्री' नामक उत्तम आलोचनात्मक गद्य मे श्री अरविन्द ने करीब ४० वर्ष पूर्व भावी कविता के विस्तृत क्षेत्र पर विचार किया था। यदि कविता का आदर्श आत्मा से आत्मा की बातचीत है तो मंझली बाधाए जितनी ही कम होती जायेंगी, कविता का परिप्रेषण उतना ही उत्तम होगा। इसके पहले कि बुद्धि कल्पना-चित्रो को विश्लेषित करे, वाक्यो की शव-परीक्षा करे, या व्याकरण का व्यायाम शुरू करे, काव्योद्गार पहले ही क्षण मे इस प्रकार से अभिव्यजना कर चुका होता है जैसे कि कोई स्वर कानो को छू दे, प्रकाश किसी वस्तु को व्याप्त कर ले या कि मत्र आत्मा मे पैठ जायँ। कविता के शब्द विचारो के परिवर्ती शार्टहैंड नही होते, बल्कि वे रचनात्मक जीवन की चिनगारियाँ होते है। अग्नि-परीक्षा द्वारा अलौकिक काव्यमय शब्दो को पुन-पुन गढना नई कविता के लिए चुनौती के समान है। सावित्री की रचना के पीछे यह महान उद्देश्य था—दिव्य जीवन (लाइफ डिवाइन) को पृथ्वी पर अवतरित करने की बात को कविता के माध्यम से मुखर करना। इस कविता मे ज्ञान का निर्मल सयमित प्रकाश, ऊर्जा का व्यापक भाण्डार और रचनात्मक जीवन की महान् लय छिपी हुई है। इस कारण इस कविता को सचमुच 'पृथ्वी की ज्योति और फिर भी देवताओ का स्वर्गीय दूत' कहा जा सकता है।

श्री अरविन्द के अतिरिक्त उनकी प्रेरणा से जो और लेखक आये, उन्होने भी नई आध्यात्मिक कविता की धारा को बढाया। के० डी० सेटना के 'दि ऐडवेचर ऑफ दि एपोकेलिप्स' (१९४९), उनकी पहली पुस्तक 'दि सिक्रेट स्प्लेडर' के समान ही उनकी अलौकिक आध्यात्मिक सत्य की अनुभूति का स्पष्ट वर्णन है। दिलीप कुमार राय की 'आइज आफ लाइट' (१९४८) मे एक लम्बी दार्शनिक कविता मिलती है जो कि भागवत की प्रह्लाद की कहानी पर आश्रित है। उनके कई गीत 'योग'

की प्रेरणा से लिखे गए हैं, जिनमें निरन्तर चमत्कार का रूप अभिव्यंजित है। नीरद बरन के 'सब-क्लासम्स' (१९४७) में 'भावी कविता के विकास के धीमे-धीमे खुलनेवाले मार्ग के सुनिश्चित सोपान' का वर्णन किया गया है। नलिनी कांत गुप्त ('टु दि हाइट्स'), निशिकांतो ('ड्रीम केडेंसेज़'), पुञ्जलाल ('रोज़ेरी' और 'लोटस पेटल्स'), पृथ्वीन्द्र ('रोमेन और तेहमी') इत्यादि और कुछ कवि हैं, जिनकी मूल प्रेरणा श्री अरविन्द हैं। रहस्यवादी कविता, जैसा कि ऊपर वर्णित है, किसी भी प्रकार पलायनवादी नहीं हैं। सच्चा रहस्यवाद, वस्तुतः, किन्हीं भी ऐसे युग-दोषों के लिए उत्तम सुधार का काम करता है, जिनके मूल्य और स्तर वाह्यतः खो गये हों। फिर से ज़मीन की ओर लौटना—सब चीज़ों के मूल्य और बीज की ओर लौटना—पुनर्नवीकरण का उत्तम मार्ग है। अरविन्दवादी कविता की धारा का मुख्य उद्देश्य, मंत्र के रूप में, आज के अस्पष्ट निराश वर्तमान में से ही 'नवीन मानव' और 'नवीन विश्व' के स्वप्न का निर्माण प्रस्तुत करना है।

कथा-साहित्य में भी एक आध्यात्मिक रुझान के दर्शन होते हैं जैसाकि दिलीपकुमार राय के एक असामान्य उपन्यास 'दि अपवर्ड स्पाइरल' में देखा जा सकता है। यह उपन्यास आकांक्षा और उपलब्धि की प्रक्रियाओं पर एक कल्पनाशील निबन्ध है। और यद्यपि विचार-विमर्श गूढ़ हो गया है, फिर भी अन्तर्निहित यौगिक लक्ष्य भलीभाँति सिद्ध हो सका है। दूसरी ओर राजनीतिक स्वाधीनता, नवीन राष्ट्रीय चेतना, पिछली दशाब्दी में प्रादेशिक भाषाओं की प्रगति आदि तथ्यों के कारण अंग्रेज़ी में भारतीय-लेखन की मात्रा अथवा गुण में कोई विशेष कमी नहीं हुई है। कदाचित् किन्हीं क्षेत्रों में अंग्रेज़ी का प्रचलन कुछ बढ़ा ही है! स्वाधीनता, विभाजन, योजना ने हमारे युग में यत्नशीलता की एक विशेष हलचल पैदा की है। हमारा यह युग अपनी उत्तेजनाओं, उत्कंठाओं और उपलब्धियों तथा असफलताओं, निराशाओं और तिरस्कृतियों के साथ अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है। रचनात्मक लेखक

और विशेषकर उपन्यासकार के लिए यह निश्चय ही एक प्रकार का आमंत्रण है—साथ ही एक चुनौती और एक स्वर्णिम अवसर भी है। धूप में जिस तरह अकस्मात फुहार पड़े और कोई उसे पकड़ने का यत्न करे, कुछ-कुछ वैसा ही है—अतीत की दीर्घ सुषुप्तावस्था में उठ कर हमारे राष्ट्र के बहुरंगी स्वरूप को लेखनीबद्ध करने का प्रयत्न ! हमारी उपलब्धियों के महाकाव्य कौन रचेगा हमारे श्रम-उद्यम के गान कौन गुंजाएगा हमारी आत्मवंचना के व्यंग्य और असफलताओं के करुण शोक-गीतों को कौन मुखरित करेगा ?

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में और चौथे दशक के प्रारंभ में जिन कथाकारों को ख्याति मिली, उनमें से कुछ—जैसेकि आनंद और नारायण ने अपनी रचनात्मकता और लोकप्रियता को अक्षुण्ण बनाए रखा, और भवानी भट्टाचार्य, कमला मार्कण्डेय, खुशवन्तसिंह, शान्ता-रामाराव, सुधीन घोष तथा अन्य नवागन्तुकों ने समकालीन साहित्यिक क्षेत्र में अतिशय उत्साह और आशा का वातावरण निर्मित किया है। इसमें संदेह नहीं कि स्वाधीनता-संग्राम के कारण इन अपेक्षाकृत नए लेखकों के कथा-प्रयोगों को प्रमुखता मिली, विशेषकर वेणु चिताले का 'इन ट्रांजिट' (१९५१), ख्वाजा अहमद अब्बास का 'इंकिलाब,' भवानी भट्टाचार्य का 'सो मेनी हंगर्स' (१९४८), कमला मार्कण्डेय का 'सम इनर फ्यूरी' और खुशवन्तसिंह का 'ट्रेन टु पाकिस्तान' उल्लेखनीय हैं। लैम्बर्ट मैसकैरेनहस के उपन्यास 'सारोइंग लाइज माई लैंड' में पुर्तगाली शासन के दमन-चक्र से गोवा के मुक्ति-संघर्ष की कथा है। अन्य समसामयिक उपन्यासों में ग्राम-जीवन, नागरिक-जीवन की नफासत, साधन-सपन्नों और साधनहीनों के बीच संघर्ष, पश्चिम और पूर्व के बीच बाह्यत: दिखाई देने वाली खाई, तथा परंपरा और विद्रोह की परस्पर विरोधी शक्तियों का संघर्ष का दिग्दर्शन कराया गया है। कुछ अन्य उपन्यासों में काल्पनिकता का कभी सफल प्रयोग हुआ है, जैसे कि पुरुषोत्तम त्रीकमदास ने एक रोचक कथावस्तु का निर्माण इस कल्पना

के आधार पर किया है कि एक व्यक्ति का सिर दूसरे के शरीर में लगा दिया जाता है और कथा में उन मनोवैज्ञानिक सम्भावनाओं का उद्घाटन किया है जो कि इस स्थिति के फलस्वरूप उत्पन्न हो सकती थीं। अस्तु, उनकी 'द लिविंग मास्क' एक रोचक और रहस्यपूर्ण रचना बन गई है। सुधीन घोष के 'द वरमीलियन बोट, ऐंड गैंजेल्स सीलिंग' तथा 'द फ्लेम आफ द फ़ारेस्ट' में एक प्रकार की प्राच्य विलक्षणता है, जो कि विषयवस्तु की सूक्ष्मता और तत्त्व की तरलता के बावजूद, रुचिकर और संतोषप्रद ज्ञात होती है। इसके अतिरिक्त जे० वी० देसाणी का उपन्यास 'आल एबाउट मिस्टर हैटर' भी है, जो स्पष्टत. जेम्स ज्वायस से प्रभावित ज्ञात पड़ता है।

डा० भवानी भट्टाचार्य के तीन उपन्यासों 'सो मेनी हंगर्स,' 'म्यूजिक फ़ार मोहिनी' और 'ही हू राइड्स ए टाइगर' (१९५४)—ने उन्हें एक रचनात्मक कथाकार के नाते सुप्रतिष्ठित कर दिया है। 'सो मेनी हंगर्स' में युद्धकालीन बंगाल का निर्मम, यथार्थवादी चित्रण है, और यह उपन्यास विश्वभर में लोकप्रिय सिद्ध हुआ है। 'म्यूज़िक फ़ार मोहिनी' में मोहिनी नामक एक ब्राह्मण युवती की संवेदनाशील कथा है, वह अपने विद्वान पति जयदेव के साथ अपना विवाहित जीवन सफल बनाने की चेष्टा करती है। 'ही हू राइड्स ए टाइगर' की पृष्ठभूमि भी दुर्भिक्षग्रस्त बंगाल ही है लेकिन उसका स्वर किंचित् हलका-फुलका है और समाज के प्रति कालो के व्यावहारिक मज़ाक विशुद्ध आनंददायक हैं। कलकत्ता में जीवन की गति, नागरिक व्याधियाँ और नफ़ासत-नज़ाकत, सामूहिक आंदोलनों और आवेगों का दबाव—इन सभी चीज़ों ने मिलकर उक्त उपन्यास को एक विशेष गुण से युक्त कर दिया है। उपन्यासकार के रूप में श्री भट्टाचार्य में अनेक विशेषताएँ लक्षित होती हैं, यथा. व्यंग्यात्मक परिहास, सामाजिक चेतना, चरित्रों की ध्वनियों का बोध, और इन सबसे अधिक दुःख और यातना के सभी स्वरूपों के प्रति अप्रतिहत करुणा।

कमला मार्कण्डेय के 'नेकटार इन ए सीव' और 'सम इनर फ्यूरी' (१९५६) को पढकर स्वर्गीय के० एम० वेकटरमणि के 'मुरुगन द टिलर' और 'कदन द पैट्रियाट' का स्मरण हो आता है। 'नेकटार इन ए सीव' ग्रामीण लोगो की कथा है अर्थात् उन लोगो की करुण कथा, जो कि औद्योगिकता और आधुनिक टेकनालोजी के प्रभाव मे पडकर नितान्त असहाय जीवन बिताने को विवश हो गए हैं लेकिन वर्णनकर्ता-नायिका रुक्मिणी का सशक्त अकन हुआ है और वह दु ख-ग्रस्त जननी के रूप मे प्रकट हुई है। 'सम इनर फ्यूरी' का कथानक और भी कठिन है, इसमे अगस्त, १९४२ के 'करो या मरो' आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे, एक अग्रेज के प्रति एक भारतीय युवती का प्रेम दिखाया गया है। 'सम इनर फ्यूरी' राजनीति-सबधी एक दुखान्त उपन्यास है, उसी प्रकार जैसे कि पूर्वोक्त उपन्यास भारतीय आर्थिक जीवन का एक दुखान्त चित्र था, लेकिन दोनो के ही प्रमुख चरित्र आर्थिक एव राजनीतिक दुर्भाग्यो की विभीषिका का डटकर सामना करते हैं और मनुष्य की अजेय वृत्ति को पुनर्स्थापित करते हैं। कमला मार्कण्डेय की प्रतिष्ठा का सुदृढ आधार है—उनका विशुद्ध एव साकेतिक गद्य।

शान्ता रामाराव का प्रथम उपन्यास 'रेमेम्बर द हाउस' अत्यत आशाप्रद है। बाला नामक लडकी का विकास इस उपन्यास मे दिखाया गया है और जैसे-जैसे जीवन के नए-नए अवसर उसके सम्मुख आते है, उसकी चेतना भी विकसित होती जाती है। लेकिन असफलता और स्वप्न-भग से भी वह उतना ही लाभ उठाती है, जितना कि सफलता और आत्मतुष्टि से। रोमास उसे आकृष्ट करता है, पर वास्तविकता कदमो को बाध देती है। नवीनता चित्ताकर्षक ज्ञात होती है, लेकिन परपरा से छुटकारा पा सकना भी आसान नही है। नयनतारा सहगल ने पहले 'प्रिज़न एंड चाकलेट केक' (१९५४) नामक एक रोचक आत्म-कथात्मक पुस्तक लिखी थी और अभी हाल मे ही, उन्होने स्वाधीनता-

पूर्व वर्षों के सबध मे 'ए टाइम टु बी हैपी' (१९५७) नामक उपन्यास प्रकाशित किया है, इसमे शैवाल-परिवार और सहाय-परिवार दो विशिष्ट वर्गों के समान है और एक युग का चित्र होने के साथ-साथ यह उपन्यास एक अच्छी कथा भी है। आनदलाल के उपन्यास 'द हाउस आफ आदमपुर' मे १९४७ से पहले के दिल्ली और सामान्यत पजाब के 'अभिजात' जीवन का पर्दाफाश किया गया है। उस समय परस्पर विरोधो के बीच घर के लोग एक मे रहते थे, वे भिन्न-भिन्न ससारो मे विचरण करते थे और भीषण असतोष उनके भीतर घुन की तरह लगकर उन्हे खाए डालता था। दूसरी ओर, एम० वी० राय शर्मा का 'द स्ट्रीम' एक अज्ञात व्यक्ति गोपालम् की कथा है, जो किसी कदर हार्डी के जूड की भाति, दो औरतो के बीच मे पड जाता है और उनमे से किसीके भी साथ सरलतापूर्वक सतोषप्रद सबध नही स्थिर कर पाता। एस० वाई० कृष्णस्वामी के 'कल्याणीज हस्बैंड' (१९४७) मे भी हार्डी के 'द वुडलैंडर्स' के फिट्जपायर्स की ध्वनि मिलती है। इसमे सदेह नही कि कल्याणी के पति शेखर का चरित्र रोचक है, पर वह वास्तविक नही ज्ञात होता। शेखर के चरित्र से हमे माइलापुर के एक अन्य पतनग्रस्त श्रीसपन्न चरित्र 'केदरी' का स्मरण हो आता है, जिसका कि चित्रण वेकटरमणि ने अपने 'मुरुगन द टिलर' मे किया है, लेकिन न तो माइलापुर की स्थानीय प्रतिभा के उद्घाटन मे और न नायक के जटिल अन्तर्विरोधो के प्रकटीकरण मे ही कृष्णास्वामी अपने पूर्वगामी उपन्यासकार की भाति सफल हो सके है।

खुशवन्त सिंह का 'ट्रेन टु पाकिस्तान' (१९५६) एक विशिष्ट उपन्यास है—वह उस नारकीयता का भयानक चित्र उपस्थित करता है, जोकि भारत के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन के अवसर पर पजाब मे खुलकर सामने आई थी। देश का दो भागो मे मनमाना विभाजन कर दिया जाना एक अशुभ कार्य था और इस अशुभ का परिणाम और भी अशुभ हुआ। जातीय भेदभाव का विप एक बार डाल दिए जाने के बाद, यह

स्वाभाविक ही था कि उसका असर फैला और अपार जनसमूह उसके कारण नष्ट-भ्रष्ट और विध्वस्त हो गए। अपराध-प्रतिशोध और भी अधिक अपराध। क्या यह सिलसिला अनन्त था ? नहीं, मनुष्य का सहज स्वभाव प्रेम है, घृणा नहीं, और तूफ़ान का ज़ोर खत्म होने के बाद, आखिरकार शांति स्थापित होती ही है। जगतसिंह नामक गुंडा एक मुसलमान लड़की, नूरन को प्यार करता है और स्वयं सिक्ख होते हुए भी वह अपनी जान की बाज़ी लगाकर उस ट्रेन की रक्षा करता है जिसमें उसकी प्रेमिका सहित कितने ही अन्य मुसलमान शरणार्थी भारत से पाकिस्तान को जा रहे थे। खुशवन्त सिंह एक रूमान-विरोधी कलाकार हैं और असत्य तथा पाखंड को कतई सहन नहीं कर सकते, खासतौर से उस दशा में जबकि ये बुद्धिमानी और ईमानदारी के जामे में सामने आते हों। इस विशेषता के दर्शन न केवल उनके 'रक्त और आंसू' वाले इस उपन्यास में बल्कि 'द मार्क आफ़ विष्णु' में भी मिलते हैं जो कि उनकी कहानियों का संग्रह है। ईश्वरन का 'पेन्टेड टाइगर्स' हाल में ही प्रकाशित एक और उल्लेखनीय कहानी-संग्रह है।

उपन्यासों और कहानियों का प्रकाशन दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है, क्योंकि पत्रिकाओं को इनकी आवश्यकता प्रतीत होती है और पाठक इनके लिए आतुर रहते हैं। इसके अतिरिक्त, अमरीकी और अंग्रेज़ी प्रकाशक भी अंग्रेज़ी भाषा में भारतीयों द्वारा लिखित अच्छे कथा-साहित्य को बढ़ावा देने के प्रति उदासीन नहीं हैं। लेकिन सुलिखित उपन्यास-कहानी तथा जबर्दस्ती लिखे गए कल्पनात्मक कथा-साहित्य में अन्तर तो रहता ही है। सच तो यह है कि उपर्युक्त उपन्यास किसी न किसी रूप में उत्तेजक और संतोषदायक भले ही हों, किन्तु उनमें से किसी में भी हमारे स्वाधीनता-संग्राम का अनुपम रचनात्मक संपूर्णता के साथ समावेश नहीं हो सका है। अतः कोई भावी उपन्यासकार ही उस प्रकार की महान गद्य-रचना हमें दे सकेगा, जैसी कि टालस्टाय की 'वार एंड पीस' है। बहुत-से लोग लिखेंगे, तभी उनमें से कुछ उभर कर

सामने आएगे। बहरहाल, इडो-ऐंग्लियन कथा-साहित्य का भविष्य तब तक सुरक्षित है, जब तक कि ऊपर बताए गए उपन्यासकारो और कहानी-कारो के सदृश लेखकगण इस माध्यम की ओर आकृष्ट होते रहेगे। प्राची और प्रतीची का अथवा नवोन्मेप और परपरा का सघर्प—अर्थात् वह सघर्प जो विभिन्न स्तरो पर दिग्दर्शित किया जा सकता है, एक नि शेप विपय है और निश्चय ही अतीत की भाति भविष्य मे भी कथाकार और नाटककार दूसरी ओर आकृष्ट होते रहेगे।

यह सर्वेक्षण समाप्त करने से पूर्व, भारत की अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओ के विपय मे भी दो शब्द कहना समीचीन होगा। हमारे राष्ट्रीय पुनर्जागरण के प्रारभिक काल मे, 'द हिन्दू' (मद्रास) और 'अमृत बाजार पत्रिका' (कलकत्ता) जैसे पत्रो ने क्रमश स्व-शासन के मसले पर जनमत बनाने और सग्रह करने के कार्य में महत्त्वपूर्ण योग दिया था। यह देखकर सतोप होता है कि आज भी वे विकासोन्मुख राष्ट्रीय सस्थाए है। एक जमाने मे, जो अन्य पत्र अत्यत प्रतिष्ठित एव प्रचलित हुए थे, यथा 'इन्दुप्रकाश' (बम्बई), और 'वदेमातरम' (कलकत्ता), वे अब अतीत की वस्तु बन चुके है। जिन राष्ट्रीय नेताओ ने अपने-अपने समय मे, अपने विचारो की सार्वजनिक अभिव्यक्ति के लिए पत्र-पत्रिकाओ को माध्यम बनाया, उनमें मे प्रमुख है : श्री अरविन्द ('वन्देमातरम' और 'कर्मयोगिन'), लाजपत राय (द पीपुल), सी० आर० दास (फारवर्ड), गाँधी जी ('यग इडिया' और 'हरिजन'), सी० वाई० चिन्तामणि ('द लीडर'), पट्टाभि सीतारमैया ('जन्मभूमि'), सुभाप बोस ('फारवर्ड ब्लाक'), एम० एन० राय ('इडिपेन्डेन्ट इडिया' और 'द मार्क्सियन वे'), लोकमान्य तिलक ('द मराठा'), आचार्य कृपलानी ('विजिल') और के० एम० मुशी ('द सोशल वेलफेयर')। हमारे अपने समय में, 'द हिन्दू', 'द पत्रिका', 'इडियन एक्सप्रेस', 'हिन्दुस्तान टाइम्स,' 'बाम्बे क्रानिकल', और 'नेशनल हेराल्ड' ही नही, बल्कि पिछले काल के तथाकथित ऐंग्लो-इडियन पत्र—'टाइम्स आफ इडिया',

'स्टेट्समैन', और 'मेल' भी—आश्चर्यजनक रूप से अपने आपको भारतीय गणराज्य की परिवर्तित परिस्थितियो के अनुरूप बना सके है, और वे सभी पत्र, पत्रकारिता का अच्छा स्तर कायम रखकर और प्रश्नो पर सामान्यत प्रगतिशील और अखिल भारतीय अथवा राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करके सार्वजनिक सेवाकार्य मे सलग्न है। सदा से लोकप्रिय एक 'इलस्ट्रेटेड वीकली' को छोड़कर, सप्ताहिक पत्रो मे से किसी की भी स्थिति दैनिको की भाति सुदृढ नही है, गोकि एक समय ऐसा भी था, जब 'इडियन सोशल रिफार्मर' और 'द सर्वेन्ट आफ इडिया' जैसे पत्रो की देश मे बडी प्रतिष्ठा थी। फिर भी, 'माई इडिया' (बंगलौर), 'थाट' (दिल्ली), 'स्वराज्य' (मद्रास), और 'रैडिकल ह्यूमैनिस्ट' (कलकत्ता) जैसे कुछ पत्र आज भी हमारे राष्ट्रीय जीवन मे उपयोगी कार्य सपन्न कर रहे है और, यथावश्यक, 'अल्पसख्यको' के दृष्टिकोण को स्पष्टता और शक्ति के साथ प्रस्तुत करते है। मासिक पत्रिकाए भी है, जिनकी कठिनाइया ससार के अन्य भागो मे प्रकाशित मासिक पत्रिकाओ-जैसा ही है। 'कलकत्ता रिव्यू,' 'माडर्न रिव्यू' और 'इडियन रिव्यू' दीर्घकाल से उपयोगी कार्य करती आई है, 'प्रबुद्ध भारत', 'वेदान्त केसरी' और 'मदर इडिया' का स्तर अच्छा बना हुआ है लेकिन उनका रुझान वेदान्त और अध्यात्म की ओर विशेष है। 'द आर्यन पाथ' लगभग ३० वर्षों से सच्ची और उत्तम सेवा करता रहा है। वह शाश्वत मूल्यो और सत्यो के प्रचार-कार्य मे संलग्न रहा है और अपने समीक्षा-स्तम्भ के द्वारा इस पत्र ने देश मे पुष्ट आलोचना-परपरा निर्मित करने का भी प्रयत्न किया है। त्रैमासिक और पाक्षिक पत्रो का उल्लेख भी मुझे करना ही चाहिए, जैसे 'विश्वभारती क्वार्टरली', 'क्वेस्ट' (बबई), 'ऐडवेन्ट' (पाडिचेरी) और 'लिटरेरी क्राइटीरियन' (मैसूर)। इनके अतिरिक्त 'विद्वत्तापूर्ण' पत्रिकाए भी है, जिनका प्रकाशन विश्वविद्यालयो अथवा अन्य विद्वत्-सभाओ द्वारा किया जाता है। ये पत्रिकाए भी अपनी ख्याति के अनुरूप स्तर बनाए रखने का यत्न करती है।

कविता हो या नाटक, उपन्यास या कहानी, इतिहास या जीवनी, दार्शनिक या राजनीतिक ग्रंथ, वक्तृत्व-कला या पत्रकारिता—अंग्रेजी में भारतीयों का लेखन कहीं भी ह्रास अथवा समाप्ति की स्थिति में नहीं दिखाई देता। निस्संदेह इंडो-ऐंग्लियन साहित्य अपनी निजी दृष्टि और स्वर के साथ, अन्य समसामयिक भारतीय साहित्यों की ही भांति, विकसित होता रहेगा। वह क्रमशः शक्ति ग्रहण करता जाएगा और हमारे नए राष्ट्र और नवजीवन के—वस्तुतः आधुनिक राष्ट्र और प्रगतिशील जीवन के निर्माण में सहायक होगा। यही नहीं, वह राष्ट्रीय पुनर्जागरण और अन्तर्राष्ट्रीय शांति-सद्भाव के कार्य में भी प्रतिश्रुत होगा।

अंग्रेज़ी (इंडो-ऐंग्लियन) पर चुने हुए संदर्भ-ग्रंथ

इंडियन राइटर्स आफ़ इंग्लिश वर्स—लतिका बसु, १९३३

ऐन ऐन्थालोजी आफ़ इंडो-ऐंग्लियन वर्स—ए० आर० चिडा, १९३५

इंडो-ऐंग्लियन लिट्रेचर—के० आर श्रीनिवास आयंगर, १९४३

लिट्रेचर ऐंड आथरशिप इन इंडिया—के० आर० श्रीनिवास आयंगर, १९४३

इंडियन कांट्रीव्यूशन टु इंगलिश लिट्रेचर—के० आर० श्रीनिवास आयंगर, १९४५

इंडियन मास्टर्स आफ़ इंग्लिश—संपादक : ई० ई० स्पेट, १९३४

इंडियन शार्ट स्टोरीज़—संपादक : इक़बाल और मुल्कराज आनन्द, १९४७

कलेक्टेड पोएम्स ऐंड प्लेज़—श्री अरविंदो, १९४२

द महाभारत ऐंड द रामायण—आर० सी० दत्ता; (एवरीमैन्स सीरीज़)

ऐन्शेंट लीजेन्ड्स ऐंड बैलड्स आफ़ हिन्दोस्तान—तोरुदत्त, १८८२

द सेप्टर्ड फ़्लूट—सरोजिनी नायडू, १९४५

कलेक्टेड पोएम्स ऐंड प्लेज—रवीन्द्रनाथ टैगोर, १९३७
आटोबायोग्राफी—जवाहरलाल नेहरू, १९३६
डिस्कवरी आफ इंडिया—जवाहरलाल नेहरू, १९४६
इंडियन फिलासफी—एस० राधाकृष्णन, १९२८
ईस्टर्न रेलीजन्स ऐंड वेस्टर्न थाट—एस० राधाकृष्णन, १९३९
कलेक्टेड वर्क्स—स्वामी विवेकानन्द (अद्वैतआश्रम संस्करण)

परिशिष्ट १

लेखक-परिचय

१. असमिया—**डॉक्टर बिरिंचिकुमार बरुआ** एम० ए०, पी-एच० डी० (लन्दन); उपनाम—बीना बरुआ, कल्पना बरुआ। जन्म-वर्ष और स्थान—१९१०, नौगाग (असम)। रचनाएँ, अंग्रेजी में—'ॲसमीज लिटरेचर' (१९४४), 'ए कल्चरल हिस्ट्री आफ ॲसम' (१९५१), 'स्टडीज इन अर्ली ॲसमीज लिटरेचर' (१९५३), तथा असमिया मे—'अकिया नाट' का सम्पादन तथा 'जीबनर बाटत' (१९४५), 'पट-परिवर्तन' (१९४८), 'असमिया भाषा अरु सस्कृति' (१९४७) इत्यादि। उपन्यासकार और आलोचक, गुवाहाटी विश्व-विद्यालय मे यूनिवर्सिटी क्लासेज के प्रमुख। साहित्य अकादेमी की असमिया परामर्शदात्री समिति के सयोजक। पता गुवाहाटी (असम)।

२. उडिया—**डॉक्टर मायाधर मानसिंह** एम० ए०, पी-एच०डी० (डरहैम), सपादक 'ओडिया विश्वकोश', उत्कल विश्वविद्यालय; जन्म-वर्ष और स्थान—१९०५, नदला (पुरी)। रचनाएँ, उडिया मे—(काव्य) 'कमलायन', 'धूप,' 'हेमशस्य', 'पुजारिणी', 'जेमा', 'साधव-झिया,' 'कूश', (गद्य-ग्रथ) 'शिक्षा', 'शिक्षक ओ शिक्षायतन', 'पश्चिम पथिक,' 'साहित्य ओ समाज', 'कवि ओ कविता', 'बुद्ध', और 'अन्वेषण'। कवि और आलोचक, 'कालिदास और शेक्सपीयर' के

तुलनात्मक अध्ययन पर अग्रेजी मे प्रबध । साहित्य अकादेमी की उडिया परामर्शदात्री समिति के सयोजक । पता कटक ।

३ उर्दू—**डॉक्टर ख्वाजा अहमद फारूकी** एम० ए०, पी-एच० डी० (दिल्ली), दिल्ली-विश्वविद्यालय मे उर्दू विभाग के अध्यक्ष । जन्म-वर्ष और स्थान—१९१७, बछराँव (मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश) । रचनाएँ, उर्दू मे—'मीर तकी मीर' (साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत), 'उर्दू मे खतूत', 'शौक लखनवी', 'क्लासिकी अदब' । आलोचक । पता दिल्ली ।

४ कन्नड—**प्रो० वि० कृ० गोकाक,** एम०ए० (आक्सफर्ड) एलिस स्कालर तथा विल्सन फिलौलाजिकल लेक्चरर (बबई विश्वविद्यालय), सप्रति प्रिंसिपल, धारवाड कालेज, धारवाड । जन्म-वर्ष और स्थान—१९०९, सावनूर (धारवाड) । रचनाएँ, अग्रेजी मे—'दि सॉग आफ लाइफ' (कविताएँ), 'दि पोएटिक अप्रोच टू लैंग्वेज' (आलोचना), कन्नड—'कलोपासक' (१९३४), 'समुद्र-गीत' (१९४०), 'जीवन के मदिर मे' (१९५३), 'समरसवे जीवन' (१९५७), 'युगातर', 'नव्यते' (१९५६), 'जीवन पथगानु' (१९४९), 'चेलुविन नीलुकु' (१९४७) । कवि, उपन्यासकार और आलोचक । साहित्य अकादेमी की कन्नड परामर्शदात्री समिति के सदस्य । पता धारवाड ।

५ कश्मीरी—**प्रो० पृथ्वीनाथ 'पुष्प'** एम० ए०, अमरसिंह कालेज, श्रीनगर मे सस्कृत तथा हिन्दी के विभागाध्यक्ष, हिन्दी आयोग के सदस्य । जन्म-वर्ष और स्थान—१९१७, कश्मीर । रचनाएँ १९३९ मे 'चद्रोदय' का सम्पादन, कश्मीरी, हिन्दी, अग्रेजी, उर्दू मे कश्मीरी भाषा और साहित्य पर कई शोध-लेख । साहित्य अकादेमी की कश्मीरी परामर्शदात्री समिति के सदस्य । पता श्रीनगर (कश्मीर) ।

६ - गुजराती—**प्रो० मनसुखलाल झवेरी,** एम० ए०, बम्बई विश्वविद्यालय के फेलो तथा आकाशवाणी बम्बई के गुजराती-कार्यक्रमो

के निर्देशक। जन्म-वर्ष तथा स्थान—१९०७, जामनगर (सौराष्ट्र)। रचनाएँ (कविताएँ) 'फुलडोल', 'आराधना', 'अभिसार,' 'अनुभूति', (आलोचना) 'थोडा विवेचन लेखो', 'पर्येषणा', 'गुजराती साहित्य नु रेखादर्शन', 'गुजराती भाषा—व्याकरण अने लेखन'। साहित्य अकादेमी की गुजराती परामर्शदात्री समिति के सदस्य। पता बम्बई।

७. तमिल—ति० पी० मीनाक्षिसुन्दरम्, एम० ए०, बी० एल०, विद्वान्, मद्रास हाईकोर्ट मे वकील, अन्नामलाई विश्वविद्यालय मे तमिल विभागाध्यक्ष (१९४४-४६)। जन्म-वर्ष—१९०१। रचनाएँ—'मनत शास्त्रन', 'वल्लुवर का नारी राज्य' तथा 'प्रेम चित्रण'। पता मद्रास।

८ तेलुगु—को० रामकोटीश्वर राव, बी० ए० बी० एल०। शिक्षा—नाबेल कालेज, मसुलीपट्टनम् तथा लॉ कालेज, मद्रास। जन्म-वर्ष और स्थान—१८९४,—नरसारावपेट (गुन्तूर), प्रिंसिपल, नेशनल कालेज, मसुलीपट्टनम् (१९२३-२७), सम्पादक 'त्रिवेणी', मुख्य सम्पादक, सदर्न लेंग्वेज बुक ट्रस्ट। रचनाएँ—तेलुगु, 'काऊर प्रधानी' (जीवन चरित्र), 'महाराष्ट्र वीरलु' (रेखाचित्र) इत्यादि। साहित्य अकादेमी की तेलुगु परामर्शदात्री समिति के सदस्य। पता मद्रास।

९ पजाबी—सरदार खुशवंत सिंह, एल-एल० बी० (लन्दन), बैरिस्टर। जन्म-वर्ष और स्थान—१९१५, हदली (पश्चिमी पजाब)। पजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर मे १९४७ तक प्रोफेसर, लन्दन मे हाई कमिश्नर के प्रेस सहचारी और जन सपर्क अधिकारी (१९४७-५१), आकाशवाणी मे १९५१-५२, यूनेस्को मे १९५४-५६ मे, सप्रति 'योजना' के सम्पादक, रचनाएँ—अग्रेजी मे—'दि सिक्स', 'दि मार्क आफ विष्णु', 'ट्रेन टु पाकिस्तान', पजाबी—'नाम विच्च की पिया है'। साहित्य अकादेमी की पजाबी परामर्शदात्री समिति के सदस्य। पता . नई दिल्ली।

१०. बगला—**काजी अब्दूल वदूद**, एम० ए०, ढाका कालेज मे बगला के प्राध्यापक, रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा विश्व भारती मे १९३५ मे निजाम लेक्चर्स के लिए आमत्रित । जन्म-वर्ष और स्थान—१८९६, बागमारा (फरीदपुर) । रचनाएँ—'शाश्वत बग', 'कविगुरु गोइटे', 'व्यावहारिक शब्दकोश', 'बाग्लार जागरण', अग्रेजी मे—'क्रिएटिव बगाल'। साहित्य अकादेमी की बगला परामर्शदात्री समिति के सदस्य। पता कलकत्ता।

११ मराठी—**प्रो० मगेश विट्ठल राजाध्यक्ष**, एम० ए०, जन्म-वर्ष तथा स्थान—१९१३, बबई । एलिफन्सटन कालेज, बबई मे अग्रेजी के अध्यापक, प्रसिद्ध आलोचक तथा निबधकार। रचनाएँ 'पाँच कवि', अग्रेजी तथा मराठी मे विविध लेख। पता बम्बई।

१२ मलयालम—**डॉक्टर सी० कुञ्ञन् राजा**। जन्म-वर्ष और स्थान—१८९५, केरल । (आक्सफर्ड तथा जर्मन विश्वविद्यालयो मे शिक्षा), मद्रास विश्वविद्यालय, तेहरान विश्वविद्यालय तथा आन्ध्र विश्वविद्यालय मे सस्कृत के अध्यापक, कई सस्कृत-ग्रथो के पाठशुद्ध-सस्करण तथा अनुवाद प्रस्तुत किये, शिप्ले के 'एनसाइक्लोपीडिया आफ वर्ल्ड लिटरेचर' मे 'मलयालम लिटरेचर' पर लेख। पता वाल्टेयर।

१३ सस्कृत—**डॉक्टर वे० राघवन**, पी-एच० डी०, कविकोकिल, जन्म-वर्ष और स्थान—१९०८, तिरुवाकुर (तजौर)। १९३५ से मद्रास मे सस्कृत-विभाग से सबद्ध, अब आचार्य । २० ग्रन्थो तथा २५० लेखो के रचयिता । सूचना-प्रसार तथा शिक्षा-मत्रालय की विविध समितियो के सलाहकार । अखिल भारतीय प्राच्य-विद्या-परिषद् के मत्री तथा साहित्य अकादेमी की सस्कृत-परामर्शदात्री समिति के सयोजक। सस्कृत आयोग के सदस्य। पता मद्रास।

१४ सिन्धी—**प्रो० ला० ह० अजवानी** एम० ए०। जन्म-वर्ष और स्थान—१८९९, खैरपुर मीर्स (सिन्ध)। प्रिंसिपल नेशनल कालेज,

बादरा, बम्बई । रचनाएँ, अंग्रेजी में–'इम्मार्टल इण्डिया', सिन्धी में––(सम्पादित)–'शैर जी मुखरी', 'विचार', 'उमग', 'नवदौर'। साहित्य अकादेमी की सिन्धी परामर्शदात्री समिति के सदस्य। पता बबई।

१५ हिन्दी––श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन, उपनाम–'अज्ञेय' बी० एस-सी० , जन्म-वर्ष तथा स्थान––१९०९, कसिया, गोरखपुर, क्रान्तिकारी आन्दोलन मे सबद्ध राजबन्दी, सपादक 'सैनिक', 'विशाल भारत', 'आरती', 'प्रतीक', 'वाक', आकाशवाणी मे हिंदी-शब्द-कोश तथा समाचार विभाग मे सबद्ध, गत महायुद्ध में आसाम के मोर्चे पर सपर्क अधिकारी, दक्षिण-पूर्वी एशिया के सास्कृतिक अध्ययन में रुचि, रचनाएं–(कविताएँ) 'भग्नदूत', 'चिंता', 'इत्यलम्',' हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये', 'अरी ओ करुणा प्रभामय', (उपन्यास)-'शेखर––एक जीवनी' (दो भाग) 'नदी के द्वीप', (कहानी-सग्रह)–'विपथगा', 'परम्परा', 'कड़ियाँ', 'जयदोल', (सम्पादित)–'तारसप्तक', 'नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ', अंग्रेजी मे––'प्रिजन डेज़ ऐंड अदर पोयम्स'। साहित्य अकादेमी की हिंदी परामर्शदात्री समिति के सदस्य। पता नई दिल्ली।

१६ अंग्रेजी––डॉक्टर के० आर० श्रीनिवास अयगार, डी० लिट्०। जन्म-वर्ष––१९०८। पी० ई० एन० के १९३८ से सदस्य, आंध्र विश्वविद्यालय मे अंग्रेजी के अध्यापक। प्रकाशन, अंग्रेजी में––'लिटन स्ट्रैची', 'म्यूजिग्ज आफ बसव', 'इडो-ऐंग्लियन लिटरेचर ऐंड आथरशिप इन इण्डिया', 'आन ब्यूटी', 'श्री अरविंदो', 'जेरार्ड मैनली हापकिन्स', 'आन दि मदर', 'दि माइंड ऐंड हार्ट आफ ब्रिटेन'। साहित्य अकादेमी की अंग्रेजी परामर्शदात्री समिति के सदस्य। पता . वाल्टेयर।

परिशिष्ट २

नामानुक्रमणी

फ

ल